दस्तावेज़ : मंटो

मुकदमे, पत्र, निबध



राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

सआदत हसन मंटो

दस्तावेज़

4



चयन, संयोजन एवं परिचय

बलराज मेनरा, शरद दत्त

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002
साइंस कालिज के सामने, पटना-800 006

मूल्य
पाँच खंडों का पूरा सैट : रु. 1000.00

आवरण : नंद कत्याल

पाठ्य भाग मेहरा आफसेट प्रेस, चाँदनी महल, नई दिल्ली-110 002 में और आवरण एवं चित्र अभिषेक प्रिंटिंग सर्विस, अंसारी रोड, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित

अनुक्रमणिका



मंटो अपने वालिद ग़ुलाम हसन के साथ



मंटो की वालिदा सरदार बेगम



सआदत हसन 12 साल की उम्र में–अमृतसर–1924



सआदत हसन दोस्तों के दरम्यान—अमृतसर—1934



मंटो–बंबई–1938

میرے تحریری بیان کی نقل

"میں ساقی بکڈپو دہلی مطبوعہ کتاب بعنوان "دھواں" کا مصنف ہوں۔ یہ کتاب میں نے سن ۱۹۴۱ء میں جبکہ میں آل انڈیا ریڈیو دہلی میں ملازم تھا ساقی بکڈپو کے مالک میاں شاہد احمد صاحب کے پاس غالباً تین یا ساڑھے تین سو روپئے میں فروخت کی تھی۔ اسکے جملہ حقوق اشاعت اب ساقی بکڈپو کے پاس ہیں۔

اس کتاب کے جو نسخے میں نے عدالت میں دیکھے ہیں ان کے ملاحظہ سے پتا چلتا ہے کہ یہ کتاب کا دوسرا اڈیشن ہے۔

چودہ افسانوں کے اس مجموعے میں سے جو انسانی زندگی کے مختلف شعبوں سے متعلق ہیں دو افسانے بعنوان "دھواں" اور "کالی شلوار" استغاثے کے نزدیک عریاں اور فحش ہیں — مجھے اس سے اختلاف ہے کیونکہ یہ دونوں کہانیاں عریاں اور فحش نہیں ہیں۔

کسی ادب پارے کے متعلق ایک روزانہ اخبار کے اڈیٹر۔ ایک اشتہار فراہم کرنے والے منیجر اور ایک سرکاری مترجم کا فیصلہ صائب نہیں ہو سکتا۔ بہت ممکن ہے کہ یہ تینوں کسی خاص اثر۔ کسی خاص غرض کے ماتحت اپنی رائے قائم کر رہے ہوں اور پھر یہ بھی ممکن ہے کہ تینوں حضرات ایسی رائے دینے کے اہل ہی نہ ہوں کیونکہ کسی بڑے شاعر۔ کسی بڑے افسانہ نگار کے افسانوں پر صرف وہی آدمی تنقید کر سکتا ہے جو تنقید نگاری کے فن کے تمام عواقب و عواطف سے آگاہ ہو۔

استغاثے ~~نے ....~~ دو افسانوں پر کوئی ~~حیرت افروز تنقید~~ نہیں کی ۔صرف اتنا کہہ دینے سے کہ یہ دونوں افسانے فحش ہیں اس آدمی کی جو روسی کا خواہشمند ہے ۔جو اپنے عیوب و [illegible] محاسن جاننا چاہتا ہے اور انکی اصلاح کرنا چاہتا ہے ہرگز ہرگز تسکین نہیں ہوتی — میں اگر جواب میں صرف اتنا کہہ کر خاموش ہو جاؤں کہ یہ دونوں افسانے فحش نہیں ہیں تو ظاہر ہے کہ میں اندھیرے میں اور بھی اضافہ کر دوں گا — مگر میں ایسا نہیں کروں گا اور جہاں تک مجھ سے ہو سکے گا اپنا مافی الضمیر بیان کرنے کی کوشش کروں گا۔

زبان میں بہت کم لفظ فحش ہوتے ہیں۔ طریقہ استعمال ہی ایک ایسی چیز ہے جو پاکیزہ سے پاکیزہ الفاظ کو بھی فحش بنا دیتا ہے۔ میرا خیال ہے کوئی بھی چیز فحش نہیں لیکن گھر کی کرسی اور ہانڈی بھی فحش ہو سکتی ہے اگر ان کو فحش طریقے پر پیش کیا جائے گا — چیزیں فحش بنائی جاتی ہیں کسی خاص غرض کے ماتحت۔

عورت اور مرد کا رشتہ فحش نہیں۔ اس کا ذکر بھی فحش نہیں۔ لیکن جب اس رشتے کو چور اسنوں یا جوڑ ارحفیہ تصویروں میں تبدیل کر دیا جائے اور لوگوں کو ترغیب دی جائے کہ وہ تخلیے میں اس شے کو غلط زاویے سے دیکھیں تو میں اس فعل کو صرف فحش ہی نہیں بلکہ نہایت گھناؤنا۔ مکروہ اور غیر صحتمند کہوں گا۔

فحش اور غیر فحش میں تمیز کرنے کے لئے شاید یہ مثال کام دے سکے۔

ایک آرٹ گیلری میں نمائش کے لئے ننگی عورتوں کی بہت سی تصویریں پھیری جاتیں۔ ان میں سے کسی نے بھی یہ سمجھا کہ ظاہر ہے دیکھنے والوں کا اخلاق خراب نہ کیا اور نہ انکے نفسانی جذبات ہی کو ابھارا۔ الٹا ایک تصویر جس میں عورت کا سارا

तहरीरी बयान की नक़ल

لاہور

یوسف صاحب

السلام علیکم ۔ مجھے بے حد افسوس ہے کہ

میرے بار بار درخواست کرنے پر بھی آپ نے میری درخواستوں کی طرف کوئی توجہ نہ دی۔

آپ نے مجھ سے پانچ ہزار روپیہ کا وعدہ کیا تھا کہ آپ میری تمام کتابوں کے حقوق کے عوض نگہداشت کریں گے، اور ہر کتاب کے عوض مجھے پیشگی معاوضہ وصول کرتا رہوں گا۔ میری کتابیں شائع ہو گئی ہیں۔ ظاہر ہے کہ آپ نے کافی روپیہ وصول کیا ہوگا۔

اگر آپ میں شرافت ہے اور دیانتداری کا کچھ بھی احساس ہے تو فوراً پانچ سو روپیہ قتیل شفائی صاحب کو جو میرے دوست ہیں ادا کر دیں۔ ورنہ مجھے کوئی دوسری صورت اختیار کرنی پڑے گی۔ یعنی مجھے خود وہاں آنے کی تکلیف برداشت کرنی پڑے گی۔ یاد رہے کہ میں ابھی تک زندہ ہوں اور اپنا حق وصول کرنا جانتا ہوں۔

خاکسار

سعادت حسن منٹو ۳۰ فروری ۱۹۵۴

مکرر: میں نے قتیل صاحب کو اپنی طرف سے کتب کے متعلق اختیارات دے دیے ہیں۔ وہ جو مناسب سمجھیں گے کریں گے۔

سعادت حسن منٹو

मंटो का एक ख़त

पहला शब्द

यह एक साफ़-शफ़्फ़ाफ़ इत्तफ़ाक़ था कि एकांतवासी जर्मन दार्शनिक नीत्शे ने दास्तायेवस्की को दरयाफ़्त किया। फ़रवरी 1887 में नीत्शे के हाथ 'नोट्स फ्राम दि अंडरग्राउंड' का फ़्रांसीसी तरजुमा लग गया और उसने फ़ौरन ही एक हमख़याल ज़ेह्न को पहचान लिया, एकमात्र मनोवैज्ञानिक जिससे वह कुछ सीख सकता था।

अब साहब, न तो बलराज मेनरा नीत्शे है और न ही मंटो दास्तायेवस्की है। कहना सिर्फ़ इतना है कि 1951 में जब मंटो उधर लाहौर में 'समाजी इंसान और फ़नकार के तसादुम[1] में' टुकड़े-टुकड़े हो रहा था, इधर दिल्ली की हार्डिंग लाइब्रेरी में सोलहसाला बलराज मेनरा के हाथ एक किताब लग गई। किताब के पहले पैराग्राफ़ में उसने यह जुम्ला पढ़ा :

''तुम जानते हो, इस सरमायापरस्त दुनिया में अगर मज़दूर मुक़र्रर[2] वक़्त के एक-एक लम्हे के एवज़ अपनी जान के टुकड़े तोलकर न दे तो उसे अपने काम की उजरत[3] नहीं मिल सकती।''

जैसे एक दोस्त ने मुहब्बत से दुख भरे लहजे में एक दोस्त से ये लफ़्ज़ कहे हों। ये लफ़्ज़ एक दोस्त ने एक दोस्त को लिखे थे, कहानी 'एक ख़त' में। यह थी मंटो से पहली मुलाक़ात।

Rene Wellek ने नीत्शे की 'दरयाफ़्त' को 'pure chance' कहा है। हम मंटो से पहली मुलाक़ात को ख़ुशगवार हादिसा कहते हैं। अगर कहीं मंटों की बजाय किसी तरक़्क़ी पसंद से मुलाक़ात हो गई होती तो आज कहीं मुँह छिपाने को भी जगह नहीं मिलती।

कहनेवाले ने तो यह भी कहा था :
गया दौरे-सरमायादारी गया
तमाशा दिखाकर मदारी गया

सरमायादारी ने तो ख़ैर क्या जाना था, क्या जाती, वह तो तेज़ी से आ रही है, हाँ बेचारे तरक़्क़ीपसंद सुपरफ़्लाप हो गए। मंटो ने कहा था : 'हिंदुस्तान को लीडरों से बचाओ।' आज पूरी क़ौम चीख़ रही है : हमें लीडरों से बचाओ

आप मेनरा से कह सकते हैं : मियाँ, क्यों बहक रहे हो !

साहब, हम क्या बहकेंगे, हम क्या बहकाएँगे। बहकनेवाले बहुत, बहकानेवाले बहुत :

मुल्ला, पंडित, ज्ञानी-ध्यानी
उनकी रोटी, उनका पानी

तो अर्ज यह है कि मुलाक़ात दोस्ती बन सकती है, बन जाती है, पर मुलाक़ात और दोस्ती से पहले हम कहीं न कहीं गुज़र-बसर तो करते ही हैं, शबो-रोज़ गुज़ारते ही हैं। शरद दत्त के शबो-रोज़ के उकता देनेवाले तसलसुल[4] में एक ऐसी घड़ी भी आई जब जिंदगी की भीड़-भाड़ और धक्कमपेल के बावजूद उसकी मुलाक़ात भोलू से हो गई जो अलिफ़ नंगा बाज़ारों में घूमता था और जहाँ कहीं टाट लटका देखता था, उसको उतारकर टुकड़े-टुकड़े कर देता था।

शरद दत्त का बयान है कि दीवाने भोलू ने, कुछ ही दिनों के अंदर-अदर, शरद को अपने दोस्त बिशनसिंह से मिला दिया। बिशनसिंह तो बस दीवानों में एक ही दीवाना था।

बस साहब, शरद दत्त को, इंतज़ार हुसैन के मशहूर जुम्ले के मुताबिक़, मंटो हो गया। यह दोस्ती कुछ ऐसी है जैसे 'भूक' ने दीवाने पैदा कर दिए हों।

अदब की तारीख़ में 'दीवानगी' का एक आलम इस तरह भी मिलता है :

मरने से चंद माह पहले दास्तायेवस्की ने पुश्किन के बुत की नक़ाबकुशाई की। हमारे हाँ अव्वल तो अदीबों के बुत लगते ही नहीं, और अगर भूले-भटके एक-आध बुत लग जाए तो उसकी नक़ाबकुशाई अदीब लोग और अदबी अंजुमनें[5] किसी सियासी मछंदर से करवाती हैं। इसे आप भटक जाना कहना चाहें तो कह सकते हैं, लेकिन लगे हाथों इतनी बात और सुन लीजिए। इन दिनों अदीबों की किताबों की नथ आम तौर पर, ज्यादातर लीडर लोग उतारते हैं और रस्मी से, चंद घिसे-पिटे जुम्लों में, हर विचारधारा के साहित्यकार को एक ही लाठी से हाँक रहे हैं। मंटो के सिलसिले में हमारे और पब्लिशर के 'समझौते' के मुताबिक़ किसी धोती परशाद, किसी शरई पाजामे को पास तक फटकने की इजाजत नहीं दी जाएगी।

हाँ तो हम कह रहे थे कि दास्तायेवस्की ने पुश्किन के बुत की नक़ाबकुशाई की। साहित्य के इतिहासकार बताते हैं कि दास्तायेवस्की की तक़रीर सुनकर साहित्यकार तो क्या, आम साधारण रूसी नागरिक तक अपनी-अपनी निजी दुश्मनियाँ भुला बैठे थे और एक-दूसरे के गले लग गए थे।

बलराज मेनरा और शरद दत्त को तो एक-दूसरे के अस्तित्व तक का ज्ञान न था, दुश्मनियाँ तो उन्होंने वैसे भी नहीं पाली थीं। दोनों अपने-अपने तौर पर अलग-अलग, एक-दूसरे से बेख़बर, मंटो की संगत में ज़िंदगी गुज़ार रहे थे। और जब 1975 में, रीगल के पिछवाड़े, ज़ुबैर रिज़्वी के माध्यम से दोनों की मुलाक़ात हुई तो एक ही साथ दोनों का 'मैं' और 'तुम' ढह गए। बस वह मंटो बोलने लगा, और यूँ जानिए, ख़ुद मंटो ही सुनने लगा।

मंटो-मेनरा दोस्ती सन् इक्यावन में शुरू हुई।

मंटो-शरद दोस्ती का आरंभ सन् अट्ठावन में हुआ।

मेनरा-शरद दोस्ती, मंटो के ताल्लुक़ से, एमरजेंसी की सियाही में पनपी।

मंटो-मेनरा-शरद दोस्ती तीन व्यक्तियों या तीन नामों के गिर्द नहीं घूमती। इस दोस्ती को हर पल, हर घड़ी दसों दिशाओं में फैलाने का काम नीती ने भी किया है, भोलू ने भी, बिशनसिंह ने भी और मम्मद भाई ने भी।

आप, दोस्तों की इस महफ़िल में शामिल हो सकते हैं। शर्त सिर्फ़ इतनी है कि एहतजाज[6], वफ़ा और दर्दमंदी आपके जीवन के बुनियादी मूल्य हों—वही बुनियादी मूल्य जिन्होंने मंटो से इस चौथे खंड में शामिल मज़ामीन लिखवाए।

जी हाँ, तो पहले आप मज़मून पढ़िए और फिर ज़रा दम लेकर 'अंतिम शब्द' पर एक नज़र डालिए

1. टकराव, 2 निर्धारित; 3. मजदूरी; 4. निरंतरता; 5. संगठन; 6. प्रतिरोध।

सर खुजाता है जहाँ ज़ख़्मे-सर अच्छा हो जाए
लज़्ज़ते-संग[1] ब-अंदाज़ा-ए-तक़रीर नहीं
—ग़ालिब

लज़्ज़ते-संग

लाहौर के एक रुसवाए-आलम रिसाले में, जो फ़हाशी और बेहूदगी की इशाअत को अपना पैदाइशी हक़ समझता है, एक अफ़साना शाया हुआ है, जिसका उनवान है 'बू', और इसके मुसन्निफ़[1] हैं मि. सआदत हसन मंटो—इस अफ़साने में फ़ौजी ईसाई लड़कियों का करेक्टर इस दर्जा गंदा बताया गया है कि कोई शरीफ़ आदमी बर्दाश्त नहीं कर सकता। अफ़सानानिगार ने इज़हारे-मतलब के लिए जो असलूब[2] इख़्तियार किया है और जो अल्फ़ाज़ मुंतख़ब[3] किए हैं, उनके लिए तहज़ीबो-शराफ़त के दामन में कोई जगह नहीं हो सकती, लेकिन हुकूमत अब तक ख़ामोश है। यही हुकूमत 'लज़्ज़तुन्निसा'[4] और 'कोकशास्त्र' ऐसी फ़न्नी[5] किताबों को भी क़ाबिले-मुआख़ज़ा[6] समझती है लेकिन ऐसे अफ़सानों की तरफ़ मुतवज्जेह[7] नहीं होती जो अदबे-जदीद[8] के नाम से सिफ़ली जज़्बात में हलचल डालने का मूजिब[9] हैं और (इसी हुकूमत ने) फ़हाशतनिगार अदीबों को खुली छुट्टी दे रखी है—वो क़ानून की गिरफ़्त से बेनियाज़[10] होकर गंदगी बिखेरते रहते हैं।

—हफ़्तावार 'ख़ैयाम', लाहौर

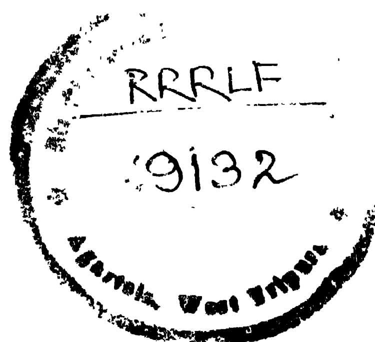
---

1. लेखक; 2. शैली; 3. चुनना; 4. एक सैक्सी पुस्तक का नाम, औरत का स्वाद; 5. तकनीकी; 6. जाँच-पड़ताल के योग्य; 7. आकर्षित, 8 नया साहित्य; 9. कारण, हेतु; 10. बेफ़िक्र।

प्रेस ब्रांच के इंचार्ज चौधरी मुहम्मद हुसैन बहुत नेक ख़याल के बुज़ुर्ग हैं। इस क़िस्म के अफ़साने पढ़कर उनकी रूह यक़ीनन कांप उठती होगी। उनके हाथ में क़ानून है और वह उसे निहायत सख़्ती से इस्तेमाल कर सकते हैं। क्या उनके लिए यह मुमकिन नहीं था कि जिस तरह क़ाबिले-एतिराज़ मज़हबी मज़ामीन[11] लिखनेवालों के ख़िलाफ़ गवर्नमेंट की मशीनरी हरकत में आती है, उसी तरह वह इन गंदे अफ़सानों को लिखनेवाले सआदत हसन मंटो वग़ैरह, बेचनेवाले पब्लिशरों जो रिसाले की फ़रोख़्त से हज़ारों रुपए कमाते हैं और छापनेवाले प्रेस के मालिकों को फ़ौरन गिरफ़्तार कर लेते और उनमें से एक-एक को तीन-तीन साल के लिए जेलों में बंद करा देते—हमें यक़ीन है कि कोई भी अदालत उन अफ़सानों को क़ानून की रू से नहीं बचने देगी। ये (अफ़साने) साफ़ तौर से नौजवान लड़कों और लड़कियों में बदअख़लाक़ी फैलाते हैं और अवाम का मजाक़ बिगाड़ते हैं।

—रोज़नामा 'प्रभात', लाहौर

11. लेख।



'अदबे-लतीफ़'—इस नाम का एक रिसाला लाहौर से शाया होता है। यह कहने को तो एक अदबी-माहनामा है लेकिन अगर इसे अदबे-कसीफ़[12] कहें तो बजा है। इसका सालाना नंबर इस वक़्त हमारे पेशे-नज़र है जिसमें एक लचर और फ़हश अफ़साना अज़-क़लम फ़हशनिगार सआदत हसन मंटो शाया हुआ है जिसके ख़िलाफ़ हम निहायत पुरज़ोर एहतिजाज करते हैं। न फ़क़त इसके कोकशास्त्राना ख़यालात की वजह से बल्कि इसलिए भी कि यह गवर्नमेंट आलिया की वीमेंज़ ऑक्सिलयॅरि[13] कोर की ममाई-ओ[14]-रबाबे-जंग[15] की राह में रोड़ा अटकानेवाला और उसकी बदनामी का मूजिब है, हत्ता[16] कि उस महकमे को यह बेहूदा शख़्स क़हबाख़ाने का नाम देता है—हम हैरान हैं कि और छोटी-छोटी बातों पर तो गवर्नमेंट की मशीनरी फ़ौरन हरकत में आ जाती है लेकिन इस ख़िलाफ़े-तहज़ीब मज़मून पर उसकी अब तक नज़र नहीं पड़ी। क्या सुपरिंटेंडेंट प्रेस ब्रांच इस बदअख़लाक़ और बेअदब 'अदीब' और इस रिसाला मज़्कूर के[17] ख़िलाफ़ जल्द कोई कार्रवाई न करेंगे? देखा चाहिए !

—अख़्वत, लाहौर

12. गंदा साहित्य; 13. सम्मानित; 14 कोशिश, प्रयास, 15 युद्ध के बिगुल, 16 यहां तक 17. उल्लिखित, उपरोक्त।

एक मक़ामी माहनामा ने सआदत हसन मंटो का एक फ़हश अफ़साना 'बू' शाया किया था। 'ख़ैयाम' में उस अख़लाक़ सोज़ हरकत के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई गई थी जो हुकूमते-पंजाब के कानों तक पहुँचे बग़ैर न रह सकी, चुनांचे मालूम हुआ है कि जिस पर्चे में 'बू' शाया हुआ था, वह ज़ब्त कर लिया गया है। यह ज़ब्ती 392/38 दफ़ा के मातहत् अमल में आई है—हम इस फ़ैसले पर हुकूमते-पंजाब को मुस्तहिक़े-तबरीक[18] समझते हैं और उम्मीद करते हैं कि वह इस क़िस्म की फ़हाशी को मुस्तक़िल तौर पर रोकने के लिए कोई मुअस्सर[19] क़दम उठाएगी।

—हफ़्तावार 'ख़ैयाम', लाहौर

18. मुबारकबाद की अधिकारी; 19. असरदार।

331,
मलिक बिल्डिंग,
मेव रोड,
लाहौर।

भाईजान, सलामे-शौक़!

ब्रादरम आग़ा ख़लिश साहिब का गिरामीनामा[20] परसों मिला था—आपकी अलालत[21] का इल्म हुआ। अल्लाह करे, आप अब अच्छे हों। जब आपको अपनी सेहत का अंदाज़ा है तो इतना ज़्यादा काम क्यों करते हैं कि दिनों साहिबे-फ़राश[22] रहते हैं। मुझे लौटती डाक में अपनी सेहत की हालत से मुत्तला कीजिए और लिल्लाह इतनी मेहनत न कीजिए कि आप इंजेक्शनों के काँटों में घिरे रह जाएँ। अभी बरसों तक आपकी ज़रूरत है।

लीजिए 'ख़ैयाम', 'आईना' (बंबई) और दीगर मेहरबानों के दम से 'अदबे-लतीफ़' का सालनामा[23] ज़ेरे दफ़ा 292 ताज़ीराते-हिंद और 38 डिफ़ेंस ऑफ़ इंडिया रूल्ज़, 29 मार्च की शाम को ज़ब्त हो गया—पुलिस ने छापा मारा और सालनामे के बाक़ी मांदा नंबर ले गई। अभी प्रोपराइटर और एडिटरों की गिरफ़्तारी अमल में नहीं आई लेकिन अफ़वाह है कि हम बहुत जल्द गिरफ़्तार कर लिए जाएँगे—यह ज़ब्ती आपके मज़मन और अफ़साने की वजह से अमल में आई है।

अहमद नदीम क़ासमी
एडिटर 'अदबे-लतीफ़'

20. पत्र; 21. बीमारी; 22. गंभीर रूप से बीमार; 23. वार्षिक विशेषांक।

मज़मून जिसका जिक्र महूला सद्र[24] ख़त में है, एक तक़रीर थी जो मैंने जोगेश्वरी कॉलेज, बंबई में तालिबे-इल्मों को पढ़ के सुनाई थी—इससे पहले चंद असहाब[25] 'अदबे-जदीद' के ख़िलाफ़ इस कॉलेज में तक़रीरें कर चुके थे, यही वजह है कि मैंने कॉलेज की मजलिसे-अदब की दावत क़ुबूल की और अपने ख़यालात का इज़हार किया। यह तक़रीर बाद में 'अदबे-जदीद' के उनवान से 'अदबे-लतीफ़' के ज़ेरे-इताब सालनामा 1944 ई. में मेरे अफ़साने 'बू' के साथ शाया हुई—मैं इसे ज़ैल में नक़्ल करता हूँ:

24. सुपुर्द किए गए; 25. महानुभावों।

अदबे-जदीद

मेरे मज़मून का उनवान अदबे-जदीद[1] है। लुत्फ़ की बात यह है कि मैं इसका मतलब ही नहीं समझता लेकिन यह ज़माना ही कुछ ऐसा है कि लोग उसी चीज़ के मुताल्लिक़ बातें करते हैं जिनका मतलब उनकी समझ में नही आता—पिछले दिनों गाँधी जी ने आग़ा ख़ाँ के महल में मरन-व्रत रखा। जब लोगों की समझ में न आया कि वह किस तरह ज़िंदा रह सके हैं तो एक नारंगी पैदा कर दी गई। यह नारंगी भी कुछ दिनों के बाद नाक़ाबिले-फ़हम[2] हो गई। बाज़ आदमियों ने कहा कि नारंगी नहीं थी, मौसंबी थी। बाज़ ने कहा : नहीं, मौसंबी, नारंगी हर्गिज़ नहीं थी, माल्टा था—बात बढ़ती गई। चुनांचे इस फल की सारी ज़ातें गिनवा दी गईं : नारंगी, संगतरा, मौसंबी, माल्टा, चकोतरा, स्वीटलाइम, खट्टा लीमूं, मीठा लीमूं, वग़ैरह, वग़ैरह। फिर डॉक्टरों ने इनमें से हर एक की विटामिंज़ गिनवाईं। ग़िज़ाइयत को कैलोरीज़ में तक़सीम किया गया। एक बरस में पिचहत्तर बरस के बुड्ढे को कितनी कैलोरीज़ की ज़रूरत होती है, इस पर बहस की गई और साहिब, गाँधी जी की यह नारंगी या मौसंबी, जो कुछ भी थी, वह सआदत हसन मंटो बन गई—यह मेरा नाम है लेकिन बाज़ लोग अदबे-जदीद उलमारूफ़[3] नए अदब, यानी तरक़्क़ीपसद अदब को सआदत हसन मंटो भी कहते हैं और जिन्हें सिन्फ़े-करख़्त[4] पसंद नहीं, वो उसे इस्मत चुग़ताई भी कह लेते हैं।

जिस तरह मैं यानी सआदत हसन मंटो अपने आपको नहीं समझता, उसी तरह अदबे-जदीद उलमारूफ़ नया अदब यानी तरक्क़ीपसंद लिट्रेचर भी मेरी फ़हम से बालातर है और जैसा कि मैं अर्ज़ कर चुका हूँ, उन लोगों की समझ से भी ऊँचा है जो इसको समझने की कोशिश करते हैं। मिसाल के तौर पर चंद मज़मूनों में उस अदब को जिसके कई नाम हैं, और ज़्यादा नाम देने के लिए फ़हशनिगारी[5] और मज़दूरपरस्ती से भी मंसूब किया गया है।

मैं चीज़ों के नाम रखने को बुरा नहीं समझता। मेरा अपना नाम अगर न होता तो वो गालियाँ किसे दी जातीं जो अब तक हज़ारों और लाखों की तादाद में मैं अपने नक़्क़ादों[6] से वुसूल कर चुका हूँ—नाम हो तो गालियाँ और शाबाशियाँ देने और लेने में बहुत सहूलत पैदा हो जाती है लेकिन अगर एक ही चीज़ के बहुत से नाम हों तो उलझाव पैदा होना ज़रूरी है।

सबसे बड़ा उलझाव इस तरक़्क़ीपसंद अदब के बारे में पैदा हुआ है हालाँकि पैदा नहीं होना चाहिए था—अदब या तो अदब है, वर्ना अदब नहीं है। आदमी या तो आदमी है वर्ना आदमी नहीं है, गधा है, मकान है, मेज़ है या और कोई चीज़ है—कहा जाता है : सआदत

हसन मंटो तरक़्क़ीपसंद इंसान है—यह क्या बेहूदगी है। सआदत हसन मंटो इंसान है और हर इंसान को तरक़्क़ीपसंद होना चाहिए। तरक़्क़ीपसंद कहकर लोग मेरी सिफ़त बयान नहीं करते बल्कि अपनी बुराई का सुबूत देते हैं जिसका मतलब यह है कि वो ख़ुद तरक़्क़ीपसंद नहीं हैं यानी वो ख़ुद तरक़्क़ी नहीं चाहते—मैं ज़िंदगी के हर शोबे में तरक़्क़ी का ख़्वाहिशमंद रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप सब तरक़्क़ी करें। आज आप तालिब-इल्म[7] हैं, तरक़्क़ी करते-करते कल आप भी अपने आइडियल तक पहुँच जाएँ…

हर आदमी तरक़्क़ीपसंद है। वो लोग जिन्हें तख़रीबी या रजअतपसंद कहा जाता है, ख़ुद को तरक़्क़ीपसंद ही समझते हैं—और फिर हर ज़माने में क़रीब-क़रीब हर आदमी गुज़री हुई नस्ल के मुक़ाबले में अपने को ज़्यादा ज़हीन, तब्बाअ[8] और तरक़्क़ीयाफ़्ता इंसान ही समझता है। यही हाल अदब का है। शरर[9] के नावल और राशिद-उल-ख़ैरी के क़िस्से आजकल के अक्सर मुसन्निफ़ीन को बिलकुल बेजान मालूम होते हैं। पढ़नेवालों की भी यही कैफ़ियत है। मार्किट में चले जाइए, आज से दस-बीस बरस पहले के लिखनेवालों की किताबें स्टालों पर बहुत कम दिखाई देती हैं। कृश्न चंदर, राजेंद्र सिंह बेदी, इस्मत चुग़ताई और सआदत हसन मंटो की किताबें, एम. असलम, तीर्थराम फ़ीरोज़पुरी, सैयद इम्तियाज़ अली ताज और आबिद अली आबिद के मुक़ाबले में ज़्यादा पढ़ी जाती हैं। इसलिए कि कृश्न चदर और उसके हमअस्र[10] नौजवानों ने ज़िंदगी के नए तजुर्बे बयान किए हैं।

आज से बीस-पच्चीस बरस पहले मुल्क की सियासी और मजलिसी हालत बिलकुल मुख़्तलिफ थी—इसी तरह आप अंदाज़ा लगा सकते हैं कि पचास-साठ बरस और पहले कैसी होगी। अगर मुग़लिया हुकूमत का दौर-दौरा होता तो बहुत मुमकिन है, मेरे घर में एक हरमसराए होती। न होती तो कम-अज़-कम एक बीवी घर में होती और दो-तीन तवाइफ़ें मेरी मुलाज़मत में होतीं। मुझे बटेरें लड़ाने का शौक़ होता। यह मज़मून पढ़ने के बजाय मैं प्रिंसिपल साहिब विलकाबा की शान में एक क़सीदा[11] सुनाता जो ख़ुश होकर या तो मेरा मुँह मोतियों से भर देते या जोगेश्वरी कॉलेज मुझे बख़्श देते ताकि मैं इसे अपना तबेला बना सकूँ। मगर जैसा कि आप जानते हैं, हालात बहुत मुख़्तलिफ़ हैं। मुझे यहाँ से पैदल स्टेशन जाना पड़ेगा और फ़िल्मिस्तान मे अपने आक़ाओं को जवाब देना पड़ेगा कि मैं इतनी देर डॉक्टर के पास क्या करता रहा—मैं उनसे झूठ बोल के आया हूँ कि डॉक्टर से टीका लगवाने जा रहा हूँ।

हाँ, तो मैं अर्ज़ कर रहा था कि हालात बहुत मुख़्तलिफ़ हैं और हालात का यह इख़्तिलाफ़ ही अदब में मुख़्तलिफ़ रंग पैदा करता है। पहले फ़ारिग़-उलबाली[12] थी। लोग आरामपसंद और ऐशपरस्त थे। उस ज़माने के अदब में आपको बहुत-सी दिमाग़ी ऐयाशियाँ नज़र आ सकती हैं। वह ग़ुनूदगी[13] भी आप महसूस कर सकते हैं जो उस ज़माने के अदीबों पर तारी थी। उस ज़माने में शाइर अपने असील मुर्ग़ की जवाँमर्गी पर ज़ोरदार नौहा लिखता था और बहुत बड़ा शाइर तस्लीम किया जाता था। आज का शाइर अपनी जवाँमर्गी[14] के नौहे[15] लिखता है। उस अहद का क़िस्सानवीस जिन्नों और परियों की दास्तानें लिखकर नाम पैदा करता था। आज का अफ़सानानवीस उन मर्दों और औरतों

की कहानियाँ लिखता है जो जिन्नों और परियों से कहीं ज़्यादा दिलचस्प हैं। उस दौर का अदीब मुतमइन इंसान था। आज का अदीब एक ग़ैरमुतमइन इंसान है। वह अपने माहौल, अपने निज़ाम, अपनी मुआशरत[16], अपने अदब, हत्ता कि अपने आपसे भी ग़ैरमुतमइन है। उसकी इस बेइत्मीनानी को लोगों ने ग़लत नाम दे रक्खे हैं। कोई उसे तरक़्क़ीपसंदी कहता है, कोई फ़हशनिगारी और कोई मज़दूरपरस्ती। यह भी कहा जाता है कि इन अदीबों के आसाब पर औरत सवार है। सच तो यह है कि हुबूते-आदम[17] से लेकर अब तक हर मर्द के आसाब[18] पर औरत सवार रही है। और क्यों न रहे? मर्द के आसाब पर क्या हाथी-घोड़ों को सवार होना चाहिए? जब कबूतर कबूतरियों को देखकर गुटकते हैं तो मर्द औरतों को देखकर एक ग़ज़ल या अफ़साना क्यों न लिखें? औरतें कबूतरियों से कहीं ज़्यादा दिलचस्प, ख़ूबसूरत और फ़िक्रख़ेज़ हैं। क्या मैं झूठ कहता हूँ?

आज से कुछ अर्सा पहले शाइरी में औरत को एक ख़ूबसूरत लड़का बना दिया गया था। ज़ाहिर है कि उस ज़माने के शाइरों ने इसमें कोई मसलहत[19] देखी होगी। मगर आज के शाइर इस मसलहत के ख़िलाफ़ हैं। वो औरत के चेहरे पर सब्ज़े या ख़त के आग़ाज़ को बहुत ही मक्रूह[20] और ख़िलाफ़े-फ़ितरत समझते हैं और चाहते हैं कि दूसरे भी उसको उसकी असली शक्ल में ही देखें—ख़ुदा लगती कहिए, क्या आप अपनी महबूबा के गालों पर दाढ़ी पसंद करेंगे?

मैं अर्ज़ कर रहा था कि ज़माने की करवटों के साथ अदब भी करवटें बदलता रहता है। आज उसने जो करवट बदली है, उसके ख़िलाफ़ अख़बारों में मज़मून लिखना या जलसों में ज़हर उगलना बिलकुल बेकार है। वो लोग जो अदबे-जदीद का, तरक़्क़ीपसंद अदब का, फ़हश अदब का, या जो कुछ भी यह है, ख़ातिमा कर देना चाहते हैं तो सही रास्ता यह है कि उन हालात का ख़ातिमा कर दिया जाए जो इस अदब के मुहर्रिक[21] हैं।

महमूदाबाद के राजा साहिब का, हैदराबाद के शाइर माहिर-उल-क़ादरी साहिब का या बंबई के दवाफ़रोश हकीम मिर्ज़ा हैदरबेग साहिब का इस लिट्रेचर के ख़िलाफ़ रेज़ूलूशन[22] पास करना बिलकुल बेकार है—जब तक औरतों और मर्दों के जज़्बात के दरमियान एक मोटी दीवार हाइल रहेगी, इस्मत चुग़ताई उसके चूने को अपने तेज़ नाख़ूनों मे कुरेदती रहेगी; जब तक कश्मीर के हसीन देहातों में शहरों की गंदगी फैली रहेगी, ग़रीब कृश्न चंदर हौले-हौले रोता रहेगा; जब तक इंसानों में और ख़ासतौर पर सआदत हसन मंटो में कमज़ोरियाँ मौजूद हैं, वह ख़ुर्दबीन से देख-देखकर बाहर निकालता रहेगा और दूसरों को दिखाता रहेगा—राजा साहिब महमूदाबाद और उनके हमख़याल कहते हैं: यह सरासर बेहूदगी है। तुम जो कुछ लिखते हो, ख़ुराफ़ात है—मैं कहता हूँ, बिलकुल दुरुस्त है। इसलिए कि मैं बेहूदगियों और ख़ुराफ़ात ही के मुताल्लिक़ तो लिखता हूँ। राजा साहिब महमूदाबाद एक कान्फ्रेंस के सद्र बन जाएँ या हकीम हैदरबेग साहिब खाँसी दूर करने का मुजर्रब[23] शर्बत ईजाद कर लें, मुझे उनकी सदारत और उनके शर्बत से कोई दिलचस्पी नहीं। अलबत्ता जब मैं ट्रेन में बैठा-बैठा अपना नया ख़रीदा हुआ कीमती पैन निकालता हूँ, सिर्फ़ इस ग़रज़ से कि लोग देखें और मरऊब[24] हों तो मुझे अपना सिफ़लापन बहुत

दिलचस्प मालूम होता है। मेरे पड़ोस में अगर कोई औरत हर रोज़ ख़ाविंद से मार खाती है और फिर उसके जूते साफ़ करती है तो मेरे दिल में उसके लिए ज़र्रा बराबर हमदर्दी पैदा नहीं होती लेकिन जब मेरे पड़ोस में कोई औरत अपने ख़ाविंद से लड़कर और ख़ुदकुशी की धमकी देकर सिनेमा देखने चली जाती है और मैं ख़ाविंद को दो घंटे तक सख़्त परेशानी की हालत में देखता हूँ तो मुझे दोनों से एक अजीबो-ग़रीब क़िस्म की हमदर्दी पैदा हो जाती है। किसी लड़के को लड़की से इश्क़ हो जाए तो मैं उसे ज़ुकाम के बराबर भी अहमियत नहीं देता मगर वह लड़का मेरी तवज्जोह को ज़रूर खींचेगा जो ज़ाहिर करे कि उस पर सैकड़ों लड़कियाँ जान देती हैं लेकिन दरहक़ीक़त वह मुहब्बत का उतना ही भूखा है जितना बंगाल का फ़ाक़ाज़दा बाशिंदा। इस बज़ाहिर कामयाब आशिक़ की रंगीन बातों में जो ट्रेजडी सिसकियाँ भरती होगी, उसको मैं अपने दिल के कानों से सुनूँगा और दूसरों को सुनाऊँगा। चक्की पीसनेवाली औरत जो दिन भर काम करती है और रात को इत्मीनान से सो जाती है, मेरे अफ़सानों की हीरोइन नहीं हो सकती। मेरी हीरोइन चकले की एक टखियाई रंडी हो सकती है जो रात को जागती है और दिन को सोते में कभी-कभी यह डरावाना ख़्वाब देखकर उठ बैठती है कि बुढ़ापा उसके दरवाज़े पर दस्तक देने आया है। उसके भारी-भारी पपोटे जिन पर बरसों की उचटती हुई नींदें मुंजमिद[25] हो गई हैं, मेरे अफ़सानों का मौज़ू बन सकते हैं। उसकी गलाज़त, उसकी बीमारियाँ, उसका चिड़चिड़ापन, उसकी गालियाँ, ये सब मुझे भाती हैं। मैं उनके मुताल्लिक़ लिखता हूँ और घरेलू औरतों की शुस्ता[26] कलामियों, उनकी सेहत और उनकी नफ़ासतपसंदी को नज़रअंदाज़ कर जाता हूँ।

एतिराज़ किया जाता है कि नए लिखनेवालों ने औरत और मर्द के जिंसी ताल्लुक़ात ही को अपना मौज़ू बनाया है। मैं सबकी तरफ़ से जवाब नहीं दूँगा। अपने मुताल्लिक़ इतना कहूँगा कि यह मौज़ू मुझे पसंद है। क्यों है? बस है। समझ लीजिए कि मुझमें Perversion[27] है और अगर आप अक्लमंद हैं, चीज़ों के अवाक़िबो-अवातिफ़[28] अच्छी तरह जाँच सकते हैं तो समझ लेंगे कि यह बीमारी मुझे क्यों लगी है—ज़माने के जिस दौर से हम इस वक़्त गुज़र रहे हैं, अगर आप उससे नावाक़िफ़ हैं तो मेरे अफ़साने पढ़िए! अगर आप उन अफ़सानों को बर्दाश्त नहीं कर सकते तो इसका मतलब यह है कि यह ज़माना नाक़ाबिले-बर्दाश्त है। मुझमें जो बुराइयाँ हैं, वो इस अहद की बुराइयाँ हैं। मेरी तहरीर में कोई नुक़्स नहीं। जिस नुक़्स को मेरे नाम से मंसूब[29] किया जाता है, दरअसल मौजूदा निज़ाम का नुक़्स है—मैं हंगामापसंद नहीं। मैं लोगों के ख़यालातो-जज़्बात में हेजान पैदा करना नहीं चाहता। मैं तहज़ीबो-तमद्दुन[30] की और सोसायटी की चोली क्या उतारूँगा जो है ही नंगी। मैं उसे कपड़े पहनाने की कोशिश भी नहीं करता, इसलिए कि यह मेरा काम नहीं, दर्ज़ियों का है—लोग मुझे सियाह कलम कहते हैं लेकिन मैं तख़्ता-ए-सियाह पर काली चाक से नहीं लिखता, सफ़ेद चाक इस्तेमाल करता हूँ कि तख़्ता-ए-सियाह की सियाही और भी ज़्यादा नुमायाँ हो जाए। यह मेरा ख़ास अंदाज़, मेरा ख़ास तर्ज़ है जिसे फ़हशनिगारी, तरक़्क़ीपसंदी और ख़ुदा मालूम क्या-क्या कुछ कहा जाता है—लानत हो सआदत हसन मंटो पर, कमबख़्त को गाली भी सलीक़े से नहीं दी जाती…।

जब मैंने लिखना शुरू किया था तो घरवाले सब बेज़ार थे। बाहर के लोगों को भी हस्बे-मामूल[31] मेरे साथ दिलचस्पी पैदा हो गई थी। चुनांचे वो कहा करते थे : "भई, कोई नौकरी तलाश करो। कब तक बेकार पड़े अफ़साने लिखते रहोगे..." आठ-दस बरस पहले अफ़सानानिगारी बेकारी का दूसरा नाम था। आज इसे अदबे-जदीद कहा जाता है जिसका मतलब यह है कि लोगों के ज़ेहन ने काफ़ी तरक़्क़ी कर ली है। वह वक़्त भी आ जाएगा जब इस जदीद अदब का सही मतलब वाज़ेह हो जाएगा और हकीम हैदरबेग साहिब देहलवी को अपने शिफ़ाख़ाने से उठकर नए लिखनेवालों के रोग की तश्ख़ीस[32] नहीं करना पड़ेगी।

जब से जंग शुरू हुई है, अदबे-जदीद पर एक नए ज़ाविए से हमला किया जा रहा है। कहा जाता है कि जब सारी दुनिया जंग के शोलों में लिपटी है, हर रोज़ हज़ारों इंसानों का ख़ून मिट्टी में मिल रहा है, फ़ना बादा-ए-हर-जाम[33] बनी है, दूसरी अज्नास[34] की तरह इंसानों के गोश्त-पोस्त की दूकानें भी खुली हैं तो ये नए लिखनेवाले क्यों ख़ामोश हैं? क्या इनके क़लम सिर्फ़ जिंसियात[35] की रोशनाई ही में डूबते हैं? दुनिया का नक़्शा बदल रहा है, हर लहज़ा, हर घड़ी एक नए तूफ़ान का पैग़ाम ला रही है मगर उनके दिलो-दिमाग़ पर ऐसा जुमूद[36] तारी है कि दूर ही नहीं होता।

मैं फिर दूसरों की तरफ़ से जवाब नहीं दूँगा। अपने मुताल्लिक़ अर्ज़ करना चाहता हूँ कि दुनिया का नक़्शा वाक़ई बदल रहा है लेकिन अगर मैंने उसके मुताल्लिक़ कुछ लिखा है तो मेरा भी हुलिया बदल जाएगा। डरपोक आदमी हूँ, जेल से बहुत डर लगता है। यह ज़िंदगी जो बसर कर रहा हूँ, जेल से कम तकलीफ़देह नहीं। अगर इस जेल के अंदर एक और जेल पैदा हो जाए और मुझे उसमें ठूँस दिया जाए तो चुटकियों में मेरा दम घुट जाएगा। ज़िंदगी से मुझे प्यार है। हरकत का दिलदादा हूँ। चलते-फिरते सीने में गोली खा सकता हूँ लेकिन जेल में खटमल की मौत नहीं मरना चाहता। यहाँ इस प्लेटफ़ार्म पर यह मज़मून सुनाते-सुनाते आप सबसे मार खा लूँगा और उफ़ तक नहीं करूँगा लेकिन हिंदू-मुस्लिम फ़साद में अगर कोई मेरा सिर फोड़ दे तो मेरे ख़ून की हर बूँद रोती रहेगी। मैं आर्टिस्ट हूँ, ओछे ज़ख़्म और भद्दे घाव मुझे पसंद नहीं—जंग के बारे में कुछ लिखूँ और दिल में पिस्तौल देखने और उसको छूने की हसरत दबाए किसी तंगो-तारीक[37] कोठरी में मर जाऊँ, ऐसी मौत से तो यही बेहतर है कि लिखना-विखना छोड़कर डेरी फ़ार्म खोल लूँ और पानी मिला दूध बेचना शुरू कर दूँ। गोले और तारपीडो तो एक तरफ़ रहे, मैंने आज तक हवाई बंदूक़ भी नहीं चलाई—बचपन की बात है, हमारे पड़ोस में एक थानेदार रहते थे। उनके पास एक पिस्तौल था। पेटी उतारकर जब वह पलंग पर रखते तो सब बच्चों से कह दिया जाता : "देखो, उस कमरे में मत जाना, वहाँ पिस्तौल पड़ा है।" कभी हम डरते-डरते उस कमरे में चले जाते। दूर खड़े रहकर उस ख़तरनाक आले की तरफ़ देखते तो दिल धकधक करने लगता। ऐसा महसूस होता कि पड़े-पड़े वह पिस्तौल दग़ जाएगा अब आप ही बताइए : मैं और मेरे दोस्त टैंकों के बारे में क्या लिखेंगे—

मुझे चुस्त वर्दी पहनने का शौक़ नहीं है। पीतल और ताँबे के तमग़ों और

कपड़े के रंगीन बिल्लों से मुझे कोई दिलचस्पी नहीं। होटलों में डांस करके, क्लबों में शराब पीकर और टैक्सियों में चूना-कत्था लगी लड़कियों के साथ घूमकर मैं वार ऐफर्ट[38] की मदद करना नहीं चाहता। इससे कहीं ज़्यादा दिलचस्प मशागिल[39] मुझे मयस्सर[40] हैं। मिसाल के तौर पर यह मशगला क्या बुरा है कि मैं हर रोज़ बंबई सैंट्रल से गोरेगाँव और गोरेगाँव से बंबई सैंट्रल तक बर्क़ी ट्रेन में सैकड़ों वर्दीपोश फ़ौजियों को देखता हूँ जो फ़तह-ओ-नुसरत[41] को और ज़्यादा क़रीब लाने के लिए शराब के नशे में मदहोश या तो टाँगें पसारे सो रहे होते हैं या निहायत ही बदनुमा औरतों से, मेरी मौजूदगी से ग़ाफ़िल, निहायत ही वाहियात क़िस्म का रोमांस लड़ाने में मसरूफ़ होते हैं *।

मैं इस जंग के बारे में कुछ नहीं लिखूँगा लेकिन जब मेरे हाथ में पिस्तौल होगा और दिल में यह धड़का नहीं रहेगा कि यह ख़ुद-ब-ख़ुद चल पड़ेगा तो मैं उसे लहराता हुआ बाहर निकल जाऊँगा और अपने असली दुश्मन को पहचानकर या तो सारी गोलियाँ उसके सीने में ख़ाली कर दूँगा या ख़ुद छलनी हो जाऊँगा। इस मौत पर जब मेरा कोई नक़्क़ाद यह कहेगा कि पागल था तो मेरी रूह इन लफ़्ज़ों ही को सबसे बड़ा तमग़ा समझकर उठा लेगी और अपने सीने पर आवेज़ां[42] कर लेगी

→

मंटो ने 'अदबे-जदीद' एक जनवरी, 1944 ई. को लिखा था और मुकम्मल तौर पर यह मज़मून अदबे-लतीफ़' के सालनामे (1944) में शाया हुआ था, 'लज़्ज़ते-संग' में भी यह मज़मून मुकम्मल तौर पर मौजूद है लेकिन नाक़िस[?] तर्तीब और इशाअत की वजह से नुमायाँ नहीं है—जब इस मज़मून को मंटो ने 'मंटो के अफ़साने' (दूसरा मजमूआ) की दूसरी इशाअत में पेशलफ़्ज़ के तौर पर इस्तेमाल करना शुरू किया तो मुंदरिजा-बाला सुतूरें निकाल दीं। —सं.।

---

1. आधुनिक साहित्य; 2. समझ में न आने योग्य; 3. चर्चित नाम; 4. कठोरवर्ग; 5. अश्लील लेखन; 6. आलोचकों; 7. विद्यार्थी; 8. प्रतिभाशाली; 9. चर्चित लेखक; 10. समकालीन; 11. किसी की प्रशंसा का लयबद्ध वर्णन; 12. ख़ुशहाली; 13. नींद का ख़ुमार; 14. अकाल मृत्यु, जवान उम्र में मरनेवाला; 15. मातम, करुण क्रंदन; 16. सामाजिकता; 17. मानव की उत्पत्ति; 18. दिलो-दिमाग़; 19. भलाई; 20. बुरी, घृणित; 21. संचालक; 22. प्रस्ताव; 23. आजमाया हुआ; 24. प्रभावित; 25. जम गई; 26. पवित्र; 27. विकारग्रस्त, विकृतता; 28. हानि-लाभ; 29. संबोधित; 30. सभ्यता एवं संस्कृति, 31. यथापूर्व; 32. आँच; 33. शराब रूपी मौत का पैग; 34. नस्ल, 35. स्त्री-पुरुष के संबंधों; 36. जमाव, 37. छोटी व अँधेरी; 38. युद्ध पीडित; 39. तफ़रीह; 40. उपलब्ध; 41. विजय; 42. लगाना, टाँक लेना;

इस तक़रीर या मज़मून पर हुकूमते-पंजाब ने ज़ेरे-दफ़ा 38 डिफ़ेंस ऑफ़ इंडिया रूल्ज़ मुक़दमा चलाया—इल्ज़ाम यह था कि इसमें हुज़ूर मलिका-ए-मुअज़्ज़म की फ़ोर्सेज़ के मुताल्लिक़ ऐसी ग़लत बातें मौजूद हैं जिनसे उनको ज़ोफ़[44] पहुँच सकता है।

'बू' पर, जो इस किताब का पहला अफ़साना है, सिर्फ़ फ़हाशी का इल्ज़ाम था।

मुक़दमा, जैसा कि ज़ाहिर है, लाहौर में चौधरी बरकत अली वल्द चौधरी मुहम्मद नत्थू, साकिन[45] लाहौर (मालिक अदबे-लतीफ़), चौधरी नज़ीर अहमद वल्द चौधरी ग़ुलाम हुसैन, क़ौम अलराई, साकिन लाहौर (एडिटर), पीरज़ादा अहमद नदीम क़ासमी, साकिन लाहौर (एडिटर), सआदत हसन मंटो वल्द ग़ुलाम हसन, साकिन बंबई के ख़िलाफ़ मि. बनवारीलाल की अदालत में पेश हुआ।

मुझे बंबई से बहुत ज़रूरी काम छोड़कर हाज़िर होना पड़ा।

लाहौर पहुँचा तो ख़याल था कि मुझे गिरफ़्तार कर लिया जाएगा क्योंकि मेरे वारंट जारी हो चुके थे मगर सब-इंस्पेक्टर साहिब ने, जिनसे इत्तिफ़ाक़िया 'मकतबा-ए-उर्दू' में मुलाक़ात हो गई, मुझसे कहा कि मैं सुबह दूसरे मुल्ज़िमीन के साथ अदालत में हाज़िर हो जाऊँ।

गवर्नमेंट कॉलेज के बिलकुल सामने गर्दो-ग़ुबार में अटी हुई ईंटों की दोमंज़िला इमारत है जिसे 'ज़िला' कहते हैं। शायद जुगत के तौर पर—इस इमारत के एक कमरे में हम सब मुल्ज़िम पेश हुए।

पहले मेरी ज़मानत हुई, इसके बाद कार्रवाई शुरू हुई—मैं इससे पहले इसी अदालत में अपने अफ़साने 'काली शलवार' के मुक़दमे के सिलसिले में पेश हो चुका था, मजिस्ट्रेट साहिब चुनांचे मेरी तरफ़ देखते ही मुसकरा दिए।

इस्तिग़ासे[46] की गवाहियाँ होती रहीं—मैं ख़ामोश सुनता रहा, इसलिए कि सबकी-सब लायानी[47], बेहूदा और मंतिक़ो-इस्तिदलाल[48] से आरी थीं।

उसी रोज़ मैंने अपने वकील मि. हीरालाल सीबल की मार्फ़त अदालत से दरख़्वास्त की कि मेरी हाज़िरी आइंदा पेशियों में माफ़ कर दी जाए—अदालत ने यह दरख़्वास्त मंज़ूर कर ली।

इत्तिफ़ाक़ से उन दिनों मेरे बड़े भाई अलहाज मुहम्मद हसन मंटो, बार एट लॉ, जज़ाइर फ़िजी[49] से लाहौर आए हुए थे। मैंने उनको अपना अफ़साना 'बू' और मज़मून 'अदबे-जदीद' पढ़ने के लिए दिया और पूछा कि अंजाम क्या होगा।

दोनों चीज़ें बग़ौर पढ़ने के बाद उन्होंने जवाब दिया : "मेरा ख़याल है कि इस्तिग़ासे की

गवाहियाँ सुनने के बाद ही मजिस्ट्रेट मुक़दमा ख़ारिज कर देगा…"

—लेकिन ऐसा न हुआ, मैं बंबई चला आया, वहाँ लाहौर में फ़र्दे-जुर्म आइद हो गया और दोनों चौधरियों और अहमद नदीम क़ासमी को सफ़ाई के गवाह पेश करने में काफ़ी दौड़-धूप करनी पड़ी।

इसी दौरान में मि. बनवारी लाल तब्दील हो गए और उनकी जगह चौ. मेहंदी अली ख़ाँ मुतअय्यन[50] हुए। चूँकि यह मुक़दमे की तफ़सील से बख़ूबी वाक़िफ़ नहीं थे, इसलिए फ़ैसला मुरत्तब[51] करने में काफ़ी देर हो गई।

2 मई, 1945 ई. को चौधरी मेहंदी अली ख़ाँ ने बिलआख़िर फ़ैसला सुना दिया—उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा : "सआदत हसन मंटो बरी है, इसलिए कि मि. बनवारी लाल उसे पहले ही बरी कर चुके हैं…'

मैंने सोचा, अगर ऐसा ही था तो मुझे बंबई से लाहौर आने की ज़हमत क्यों दी गई—अहमद नदीम क़ासमी भी बरी कर दिए गए लेकिन दोनों चौधरियों को साठ रुपए फ़ी कस के हिसाब से जुर्माना हुआ। अदम-अदायगी की सूरत में एक-एक माह कैदे-बा मशक़्क़त—मशक़्क़त का नाम सुनते ही दोनों चौधरियों ने जेब में हाथ डाला और जुर्माना अदा कर दिया।

इसके बाद चौधरी मेहंदी अली ख़ाँ के फ़ैसले के ख़िलाफ़ मि. एम.आर. भाटिया, एडीशनल जज की अदालत में अपील की गई—फ़ैसला 24 नवंबर, 1945 ई. को हुआ जिसका तर्जुमा यह है :

> ज़ेरे-नज़र मुक़दमा दफ़ा 292 ताज़ीराते-हिंद के तहत है जिसमें बरकत अली और नज़ीर अहमद को साठ रुपए जुर्माना और अदम-अदायगी की सूरत में एक माह क़ैदे-बा-मशक़्क़त की सज़ा दी गई है—इस सज़ा के ख़िलाफ़ मुझसे अपील की गई है। मातहत अदालते-फ़ाज़िला ने अपने फ़ैसले में यह रिमार्क किया है कि मज़मून 'बू' का मुसन्निफ़ सोसायटी की नज़रों में सख़्त तरीन सज़ा का मुस्तहिक़[52] था और यह कि वही सही आदमी था जिसे क़ानूनी गिरफ़्त में लेना चाहिए था मगर पेशरौ फ़ाज़िल जज (मि. बनवारी लाल) ने उसे बरी कर दिया।
>
> मौजूदा मुलज़िमों में से एक पब्लिशर है और दूसरा एडिटर जिसने मज़मून छापा— क़ाबिले-ग़ौर अम्र[53] है कि ऐसे अश्ख़ास मुल्ज़िमीन की सफ़ाई में पेश हुए जो उर्दू ज़बान के आलिम होने की हैसियत में बहुत मशहूर हैं। मिसाल के तौर पर ख़ान बहादुर अब्दुर्रहमान चुग़ताई, मि.के.एल. कपूर, प्रो. डी.ए.वी. कॉलेज, राजेंद्र सिंह बेदी और डॉ. आई. एल. लतीफ़, प्रो. एफ़.सी. कॉलेज जो बतौर गवाहाने-सफ़ाई पेश हुए। इन

सबकी राय है कि मज़मून (ब) में ऐसी कोई चीज़ नहीं जो शहवानी[54] हिस्सियात पैदा करे, बल्कि इन लोगों का यह कहना है कि मज़मून तरक्क़ीपसंद है और उर्दू अदब के मॉडर्न रुजहान से ताल्लुक़ रखता है हत्ता कि इस्तिग़ासा के गवाह नंबर 4 बशीर ने भी दौराने-जिरह में तस्लीम किया कि मज़मून इन्सान के अख़लाक़ पर बुरा असर नहीं डालता।

मेरी नज़र में मज़मून एक इश्क़िया कहानी है, एक लड़के और लड़की की जिसमें ऐसी बात का दिलचस्प ज़िक्र है जो अमूमन हर रोज़ नौजवान आदमियों में नहीं होती।

मातहत अदालते-फ़ाज़िला[55] ने हिंदुस्तानी नौजवानों की तअय्युश-पसंद[56] ज़िंदगी का ज़िक्र करते हुए अफ़सोस किया है और इस बात पर मातम किया है कि मुल्क में हिंदुस्तानियों का पुराना कैरेक्टर नाबूद[57] हो रहा है। मातहत अदालत के फ़ाज़िल जज ने वो ख़ूबियाँ भी याद कराई हैं जिनके लिए हम हिंदुस्तानी कभी मशहूर थे और यह नसीहत की है कि नए फ़ैशनों को ख़त्म कर देना चाहिए।

मालूम होता है कि मातहत अदालते-फ़ाज़िला के ख़यालात तरक्क़ीपसंद नहीं हैं—हमें ज़माने के साथ-साथ चलना है। हसीन चीज़ एक दाइमी मसर्रत[58] है। आर्ट जहाँ कहीं भी मिले हमें उसकी क़द्र करनी चाहिए। आर्ट ख़्वाह वह तसवीर की सूरत में हो या मुजस्समे की शक्ल में, सोयाइटी के लिए क़तई तौर पर एक पेशकश है, चाहे उसका मौज़ू ग़ैर-मस्तूर[59] ही क्यों न हो—यही कुल्लिया तहरीरों पर भी मुंतबिक़[60] होता है।

जब मुल्क के मशहूरो-मारूफ़ आर्टिस्टों और अदीबों ने मुल्ज़िमीन के हक़ में कहा है तो सारा फ़ैसला यहीं हो जाता है—ज़ेरे-बहस मज़मून ऐसा मज़मून नहीं कि जिस पर किसी क़ानूनी अदालत में नुक्ताचीनी की जाए, इसलिए मुझे अपील मंज़ूर करने में कोई पसो-पेश नहीं। जुर्माना अगर अदा किया गया है तो वापस किया जाए—मैं अपील करनेवालों को बरी करता हूँ।

मुझे चूँकि 'शहादत' का रुत्बा हासिल नहीं करना है, इसलिए मैं उन तकलीफ़ों का ज़िक्र नहीं करना चाहता जो मुझे लाहौर आने-जाने में उठानी पड़ीं—एक लानत सिर से दूर हो गई, यही काफ़ी था। मुझे उन अख़बारों के मुताल्लिक़ भी कुछ नहीं कहना है जिनमें हफ़्तों बल्कि महीनों हुकूमत और रिआया को अख़लाक़ियात के सबक़ दिए जाते रहे। अफ़सोस सिर्फ़ इतना है कि ये पर्चे ऐसे लोगों की मिल्कियत हैं जो उज़्वे-ख़ास[61] की लाग़िरी[62] और कजी[63] दूर करने के इश्तहार ख़ुदा और रसूल की क़स्में खा-खाकर शाया करते हैं लेकिन अपने एडिटरों की टेढ़ी-बंगी टाँगों और उनकी झुकी हुई कमरों का मुतलक़[64] ख़याल नहीं करते—मुझे उन क़लम से मज़दूरी करनेवालों से दिली हमदर्दी है। उनमें से अक्सर शरीफ़

आदमी हैं जिन्हें अदब से दूर का भी वास्ता नहीं लेकिन चूँकि पर्चा छपना ही चाहिए और उसमें शुरू से लेकर आख़िर तक कुछ लिखा भी होना चाहिए, इसलिए ये मजबूर इंसान सियासत, साइंस और अदब पर जो भी उनके नातरबियत-याफ़्ता दिमाग़ों में आता है, काग़ज़ पर घसीट देते हैं। मुझे अफ़सोस है कि सहाफ़त[65] जैसे मुअज़्ज़ज़[66] पेशे पर ऐसे लोगों का इजारा है जिनमें से अक्सर तिला-फ़रोश[67] हैं।

पंजाब की प्रेस ब्रांच के मुताल्लिक़ 'ई दफ़्तरे-बेमानी' नहीं कह सकता, इसलिए कि यह दफ़्तर अपने मानी वक़्तन-फ़वक़्तन[68] ज़रूरत के मुताबिक़ निकालता रहता है– चंद बरसों से इसके मानी ये हैं कि अल्लामा इक़बाल मरहूम के बाद ख़ुदाए-अज़्ज़ो-जल्ल[69] ने अदब के तमाम दरवाज़ों में ताले डालकर सारी चाबियाँ एक नेक बंदे के हवाले कर दी हैं। काश, अल्लामा मरहूम ज़िंदा होते!

पुलिस की अदालतें तो ख़ैर पुलिस की अदालतें हैं—अंधी रूह और गंजे फ़रिश्ते...! इस अंधी रूह, गंजे फ़रिश्तों, और पंजाब के तिला-फ़रोश अख़बारवालों और रिसालों के मालिकों और उनके मरीज एडिटरों की बदौलत एक बार फिर मुझे लाहौर की उस अदालत में हाज़िर होना पड़ा जिसे जुगत के तौर पर ज़िला कहते हैं।

अब की मुक़दमा साक़ी बुक डिपो, देहली की शायाकर्दा किताब 'धुआँ' पर था—इल्ज़ाम वही फ़हाशी का था। दो अफ़साने ज़ेरे-इताब[70] थे; किताब का पहला अफ़साना 'धुआँ' और 'काली शलवार'।

'काली शलवार' पर अर्सा हुआ, क़ानूनी पोस्टमार्टम हो चुका था और सेशन कोर्ट में यह फ़हाशी से मुबर्रा[71] क़रार दी जा चुकी थी। मालूम नहीं एक बार फिर इस बेज़रर अफसाने पर ताज़ीराते-हिंद की दफ़ा 292 क्यों आज़माई गई?

इस दफ़ा मामला कुछ ज़्यादा संगीन मालूम हुआ क्योंकि मेरे और मि. शाहिद अहमद देहलवी (मालिक साक़ी बुक डिपो) के अलावा वह कातिब भी गिरफ़्तार कर लिया गया जिसने 'धुआँ' लिखने के घिनावने जुर्म का इर्तिकाब[72] किया था। वो कुतुब-फ़रोश[73] भी गिरफ्तार किए गए जिनके पास यह मलऊन किताब मौजूद थी। प्रेस जिसमें यह छपी थी, उसका मालिक भी धर लिया गया।

मैं सलीक़े का बहुत क़ायल हूँ। नागवार-से-नागवार चीज़ भी अगर सलीक़े के साथ की जाए तो मुझे नागवार मालूम नहीं होती—लाहौर सी.आई.डी. के एक सब-इंस्पेक्टर ने जिसका नाम शायद रामस्वरूप था, मुझे 5 दिसंबर, 1944 ई. को गोरेगाँव से मलाड पुलिस स्टेशन बुलवाया और बग़ैर वारंट दिखाए गिरफ़्तार कर लिया—मैंने वारंट के मुताल्लिक़ इस्तफ़सार किया तो रामस्वरूप ने कहा : "प्राइवेट काग़ज़ात मैं तुम्हें नहीं दिखा सकता।"

यह हरकत मुझे बुरी मालूम हुई, चुनांचे मैंने शाम को घर आकर अपने सोलिसिटर को टेलीफ़ोन किया जिसने मुझे बताया कि मेरी गिरफ़्तारी ग़ैरक़ानूनी है, इसलिए हस्बुलहुक्म[74] लाहौर की अदालत में हाज़िर होने की कोई ज़रूरत नहीं...

मैंने ऐसा ही किया लेकिन 8 जनवरी, 1945 ई को मुझे मेरे मकान पर रात के 10 बजे कानूनी तौर पर गिरफ्तार कर लिया गया—इस्मत चुगताई (मिसेज शाहिद लतीफ) के साथ भी करीब-करीब यही सुलूक हुआ।

4 फरवरी 1945 ई के 'कौमी जग' (बबई) मे 'यह अदब और तहजीब पर हमला है' के उनवान से एक मजमून अली सरदार जाफरी के कलम से शाया हुआ जिसकी इब्तिदाई सुतूर ये हैं

> उर्दू के बेहतरीन अफसानानिगारो मे सआदत हसन मटो और इस्मत चुगताई के नाम बहुत मशहूर हैं– हाल ही मे मटो के अफसानो का एक नया मजमूआ 'धुआँ' और इस्मत के अफसानो का एक नया मजमूआ 'चोटे' देहली से शाया हुआ है। इन मजमूओ मे दोनो अफसानानिगारो की बाज बहुत अच्छी कहानियाँ शामिल हैं लेकिन मालूम हुआ है कि हुकूमते-पजाब ने इस्मत और मटो के बाज अफसानो को उर्यां करार दे दिया है– अभी तक यह मालूम नही हो सका है कि इताब कौन से अफसानो पर नाजिल हुआ है लेकिन दोनो किताबे जद मे हैं—मुकदमे की समाअत[75] अभी तक शुरू नही हुई है। स्पेशल मजिस्ट्रेट की अदालत मे 2 फरवरी को इस्मत और मटो की पेशी होनेवाली है—लेकिन अदालती कार्रवाई से पहले ही इन दोनो पर बहुत कुछ गुजर गई है। 5 दिसबर, '44 ई को बबई की पुलिस ने इस्मत चुगताई को बगैर वारट के गिरफ्तार कर लिया और एक हजार रुपए की जमानत पर रिहा किया। 6 दिसबर को इस्मत को दादर पुलिस कोर्ट मे हाजिरी देनी पडी और उन्हे हुक्म मिला कि 6 जनवरी, 1945 ई को दोबारा हाजिर हो—जनवरी मे पजाब से इस्मत का वारट आ गया और उन्हे दोबारा गिरफ्तार कर लिया गया। इस मर्तबा दो हजार रुपए की जमानत देकर गुलूखलासी[76] हुई और हुक्म मिला कि इस्मत 2 फरवरी को लाहौर के स्पेशल मजिस्ट्रेट की अदालत मे जाकर हाजिरी दे-- तकरीबन यही हश्र सआदत हसन मटो का हुआ।

सआदत हसन मटो का हश्र कुछ ज्यादा ही काबिले-रहम था—मुझे उन दिनो आसाबी दर्द की शिकायत थी। घर मे रात के 10 बजे जब मुझे गिरफ्तार किया गया तो मैं मारे दर्द के कराह रहा था। सीने पर गर्म बोतल थी लेकिन हुक्मे-हाकिम मर्गे-मुफाजात[77], लाहौर हाजिरे-अदालत होना ही पडा।

इस दफा मुकदमा राय साहिब लाला सतराम, स्पेशल मजिस्ट्रेट की अदालत मे पेश हुआ।

एक लतीफ़ा सुन लीजिए : अदालत में दाख़िल होने से पहले एक अधेड़ उम्र के शरीफ़ से साहिब आए और मुझसे हाथ मिलाकर उन्होंने कहा : "आपसे मिलकर बड़ी ख़ुशी हुई।"

मैंने पूछा : "आपका इस्मे-गिरामी[78] ?"

अधेड़ उम्र के शरीफ़-से साहिब ने जवाब दिया : "नानकचंद नाज़।"

मैंने अपना हाथ खींच लिया और कहा : "माफ़ कीजिए, मुझे आपसे मिलकर ख़ुशी नहीं हुई ..."

लाला नानकचंद नाज़ इस्तिग़ासा के मुअज़्ज़िज़तरीन[79] गवाह थे जो मेरे और इस्मत चुग़ताई, दोनों के ख़िलाफ़ भुगते—आप वाक़ई भुगते।

एक और लतीफ़ा सुन लीजिए : लाला जी ने इस्मत के अफ़साने 'लिहाफ़' के मुताल्लिक़ कहा कि इसमें गंदे अल्फ़ाज़ इस्तेमाल किए गए हैं।

हमारे वकील मि. हीरालाल ने पूछा : "मसलन ?"

लाला जी ने 'चोटें' उठाई। काफ़ी देर 'लिहाफ़' की वर्क़गर्दानी[80] के बाद एक लफ़्ज़ निकाला : "मसलन आशिक़!"

हम सब मुसकरा दिए।

मि. हीरालाल ने लाला जी से कहा : "यह लफ्ज गदा है तो आप इसकी जगह कोई दूसरा तजवीज़ कर दीजिए "

लाला जी सोचने लगे।

मि. हीरालाल ने पूछा : " 'यार' कैसा रहेगा ?"

इस दफ़ा राय साहिब लाला संतराम भी मुसकरा दिए।

जब तक इस्तिग़ासे के गवाह पेश होते रहे, ऐसी मुसकराहटें जारी रहीं लेकिन अदालत बरख़्वास्त होने से पहले जब हमारे वकील ने दरख़्वास्त पेश की कि मुझे और इस्मत को आइंदा पेशियों में हाज़िर होने से माफ़ कर दिया जाए और जब मजिस्ट्रेट साहिब ने उसे मुस्तरद[81] कर दिया तो हम दोनों को यह तकलीफ़देह एहसास हुआ कि हम अदालत में पेश थे और हम पर फ़हाशी का संगीन जुर्म आइद था—मुझे इसका भी शदीद एहसास हुआ कि सख़्त सर्दी है और मैं आसाबी दर्द में मुब्तिला हूँ।

अदालत से बाहर मि. हीरालाल से मशिवरा किया गया।

एक ही सूरत थी कि हाई कोर्ट में अपील की जाए जो फ़ौरन ही दाख़िल कर दी गई—दूसरे दिन मैं और इस्मत ऑनरेबल जस्टिस इछरू राम की अदालत में पेश हुए।

आपने हम दोनों को ग़ौर से देखा और कहा : "मुझे आप दोनों के अफ़साने बहुत पसंद हैं "

हमें बहुत ख़ुशी हुई लेकिन उन्होंने अपील के काग़ज़ात ऑनरेबल जस्टिस दीन

मुहम्मद की अदालत में मुंतक़िल कर दिए।

अब फिर दूसरे रोज़ हाज़िर होना था। शाम को मेरी तबीयत बहुत ज़्यादा ख़राब हो गई। इत्तिफ़ाक़ से मेरा भान्जा मेजर अब्दुल वहीद उन दिनों लाहौर के मिलिट्री हस्पताल में मुतअय्यन था। उसने मेरा एक्स-रे लिया और बताया कि मुझे हाइड्रोन्यूमोथोरेक्स है यानी मेरे दाहिने फेफड़े के एक हिस्से में पानी और हवा दाख़िल हो गई है।

मेजर वहीद के कहने पर मैंने दूसरे दिन सुबह-सबेरे कर्नल अमीरचंद से भी तश्ख़ीस कराई। उन्होंने भी वही मर्ज़ बताया और राय दी कि मुझे आराम करना चाहिए। मैंने उनसे सर्टीफ़िकेट ले लिया कि शायद काम आ जाए—दाश्ता आयद बकार[82]...

दूसरे रोज़ मैं ऑनरेबल जस्टिस दीन मुहम्मद की अदालत में पेश हुआ—इस्मत ग़ैरहाज़िर थी।

जस्टिस दीन मुहम्मद ने क़हरआलूद निगाहों से मेरी तरफ़ देखा और बड़बड़ाए : "इन लोगों का वुजूद नंगे-अदब है..."

मुझे ऐसा लगा जैसे मेरी क़िस्मत पर मुहर लगा दी गई है।

उन्होंने अपील मंज़ूर करने से इनकार कर दिया लेकिन जब मैंने अपने वकील से कर्नल अमीरचंद का सर्टीफ़िकेट पेश करने के लिए कहा तो अपील एक क़हरआलूद दस्तख़त ने मंज़ूर कर दी।

मैं बंबई वापस चला आया।

बंबई में बहुत देर तक डॉक्टरों में यह बहस होती रही कि मेरा मर्ज़ क्या है। मेजर वहीद और कर्नल अमीरचंद की तश्ख़ीस यह कहती थी कि मुझे हाइड्रोन्यूमोथोरेक्स है लेकिन डॉक्टर लेमला और डॉ. एफ़. डब्ल्यू. बरजर (या बरगर) की एक्स-रे देखने के बाद यह राय थी कि सिर्फ़ न्यूमोथोरेक्स है। आख़िर यह फ़ैसला हुआ कि डॉक्टर एच.पी. मोदी से जो रेडियालॉजी के माहिर हैं, रुजू[83] किया जाए। चुनांचे उन्होंने मेरा पुराना एक्स-रे देखने और नया इम्तिहान लेने के बाद डा. एफ़. डब्ल्यू बरजर (या बरगर) को ख़त लिखा : मरीज़ इस वक़्त नार्मल हालत में है। न्यूमोथोरेक्स और सैयाल माद्दा[84] बिलकुल ग़ायब है। यह केस जैसा कि ज़ाहिर है, स्पांटेनियस् न्यूमोथोरेक्स की क़बील[85] से था, ऐसे चंद केस बाज़ औकात 'कोख़' में तब्दील हो जाते हैं...

इस 'कोख़' का मतलब मुझे लाहौर में मेजर वहीद ने बताया जब मैं उस मुक़दमे का फ़ैसला सुनने के लिए गया। मतलब यह था कि ऐसे चंद केस बाज़औक़ात दिक़ में तब्दील हो जाते हैं—लेकिन दिक़ और ज़िच[86] मैं उस वक़्त हुआ जब मैंने सफ़ाई के गवाहों की फ़ेहरिस्त तैयार की और रायसाहिब लाला संतराम ने उनकी गवाही बज़रिया कमीशन लेने से इनकार कर दिया। कोई गवाह हैदराबाद में था, कोई लखनऊ में और कोई बंबई में। रायसाहिब मुसिर[87] थे कि सबके-सब लाहौर ही में हाज़िर हों।

मुकर्रमी नियाज़ फ़तेहपुरी साहिब को जब लखनऊ में इसकी इत्तिला मिली तो उन्होंने लिखा : यक़ीनन कमीशन के ज़रिए से शहादत क़लमबंद हो सकती थी और इसमें बड़ी

आसानी थी। ताज्जुब है कि मजिस्ट्रेट ने इसे मंज़ूर नहीं किया और आपके मशीरे-क़ानून ने क्यों इस पर ज़ोर दिया···

मुझे मालूम नहीं, मि. हीरालाल ने इस पर ज़ोर दिया था या नहीं, बहरहाल रायसाहिब लाला संतराम का फ़ैसला अटल था जिसका नतीजा यह हुआ कि क़ाज़ी अब्दुल.ग़फ़्फ़ार साहिब, एडिटर 'पयाम', हैदराबाद; लैफ़्टीनेंट कर्नल क़ुरैशी (आई.एम.एस., बंबई); नियाज़ फ़तेहपुरी साहिब, एडिटर 'निगार', लखनऊ; डॉ. ख़लीफ़ा अब्दुल हकीम साहिब, एम.ए.एल.एल.बी., पी-एच.डी. (उस वक़्त प्रिंसिपल, अमरसिंह कॉलेज, श्रीनगर); मि. हरेंद्र नाथ चट्टोपाध्याय, बंबई, जैसे अहलर्राय[88] साहिबान के ख़यालात से न सिर्फ़ मैं बल्कि अदालत भी महरूम रही।

मैंने इनको और दूसरे हज़रात को गवाही की दावत इन अल्फ़ाज़ में दी थी :

> बंबई ; 30 सितंबर
>
> मुकर्रमी,
>
> तस्लीमात। लाहौर की अदालत में मेरे एक अफ़साने 'धुआँ' पर फ़हाशी के इल्ज़ाम में मुक़दमा चल रहा है। मैंने आपको गवाहे-सफ़ाई के तौर पर बुलाया है। मुतज़क्किरा-सद्र[89] अफ़साने के बारे में आपकी जो राय भी हो, मुझे मंज़ूर होगी, इसलिए कि फ़हाशी और ग़ैरफ़हाशी के अहम मौज़ू पर आप-जैसे अहलर्राय अदीब और साहिबे-क़लम के ख़यालात न सिर्फ़ मेरे लिए बल्कि मुल्की अदब के लिए मुफ़ीद होंगे।
>
> मुझे उम्मीद है कि आप मेरी यह दावत क़ुबूल फ़रमाएँगे। शुक्रिया।
>
> नियाज़ केश[90]
>
> सआदत हसन मंटो

सबने मेरी दावत क़ुबूल की जिसके लिए मैं शुक्रगुज़ार हूँ–डॉ. मौलवी अब्दुल हक़ साहिब, सैक्रेटरी अंजुमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू (हिंद) ने मेरे अरीज़े का जवाब[91] न दिया, बहुत मुमकिन है उन तक पहुँचा ही न हो–सरदार दीवानसिंह मफ़्तून, एडिटर 'रियासत' की तरफ़ से जब मुझे कोई रसीद न आई तो मुझे बहुत गुस्सा आया क्योंकि मुझे उनकी दोस्ती पर नाज़ है।

मैंने फिर उनको लिखा।

जवाब आया :

> आपका दूसरा ख़त मिला–मेरा दाख़िला पंजाब में बंद है, इसलिए शहादत कैसे दूँ ? यही मैंने समन पर लिख दिया था। अगर मजिस्ट्रेट पंजाब गवर्नमेंट से इजाज़त ले ले तो मैं जाने को तैयार हूँ···

एक और लतीफ़ा सुनिए : बंबई से मैंने लाहौर में प्रो. मोहन सिंह दीवाना को गवाही देने

के लिए लिखा—समन उनके पास पहले पहुँच चुके थे, मेरा ख़त उन्हें देर के बाद मिला। चुनांचे उन्होंने मुझे एक कार्ड लिखा :

हज़रत सलामत !

आपके वकील से एक मर्तबा पहले मुलाक़ात हुई थी। उन्होंने न मुक़दमे की वजह बयान की, न यह कहा कि किस अफ़साने पर तुम धरे गए हो। चार को पेशी थी। दस बजे हाज़िरे-अदालत हुआ। सवा बारह बजे तक धूप में सड़ता रहा, टाँगों को मसलता और बलग़म निकालता रहा—न जाए नशिस्तन न इज़्ने-रफ़्तन[92], सवा बारह बजे बुलवाया गया : "क्यों जी, वो कहानियाँ तुमने पढ़ी हैं…?" "हुज़ूर नहीं…"— "बरख़्वास्त"— लँगड़ाता-लँगडाता घर पहुँचा, देखा कि एक बड़े पेटवाला लिफ़ाफ़ा लैटर बाक्स से झाँक रहा है जिसमें हुज़ूर के इर्शादात[93] थे—मेरा क़सूर यह है कि मैं बेक़ुसूर हूँ। आप ख़फ़ा होंगे कि एक हमपेशा 'क़लम मार' ने यह क्या हरकत की। मैं ख़फ़ा हूँ कि वकील सुस्त, मुवक्किल सुस्ततर—मंटो को सुस्ती की बीमारी हो, यक़ीन नहीं आता

और मुझे यह यक़ीन नहीं आता कि प्रो. मोहनसिंह दीवाना ने मेरी कहानियाँ पढ़ी ही नहीं थीं।

ग़लती मुझसे भी हुई कि मैंने 'बड़े पेटवाले लिफ़ाफ़े' ऐन उस वक़्त भेजे जबकि समन जारी हो चुके थे। इन लिफ़ाफ़ों में मैंने अपने उस तहरीरी बयान की नक़्ल भेजी थी जो मैंने अदालत में दिया था। चूँकि इस बयान का मेरी तहरीरों से गहरा ताल्लुक़ है, इसलिए मैं इसे जैल में नक़्ल करता हूँ :

—>

43. कमज़ोर। 44. कमज़ोरी, नुकसान; 45. निवासी; 46. अभियोजन पक्ष; 47. बेकार, व्यर्थ; 48. तर्क व दलील; 49. फ़िज़ी एक नगर का नाम; 50. नियुक्त; 51. क्रम देने में; 52. हकदार, अधिकारी; 53. बात; 54. कामुकता; 55. विद्वान न्यायाधीश; 56. ऐशो-आराम की; 57. समाप्त; 58. शाश्वत हर्ष, 59. बेपर्दगी; 60. माफ़िक, लागू; 61. वर्ग विशेष; 62. कमज़ोरी; 63. टेढ़ापन; 64. बिलकुल; 65. पत्रकारिता; 66. सम्मानित; 67. कामवर्द्धक तेल बेचनेवाले, 68. समय-समय पर; 69. सम्मान के साथ अल्लाह का नाम लेना; 70. क्रोध का कारण; 71. मुक्त, बरी; 72. अपराध; 73. पुस्तक विक्रेता; 74. आदेशानुसार; 75. सुनवाई; 76. झंझट से छुटकारा; 77. अचानक मौत; 78. नाग; 79. प्रतिष्ठित; 80. पृष्ठ पलटना; 81. रद्द करना; 82. रखी हुई चीज़ काम आ ही जाती है; 83. संपर्क; 84. द्रव पदार्थ; 85. कुटुंब; 86. विवश; 87. ज़िद करना; 88. विचारक; 89. प्रमुख रूप से वर्णित; 90. विनीत; 91. दरख़्वास्त, प्रार्थना पत्र का उत्तर; 92. न बैठने की जगह, न जाने की इजाज़त; 93. आदेश;

तहरीरी बयान

मैं साक़ी बुक डिपो, देहली की मत्बूआ किताब बउनवान 'धुआँ' का मुसन्निफ़ हूँ। यह किताब मैंने 1941 ई. में जबकि मैं आल इंडिया रेडियो का मुलाज़िम था, साक़ी बुक डिपो के मालिक मियाँ शाहिद अहमद साहिब के पास ग़ालिबन तीन या साढ़े तीन सौ रुपए में फ़रोख़्त[94] की थी। इसके जुमला हक़ूक़े-इशाअत[95] अब साक़ी बुक डिपो के पास हैं।

इस किताब के जो नुस्ख़े मैंने अदालत में देखे हैं, उनके मुलाहिज़े से पता चलता है कि यह किताब का दूसरा एडिशन है।

चौबीस अफ़सानों के इस मजमूए में जो इंसानी ज़िंदगी के मुख़्तलिफ़ शोबों[96] से मुताल्लिक़ हैं, दो अफ़साने बउनवान 'धुआँ' और 'काली शलवार' फ़हश हैं—मुझे इससे इख़्तिलाफ़[97] है क्योंकि ये दोनों कहानियाँ उर्यां और फ़हश नहीं हैं।

किसी अदबपारे के मुताल्लिक़ एक रोज़ाना अख़बार के एडिटर, एक इश्तिहार फ़राहम करनेवाले और एक सरकारी मुतर्जिम[98] का फ़ैसला साइब[99] नहीं हो सकता। बहुत मुमकिन है कि ये तीनों किसी ख़ास असर, किसी ख़ास ग़रज़ के मातहत अपनी राय क़ायम कर रहे हों, और फिर यह भी मुमकिन है कि तीनों हज़रात ऐसी राय देने के अहल[100] ही न हों क्योंकि किसी बड़े शाइर, किसी बड़े अफ़सानानिगार के अफ़सानों पर सिर्फ़ वही आदमी तनक़ीद[101] कर सकता है जो तनक़ीदनिगारी के फ़न के तमाम अवाक़िबो-अवातिफ़ से आगाह[102] हो।

इस्तिग़ासे ने मेरे इन दो अफ़सानों पर कोई बसीरत अफ़रोज़[103] तनक़ीद नहीं की। सिर्फ़ इतना कह देने से कि ये दोनों अफ़साने फ़हश हैं, उस आदमी की, जो रोशनी का ख़्वाहिशमंद है, जो अपने उयूबो-महासिन[104] जानना चाहता है और उनकी इसलाह[105] करना चाहता है, हरगिज़-हरगिज़ तस्कीन[106] नहीं होती—मैं अगर जवाब में सिर्फ़ इतना कहकर ख़ामोश हो जाऊँ कि ये दोनों अफ़साने फ़हश नहीं हैं तो ज़ाहिर है कि मैं अँधेरे में और भी इज़ाफ़ा कर दूँगा। मगर मैं ऐसा नहीं करूँगा और जहाँ तक मुझसे हो सकेगा, मैं अपना माफ़िउज़्ज़मीर[107] बयान करने की कोशिश करूँगा।

ज़बान में बहुत कम लफ़्ज़ फ़हश होते हैं, तरीक़े-इस्तेमाल ही एक ऐसी चीज़ है जो पाकीज़ा-से-पाकीज़ा अल्फ़ाज़ को भी फ़हश बना देता है। मेरा ख़याल है, कोई भी चीज़ फ़हश नहीं, लेकिन घर की कुर्सी और हाँडी भी फ़हश हो सकती है, अगर उनको फ़हश

तरीक़े से पेश किया जाए—फ़हश चीज़ें बनाई जाती हैं किसी ख़ास ग़रज़ के मातहत।

औरत और मर्द का रिश्ता फ़हश नहीं। उनका ज़िक्र भी फ़हश नहीं, लेकिन जब इस रिश्ते को चौरासी आसनों या जोड़दार ख़ुफ़िया तसवीरों में तब्दील कर दिया जाए और लोगों को तरगीब दी जाए कि वो तख़लिए[108] में इस रिश्ते को ग़लत ज़ाविए से देखें तो मैं इस फ़ेल को सिर्फ़ फ़हश ही नहीं बल्कि निहायत घिनावना, मक्रूह और ग़ैरसेहतमंद कहूँगा।

फ़हश और ग़ैरफ़हश में तमीज़ करने के लिए शायद यह मिसाल काम दे सके :

> एक आर्ट गैलरी में नुमाइश के लिए नंगी औरतों की बहुत-सी तसवीरें पेश हुई। उनमें से किसी ने भी, जैसा कि ज़ाहिर है, देखनेवालों का अख़लाक़ ख़राब न किया और न उनके शहवानी जज़्बात ही को उभारा। अलबत्ता एक तसवीर, जिसमें औरत का सारा बदन तो कपड़ों में मस्तूर[109] था, सिर्फ एक ख़ास हिस्सा इस तरकीब से नीम-उर्यां[110] छोड़ दिया गया था कि देखनेवालों के जज़्बात में गुदगुदी-सी होती थी, फ़हश क़रार दी गई—क्यों? इसलिए कि आर्टिस्ट की नीयत में फर्क़ था और उसने जानबूझकर लिबास को कुछ इस तरह ऊपर उठा दिया था कि देखनेवालों के दिलो-दिमाग में हलचल-सी मच जाए और वो अपने तसव्वुर से मदद लेकर उस नीम-उर्यां हिस्से को उर्यां देखने की कोशिश करें।

तहरीरो-तक़रीर में, शेरो-शाइरी में, संग-साज़ी-ओ-सनम-तराशी में फहाशी तलाश करने के लिए सबसे पहले उसकी तरग़ीब टटोलनी चाहिए। अगर यह तरग़ीब मौजूद है, अगर उसकी नीयत का एक शायबा भी नज़र आ रहा है तो वह तहरीर, वह तकरीर, वह शेर, वह बुत क़तई तौर पर फ़हश है।

अब हमें देखना है कि यह तरग़ीब[111] 'धुआँ' में मौजूद है या नहीं।

आइए, हम इस अफ़साने का तजज़िया[112] करते हैं।

मसऊद एक कमसिन लड़का है, ग़ालिबन दस-बारह बरस का। उसके जिस्म में जिंसी बेदारी की पहली लहर किस तरह पैदा होती है, यह इस अफ़साने का मौज़ू है—एक ख़ास फ़ज़ा और चद ख़ास चीज़ों का असर बयान किया गया है जो मसऊद के जिस्म में धुँधले-धुँधले ख़यालात पैदा करता है, ऐसे ख़यालात जिनका रुजहान जिंसी बेदारी की तरफ़ है। यह बेदारी वह समझ नहीं सकता लेकिन नीमशऊरी तौर पर वह महसूस ज़रूर करता है—बेखाल का बकरा जिसमें से धुआँ उठता है; सर्दियों का एक दिन कि बादल घिरे हुए हैं और आदमी सर्दी के बावुजूद एक मीठी-मीठी हरारत महसूस करता है; हाँडी जिसमें से भाप उठ रही है; बहन जिसकी टाँगें वह दबाता है; ये सब अनासिर[113] मिलकर मसऊद के बदन में जिंसी बेदारी पैदा करते हैं। जवानी की इस पहली अँगड़ाई को वह ग़रीब समझ नहीं सकता और अंजामकार अपनी हॉकी-स्टिक तोड़ने की नाकाम सई करता-करता थक जाता

है। यह थकावट उस बेनाम-सी चिंगारी को, उस 'कुछ करने' की तहरीक को दबा देती है।

'धुआँ' में शुरू से लेकर आखिर तक एक कैफ़ियत, एक जज़्बे, एक तहरीक का निहायत ही हमवार नफ़्सियाती बयान है। असल मौज़ू से हटकर इसमें दूर-अज़-कार बातें नहीं की गई हैं। इसमें हमें कहीं भी ऐसी तरग़ीब नज़र नहीं आती जो क़ारिईन[114] को शहवानी लज़्ज़तों के दायरे में ले जाए, इसलिए कि अफ़साने का मौज़ू शहवत नहीं है। इस्तिग़ासा अगर ऐसा समझता है तो यह उसकी कमनज़री है—ख़शख़ाश के दाने अफ़ीम की गोली बनने तक काफ़ी मराहिल तय करते हैं।

मैंने इस कहानी में कोई सबक़ नहीं दिया, अख़लाक़ियात पर यह कोई लैक्चर भी नहीं क्योंकि मैं ख़ुद को नामनिहाद नासेह[115] या मुअल्लिमे-अख़लाक़[116] नहीं समझता।

इंसान अपने अंदर कोई बुराई लेकर पैदा नहीं होता। ख़ूबियाँ और बुराइयाँ उसके दिलो-दिमाग़ में बाहर से दाख़िल होती हैं। बाज़ उनकी परवरिश करते हैं, बाज़ नहीं करते—मेरे नज़दीक क़साइयों की दूकानें फ़हश हैं क्योंकि उनमें नंगे गोश्त की बहुत बदनुमा और खुले तौर पर नुमाइश की जाती है। मेरे नज़दीक वो माँ-बाप अपनी औलाद को जिसी बेदारी का मौक़ा देते हैं जो दिन को बंद कमरों में कई-कई घंटे अपनी बीवी से सिर दबवाने का बहाना लगाकर उससे हमबिस्तरी करते हैं—मैं समझता हूँ कि उस लड़के को (यानी मसऊद को) मुज़्तरिब करनेवाली चीज़ें ख़ारिजी थीं।

हिंदुस्तान में बच्चों के अंदर बहुत कमसिनी ही में जिसी बेदारी पैदा हो जाती है। उसकी वजह किसी हद तक आपको मेरे अफ़साने के मुताले से मालूम हो सकती है—इतनी छोटी उम्र में जिसी बेदारी का पैदा होना मेरे नज़दीक बहुत ही भौंडी चीज़ है, यानी अगर मैं किसी छोटे बच्चे को जिसियात की तरफ़ राग़िब[117] देखूँ तो मुझे कोफ़्त होगी, मेरे सन्नाआना[118] जज़्बात को सद्मा पहुँचेगा।

अफ़सानानिगार उस वक़्त अपना क़लम उठाता है जब उसके जज़्बात को सद्मा पहुँचता है। मुझे याद नहीं क्योंकि बहुत अर्सा गुज़र चुका है लेकिन 'धुआँ' लिखने से पहले मुझे कोई मंज़र, कोई इशारा या कोई वाक़िआ देखकर ज़रूर ऐसा सद्मा पहुँचा होगा जो अफ़सानानिगार के क़लम को हरकत बख़्शता है।

अफ़साने का मुताला करने से यह अम्र अच्छी तरह वाज़ेह हो सकता है कि मैंने उस बेनाम-सी लज़्ज़त में, जो मसऊद को महसूस हो रही थी, ख़ुद को या क़ाइरीन को कहीं शरीक नहीं किया है। यह एक अच्छे फ़नकार की ख़ूबी है।

मैं इस अफ़साने में से चंद सुतूर[119] पेश करता हूँ जिनसे अफ़सानानिगार के ग़ायत[120] दर्जा मुहतात[121] होने का पता चलता है कि उसने कहीं भी मसऊद के दिमाग़ में शहवानी ख़यालात की मौजूदगी का ज़िक्र नहीं किया है—ऐसी लग़्ज़िश[122] अफ़साने का सत्यानास कर देती।

एक : मसऊद के वज़न के नीचे कुलसूम की चौड़ी-चकली कमर में ख़फ़ीफ़-सा झुकाव पैदा हुआ जब उसने पैरों से दबाना शुरू किया, ठीक उसी तरह जिस तरह मज़दूर मिट्टी गूँधते हैं तो कुलसूम ने मज़ा लेने की ख़ातिर हाय-हाय करना शुरू कर दिया।

दो कुलसूम की रानो मे अकडी हुई मछलियाँ उसके पैरो के नीचे दब-दबकर इधर-उधर फिसलने लगी। **मसऊद ने एक बार स्कूल में तने हुए रस्से पर एक बाज़ीगर को चलते देखा था, उसने सोचा कि बाज़ीगर के पैरों के नीचे तना हुआ रस्सा भी इसी तरह फिसलता होगा।**

तीन बकरे के गर्म-गर्म गोश्त का उसे बार-बार खयाल आता था। एक-दो मर्तबा उसने सोचा "कुलसूम को अगर जिबह किया जाए तो खाल उतरने पर क्या उसके गोश्त मे से धुआँ निकलेगा?" **लेकिन ऐसी बेहूदा बातें सोचने पर उसने अपने आपको मुजरिम महसूस किया और दिमाग़ को उसी तरह साफ़ किया जिस तरह वह स्लेट को स्फ़ंज से साफ़ किया करता था।**

मोटे हरूफ मे लिखे गए अल्फाज इस बात के जामिन हैं कि मसऊद का जेहन कही भी शहवत से मुलव्विस[123] नही हुआ। वह अपनी बहन की कमर दबाता है जिस तरह मजदूर मिट्टी गूँधते हैं, टाँगे दबाता है तो उसका खयाल बाजीगर की तरफ चला जाता है जिसका तमाशा उसने एक बार अपने स्कूल मे देखा था, और जब वह यह सोचता है कि उसकी बहन जिबह कर दी जाए तो क्या उसके गोश्त मे से धुआँ निकलेगा तो फौरन उसे बुरी बात समझकर अपने दिमाग से निकाल देता है और खुद को मुजरिम समझता है—खुदा जाने इस्तिगासा इस अफसाने को फहश क्यो कहता है जिस अफसाने मे फहाशी का शायबा तक मौजूद नही।

अगर मैं किसी औरत के सीने का जिक्र करना चाहूँगा तो उसे औरत का सीना ही कहूँगा। औरत की छातियो को आप मूँगफली, मेज या उस्तरा नही कह सकते—यूँ तो बाज हजरात के नजदीक औरत का वुजूद ही फहश है मगर इसका क्या इलाज हो सकता है। मै ऐसे लोगो को भी जानता हूँ जिनको बकरी का एक मासूम बच्चा ही मासियत[124] की तरफ ले जाता है। दुनिया मे ऐसे अश्खास[125] भी मौजूद है जो मुकद्दस[126] किताबो से शहवानी लज्जत हासिल करते हैं और ऐसे इसान भी आपको मिल जाएँगे, लोहे की मशीने जिनके जिस्म मे शहवत की हरारत पैदा कर देती हैं—लोहे की उन मशीनो का, जैसा कि आप समझ सकते है, कोई कुसूर नही। इसी तरह न बकरी के मासूम बच्चे का और न मुकद्दस किताबो का।

एक मरीज जिस्म, एक बीमार जेहन ही ऐसा गलत असर ले सकता है। जो लोग रूहानी, जेहनी और जिस्मानी लिहाज से तदुरुस्त है असल मे उन्ही के लिए शाइर शेर कहता है, अफसानानिगार अफसाना लिखता है और मुसव्विर[127] तसवीर बनाता है।

मेरे अफसाने तदुरुस्त और सेहतमद लोगो के लिए हैं, नार्मल इसानो के लिए जो औरत के सीने को औरत का सीना ही समझते हैं और इससे ज्यादा आगे नही बढते। जो औरत और मर्द के रिश्ते को इस्तेजाब[128] की नजर से नही देखते, जो किसी अदबपारे को एक ही दफा निगल नही जाते

रोटी खाने के मुतल्लिक एक मोटा-सा उसूल है कि हर लुकमा अच्छी तरह चबाकर खाओ, लुआबे-दहन[129] मे उसे खूब हल होने दो ताकि मेदे पर ज्यादा बोझ न पडे और

उसकी गिज़ाइयत बरक़रार रहे—पढ़ने के लिए भी यही मोटा उसूल है कि हर लफ़्ज़ को, हर सतर को, हर ख़याल को अच्छी तरह ज़ेहन में चबाओ। उस लुआब को जो पढ़ने से तुम्हारे दिमाग़ में पैदा होगा, अच्छी तरह हल्ल करो कि जो कुछ तुमने पढ़ा है, अच्छी तरह हज़्म हो सके। अगर तुमने ऐसा न किया तो उसके नताइज बुरे होंगे जिसके लिए तुम लिखनेवाले को जिम्मेदार न ठहरा सकोगे—वह रोटी जो अच्छी तरह चबाकर नहीं खाई गई, वह तुम्हारी बदहज़्मी की जिम्मेदार कैसे हो सकती है?

मैं एक मिसाल से इसकी वज़ाहत करना चाहता हूँ।

फ्रांस में एक बहुत बड़ा अफ़सानानिगार गाई दी मोपासाँ गुज़रा है। जिंसियात उसका महबूब मौज़ू था। बड़े-बड़े डॉक्टरों और माहिरीने-नफ़्सियात[130] ने उसके अफ़सानों का अपनी इल्मी किताबों में हवाला दिया है—अपने एक अफ़साने में वह एक लड़के और एक लड़की की दास्तान बयान करता है जो बेहद अल्हड़ थे। पहली रात के मुताल्लिक दोनों ने सुनी-सुनाई बातों से एक अजीबो-ग़रीब तसवीर अपने ज़ेहन में खींच रखी थी। दोनों इस ख़याल से काँप रहे थे कि ख़ुदा मालूम कितनी बड़ी लज़्ज़त उनको पहली रात के मिलाप से मिलेगी—दोनों की शादी हो गई। दूल्हा माहे-अस्ल[131] मनाने की ख़ातिर दुलहन को एक होटल में ले गया। वहाँ पहली रात को, उस रात को जिसमें दोनों के ख़याल के मुताबिक़ शायद फ़रिश्ते उतरकर उनको लोरियाँ देनेवाले थे, दूल्हा और दुलहन हमबिस्तर हो गए। दोनों लेटे थे और बस। दुलहन ने शामते-आमाल[132] से इतना कह दिया, "बस, क्या यही हमारी पहली रात थी जिसके हम दोनों इतने शीरीं ख़्वाब देखा करते थे" दूल्हा को यह बात खा गई। आख़िर मर्द ही तो था। उसने सोचा, यह मेरी मर्दानगी पर हमला है, चुनांचे उसकी मर्दानगी बिलकुल ही ख़त्म हो गई। अर्क़े-नदामत[133] में ग़र्क़ वह हुजरा-ए-उरूसी[134] से बाहर निकल गया, इस ग़र्ज से कि अपनी नाकाम ज़िंदगी किसी दरिया के सिपुर्द कर दे। ऐन उस वक्त जब यह नया-नवेला दूल्हा इस ख़तरनाक फ़ैसले पर पहुँचा, फ्रांस की एक कस्बी, एक वेश्या उसके पास से गुज़री। वह ग़ालिबन गाहक तलाश कर रही थी। उस इस्मत-बाख़्ता[135] औरत ने उसको इशारा किया। दूल्हा ने महज़ इंतिक़ाम लेने के लिए, सारी औरत जात से बदला लेने के लिए वेश्या के इशारे का जवाब दिया कि हाँ, मैं तैयार हूँ—वह टखियाई उसे अपने घर ले गई। उसके ग़लीज घर में दूल्हा वह काम करने में कामयाब हो गया जो वह अपने नफ़ीस[136] होटल के हुजरा-ए-उरूसी में न कर सका था—अब वह वेश्या को भूल गया। दौड़ा-दौड़ा अपनी नई ब्याहता बीवी के पास पहुँचा जैसे उसे अपनी खोई हुई दौलत मिल गई है—दोनों पास-पास लेटे थे मगर अब उसकी बीवी को वह शीरीं[137] ख़्वाब देखने की ख़्वाहिश बाकी नहीं रही थी जिसका उसने पहले गिला किया था।

यह अफ़साना पढ़कर अगर कोई शख़्स, जो पहली रात को नाकाम रहा हो, सीधा वेश्या के कोठे का रुख़ करेगा तो मैं समझता हूँ, उस-जैसा चुग़द और कोई नहीं होगा—मेरे एक दोस्त ने यही बेवक़ूफ़ी की और उसका नतीजा यह निकला कि उसे अपना खोया हुआ वक़ार तो मिल गया, पर उसके साथ एक मक्रूह मर्ज़[138] चिमट गया जिसके इलाज के लिए उसे काफ़ी से ज़्यादा ज़हमत उठाना पड़ी।

पिछले दिनों मैंने आल इंडिया रेडियो, बबई से एक तक़रीर नश्र की थी। इस तक़रीर में मैंने कहा था :

> अदब एक फ़र्द[139] की अपनी ज़िंदगी की तसवीर नहीं। जब कोई अदीब क़लम उठाता है तो वह अपने घरेलू मामलात का रोज़नामचा पेश नहीं करता। वह अपनी ज़ाती ख़्वाहिशों, ख़ुशियों, रंजिशों, बीमारियों और तंदुरुस्तियों का ज़िक्र नहीं करता—उसकी क़लमी तसवीरों में, बहुत मुमकिन है, आँसू उसकी दुखी बहन के हों, मुसकराहटें आपकी हों और क़हक़हे एक ख़स्ताहाल मज़दूर के।
>
> इसलिए अपनी मुसकराहटों, अपने आँसुओं और अपने क़हक़हों की तराज़ू में उन तसवीरों को तोलना बहुत बड़ी ग़लती है।
>
> हर अदबपारा एक ख़ास फ़ज़ा[140], एक ख़ास असर, एक ख़ास मक़सद के लिए पैदा होता है। अगर उसमें यह ख़ास फ़ज़ा, यह ख़ास असर, यह ख़ास मक़सद महसूस न किया जाए तो बस एक बेजान लाश रह जाएगी।
>
> मैं एक ज़माने से लिख रहा हूँ। ग्यारह किताबों का मुसन्निफ -व-मुअल्लिफ[141] हूँ। आल इंडिया रेडियो के तक़रीबन हर स्टेशन से मेरे ड्रामे और फीचर ब्राडकास्ट होते रहते हैं। उनकी तादाद सौ से ऊपर है।
>
> मैं तहरीरो-तस्नीफ़ के जुमला आदाब से वाक़िफ़ हूँ। मेरे क़लम से बेअदबी शाज़ो-नादिर[142] ही हो सकती है—मैं फ़हशनिगार नहीं, अफ़सानानिगार हूँ।

दूसरे अफ़साने 'काली शलवार' के मुताल्लिक़ मैंने इसलिए कुछ नहीं कहा है कि यह लाहौर की सेशन कोर्ट में फ़हाशी से बरी क़रार दिया जा चुका है। →

---

94. बेचना; 95. प्रकाशनाधिकार; 96. विभाग; 97. मतभेद; 98. अनुवादक, 99. दुरुस्त; 100. योग्य; 101. आलोचना; 102. परिचित, ज्ञाता; 103. उल्लेखनीय; 104. अच्छाई-बुराई; 105. संशोधन; 106. संतोष; 107. अपने दिल की बात, अपनी मंशा; 108. एकांत; 109. ढका हुआ, पर्दे में; 110. थोड़ा नंगा; 111. आकर्षण; 112. विश्लेषण; 113. तत्व; 114. पाठक; 115. उपदेशक; 116. शिष्टाचार सिखानेवाला; 117. आसक्त; 118. लेखकीय भावना, कलाकार की भावना; 119. पंक्तियाँ; 120. बहुत; 121. होशियार, सतर्क; 122. ग़लती; 123. जकड़ा हुआ, लिपटा हुआ; 124. अपराध; 125. जनता; 126. पवित्र; 127. आर्टिस्ट; 128. आश्चर्य; 129. चूक; 130. मनोवैज्ञानिक; 131. हनीमून; 132. बुरे कार्य के परिणामस्वरूप; 133. शर्मिंदगी का पानी; 134. सुहागरात का कमरा; 135. ज़लील; 136. सुंदर; 137. मीठा; 138. घृणित रोग; 139. आदमी; 140. हवा, माहौल; 141. लेखक-संपादक; 142. अकस्मात्, कभी-कभार।

मेरे इस बयान का कुछ असर न हुआ।

सफ़ाई के गवाहों मे डॉक्टर सईद-उल्लाह, एम.ए., एल.एल. बी., पी-एच.डी., डी.एस-सी., प्रोफेसर कन्हैयालाल कपूर, एम.ए., एल एल.बी., डॉक्टर आई. लतीफ़, एम. ए., पी-एच. डी., मौलाना बारी अलीग, देवेंद्र सत्यार्थी-जैसी अहलराय हस्तियाँ मौजूद थीं—इन हजरात ने अपना क़ीमती वक्त ज़ाया करके, सारा-सारा दिन अदालत में गुज़ारकर, मेरे हक में गवाही दी और कहा कि जेरे-इताब[143] अफ़सानों में फहाशी का शायबा भी मौजूद नही, लेकिन रायसाहिब लाला सतराम ने दोनों अफ़साने फ़हश क़रार दिए और मुझे दो सौ रुपए जुर्माना अदा करने की सजा दी (अदम-अदायगी-ए-जमाना की सूरत मे कितने महीनो की क़ैदे-बामशक्कत थी, थी या नहीं, इसका मुझे इल्म नही)।

मैंने जब अपनी जेब मे दो सौ रुपए निकाले तो स्पेशल मजिस्ट्रेट साहिब के होंठों पर एक स्पेशल मुसकराहट नुमूदार हुई—आपने कहा . "ऐसा मालूम होता है कि आप कील-काटे से लैस होकर आए हैं "

बावजूद कोशिश के मेरे होठो पर स्पेशल मुसकराहट पैदा न हो सकी।

सेशन में अपील की गई।

पैरवी मि. हीरालाल सीबल ने की।

कई महीने गुज़रने पर एक रोज उनका तार आया कि **'मुबारिक हो, सेशन कोर्ट ने अपील मंज़ूर कर ली है, जुर्माना वापस हो जाएगा।'**

तीसरी दफ़ा अंजाम बख़ैर हुआ।

→

143 क्रोध की सीमा में आए।

एक और लतीफ़ा :

चंद रोज़ हुए, एक साहिब मुझसे मिलने आए।

मैने नौकर से कहा : "पूछो, कौन है?"

(नौकर ने) जवाब दिया : "सी.आई.डी. का आदमी है।"

ज़ाहिर है, मैंने सोचा, लाहौर में गिरफ्तारी का वारंट है, लेकिन जब मैं उस सी.आई.डी. के आदमी से मिला और उससे पूछा : "फ़रमाइए, अब की बार मेरी किस कहानी पर इताब नाज़िल[144] हुआ है?" तो वह जैसे कुछ समझा ही नहीं।

वह कहने लगा : "इधर हम तपास[145] करने आया है। तुम्हारा नाम उधर कम्युनिस्ट पार्टी के ऑफिस में चोपड़ी में लिखा है। बोलो, तुम्हारा क्या ताल्लुक़ है उससे?"

यह सुनकर मुझे तसल्ली हुई—मुझे मज़ाक सूझा : "चोपड़ी से या कम्युनिस्ट पार्टी से?"

"कम्युनिस्ट पार्टी से।"

मैंने कहा : "ताल्लुक़ है मगर नाजाइज़ ताल्लुक़ है।"

"क्यों है?"

"इसलिए कि तुम्हारी हुकूमत यही समझती है, वर्ना तुम यहाँ तपास करने क्यों आते?"

यह किस्सा भी खत्म हुआ।

आख़िर में मैं उन तमाम हज़रात का शुक्रिया अदा करना अपना फर्ज समझता हूँ जिन्होंने लाहौर की गर्मी अदालत में जहाँ शरीफ इंसानों को बैठने के लिए एक टूटी हुई कुर्सी भी नहीं मिलती, घंटों अपना कीमती वक्त ज़ाया करके भैंसों के आगे बीन बजाई।

—सआदत हसन मंटो

बंबई
27 फ़रवरी, 1947 ई

○ ○

---

144. आफ़त, कोप; **145.** तलाश।

सफेद झूठ
अफसानानिगार और जिंसी मसाइल
कसौटी
इस्मत फरोशी

बचाव

सफ़ेद झूठ

माहवार रिसाला 'अदबे-लतीफ़' लाहौर के सालनामा 1942 में मेरा एक अफ़साना ब-उनवान 'काली शलवार' शाया हुआ था जिसे लोग फ़हश समझते हैं। यह सफ़ेद झूठ है।

अफ़सानानिगारी मेरा पेशा है। मैं इसके तमाम आदाब से वाक़िफ़ हूँ। इससे पेशतर इसी मोज़ूँ पर मैं कई अफसाने लिख चुका हूँ। इनमें से कोई भी अफ़साना फ़हश नहीं। मैं आइंदा भी इस मोज़ूँ पर अफ़साने लिखूँगा जो फ़हश नहीं होंगे।

क़िस्सागोई हबूते-आदम से जारी है और मेरा ख़याल है, क़यामत तक जारी रहेगी। इसकी शक्लें बदलती जाएँगी लेकिन इंसान अपने एहसासात दूसरे अज़्हान[1] तक पहुँचाने का सिलसिला जारी रखेगा।

बेसवाओं पर अब तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है और बहुत कुछ लिखा जाएगा। हर उस शै के मुताल्लिक़ लिखा या कहा जाता है जो सामने मौजूद है। बेसवाएँ अब से नहीं, हज़ारहा साल से हमारे दरमियान मौजूद हैं। उनका तज़्किरा इल्हामी किताबों में भी मौजूद है। अब चूँकि किसी इल्हामी किताब या किसी पैगंबर की गुंजाइश नहीं रही, इसलिए मौजूदा ज़माने में उनका ज़िक्र आप आयात में नहीं बल्कि उन अख़बारों, रिसालों या किताबों में देखते हैं जिन्हें आप ऊद और लोबान जलाए बगैर पढ़ सकते हैं और पढ़ने के बाद रद्दी में भी उठवा सकते हैं।

मैं एक ऐसा इंसान हूँ जो ऐसे रिसालों और ऐसी किताबों में लिखता है और इसलिए लिखता है कि उसे कुछ कहना होता है। मैं जो कुछ देखता हूँ, जिस नज़र और जिस ज़ाविए से देखता हूँ, वही नज़र, वही ज़ाविया मैं दूसरों के सामने पेश कर देता हूँ। अगर तमाम लिखनेवाले पागल थे तो आप मेरा शुमार भी उन पागलों में कर सकते हैं।

'काली शलवार' का पसमंज़र एक वेश्या का घर है। यह घर बये के घर की तरह हैरतअंगेज़ नहीं जिसके मुताल्लिक अजीबो-गरीब बातें मशहूर हैं। देहली में ऐसी औरतों के लिए एक मक़ाम मुंतख़ब करके बेशुमार घर बनाए गए हैं। मेरी सुलताना ऐसे ही एक बने-बनाए घर में रहती थी। उसने बये की तरह यह घर ख़ुद नहीं बनाया था। वह बये की तरह रात को जुगनू पकड़-पकड़कर अपना घर रोशन नहीं करती। रोशनी पैदा करने के लिए बिजली मौजूद थी और चूँकि यह बिजली मुफ़्त नहीं मिल सकती और न रहने के लिए

मकान ही किराए के बग़ैर मिल सकता है, इसलिए उसे मज़दूरी करना पड़ती थी। वह अगर ब्याही होती तो उसे यह सब चीज़ें मुफ़्त मिल जातीं। लेकिन वह ब्याही नहीं थी, महज़ एक औरत थी और जब औरत को बिजली के पैसे देने पड़ें, घर का किराया अदा करना पड़े और जिसके पल्ले ख़ुदाबख़्श-सा आदमी पड़ जाए जो फ़क़ीरों के पीछे मारा-मारा फिरे तो ज़ाहिर है कि वह ऐसी औरत नहीं होगी जो हम अपने घरां में देखते हैं।

मेरी सुलताना चकले की एक औरत है। उसका पेशा वही है जो चकले की औरतों का होता है। चकले की औरतों को कौन नहीं जानता। क़रीब-क़रीब हर शहर में एक चकला मौजूद है--बदरो और मोरी को कौन नहीं जानता। हर शहर में बदरोएँ और मोरियाँ मौजूद हैं जो शहर की गंदगी बाहर ले जाती हैं--हम अगर अपने मरमरीं ग़ुस्लख़ानों की बाते कर सकते हैं, अगर हम साबुन और लेवंडर का ज़िक्र कर सकते हैं तो उन मोरियों और बदरोओं का ज़िक्र क्यों नहीं कर सकते जो हमारे बदन का मैल पीती हैं? अगर हम मंदिरो और मस्जिदों का ज़िक्र कर सकते हैं तो उन क़हबाख़ानों का ज़िक्र क्यों नहीं कर सकते जहाँ से लौटकर, कई इसान मंदिरों और मस्जिदों का रुख़ करते हैं। अगर हम अफ़यून, भंग, चरस और शराब के ठेकों का ज़िक्र कर सकते हैं, तो उन कोठों का ज़िक्र क्यों नहीं कर सकते, जहाँ हर किस्म का नशा इस्तेमाल किया जाता है?

भगियो से छूतछात की जाती है। अगर कोई भंगी हमारे घर से गंदगी का टोकरा उठाकर बाहर निकले तो हम अपनी नाक पर रूमाल ज़रूर रख लेंगे। हमें घिन भी आएगी मगर हम भंगियों के वुजूद से तो मुन्किर[2] नहीं हो सकते। उस फ़ुज़ले से तो इनकार नहीं कर सकते जो हर रोज़ हमारे जिस्म से ख़ारिज होता है। क़ब्ज़, पेचिश और इस्हाल[3] वग़ैरह दूर करने के लिए दवाएँ इसीलिए मौजूद हैं कि हमारे जिस्म से फ़ासिद[4] माद्दे का इख़ाज[5] ज़रूरी है।

गंदगी के निकास के लिए नित नए तरीक़े सोचे जाते हैं, इसलिए कि गदगी हर रोज जमा होती जाती है। अगर हमारे जिस्म में एक इन्किलाब बरपा हो जाए और उसके अफ़आल बदल जाएँ तो हम क़ब्ज़, पेचिश और इस्हाल की बातें नहीं करेंगे या अगर गंदगी के निकास के लिए कोई मेकानिकी[6] तरीका ईजाद हो जाए, तो भंगियों का वुजूद बाकी नही रहेगा।

हम अगर भंगियों के मुताल्लिक बात करेंगे तो यकीनन कूड़े-करकट और गंदगी का जिक्र आएगा। अगर हम वेश्याओं के मुताल्लिक़ बात करेंगे तो यक़ीनन उनके पेशे का जिक्र आएगा।

वेश्या के कोठे पर हम नमाज या दुरूद पढ़ने नहीं जाते। वहाँ हम जिस ग़र्ज़ से जाते हैं, ज़ाहिर है, वहाँ हम इसलिए जाते हैं कि वहाँ हम जा सकते हैं। वहाँ जाकर हम अपनी मत्लूबा[7] जिस बे रोकटोक ख़रीद सकते हैं। जब वहाँ जाने की हमें खुली इजाज़त है, जब हर औरत अपनी मर्ज़ी पर वेश्या बन सकती है और एक लाइसेंस लेकर जिस्म फ़रोशी कर सकती है, जब यह तिजारत क़ानूनन जाइज़ तस्लीम की जाती है तो उसके मुताल्लिक़ हम क्यों बातचीत नहीं कर सकते?

अगर वेश्या का ज़िक्र फ़हश है तो उसका वुजूद भी फ़हश है। अगर उसका ज़िक्र मम्नूअ[8] है तो उसका पेशा भी मम्नूअ होना चाहिए। वेश्या को मिटाइए, उसका ज़िक्र ख़ुद-ब-ख़ुद मिट जाएगा।

हम वकीलों के मुताल्लिक़ खुले बंदों बातें कर सकते हैं। हम नाइयों, धोबियों, कुंजड़ों और भटियारों के मुताल्लिक़ बातचीत कर सकते हैं। हम चोरों, उचक्कों, ठगों और राहज़नों के क़िस्से सुना सकते हैं। हम जिनों और परियों की दास्तानें बैठ के घड़ सकते हैं। हम यह कह सकते हैं कि जब आसमान की तरफ़ शैतान बढ़ने लगता है तो फ़रिश्ते तारे तोड़-तोड़कर उसे मारते हैं। हम यह कह सकते हैं कि एक बैल अपने सीगो पर सारी दुनिया उठाए हुए है। हम दास्ताने-अमीर हमज़ा और क़िस्सा तोता-मैना तस्नीफ़ कर सकते हैं। हम लंधौर पहलवान के गुरुज़[9] की तारीफ़ कर सकते हैं। हम उम्रोअहयार की टोपी और ज़ंबील की बातें कर सकते हैं। हम उन तोतों और मैनाओं के क़िस्से सुना सकते हैं जो हर ज़बान में बातें करते थे। हम जादूगरों के मंत्रों और उनके तोड़ की बातें कर सकते हैं। हम अम्ले-हमज़ाद[10] और कीमियागरी[11] के मुताल्लिक़ 'जो मन मे आए' कह सकते हैं। हम दाढ़ियों, पायजामों और सिर के बालों की लंबाई पर लड़-झगड़ सकते हैं। हम रोग़नजोश, पुलाव और क़ोरमा बनाने की नई-नई तरकीबें सोच सकते हैं। हम यह सोच सकते हैं कि सब्ज़ रंग के कपड़े पर किस रंग और किस क़िस्म के बटन मजेंगे—हम वेश्या के मुताल्लिक क्यों नहीं सोच सकते? उसके पेशे के बारे में क्यों ग़ौर नहीं कर सकते? उन लोगों के मुताल्लिक़ क्यों कुछ नहीं कह सकते जो उसके पास जाते हैं?

हम एक नौजवान लड़के और एक नौजवान लड़की का बाहमी[12] रिश्ता मुआश्क़ा[13] करा सकते हैं। उनकी पहली मुलाक़ात दाता गंज बख़्श के मज़ार में करा सकते हैं। एक दलाल बुढ़िया बीच में ला सकते हैं, जो उन दो बिछड़ी रूहों को बार-बार मिलाती रहे। हम आख़िर में उनके इश्क़ को नाकाम बना सकते हैं। दोनों को ज़हर पिलवा सकते हैं। उन दोनों के जनाज़े एक इस महल्ले से और एक उस महल्ले से निकलवा सकते हैं। फिर उन दोनों की कब्रें एक मौजज़े[14] के ज़रिए से आपस में मिलवा सकते हैं और अगर ज़रूरत महसूस हो तो ऊपर से फ़रिश्तों के हाथों से फूलों की बारिश भी करा सकते हैं—हम वेश्या की ज़िंदगी क्यों बयान नहीं कर सकते? उसे तो फ़रिश्तों और उनके फूलों की ज़रूरत नहीं होती। वह अगर मरती है तो दूसरे महल्ले से कोई जनाज़ा उसकी मौत का साथ नहीं देता, कोई क़ब्र उसकी क़ब्र से मिलने की ख़्वाहिश नहीं करती।

वेश्या का मकान ख़ुद एक जनाज़ा है जो समाज अपने कंधों पर उठाए हुए है। वह उसे जब तक कहीं दफ़न नहीं करेगा, उसके मुताल्लिक़ बातें होती ही रहेंगी। यह लाश गली-सड़ी सही, बदबूदार सही, मुतअफ़्फ़न[15] सही, भयानक सही, घिनावनी सही, लेकिन इसका मुँह देखने में क्या हर्ज है? क्या यह हमारी कुछ नहीं लगती? क्या हम इसके अज़ीज़ो-अक़ारिब[16] नहीं? हम कभी-कभी कफ़न हटाकर उसका मुँह देखते रहेंगे और दूसरों को दिखाते रहेंगे।

मैंने 'काली शलवार' में ऐसी ही एक लाश का मुँह दिखाया है। मुलाहिज़ा हो :

सड़क की दूसरी तरफ़ माल गोदाम था जो इस कोने से उस कोने तक फैला हुआ था। दाहिने हाथ को लोहे की छत के नीचे बड़ी-बड़ी गाँठें पड़ी रहती थीं और हर क़िस्म के मालो-असबाब के ढेर लगे रहते थे। बाएँ हाथ को खुला मैदान था जिसमें बेशुमार रेल की पटरियाँ बिछी हुई थीं। धूप में लोहे की यह पटरियाँ चमकती तो मुलताना अपने हाथों की तरफ़ देखती जिन पर नीली-नीली रगें बिलकुल उन पटरियों की तरह उभरी रहती थीं। इस लंबे और खुले मैदान में हर वक़्त इंजन और गाड़ियाँ चलती रहती थीं। कभी इधर, कभी उधर। इन इंजनों और गाड़ियों की छक-छक फक-फक सदा गूँजती रहती थी। सुबह-सवेरे जब वह उठकर बालकनी में आती तो एक अजीब समाँ उसे नज़र आता। धुँधलके में इंजनों के मुँह से गाढ़ा-गाढ़ा धुवाँ निकलता था और गदले आसमान की जानिब मोटे और भारी आदमियों की तरह उठता दिखाई देता था। भाप के बड़े-बड़े बादल भी एक शोर के साथ उठते थे और आँख झपकने की देर में हवा के अंदर घुल-मिल जाते थे। फिर कभी-कभी जब वह गाड़ी के किसी डिब्बे को, जिसे इंजन ने धक्का देकर छोड़ दिया हो, अकेले पटरियों पर चलता देखती तो उसे अपना ख़याल आता। वो सोचती कि उसे भी किसी ने ज़िंदगी की पटरी पर धक्का देकर छोड़ दिया है और वह ख़ुद-ब-ख़ुद जा रही है। दूसरे लोग काँटे बदल रहे हैं और वह चली जा रही है, जाने कहाँ। फिर एक रोज़ ऐसा आएगा जब उस धक्के का ज़ोर आहिस्ता-आहिस्ता ख़त्म हो जाएगा और वह कही रुक जाएगी, किसी ऐसे मक़ाम पर जो उसका देखा-भाला न होगा।

ज़हीन पढ़नेवालों के लिए इससे अच्छे इशारे और क्या हो सकते हैं। मुलताना की ज़िंदगी का सही नक्शा इन इशारों और किनायों[17] से मैंने पेश करने की कामयाब नई की है। देहली की म्युनिसिपैलिटी ने देहली की वेश्याओं के लिए एक ख़ास जगह मुक़र्रर करते वक़्त यह न सोचा होगा कि मालगोदाम उनकी ज़िंदगी का सही नक़्शा पेश करता है लेकिन जो साहबे-नजर हैं, वह उन मकानों और मालगोदाम को आमने-सामने देखकर 'काली शलवार' जैसे कई अफ़साने लिखेंगे।

इसी लाश का एक बार मैंने यूँ भी मुँह दिखाया था। मैं अपने मशहूर अफ़साने 'हतक' का आग़ाज़ इन सुतूर से करता हूँ :

दिन भर की थकी-माँदी वह अभी-अभी अपने बिस्तर पर लेटी थी और लेटते ही सो गई थी। म्युनिसिपल कमेटी का दारोग़ा-ए-सफ़ाई जिसे वह सेठ के नाम से पुकारती थी, अभी-अभी उसकी हड्डी-पसलियाँ झंझोड़कर शराब के नशे में चूर, घर वापिस गया था। वह रात यहीं ठहरता, पर उसे अपनी धर्मपत्नी का बहुत ख़याल था जो उससे बेहद प्रेम करती थी।

वह रुपए जो उसने अपनी जिस्मानी मशक्कत के बदले उस दारोग़े से वुसूल किए थे, उसकी चुस्त थूक भरी चोली के नीचे से ऊपर को उभरे हुए थे।

कभी-कभी साँस के उतार-चढ़ाव से चाँदी के यह सिक्के खनखनाने लगते और उनकी खनखनाहट उसके दिल की ग़ैर आहंग धड़कनों में घुल-मिल जाती और ऐसा मालूम होता कि उन सिक्कों की चाँदी पिघलकर उसके दिल के ख़ून में टपक रही है।

उसका सीना अंदर से तप रहा था। यह गर्मी कुछ तो उस ब्रांडी का बायस थी जिसका अद्धा दारोग़ा अपने साथ लाया था। और कुछ उस 'बेवड़ा' का नतीजा थीं जिसको सोडा ख़त्म होने पर दोनों ने पानी मिलाकर पिया था।

वह सागवान के लंबे-चौड़े पलंग पर औंधे मुँह लेटी थी। उसकी बाँहें जो कांधों तक नंगी थीं, पतंग की उस काँप की तरह फैली हुई थीं जो रात ओस में भीग जाने के बायस पतले काग़ज़ से जुदा हो जाए।

दाएँ बाज़ू की बग़ल में शिकन आलूद गोश्त उभरा हुआ था जो बार-बार मूँडने के बायस सियाही माइल रंग इख़्तियार कर गया था। ऐसा मालूम होता था कि नुची हुई मुर्ग़ी की खाल का एक टुकड़ा वहाँ पर रख दिया गया है।

यह सुलताना की एक बहन सौगंधी की तसवीर है। इसके पास ख़ुदाबख़्श के बजाय एक ख़ारिशज़दा कुत्ता था। ख़ुदाबख़्श सुलताना का दिल न बहला सका। मगर यह खारिशजदा कुत्ता सौगंधी के बहुत काम आया। मैं इस अफ़साने के आख़िर में लिखता हूँ

कुत्ता अपनी टुंडमुंड दुम हिलाता सौगंधी के पास वापिस आया और उसके क़दमों के पास बैठकर कान फड़फड़ाने लगा। सौगंधी चौंकी। उसने अपने चारों तरफ़ एक हौलनाक सन्नाटा देखा। ऐसा सन्नाटा जो उसने पहले कभी नहीं देखा था। उसे ऐसा मालूम होता था कि हर शै ख़ाली है। जैसे मुसाफ़िरों से लदी हुई रेलगाडी सब स्टेशनों पर मुसाफ़िर उतारकर अब लोहे के शेड में बिलकुल अकेली खड़ी है। यह ख़ला जो अचानक सौगंधी के अंदर पैदा हो गया था, उसे बहुत तकलीफ दे रहा था। उसने काफ़ी देर तक उस खला को भरने की कोशिश की, मगर बे-सूद। वह एक ही वक़्त में बेशुमार ख़यालात अपने दिमाग़ में ठूँसती थी मगर बिलकुल छलनी का-सा हिसाब था। इधर वह दिमाग को पुर करती थी और उधर वह ख़ाली हो जाता था। बहुत देर तक वह बेद की कुर्सी पर बैठी रही। सोच-विचार के बाद भी जब उसको अपना दिल परचाने का कोई तरीक़ा न मिला तो उसने अपने खारिशज़दा कुत्ते को गोद मे उठाया और सागवान के चौड़े पलंग पर उसे अपने पहलू मे लिटाकर सो गई।

कौन है जो यह तसवीरें देखकर लज़्ज़त हासिल करने के वास्ते उन वेश्याओं के कोठे पर जाएगा। मेरी सुलताना और मेरी सौगंधी तन्हाई मे देखनेवाली तसवीरें नहीं हैं, जिनके इश्तिहार आए दिन अखबारों में छपते रहते है। वह कोई नया जोड़दार आसन पेश नही करती। वह इम्साक का कोई खानदानी नुस्ख़ा नहीं बताती। वह कोई लच्छेदार आपबीती

नहीं सुनातीं कि शहवानी जज़्बात उभर आएँ।

मेरा ज़ेरे-बहस अफ़साना 'काली शलवार' अगर आप ग़ौर से पढ़ें तो ज़ैल की बातें आपके ज़ेहन में आएँगी :

एक : सुलताना एक मामूली वेश्या है। पहले अंबाले में पेशा करती थी। बाद में अपने दोस्त ख़ुदाबख़्श के कहने पर देहली चली आई। यहाँ उसका कारोबार न चला।

दो : ख़ुदाबख़्श ख़ुदा पर नाजाइज़ भरोसा करने और फ़क़ीरों की करामात पर ईमान लानेवाला आदमी था।

तीन : सुलताना का जब कारोबार न चला तो वह बहुत अफ़सुर्दा हुई। उसकी अफसुर्दगी में और इज़ाफ़ा हो गया जब ख़ुदाबख़्श फ़क़ीरों के पीछे-पीछे मारा-मारा फिरने लगा।

चार : मुहर्रम सिर पर आ गया। सुलताना की दूसरी सहेलियों ने काले कपड़े बनवा लिए मगर वह न बनवा सकी, इसलिए कि उसके पास कुछ नहीं था।

पाँच : इस मौक़े पर शंकर आता है, एक आवारागर्द। ज़हानत, हाज़िरजवाबी, और खुशगुफ़्तारी के अलावा जिसके पास कुछ भी नहीं था। वह सुलताना के पास आता है और अपनी इन ख़ूबियों के मुआवज़े में उससे वह जिस तलब करता है जिसे वह दाम लेकर फरोख़्त करती है। सुलताना यह सौदा क़ुबूल नहीं करती।

छ : दूसरी मर्तबा शंकर ख़ुद नहीं आता बल्कि उदास सुलताना उसे ख़ुद बुलाती है और उसे अपनी ठहरे पानी-ऐसी ज़िंदगी में एक हादिसे के तौर पर क़ुबूल कर लेती है। उससे मिलकर वह ख़ुश होती है मगर यह एहसास उसका पीछा नहीं छोड़ता कि मुहर्रम के लिए उसके पास एक काली शलवार की कमी है। वह शंकर से कहती है : "मुहर्रम आ रहा है, मेरे पास इतने पैसे नहीं कि मैं काली शलवार बना सकूँ। यहाँ के सारे दुखड़े तो तुम मुझसे सुन ही चुके हो। क़मीस और दुपट्टा मेरे पास मौजूद था जो मैंने आज रंगवाने के लिए दे दिया है।"

सात : शंकर मुहर्रम की पहली तारीख़ को एक काली शलवार सुलताना के लिए ले आता है। ख़ुदाबख़्श का ख़ुदा और ख़ुदा रसीदा बुज़ुर्गों पर ग़ैरज़रूरी एतिक़ाद[18] काम नहीं आता लेकिन शंकर की ज़हानत काम आ जाती है।

यह अफ़साना पढ़कर दिलो-दिमाग़ पर क्या असर होता है? क्या इसका प्लाट या इसका अंदाज़े-बयान लोगों को वेश्याओं की तरफ़ खींचता है? मैं इसके जवाब में कहूँगा, हरगिज़ नहीं। इसलिए कि यह इस मक़सद के लिए नहीं लिखा गया है। अगर इसको पढ़कर ऐसा असर पैदा नहीं होता तो यह अफ़साना अख़्लाक़ियत से गिरा हुआ नहीं है। अगर यह अख़्लाक़ियत से गिरा हुआ नहीं है तो वह अफ़साना ऐसा गीत नहीं है, जिसे हज़ उठाने की ख़ातिर गाएँ और बार-बार गाएँ। कोई ग्रामोफ़ोन कंपनी इसके रिकार्ड नहीं भरेगी। इसलिए कि इस में जज़्बात उभारनेवाले दादरे और ठुमरियाँ नहीं हैं।

'काली शलवार' जैसे अफ़साने तफ़रीह की ख़ातिर नहीं लिखे जाते। इनको पढ़कर शहवानी जज़्बात की राल नहीं टपकने लगती। इसको लिखकर मैं किसी शर्मनाक फ़अल का

मुर्तकिब[19] नहीं हुआ। मुझे फ़ख़्र है कि मैं इसका मुसन्निफ़ हूँ। मैं शुक्र करता हूँ कि मैंने कोई ऐसी मस्नवी नहीं लिखी जिसके अशआर[20] मैं आपकी ख़िद्‌मत में नमूने के तौर पर पेश करता हूँ :

हाथापाई से हाँपते जाना, ख़ुलते जाने में ढाँपते जाना।
वह मेरा मुँह से मुँह भिड़ा देना, वह तेरा जीभ का लड़ा देना।
वह तेरा प्यार से लिपट जाना, और दिल खोल के चिमट जाना।
हौले हौले पुकारने लगना, ढीले हाथों से मारने लगना।
मुँह से कुछ-कुछ पड़े-बके जाना, छूट जाने के गूँ तके जाना।
थक के कहना ख़ुदा के वास्ते छोड़, नींद आई है अब मुझे न झँझोड़।
वह तेरा ढीले छोडना बे बस, वह तेरा सुस्त होके कहना बस।
बात बाक़ी नहीं रही अब तो, रात बाक़ी नहीं रही अब तो।
कहीं तेरी यह बात निबड़ेगी, या यूँ ही सारी रात निबड़ेगी।
मुझ में बाक़ी कुछ अब तो बात नहीं, सुबह भी हो चुकी है रात नहीं।
देख अब आगे मार बैठूँगी, या कुसू को पुकार बैठूँगी।
आदमी की जो रीख़ निकलेगी, मुँह से क्योंकर न चीख़ निकलेगी।
कभी फिर भी तो काम होवेगा, देखियो कौन साथ सोवेगा।

—इक़्तिबासात[21] अज़ मस्नवी मीर दर्द,
मत्बूआ अंजुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दू।

शुक्र है कि मैंने अपनी प्यास और भूखी ख़्वाहिशाते-नफ़सानी को परचाने के लिए ऐसे अशआर नहीं लिखे :

लब से लब मेरे मिलाए रखना, बाज़ू से वह सर उठाए रखना।

वह सीने पे लेट के सताना, मतलब के सुख़न पे रूठ जाना।
वह मुँह में ज़बान की लज़्ज़तें हाय, ज़ाहिर हरकत से रग़बतें[22] हाय।
अपना जो हुआ कुछ और इरादा, जी चाहा कि इससे भी ज़्यादा।
वह हाथ को रख के जोश इनकार, वा करने न देना बंद शलवार।
वह हाथ को दम-ब-दम झटकना, वह तकिये पर सर को दे पटकना।
आहिस्ता लगानी आह लातें, हीला की वह कैसी-कैसी बातें।
वह हाथ को ज़ोर से छुड़ाना, वह होके तंग काट खाना।
वह नीचे पड़े ही तिलमिलाना, क़ाबू से तड़प के निकल जाना।
वह चीं ब जबीं होके कहना, किन बेकसियों से रोके कहना।

है तुमको यही शग़ल दिन-रात, अच्छी नहीं लगती मुझको यह बात।
भरता ही नहीं है तेरा जी बस, करता ही नहीं है तू कभी बस।
—कुल्लियाते मोमिन : मस्नवी दोयम,
मतबूआ नवलकिशोर, लखनऊ।

औरत और मर्द के जिस्मी रिश्ते के मुताल्लिक़ अगर इस अंदाज़ में कुछ कहा जाए तो मैं उसे मायूब[23] समझूँगा। इसलिए कि यह हर बालिग़ आदमी को मालूम है। तन्हाई में जब मर्द और औरत एक बिस्तर पर इस ग़र्ज़ से लेटते हैं तो इसी क़िस्म की हैवानी हरकात करते हैं। लेकिन वह ऐसी ख़ूबसूरत नहीं होती जैसा कि इन अशआर में ज़ाहिर की गई हैं। उनकी हैवानियत को शाइरी के पर्दे में छुपा दिया गया है। यह लिखनेवाले की शरारत है जो यक़ीनन क़ाबिले-गिरफ़्त है। अगर मर्द-औरत के इस हैवानी फ़अल का फ़िल्म बनाकर पर्दे पर पेश किया जाए तो मुझे यक़ीन है कि इसको देखकर तमाम सलीम-उद्दिमाग़[24] आदमी नफ़रत से मुँह फेर लेंगे। लेकिन जो अशआर मैंने ऊपर नमूने के तौर पर पेश किए हैं, वह इस हैवानी फ़अल की ग़लत तसवीर पेश करते हैं।

ऐसी शाइरी 'दिमाग़ी जल्क़'[25] है, लिखने-पढ़नेवालों दोनों के लिए मैं इसे मुज़िर[26] समझता हूँ—मेरे अफ़साने 'काली शलवार' में ऐसा कोई ऐब नहीं। मैंने इसमें कहीं भी मर्द और औरत के जिस्मी मिलाप को लजीज़ अंदाज़ में बयान नहीं किया। मेरी सुलताना से जो अपने गाहक गोरों को अपनी ज़बान में गालियाँ दिया करती थी और उनको उल्लू के पट्ठे समझती थी, किस किस्म की लज़्ज़त या किस क़िस्म के हज़ की तवक़्क़ो की जा सकती है? वह एक दूकानदार थी, ठेट क़िस्म की दूकानदार। अगर हम शराब की दूकान पर शराब की बोतल लेने जाएँ तो यह तवक्क़ो नहीं करेंगे कि वह उम्रे-ख़ैयाम बना बैठा होगा या उसको हाफ़िज़ का सारा दीवान अजबर याद होगा। शराब के ठेकेदार शराब बेचते हैं, उम्रे-ख़ैयाम की रुबाइयाँ और हाफ़िज़ शीराज़ी के शेर नहीं बेचते—मेरी सुलताना औरत बाद में है, वेश्या सबसे पहले है क्योंकि इंसान की जिंदगी में उसका पेट सबसे ज़्यादा अहम है। शंकर उससे पूछता है : "तुम भी कुछ-न-कुछ ज़रूर करती होगी?"

सुलताना जवाब देती है : "झक मारती हूँ।" वह यह नहीं कहती कि मैं गंदुम का व्यापार करती हूँ या सोने-चाँदी की तिजारत करती हूँ। उसे मालूम है कि वह क्या करती है। अगर किसी टाइपिस्ट से पूछा जाए कि तुम क्या काम करते हो तो वह यही जवाब देगा : "टाइप करता हूँ।"

मेरी सुलताना और एक टाइपिस्ट में क्या फ़र्क़ है, ज़रा गौर कीजिए।

1. मस्तिष्क; 2. इनकार करनेवाले, 3. अतिसार (दस्त), 4. दूषित; 5. निकालना; 6. मशीनी; 7. वांछित; 8. वर्जित; 9. कृश्नी, 10. अपने भाइयो के कार्यों; 11. सोना बनाने की विद्या, 12. पारस्परिक; 13. प्रेम करना; 14. दैवी चमत्कार; 15. दुर्गंधयुक्त; 16. प्रिय-संबंधी; 17. व्यंजनाओ; 18. श्रद्धा; 19. दोषी, पापी, 20. शेर, 21. उद्धृत; 22. अनुरक्ति, 23. लज्जननाजनक, 24. स्वस्थ मानसिकतावाले, 25. मानसिक रति, 26. हानिकारक।

अफ़सानानिगार और जिंसी मसाइल

कोई हक़ीर[1] से हक़ीर चीज़ ही क्यों न हो, मसाइल पैदा करने का बायस हो सकती है—मसहरी के अंदर एक मच्छर घुस आए तो उसको बाहर निकालने, मारने और आइंदा के लिए दूसरे मच्छरों की रोकथाम करने के मसाइल पैदा हो जाते हैं—लेकिन दुनिया का सबसे बडा मसला यानी तमाम मसलों का बाप उस वक़्त पैदा हुआ था, जब आदम ने भूख महसूस की थी और उससे छोटा मगर दिलचस्प मसला उस वक्त परदा-ए-ज़हूर[2] पर आया था, जब दुनिया के उस सबसे पहले मर्द की दुनिया की सबसे पहली औरत से मुलाकात हुई थी।

यह दोनों मसले जैसा कि आप जानते हैं, दो मुख़्तलिफ़ किस्म की भूखें हैं जिनका आपस मे बहुत गहरा ताल्लुक है—यही वजह है कि हमें इस वक्त जितने मआशरती, मजलिसी, सियासी और जंगी मसाइल नज़र आते हैं, उनके अकब में यही दो भूखें जलवागर हैं।

मौजूदा जंग का ख़ूनी पर्दा अगर उठा दिया जाए तो लाशों के अंबार के पीछे आपको मुल्कगीरी की भूख के सिवा और कुछ नज़र नहीं आएगा।

भूख किसी क़िस्म की भी हो, बहुत खतरनाक है—आजादी के भूखों का अगर गुलामी की ज़ंजीरें ही पेश की जाती रहीं तो इन्क़िलाब जरूर बरपा होगा। रोटी के भूखे अगर फ़ाके ही खींचते रहे तो वह तंग आकर दूसरे का निवाला ज़रूर छीनेंगे। मर्द की नजरों को अगर औरत से दीदार का भूखा रखा गया तो शायद वह अपने हमजिंसों और हैवानों ही में इसका अक्स देखने की कोशिश करे।

दुनिया में जितनी लानतें हैं, भूख उनकी माँ है—भूख गदागरी[3] सिखाती है, भूख जराइम की तरग़ीब देती है, भूख इस्मत फ़रोशी पर मजबूर करती है, भूख इंतिहापसंदी का सबक़ देती है। इसका हमला बहुत शदीद[4], इसका वार बहुत भरपूर और इसका जख़्म बहुत गहरा होता है—भूख दीवाने पैदा करती है, दीवानगी भूख पैदा नहीं करती।

दुनिया के किसी कोने का मुसन्निफ़ हो, तरक़्क़ीपसंद हो या तनज़्ज़ुलपसंद,[5] बूढ़ा हो या जवान, उसके पेशे-नज़र दुनिया के तमाम बिखरे हुए मसाइल रहते हैं। चुन-चुनकर वह उन पर लिखता रहता है। कभी किसी के हक़ में, कभी किसी के ख़िलाफ़।

आज का अदीब बुनियादी तौर पर आज से पाँच सौ साल पहले के अदीब से कोई ज़्यादा मुख़्तलिफ़ नहीं। हर चीज़ पर नए-पुराने का लेबिल वक्त लगाता है, इंसान नहीं लगाता। हम आज नए अदीब कहलाते हैं। आनेवाली कल हमें पुराना करके अल्मारियों में बंद कर

देगी लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम बेकार जिए, हमने मुफ़्त में मग़ज़दर्दी की। घड़ी की सुई जब एक से गुज़र कर दो की तरफ़ रेंगती है तो एक का हिंदसा बेमसरफ़[6] नहीं हो जाता। पूरा सफ़र तय करके सुई फिर इसी हिंदसे[7] की तरफ़ लौटती है—यह घड़ी का भी उसूल है और दुनिया का भी।

आज के नए मसाइल भी गुज़री हुई कल के पुराने मसाइल से बुनियादी तौर पर मुख़्तलिफ़ नहीं। जो आज की बुराइयाँ हैं, गुजरी हुई कल ही ने उनके बीज बोए थे।

जिंसी मसाइल जिस तरह आज के नए अदीबों के पेशे-नज़र हैं, उसी तरह पुराने अदीबों के पेशे-नज़र भी थे। उन्होंने उन पर अपने रंग में लिखा, हम आज अपने रंग में लिख रहे हैं।

मुझे मालूम नहीं, मुझसे जिंसी मसाइल के मुताल्लिक बार-बार क्यों पूछा जाता है। शायद इसलिए कि लोग मुझे तरक्क़ीपसंद कहते है, या शायद इसलिए कि मेरे चंद अफसाने जिंसी मसाइल के मुताल्लिक हैं या फिर इसलिए कि आज के नए अदीबों को बाज हज़रात जिंसजदा[8] करार देकर उन्हें अदब, मजहब और समाज से यक क़लम ख़ारिज कर देना चाहते हैं—वजह कुछ भी हो, मैं अपना नुक्ता-ए-नजर बयान किए देता हूँ।

रोटी और पेट, औरत और मर्द—यह दो बहुत पुराने रिश्ते हैं, अज़ली[9] और अबदी[10]। रोटी ज़्यादा अहम है या पेट? औरत ज्यादा ज़रूरी है कि मर्द? मैं इसके मुताल्लिक़ कुछ नहीं कह सकता, इसलिए कि मेरा पेट रोटी माँगता है लेकिन मुझे यह मालूम नहीं कि गेहूँ भी मेरे पेट के लिए उतना ही तरसता है जितना कि मेरा पेट। फिर भी जब मैं सोचता हूँ कि जमीन ने गेहूँ के खोशों[11] को बेकार जन्म नहीं दिया होगा तो मुझे ख़ुशफहमी होती है कि मेरे पेट ही के लिए वसी व अरीज़[12] खेतों में सुनहरी बालियाँ झूमती हैं और फिर हो सकता है कि मेरा पेट पहले पैदा हुआ हो और गेहूँ की यह बुच्चियाँ कुछ देर के बाद।

कुछ भी हो, यह बात रोज़े-रोशन की तरह अयाँ है के दुनिया का अदब सिर्फ इन दो रिश्तों ही से मुताल्लिक है—इल्हामी किताबें भी जिनको आसमानी अदब कहना चाहिए, रोटी और पेट, औरत और मर्द के तज़्किरे से ख़ाली नहीं।

सवाल पैदा होता है कि जब यह मसाइल इतने पुराने हैं कि इनका ज़िक्र इल्हामी किताबों में भी आ चुका है तो फिर क्यों आज के अदीब इन पर ख़ामा फ़रसाई[13] करते हैं। क्यों औरत और मर्द के ताल्लुक़ात को बार-बार कुरेदा जाता है और बक़ौल शख़्से उर्यानी[14] फैलाई जाती है—जवाब इस सवाल का यह है कि अगर एक ही बार, झूठ न बोलने और चोरी न करने की तलकीन[15] करने पर सारी दुनिया झूठ और चोरी से परहेज़ करती तो शायद एक ही पैगबर काफी होता—लेकिन जैसा आप जानते हैं, पैगबरों की फेहरिस्त खासी लंबी है।

हम लिखनेवाले पैग़ंबर नहीं। हम एक ही चीज को, एक ही मसले को मुख़्तलिफ़ हालात में मुख़्तलिफ़ ज़ावियों से देखते हैं और जो कुछ हमारी समझ में आता है, दुनिया के सामने पेश कर देते हैं और दुनिया को कभी मजबूर नहीं करते कि वह उसे क़ुबूल ही करे।

हम क़ानूनसाज़ नहीं, मुहतसिब[16] भी नहीं। एहतिसाब और क़ानूनसाज़ी दूसरों का

काम है—हम हुकूमतों पर नुकताचीनी करते हैं लेकिन ख़ुद हाकिम नहीं बनते। हम इमारतों के नक़्शे बनाते हैं लेकिन हम मैमार नहीं। हम मर्ज़ बताते हैं लेकिन दवाख़ानों के मुहतमिम[17] नहीं।

हम जिंसियात पर नहीं लिखते। जो समझते हैं कि हम ऐसा करते हैं, यह उनकी गलती है। हम अपने अफ़सानों में ख़ास औरतों और ख़ास मर्दों के हालात पर रोशनी डालते हैं—किसी अफ़साने की हीरोइन से अगर उसका मर्द सिर्फ़ इसलिए मुतनफ़्फ़िर[18] हो जाता है कि वह सफ़ेद कपड़े पसंद करती है और सादगीपसंद है तो दूसरी औरतों को इसे उसूल नहीं समझ लेना चाहिए—यह नफ़रत क्यों पैदा हुई और किन हालात में पैदा हुई इस इस्तिफ़हाम[19] का जवाब आपको हमारे अफ़साने मे जरूर मिल जाएगा।

जो लोग हमारे अफ़सानों में लज़्ज़त हासिल करने के तरीके देखना चाहते हैं, उन्हे यक़ीनन नाउम्मीदी होगी। हम दाव-पेच बतानेवाले खलीफे नही। हम जब अखाड़े मे किसी को गिरता देखते हैं तो अपनी समझ के मुताबिक आपको समझाने की कोशिश करते हैं कि वह क्यों गिरा था?

हम रजाई हैं। दुनिया की सियाहियो में भी हम उजाले की लकीरें देख लेते हैं। हम किसी को हिक़ारत की नज़र से नहीं देखते—चकलों मे जब कोई टखयाई अपने कोठे पर से किसी राहगुज़र पर पान की पीक थूकती है तो हम दूसरे तमाशाइयो की तरह न तो कभी उस राहगुजर पर हँसते हैं और न कभी उस टखयाई को गालियाँ देते हैं। हम यह वाका देखकर रुक जाएँगे। हमारी निगाहें इस गलीज़ पेशेवर औरत के नीम उरियाँ लिबास को चीरती हुई उसके सियाह इस्याँ[20] भरे जिस्म के अंदर दाख़िल होकर उसके दिल तक पहुँच जाएँगी, उसको टटोलेंगी और टटोलते-टटोलते हम ख़ुद कुछ अर्से के लिए तसव्वुर में वही करीह और मुतअफ़्फ़िन[21] रंडी बन जाएँगे, सिर्फ़ इसलिए कि हम उस वाके की तसवीर ही नही बल्कि उसके असल मुहर्रिक की वजह भी पेश कर सकें।

जब किसी अच्छे ख़ानदान की जवान, मेहनतमंद और ख़ूबसूरत लड़की किसी मरियल, बदसूरत और क़लाश लड़के के साथ भाग जाती है तो हम उसे मलऊन क़रार नही देंगे। दूसरे उस लड़की को माज़ी[22], हाल और मुस्तकबिल अख़लाक़ की फाँसी मे लटका देंगे लेकिन हम वह छोटी-सी गिरह खोलने की कोशिश करेंगे जिसने उस लड़की के इद्राक[23] को बेहिस किया।

इंसान एक दूसरे से कोई ज़्यादा मुख़्तलिफ नहीं हैं। जो गलती एक मर्द करता है, दूसरा भी कर सकता है। जब एक औरत बाज़ार में दूकान लगाकर अपना जिस्म बेच सकती है तो दुनिया की सब औरतें ऐसा कर सकती हैं। गलतकार इंसान नहीं, वह हालात हैं जिनकी खेतों में इंसान अपनी गलतियाँ पैदा करता है और उनकी फ़स्लें काटता है।

ज़्यादातर जिंसी मसाइल ही आज के नए अदीबों की तवज्जोह का मर्कज़[24] क्यों बने हैं, इसका जवाब मालूम करना कोई ज़्यादा मुश्किल नहीं। यह ज़माना अजीबो-ग़रीब क़िस्म के अज़्दाद[25] का ज़माना है। औरत क़रीब भी है, दूर भी। कहीं मादरज़ाद बरहनगी नज़र आती है, कहीं सिर से लेकर पैर तक सत्र। कहीं औरत मर्द के भेस में दिखाई देती है, कहीं

मर्द औरत के भेस में।

दुनिया एक बहुत बड़ी करवट ले रही है। हिंदुस्तान भी, जहाँ आज़ादी का नन्हा-मुन्ना बच्चा गुलामी के दामन से अपने आँसू पोंछ रहा है, मिट्टी का नया घरौंदा बनाने के लिए ज़िद कर रहा है—मशरिक़ी[26] तहजीब की चोली के बंद कभी खोले जाते हैं, कभी बंद किए जाते हैं। मग़रिबी तहजीब के चेहरे का गाज़ा कभी हटाया जाता है, कभी लगाया जाता है। एक अफ़रातफ़री-सी मची है—नए खटबुने पुरानी खाटों की मूँज उधेड़ रहे हैं, पुराने खटबुने चिल्ला रहे हैं। हिली हुई चूलों से कहीं खटमल निकल रहे हैं, कहीं पिस्सू। कोई कहता है, इन्हें ज़िंदा रहने दो। कोई कहता है, नहीं, फना कर दो। इस धाँधली में, इस शोरिश[27] में हम नए लिखनेवाले अपने कलम सँभाले कभी इस मसले से टकराते हैं, कभी उस मसले से।

अगर हमारी तहरीरों में औरत और मर्द के ताल्लुकात का जिक्र आपको ज्यादा नजर आए तो यह एक फितरी बात है—मुल्क, मुल्क से सियासी तौर पर जुदा किए जा सकते हैं। एक मजहब दूसरे मजहब से अकीदों[28] की बिना पर अलहदा किया जा सकता है। दो जमीनों को एक कानून एक-दूसरे से बेगाना कर सकता है लेकिन कोई सियासत, कोई अकीदा, कोई कानून औरत और मर्द को एक-दूसरे से दूर नहीं कर सकता।

औरत और मर्द में जो फासला है, उसको उबूर करने की कोशिश हर ज़माने में होती रहेगी। औरत और मर्द में जो एक लरजती हुई दीवार हाइल है, उसे सँभालने और गिराने की सई[29] हर सदी, हर कर्न[30] में होती रही है, जो उसे उरियानी[31] समझते हैं, उन्हें अपने एहसास के नंग पर अफसोस होना चाहिए। जो उसे अख़लाक की कसौटी पर परखते हैं, उन्हें मालूम होना चाहिए कि अखलाक जंग है जो समाज के उस्तरे पर बेएहतियाती से जम गया है।

जो समझते हैं कि नए अदब ने जिंसी मसाइल पैदा किए हैं, गलती पर हैं क्योंकि हकीकत यह है कि जिंसी मसाइल ने इस नए अदब को पैदा किया है, यह नया अदब जिसमें आप कभी-कभी अपना ही अक्स देखते हैं और झुँझला उठते हैं—हकीकत ख़्वाह शक्कर ही में लपेटकर पेश की जाए, उसकी कड़वाहट दूर नहीं होगी।

हमारी तहरीरें आपको कड़वी और कसैली लगती हैं मगर अब तक जो मिठासें आपको पेश की जाती रही हैं, उनसे इंसानियत को क्या फ़ाइदा हुआ है? नीम के पत्ते कड़वे सही मगर खून ज़रूर साफ करते हैं।

1 तुच्छ, बहुत ही छोटी, 2. अवतरित, 3 भिक्षावृत्ति, 4 तेज, 5 प्रतिक्रियावादी; 6. महत्त्वहीन, 7. अक, 8 यौनभावना में ग्रस्त, 9. अनादि, 10 अनंत, 11 बाने, 12 विस्तृत; 13. लेखन-कार्य, 14 इंसानी नग्नता, 15 उपदेश, 16 पूछताछ करनेवाले, 17 व्यवस्थापक, 18 विरक्त, 19 प्रश्न, 20. पाप, 21 दुर्गंधयुक्त; 22 भूतकाल, 23 चेतना, 24 केंद्र, 25 परस्पर विरोधों; 26. पूर्वी, 27. उन्माद, 28 आस्थाओं, 29. कोशिश, 30 वह लंबा समय जो तीस से सौ वर्ष के बीच हो, 31 नग्नता।

कसौटी

यह नई चीज़ों का ज़माना है। नए जूते, नई ठोकरें, नए क़ानून, नए जराइम, नई घड़ियाँ, नई बेवक़्तियाँ, नए आका, नए ग़ुलाम और लुत्फ़ यह है कि इन नए ग़ुलामो की खाल भी नई है जो उधड़-उधड़कर जिद्दत पसंद[1] हो गई है। अब इनके लिए नए कोड़े और नए चाबुक तैयार हो रहे हैं।

अदब भी नया है जिसके बेशुमार नाम है। कोई उसे तरक़्क़ीपसंद कहता है, कोई तनज़्ज़ुल पसंद[2]। कोई फ़हश कहता है, कोई मज़दूरपरस्त। इस नए अदब को परखने के लिए नई कसौटियाँ भी मौजूद हैं—यह कसौटियाँ परचे हैं। सालनामे, माहनामे, हफ्तावार और रोज़ाना—इन परचो के मालिक और एडिटर भी नए हैं। कोई पाकिस्तानी है, कोई अखंड हिंदुस्तानी। कोई कांग्रेसी है, कोई कम्युनिस्ट—सब अपनी-अपनी कसौटी पर इस नए अदब को परखते रहते है और इसका खोटा-खरा बताते रहते हैं मगर अदब सोना नही जो उसके घटते-बढ़ते भाव बताए जाएँ। अदब जेवर है और जिस तरह ख़ूबसूरत जेवर खालिस सोना नही होते, उसी तरह ख़ूबसूरत अदबपारे भी खालिस हकीकत नही होते। इनको सोने की तरह पत्थरों पर घिस-घिसकर परखना बहुत बडी बेज़ौक़ी[3] है।

अदब या तो अदब है, वरना एक बहुत बडी बेअदबी है। ज़ेवर या तो जेवर है, वरना एक बहुत ही बदनुमा शै है। अदब और गैर अदब, जेवर और गैर जेवर मे कोई दरमियानी इलाका नही।

यह ज़माना नए दर्दों और नई टीसों का जमाना है। एक नया दौर पुराने दौर का पेट चीरकर पैदा किया जा रहा है। पुराना दौर मौत के सदमे मे रो रहा है, नया दौर जिंदगी की ख़ुशी मे चिल्ला रहा है। दोनों के गले रुँधे पड़े है, दोनो की आँखे नमनाक हैं—इस नमी मे अपने क़लम डुबोकर लिखनेवाले लिख रहे है। नया अदब ? ज़बान वही है, सिर्फ़ लहजा बदल गया है। दरअसल इसी बदले हुए लहजे का नाम नया अदब, तरक़्क़ीपसंद अदब, फ़हश अदब या मज़दूरपरस्त अदब है।

जब किसी इंसान का लहजा बदल जाता है, जब कोई इसान हँसते-हँसते रोने लगता है, जब किसी राग के मद्धम सुर एकाएकी ऊँचे हो जाते है, जब बच्चा खिलखिलाने लगता है तो आला मक़याम-उल-सौत यानी आवाज नापनेवाले आले से मेकानकी तरीके पर इस तब्दीली को नहीं जाँचते। जो अहले-दानिश[4] हैं, जो साहबे-ज़ौक़[5] है, हमेशा इस

कैफ़ियत, इस जज़्बे, इस मुहर्रिक[6] को टटोलने की कोशिश करेंगे जिसने यह तब्दीली पैदा की।

अदब एक फ़र्द की अपनी ज़िंदगी की तसवीर नहीं। जब कोई अदीब क़लम उठाता है तो वह अपने घरेलू मामलात का रोज़नामचा नहीं लिखता। अपनी ज़ाती ख़ुशियों, रंजिशों, बीमारियों और तंदुरुस्तियों का ज़िक्र नहीं करता। उसकी क़लमी तसवीरों में, बहुत मुमकिन है, आँसू उसकी दुखी बहन के हों, मुसकराहटें आपकी हों और क़हक़हे एक ख़स्ता हाल मजदूर के। इसलिए अपने आँसुओं, अपनी मुसकराहटों और अपने क़हक़हों की तराज़ू में इन तसवीरों को तोलना बहुत बड़ी ग़लती है। हर अदबपारा एक ख़ास फ़ज़ा, एक ख़ास अमर, एक ख़ास मक़सद के लिए पैदा होता है। अगर इसमें वह ख़ास फ़ज़ा, वह ख़ास अमर और वह ख़ास मकसद महसूस न किया जाए तो वह एक बेजान लाश रह जाएगी।

अदब लाश नहीं जिसे डॉक्टर और उसके चंद शागिर्द पत्थर की मेज पर लिटाकर पोस्टमार्टम शुरू कर दे। अदब बीमारी नहीं, बल्कि बीमारी का रद्दे-अमल है। अदब दवा भी नहीं जिसके इस्तेमाल के लिए औक़ात और मिक़दार की पाबंदी आइद की जाती है। अदब दर्जाए-हरारत है अपने मुल्क का, अपनी क़ौम का—अदब अपने मुल्क, अपनी क़ौम, उसकी सेहत और अलालत की खबर देता रहता है—पुरानी अल्मारी के किसी ख़ाने से हाथ बढ़ाकर कोई गर्द आलूद किताब उठाइए, बीते हुए जमाने की नब्ज आपकी उँगलियों के नीचे धड़कने लगेगी।

कितनी सदियाँ गुजर चुकी है, कितनी नस्लें इन गुज़री हुई सदियों के नीचे दफ़न हैं। ऐसा लगता है कि लाशों का एक अंबार है जिसकी चोटी पर हम खड़े है और नीचे एक अथाह समंदर की तरफ़ देख रहे हैं। आसमान की तरफ निगाह उठाते हैं तो ऐसा मालूम होता है जैसे हम इसके बिलकुल करीब पहुँच गए हैं। लेकिन आनेवाले जमाने की एक छोटी-सी करवट, एक और सदी हमारी लाशों पर हमारी औलाद को खड़ा कर देगी। और हमारी औलाद समझेगी, हम ऊँचे हैं लेकिन सबसे पहली सदी की लाश कहाँ है? किस हालत में है? किसी को कुछ मालूम नहीं—लेकिन क़िस्सा-ए-आदम वही है। एक औरत और एक मर्द। दो औरतें और एक मर्द या दो मर्द और एक औरत—यह गरदानें अज़ल[7] से जारी है और अबद[8] तक जारी रहेगी।

इसान को भूख पहले भी लगती थी, अब भी लगती है। ताकत का ख्वाहाँ पहले भी था, अब भी है, शेरो-शराब का शौकीन जैसा पहले था, वैसा ही अब है—तब्दीली क्या हुई है, कुछ नहीं। रोटी, औरत और तख़्त—और अगर इसान इनसे उकता गया तो ख़ुदा, यानी एक ऐसी ताक़त जो रोटी, औरत और तख़्त से कहीं ज्यादा नाक़ाबिले-फहम और नाक़ाबिले-रसा है।

इंसान औरत से मुहब्बत करता है तो हीर-राँझा की दास्तान बन जाती है, रोटी से मुहब्बत करता है तो ऐपीक्यूरेस का फलसफा पैदा हो जाता है, तख़्त से प्यार करता है तो सिकंदर, चंगेज़, तैमूर या हिटलर बन जाता है और जब ख़ुदा से लौ लगाता है तो महात्मा बुद्ध का रूप इख़्तियार कर लेता है।

दुनिया बहुत वसी है। कोई च्यूँटी मारना बहुत बड़ा पाप समझता है, कोई लाखों इंसान

हलाक कर देता है और अपने इस फ़अल को बहादुरी और शुजाअत[9] से ताबीर करता है। कोई मज़हब को लानत समझता है, कोई इसी को सबसे बड़ी नैमत—इंसान को किस कसौटी पर परखा जाए ? यूँ तो हर मज़हब के पास एक बटिया मौजूद है जिस पर इंसान कसकर परखे जाते हैं मगर वह बटिया कहाँ है ? सब क़ौमों, सब मज़हबों, सब इंसानों की वाहिद कसौटी जिस पर आप मुझे और मैं आपको परख सकता हूँ, वह धर्मकाँटा कहाँ है, जिसके पलड़ों में हिंदू और मुसलमान, ईसाई और यहूदी, काले और गोरे तुल सकते हैं ?

यह कसौटी, यह धर्मकाँटा जहाँ कहीं भी है, नया है न पुराना। तरक़्क़ीपसंद है न तनज़्ज़ुलपसंद। उरियाँ है न मस्तूर[10], फ़हश है न मुतहर[11]—इंसान और इंसान के सारे फ़अल इसी तराजू में तोले जा सकते हैं। मेरे नजदीक किसी और तराजू का तसव्वुर करना बहुत ही बड़ी हिमाक़त है।

हर इंसान दूसरे इंसान के पत्थर मारना चाहता है, हर इंसान दूसरे इंसान के अफ़आल[12] परखने की कोशिश करता है। यह उसकी फितरत है जिसे कोई भी हादिसा तब्दील नहीं कर सकता। मैं कहता हूँ, अगर आप मेरे पत्थर मारना ही चाहते हैं तो खुदारा ज़रा सलीक़े से मारिए। मैं उस आदमी से हरगिज़-हरगिज़ अपना सिर फुड़वाने के लिए तैयार नहीं जिसे सिर फोड़ने का सलीक़ा ही नहीं आता। अगर आपको यह सलीका नहीं आता तो सीखिए—दुनिया मे रहकर जहाँ आप नमाज़ें पढना, रोज़े रखना और महफिलों में जाना सीखते हैं, वहाँ पत्थर मारने का ढंग भी आपको सीखना चाहिए।

आप खुदा को खुश करने के लिए सौ हीले करते हैं। मैं आपके इस क़दर नज़दीक हूँ, मुझे खुश करना भी आपका फ़र्ज़ है। मैंने आपसे कुछ ज़्यादा तलब तो नहीं किया ? मुझे बडे शौक़ से गालियाँ दीजिए। मैं गाली को बुरा नही समझता, इसलिए कि यह कोई गैर फितरी चीज़ नही, लेकिन ज़रा सलीक़े से दीजिए। न आपका मुँह बदमज़ा हो और न मेरे ज़ौक़ को सद्मा पहुँचे।

मेरे नज़दीक बस यह सलीक़ा ही एक कसौटी है इंसान के हर फअल के लिए, उसके गुनाह के लिए, उसके सवाब के लिए, उसकी शाइरी के लिए, उसके अफ़सानों के लिए—मुझे नामनिहाद नक़्क़ादों से कोई दिलचस्पी नहीं। नुक्ताचीनियाँ सिर्फ़ पत्तियाँ नोचकर बिखेर सकती हैं, उन्हें जमा करके एक सालिम फूल नहीं बना सकतीं।

बहुत से नक़्क़ाद गुजर चुके हैं लेकिन अदब से बेअदबियाँ दूर नहीं हुईं। बहुत से पैग़ंबर आ चुके हैं लेकिन इंसान एक-दूसरे से मुत्तहिद[13] नहीं हुए—यह एक बहुत बड़ा अलम है। लेकिन मुसीबत यह है कि यह अलम ही इंसानियत की क़िस्मत है। इसकी ज़िंदगी और इसकी मौत, इसकी जवानी और इसका बुढ़ापा—यह अलम ही 'सआदत हसन मंटो' है। यह अलम ही आप हैं। यह अलम ही सारी दुनिया है जिसमें कसौटियाँ ज़्यादा हैं और कसे जानेवाले कम; जिसमें पत्थर कम हैं और सिर फोड़नेवाले ज़्यादा

1 आधुनिकतावादी, 2 प्रतिक्रियावादी, 3 बेवकूफी; 4. विद्वान, 5. रसिक; 6. उत्तेजित भावना; 7 अनादिकाल, 8 अनन्तकाल, 9. वीरता, 10 ढका हुआ, गुप्त; 11 श्लील; 12. करतूतों; 13. प्रेम करनेवाले।

इस्मत फ़रोशी

इस्मत फ़रोशी[1] कोई ख़िलाफ़े-अक्ल या ख़िलाफ़े-क़ानून चीज नहीं। यह एक पेशा है जिसको इख़्तियार करनेवाली औरतें चंद समाजी ज़रूरियात पूरी करती हैं। जिस शै के गाहक मौजूद हों, अगर वह मार्केट में नजर आए तो हमें ताज्जुब न करना चाहिए। अगर हमें हर शहर में ऐसी औरतें नजर आती हैं जो इस जिस्मानी तिजारत से अपना पेट पालती हैं तो हमें उनके ज़रिया-ए-मआश[2] पर कोई एतिराज़ न होना चाहिए, इसलिए कि हर शहर में उनके गाहक मौजूद हैं।

इस्मत फ़रोशी को गुनाहे-कबीरा यक़ीन किया जाता है। मुमकिन है, यह बहुत बड़ा गुनाह हो मगर हम मज़हबी नुकता-ए-नज़र से इसको जाँचना नहीं चाहते है। गुनाह और सवाब, मज़ा और जज़ा की भूल-भुलैयों में फँसकर आदमी किसी मसले पर ठंडे दिल से गौर नहीं कर सकता। मज़हब ख़ुद एक बहुत बड़ा मसला है। अगर इसमें लपेटकर किसी और मसले को देखा जाए तो हमें बहुत ही मग़जदर्दी करना पड़ेगी। इसलिए मज़हब को इस्मत फ़रोशी से अलग करके हमने एक तरफ़ रख दिया है।

इस्मत फ़रोशी क्या है ?

इस्मत को बेचना यानी उस गौहर[3] को बेचना जिसको औरत की ज़िंदगी का सबसे क़ीमती ज़ेवर यक़ीन किया जाता है। इस ज़ेवर की क़द्र इसलिए बहुत ज़्यादा बढ़ गई है कि तजुर्बे ने हमें बताया है, औरत जब एक बार इसको खो देती है तो समाज की निगाहों में उसकी कोई इज़्ज़त नहीं रहती। यह गौहर कई तरीकों से ज़ाय होता है जब औरत की शादी हो जाए तो यह गौहर ख़ाविंद की जेब में चला जाता है। बाज औक़ात मर्द इसे ज़बर्दस्ती हासिल कर लेते हैं और बाज़ औक़ात शादी के बग़ैर औरतें इसे अपने दिलपसंद मर्दों के हवाले कर देती हैं। बाज औरतें हालात से मजबूर होकर इसे बेच देती हैं और बाज इसकी तिजारत करती हैं।

हम उन औरतों के मुताल्लिक कुछ कहना चाहते हैं जो पेशे के तौर पर अपनी इस्मत बेचती हैं, हालाँकि यह बिलकुल वाज़ेह चीज़ है कि इस्मत सिर्फ़ एक बार खोई या बेची जा सकती है। बार-बार इसको बेचा या खोया नहीं जा सकता। लेकिन चूँकि इस पेशे को उर्फ़े-आम में इस्मत फ़रोशी कहा जाता है, इसलिए हम इसे इस्मत फ़रोशी ही कहेंगे।

इस्मत फ़रोश औरत एक जमाने में दुनिया की सबसे जलील हस्ती समझी जाती रही है

मगर क्या हमने ग़ौर किया है कि हम में से अक्सर ऐसी ज़लीलोख़्वार हस्तियों के दर पर ठोकरें खाते हैं क्या हमारे दिल मे यह ख़याल पैदा नहीं होता कि हम भी ज़लील हैं।

मक़ामे-तास्सुफ़[4] है कि मर्दों ने इस पर कभी ग़ौर नहीं किया। मर्द अपने दामन पर ज़िल्लत के हर धब्बे को इस्मत फ़रोश औरत के दिल की सियाही से ताबीर करेगा। हक़ीक़त इसके बिलकुल बरअक्स है। औरतों में, ख़्वाह वह कसबी हों या ग़ैर कसबी, निन्यानवे फ़ीसदी ऐसी होंगी जिनके दिल इस्मत फ़रोशी की तारीक तिजारत के बावुजूद बदकार मर्दो के दिल की बनिस्बत कहीं ज़्यादा रोशन होंगे। मौजूदा निज़ाम के तहत जिसकी बागडोर सिर्फ़ मर्दों के हाथ में है, औरत ख़्वाह वह इस्मत फ़रोश हो या बा इस्मत, हमेशा दबी रही है। मर्द को इख़्तियार होगा कि वह उसके मुताल्लिक़ जो चाहे राय क़ायम करे।

हमने मुताद्दिद बार अपने कानों से ताईश-पसंद[5] अमीरों को अपना मालो-असबाब शहवत के तनूर[6] में ईंधन के तौर पर जलाकर यह कहते सुना है कि फ़लाँ तवाइफ़ या फ़लाँ वेश्या ने उनको तबाहो-बर्बाद कर दिया है—यह मुअम्मा अभी तक हमारी समझ में नहीं आया।

वेश्या या तवायफ़ अपने तिजारती उसूलों के मातहत हर मर्द से जो उसके पास गाहक के तौर पर आता है, ज़्यादा-से-ज़्यादा नफ़ा हासिल करने की कोशिश करेगी। अगर वह मुनासिब दामों पर या हैरतअंगेज़ कीमत पर अपना माल बेचती है तो यह उसका पेशा है। बनिया भी सौदा तोलते वक़्त डंडी मार जाता है। बाज़ दूकानें ज़्यादा क़ीमत पर अपना माल बेचती हैं, बाज कम क़ीमत पर।

ताज्जुब तो इस बात का है कि जब सदियों से हम यह सुन रहे हैं, 'वेश्या का डसा हुआ पानी नही माँगता' तो हम क्यों अपने आपको उससे डसवाते हैं और फिर क्यों ख़ुद ही रोना-पीटना शुरू कर देते हैं। वेश्या इरादातन या किसी इंतिकामी जज़्बे के ज़ेरे-असर मर्दो के मालो-जर पर हाथ नहीं डालती। वह सौदा करती है और कमाती है। मर्द अपनी जिस्मानी ख्वाहिशात की तकमील[7] के मुआवज़े अदा करते हैं, बस

मुमकिन है वेश्या किसी मर्द से मुहब्बत करती हो लेकिन हर वह गाहक जो एक ख़ास जज्बे के जेरे-असर उसकी दूकान में जाता है, दिल मे यह ख्वाहिश भी पैदा कर लेगा कि वह उससे सच्ची मुहब्बत करता है, यह क्योंकर मुमकिन है ? हम अगर किसी दूकान से एक रुपए का आटा लेने जाएँ तो हमारी यह तवक्क़ो कतई तौर पर मज़हका खेज़ होगी कि वह हमें अपने घर मे मदऊ करेगा और सिर के गंज का कोई लाजवाब नुस्ख़ा बताएगा।

वेश्या अपने उस गाहक के रू-ब-रू जो उससे मुहब्बत का तालिब है, अपने चेहरे पर मस्नूई[8] मुहब्बत के जज़्बात पैदा करेगी। यह चीज़ गाहक को ख़ुश करेगी। मगर वेश्या अपने सीने की गहराइयों में से हर मर्द के लिए जो शराब पीकर उसके कोठे पर झूमने लगता है और रूमान की एक नई दुनिया बसाना चाहता है, मुहब्बत की पाक और साफ आवाज़ नहीं निकाल सकती।

वेश्या को सिर्फ़ बाहर से देखा जाता है—उसके रंग-रूप, उसकी भड़कीली पोशाक,

उसके मकान की आराइशो-ज़ैबाइश[9] देखकर यही नतीजा मुर्त्तब[10] किया जाता है कि वह ख़ुशहाल है। यह दुरुस्त नहीं।

जिस औरत के दरवाज़े शहर के हर उस शख़्स के लिए खुले हों जो अपनी जेबों में चाँदी के चंद सिक्के रखता है, ख़्वाह[11] वह मोची हो या भंगी, लँगड़ा हो या लूला, ख़ूबसूरत हो या करीह-उल नज़्र[12], उसकी ज़िंदगी का अंदाज़ा बख़ूबी लगाया जा सकता है। एक बदसूरत मर्द जिसके मुँह से पायरिया लगे दाँतों के तअफ़्फ़ुन[13] के भपके निकलते हैं, एक नफ़ासतपसंद वेश्या के हाँ आता है, चूँकि उसकी गिरह में उस वेश्या के जिस्म को एक ख़ास वक्त तक ख़रीदने के लिए दाम मौजूद हैं। वह नफ़रत के बावुजूद उस गाहक को नहीं मोड सकती। सीने पर पत्थर रखकर उसको अपने उस गाहक की बदसूरती और उसके मुँह का तअफ़्फ़ुन बर्दाश्त करना ही पडता है—वह अच्छी तरह जानती है कि उसका हर गाहक अपोलो नहीं हो सकता।

टाईपिस्ट औरतों को हैरत-से नहीं देखा जाता। वह औरतें जो दायागीरी का काम करती हैं, उन्हें हैरत और नफरत से नहीं देखा जाता। वह औरतें जो गंदगी सिर पर उठाती हैं, उनकी तरफ़ हिक़ारत से नहीं देखा जाता। लेकिन ताज्जुब है कि उन औरतों को जो अच्छे या भौंडे तरीक़े से अपना जिस्म बेचती हैं, हैरत, नफ़रत और हिक़ारत से देखा जाता है!

हजरात! यह जिस्म फ़रोशी ज़रूरी है आप शहर में ख़ूबसूरत और नफ़ीस गाड़ियाँ देखते हैं। यह ख़ूबसूरत और नफीस गाडियाँ कूडा-करकट उठाने के काम नही आ सकतीं। गदगी और गिलाज़त उठाकर बाहर फेंकने के लिए और गाडियाँ मौजूद हैं जिन्हें आप कम देखते हैं और अगर देखते हैं तो फौरन अपनी नाक पर रूमाल रख लेते हैं—इन गाड़ियों का वुजूद जरूरी है और इन औरतों का वुजूद भी जरूरी है जो आपकी गिलाज़त उठाती हैं। अगर यह औरतें न होतीं तो हमारे सब गली-कूचे मर्दों की गलीज हरकात से भरे होते।

यह औरते उजडे हुए बाग़ हैं, घूरे हैं जिनमें गंदे पानी की मोरियाँ बह रही हैं। यह इन गदी मोरियों ही पर ज़िंदा रहती हैं—हर इसान कैसे एक ही जैसे शानदार तरीक़े पर ज़िंदगी बसर कर सकता है?

ज़रा ख़याल फरमाइए, शहर के एक कोने मे एक वेश्या का मकान है। रात की सियाही मे एक मर्द जो अपने सीने में रात की सियाही से भी ज्यादा सियाह दिल रखता है, अपने जिस्म की आग ठंडी करने के लिए बेधड़क उसके मकान मे चला जाता है। वेश्या उस मर्द के दिल की सियाही से वाकिफ है। उससे नफरत भी करती है। वह अच्छी तरह जानती है कि उसका अपना वुजूद दामने-इसानियत पर एक बदनुमा धब्बा है। उसको मालूम है कि वह अज़िम्ना-ए-बर्बरियत[14] का एक खौफ़नाक नमूना है मगर वह अपने घर के दरवाज़े उस मर्द पर बंद नहीं कर सकती—जो दरवाजे मआशी कशमकश ने एक दफा खोल दिए हों, बहुत मुश्किल से बंद किए जा सकते हैं।

वेश्या जो औरत पहले है वेश्या बाद में, चंद सिक्कों के एवज अपना जिस्म मर्द के हवाले कर देती है लेकिन उसकी रूह उस वक्त जिस्म मे नहीं होती—एक वेश्या के अल्फाज़ सुनिए: "लोग मुझे बाहर खेतों में ले जाते हैं मैं लेटी रहती हूँ, बिलकुल बेहिस व बेहरकत,

लेकिन मेरी आँखें खुली रहती हैं। मैं दूर, बहुत दूर उन दरख़्तों को देखती रहती हूँ जिनकी छाँव में कई बकरियाँ आपस में लड़-झगड़ रही होती हैं। कितना प्यारा मंज़र होता है मैं बकरियाँ गिनना शुरू कर देती हूँ या पेड़ों की टहनियों पर कव्वों को शुमार करने लगती हूँ उन्नीस-बीस, इक्कीस, बाइस और मुझे मालूम भी नहीं होता कि मेरा साथी अपने काम से फ़ारिग़ होकर एक तरफ़ हाँफ रहा है "

मशाहदा[15] बताता है कि वेश्याएँ आमतौर पर ख़ुदा तरस[16] होती हैं— हर हिंदू वेश्या के मकान पर किसी-न-किसी कमरे में आपको कृष्ण भगवान या गणेश महाराज की मूर्ति या तसवीर ज़रूर नज़र आएगी। वह इस मूर्ति की सदक़ दिल से पूजा करती है जितनी कि एक बाइस्मत घरेलू औरत कर सकती है। इसी तरह वह वेश्या जो मुसलमान है, माहे-रमज़ान में रोज़े ज़रूर रखेगी। मुहर्रम में अपना कारोबार बंद रखेगी, सियाह कपडे पहनेगी, ग़रीबों की मदद करेगी और ख़ास-ख़ास मौकों पर ख़ुदा के हुज़ूर में इज्जोनियाज[17] का नज़राना भी ज़रूर पेश करेगी। बादी-उन्नजर[18] में इस्मत बाख़्ता औरतों का मज़हब से यह लगाव एक ढोंग मालूम होता है मगर हक़ीक़त मे यह उनकी रूह का वह हिस्सा पेश करता है जो समाज के ज़ंग से यह औरतें बचा-बचा के रखती हैं—दूसरे मज़हब की वेश्याएँ भी आपको रूहानी तौर पर अपने-अपने मज़हब के साथ बड़ी मजबूती से जुडी नज़र आएँगी। क्रिश्चियन वेश्या गिरजे में नमाज के लिए जरूर जाएगी। वह कुँवारी मरियम की तसवीर के पास दीया ज़रूर जलाएगी। दरअसल इस तिजारत में वेश्या अपने जिस्म को लगाती है न कि रूह को—भंग या चरस बेचनेवाला जरूरी नहीं कि इन मनशियात[19] का आदी हो, ठीक इसी तरह हर मौलवी या पंडित पाकबाज नहीं हो सकता।

जिस्म दाग़ा जा सकता है मगर रूह नहीं दागी जा सकती —वेश्या अपनी तारीक तिजारत के बावजूद रोशन रूह की मालिक हो सकती है : वह अपने जिस्म की क़ीमत बडी बेदर्दी से वसूल करती हो तो हो, मगर वह गरीबों की वसी पैमाने पर मदद भी कर सकती है। मुमकिन है, बडे-बडे अमीर उसके दिल में अपनी मुहब्बत पैदा न कर सके हो मगर वह सड़कों पर सोनेवाले एक आवारागर्द की फटी हुई जेब मे अपना दिल डाल सकती है।

वेश्या दौलत की भूखी होती है लेकिन क्या दौलत की भूखी मुहब्बत की भूखी नही हो सकती ? यह ऐसा सवाल है जिसके जवाब मे हमे तफ़सील से काम लेना पडेगा. ख़ानदानी वेश्या और नौक्सीया[20] वेश्या में बहुत फ़र्क़ है और फिर वह औरतें या लड़कियाँ जो अपने गरीब माँ-बाप या अपने यतीम बच्चों की परवरिश के लिए मजबूरन अपना जिस्म छुप-छुपकर फरोख़्त करती हैं, उनकी हैसियत मतज़क्किरा[21] सदर अक़साम[22] से बिलकुल जुदागाना है—खानदानी वेश्या से हमारी मुराद वह कसबी है जो वेश्या के बत्न से पैदा होती है और उसी के घर में पाली-पोसी जाती है, दूसरे अल्फाज में वह औरत जिसको ख़ास उसूलों के मातहत वेश्या बनने की तालीम दी जाती है। ऐसी औरतें जो उस माहौल मे परवरिश पाती हैं, इश्क़ो-मुहब्बत को आमतौर पर ऐसा सिक्का तसव्वुर करती हैं जो उनके बाजार मे नहीं चल सकता। यह नजरिया दुरुस्त है, इसलिए कि अगर वह हर उस मर्द को, जो उनके पास चंद लम्हात गुज़ारने के लिए आए, अपना दिल दे दें तो ज़ाहिर है कि

वह अपने कारोबार में कामयाब नहीं हो सकतीं। आमतौर पर यही देखने में आया है कि इस स्कूल की वेश्याओं के सीने में इश्क़ो-मुहब्बत का अन्सर[23] कम होता है। दूसरे अल्फ़ाज़ में यह दूसरी औरतों के मुक़ाबले में मर्दों से इश्क़ करने में बड़ी एहतियात और बड़े बुख़्ल[24] से काम लेती हैं। मर्दों से रोज़ाना मेल-जोल उनके दिल में एक नाक़ाबिले बयान तल्ख़ी पैदा कर देता है। वह मर्दों को हैवानों से बदतर समझने लगती हैं। यही वजह है कि वह इस ज़िम्न[25] में एक हद तक 'मुन्किर'[26] हो जाती हैं मगर इसका यह मतलब नहीं कि उनका सीना मुहब्बत के लतीफ़ जज़्बात से ख़ाली होता है—जिस तरह भंगन की लड़की को गंदगी का पहला टोकरा उठाते वक़्त घिन नहीं आएगी, उसी तरह अपने पेशे का पहला क़दम उठाते वक़्त ऐसी वेश्याओं को भी हिजाब महसूस नहीं होगा। आहिस्ता-आहिस्ता हया और झिझक से मुताल्लिक़ा क़रीब-क़रीब तमाम जज़्बात उनमें घिस-घिसाकर मिट जाते हैं। चकले के अंदर जहाँ शहवतपरस्त[27] मर्दों के लिए उन औरतों के मकान खुले रहते हैं, लतीफ़ जज़्बात कैसे दाख़िल हो सकते हैं—जिस तरह बाइस्मत औरतें वेश्याओं की तरफ हैरत और ताज्जुब से देखती हैं, ठीक उसी तरह वह भी उनकी तरफ़ उसी नजर से देखती हैं। अव्वल-उज़्ज़िक्र[28] करके पेश नज़रिया इस्तिफ़हाम[29] होता है: "क्या औरत इस क़दर ज़लील हो सकती है?" मोख़िर-उज़्ज़िक्र[30] यह सोचती हैं : "यह पाकबाज औरतें कैसी हैं · क्या हैं?"

वेश्या, जिसकी माँ वेश्या थी, जिसकी दादी वेश्या थी, जिसकी परदादी वेश्या थी, जिसने वेश्या का दूध पिया, जो इस्मत फ़रोशी के गहवारे[31] में पली, वहीं बडी हुई, जिसकी तिजारत का आग़ाज़ भी वहीं शुरू हुआ, इस्मत और बाइस्मत औरतों के मताल्लिक क्या समझ सकती हैं?

उन सौ लड़कियों में से जो वेश्याओ के घर में पैदा होती हैं, शायद एक-दो के दिल मे अपने गिर्दो-पेश के माहौल से नफ़रत पैदा होती है और वह अपने जिस्म को सिर्फ एक मर्द के हवाले करने का तहैया[32] करती है लेकिन बाकी सब उसी रास्ते पर चलती हैं जो उनकी माँओं ने उनके लिए मुंतख़ब किया होता है।

जिस तरह एक दूकानदार का बेटा अपनी नई दूकान खोलने का शौक़ रखता है और इस शौक़ का इज़हार मुख़्तलिफ़ तरीकों से करता है, ठीक इसी तरह वेश्याओ की जवान लड़कियाँ अपना पेशा शुरू करने का बड़ा चाव रखती हैं। चुनांचे देखा गया है कि ऐसी लड़कियाँ नित नए तरीक़ों से अपने जिस्म और हुस्न की नुमाइश करती हैं। जब वह अपनी तिजारत का आग़ाज़[33] करती हैं तो बाक़ाइदा रसूम अदा की जाती है। एक ख़ास एहतिमाम के मातहत यह सबकुछ किया जाता है, बिलकुल उसी तरह, जिस तरह दूसरे तिजारती कामों की बुनियाद रखते वक़्त ख़ास रसूम को पेशे-नज़र रखा जाता है।

इन हालात के तहत, जैसा कि ज़ाहिर है, मुतज़क्किरा[35] सदर क़िस्म की वेश्याओं के दिल में इश्क़ पैदा होना मुश्किल है। यहाँ इश्क़ से हमारी मुराद वही इश्क़ है जो हमारे यहाँ अर्सा-ए-दराज मे राइज[34] है। हीर-राँझा और सस्सी-पुन्नोवाल इश्क़! ऐसी वेश्याएँ इश्क़ करती हैं मगर उनका इश्क़ जुदा क़िस्म का होता है। वह लैला-मजनूँ और हीर-राँझेवाला

इश्क़ नहीं कर सकतीं, इसलिए कि यह उनकी तिजारत पर बहुत असर डालता है। अगर कोई वेश्या अपने औक़ाते-तिजारत में से चंद लम्हात ऐसे मर्द के लिए वक़्फ़ कर दे जिससे उसे रुपए-पैसे का लालच न हो तो हम इसे इश्क़ो-मुहब्बत कहेंगे। उसूलन वेश्या को सिर्फ़ मर्द की दौलत से मुहब्बत होती है। अगर वह किसी मर्द से उसकी दौलत की ख़ातिर नहीं बल्कि सिर्फ़ उसकी ख़ातिर मिले तो यह उसूल टूट जाएगा और उसके साथ ही यह भी ज़ाहिर हो जाएगा कि उस वेश्या की जेब नहीं बल्कि उसका दिल कारफ़रमा है। जब दिल कारफ़रमा[35] हो तो इश्क़ो-मुहब्बत के जज़्बे का पैदा होना लाज़िमी है—चूँकि आमतौर पर औरत से इश्क़ो-मुहब्बत करने का वाहिद मक़सद जिस्मानी लज़्ज़त होता है, इसलिए हम यहाँ जिस्मानी लज़्ज़तों ही को इश्क़ के इस जज़्बे का मुहर्रिक समझेंगे, गो उसके अलावा और बहुत-सी चीज़ें भी इसकी तख़लीक़ो-तौलीद[36] की मुहीज[37] होती हैं। मिसाल के तौर पर वेश्या जो अपने कोठे पर हर मर्द पर हुक्म चलाने की आदी होती है, ग़ैर मुख़्ततम[38] नाज़बरदारियों[39] से सख़्त तंग आ जाती है, उसको आक़ा बनना पसंद है मगर कभी-कभी वह ग़ुलाम बनना भी चाहती है, हर फ़र्माइश पूरी हो जाने में उसको बहुत फ़ाइदा है मगर इनकार में और ही लज़्ज़त है। वह हर तरफ़ से दौलत समेटती है। यह काम उसका म।भूल बन जाता है। इसलिए कभी-कभी उसके दिल में यह ख़्वाहिश पैदा होती है कि वह भी किसी के लिए कुछ ख़र्च करे। अगर सब उसकी ख़ुशामद करते हैं तो वह भी किसी की ख़ुशामद करे। अगर वह ज़िद करती है तो कोई उससे भी ज़िद करे। वह सबको धुत्कारती है तो कोई उसे भी धुत्कारे, सताए, मारे, पीटे। यह तमाम चीज़ें मिलकर उसके दिल में एक ख़ास मर्द को अपना रफ़ीक़ बनाने पर मजबूर करती हैं। चुनांचे वह इंतिख़ाब[40] करती है।

इंतिख़ाब का यह वक़्त बहुत नाज़ुक होता है। बहुत मुमकिन है, वह किसी रईसज़ादे पर अपने दिल के ख़ास दरवाज़े खोल दे और यह भी मुमकिन है कि वह अपने कोठे पर चिलमें भरनेवाले चरसनोश मीरासी के ग़लीज़ क़दमों में अपना वह सिर रख दे जिसके बालों को चूमने के लिए बड़े-बड़े राजाओं और महाराजों ने कई-कई हज़ार तिलाई अशरफ़ियाँ पानी की तरह बहा दी हों, और फिर उस पर भी कोई ताज्जुब न होना चाहिए कि वह ग़लीज़ आदमी उसी सिर को ठोकर मारकर परे हटा दे—इस क़िस्म के वाक़िआत देखने और सुनने में आ चुके हैं।

हमारे यहाँ एक मशहूर तवाइफ़ इस वक़्त भी मौजूद है जिसके इश्क़ में एक नवाब मुद्दतों लट्टू बना रहा मगर वह निहायत ही मामूली आदमी के इश्क़ मे गिरफ़्तार रही। तवाइफ़ नवाब के इश्क़ का मज़हका उड़ाती थी और उधर उसके अपने इश्क़ का मज़हका उड़ाया जाता था। नवाब तवाइफ़ के इश्क़ में रुसवा हुआ और तवाइफ़ इस मामूली आदमी के इश्क़ में बदनाम हुई।

आम औरतों के मुक़ाबले में इन वेश्याओं के इश्क़ की शिद्दत[41] बहुत ज़्यादा होती है, इसलिए कि यह मर्दों के साथ मिलने-जुलने से नित नए आशिक़ाना जज़्बात से मुतार्रिफ़[42] होती रहती हैं। जब यह ख़ुद इसमें गिरफ़्तार होती हैं तो उनको जलन ज़्यादा महसूस होती

है—ऐसे बाज़ारों में जहाँ यह औरतें रहती हैं, मुतजक्किरा सदर क़िस्म की कई कहानियाँ आपके सुनने में आ सकती है; खासकर उन तईशपसद अमीरों को जिनकी थैलियों के मुँह उन जिस्मफ़रोश औरतों के कोठों पर खुलते हैं, ऐसी कहानियाँ अज़बर[43] याद हैं। यह कहानियाँ वह अक्सर मज़े ले-लेकर दूसरों को सुनाने के आदी हैं। इसी तरह सारंगिए, मीरासी, तबलची और वह लोग जिनकी आमदोरफ़्त ऐसे कोठों पर आम रहती है, भी आपको बहुत दिलचस्प क़िस्से सुनाएँगे।

इन्हीं लोगों से सुने-सुनाए क़िस्सों में हम एक ऐसी वेश्या की कहानी मिसाल के तौर पर पेश कर सकते हैं जो हज़ारों और लाखों में खेलती थी मगर उसका दिल एक चीथड़े लटकाए मज़दूर के खुरदुरे पैरों के तले हर रोज़ रौंदा जाता था। वह हर शब अपने दौलतमद परिस्तारों[44] से सीमोज़र[45] के अंबार जमा करती थी मगर एक मज़दूर के मैले-कुचैले सीने में धड़कते हुए दिल तक उसका हाथ नहीं पहुँच सकता था। कहते हैं कि यह नाज़ुक बदन उस मज़दूर की ख़ुशनूदी हासिल करने के लिए कई बार सड़क के पत्थरों पर सोई।

इस क़िस्म का तज़ादो-तख़ालुफ़[46] जो इश्क़ो-मुहब्बत का असली रंग है, क़हबाख़ानों में देखा जाए तो बहुत शोख़ और पुरइसरार हद तक रूमानी नज़र आता है। इसकी वजह सिर्फ़ अक़बी मंज़र है जो पेशमंज़र के हर नक़्श को उभारता है। चूँकि आमतौर पर वेश्या के बारे में यही ख़याल किया जाता है कि वह सोना खोदनेवाली कुदाल है और मुहब्बत के जज़्बात से क़तई तौर पर आरी है, इसलिए जब कभी किसी वेश्या के इश्क़ की ऐसी दास्तान सुनने में आती है तो बड़ी अजीबो-ग़रीब और पुरइसरार मालूम होती है। हम ऐसी दास्तानों को इसी वजह से आम औरतों और मर्दों के मआश्कों की बनिस्बत ज्यादा दिलचस्पी से सुनते हैं जैसे किसी माफ़ुकुलआदत[47] हादिसे की तफ़सील सुन रहे हों। हालाँकि दिल और उसकी धड़कनों से इस्मत फ़रोशी या इस्मतमआबी[48] का कोई ताल्लुक नहीं—एक बाइस्मत औरत के सीने में मुहब्बत से आरी दिल हो सकता है और इसके बरअक्स चकले की एक अदना तरीन वेश्या मुहब्बत से भरपूर दिल की मालिक हो सकती है।

हर औरत वेश्या नहीं होती लेकिन हर वेश्या औरत होती है। इस बात को हमेशा याद रखना चाहिए।

वेश्याओं के इश्क़ में एक ख़ास बात क़ाबिले-ज़िक्र है—उनका इश्क़ उनके रोज़मर्रा के मामूल पर बहुत कम असर डालता है। ऐसी तवाइफ़ें बहुत कम होंगी जिन्होंने इस जज़्बे की ख़ातिर अपना कारोबार क़तई तौर पर बंद कर दिया हो (किसी शरीफ़ लड़की के इश्क में गिरफ़्तार होकर शहर का शरीफ़ दूकानदार भी अपनी दूकान बंद नहीं करेगा।) आम तौर पर यही देखने में आया है कि वह अपने इश्क़ के साथ-साथ अपना कारोबार भी जारी रखती हैं। दरअसल माल्लो-दौलत हासिल करने की एक ताजिराना[49] तलब उनमें पैदा हो जाती है। नित नए गाहक बनाना और हर रोज़ अपना माल बेचना एक आदत-सी बन जाती है और यही आदत बाद में तबीयत की शक्ल इख़्तियार कर लेती है, इस तौर पर कि फिर इस

आदत या तबीयत का ज़िंदगी के दूसरे शौबों[50] से कोई सरोकार नहीं रहता। जिस तरह घर के नौकर झटपट अपने आकाओं के बिस्तर लगाकर अपने आराम का ख़याल करते हैं, ठीक इसी तरह यह औरतें भी अपने गाहकों को निबटाकर अपनी ख़ुशी और राहत की तरफ़ पलट आती हैं।

दिल ऐसी शै नहीं जो बाँटी जा सके। मर्द के मुक़ाबले में औरत कम हरजाई होती है। चूँकि वेश्या औरत है, इसलिए वह अपना दिल तमाम गाहकों में तक़सीम नहीं कर सकती। औरत के मुताल्लिक़ मशहूर है कि वह अपनी ज़िंदगी में सिर्फ़ एक मर्द से मुहब्बत करती है। हम समझते हैं कि यह बहुत हद तक ठीक है। वेश्या सिर्फ उसी मर्द पर अपने दिल के तमाम दरवाजे खोलती है जिससे उसे मुहब्बत हो। हर आने-जानेवाले मर्द के लिए वह ऐसा नहीं कर सकती।

वेश्याओं के बारे में आमतौर पर यह शिकायत सुनने में आती हैं कि वह बडी बेरहम और जल्लाद सिफ़त होती है। मुमकिन है, सौ में से पाँच-छः इस नौइयत की हों मगर सबकी-सब ऐसी नहीं होतीं बल्कि यूँ कहिए कि हो नहीं सकतीं। वेश्या और बाइस्मत औरत का मकाबला हरगिज़-हरगिज नहीं करना चाहिए। इन दोनों का मुक़ाबला हो ही नहीं सकता। वेश्या ख़ुद कमाती है और बाइस्मत औरत के पास कमाकर लानेवाले कई मौजूद होते हैं।

हमारे कानों में एक वेश्या के यह लफ़्ज अभी तक गूँज रहे हैं जो उसके दिल की तमाम गहराइयाँ पेश करते हैं। आप भी सुनिए : "वेश्या एक बेकस और बेयारो-मददगार औरत है। उसके पास हर रोज़ सैकडो मर्द आते हैं एक ही ख्वाहिश लेकर वह अपने चाहनेवालों के हुजूम में भी अकेली रहती है, बिलकुल तने-तन्हा वह रात के अँधेरे में चलनेवाली रेलगाडी है जो मुसाफ़िरों को अपने-अपने ठिकाने पर पहुँचाकर एक आहनी छत के नीचे खाली खडी रहती है। बिलकुल खाली, धुएँ और गर्दो-गुबार से अटी हुई लोग हमें बुरा कहते हैं, मालूम नहीं क्यों वही मर्द जो रात की तारीकी में हमसे राहत मोल लेकर जाते हैं, दिन के उजाले में हमें नफ़रतो-हिकारत से देखते हैं हम खुले बंदों अपना जिस्म बेचती हैं और उसको राज बनाकर नहीं रखतीं मर्द हमारे पास यह जिन्स खरीदने के लिए आते हैं और इस सौदे को राज़ बनाकर रखते हैं। समझ में नहीं आता क्यों ?"

ज़रा उस वेश्या का तसव्वुर कीजिए जिसका इस दुनिया में कोई भी न हो। न भाई, न बहन, न माँ, न बाप और न कोई दोस्त। अपने गाहकों से फ़रागत पाकर जब वह कमरे में अकेली, बिलकुल अकेली रह जाती होगी तो उसके दिलो-दिमाग़ की क्या कैफ़ियत होती होगी ? यह तारीकी उस अँधेरे में और कितनी तारीक हो जाती होगी ? अगर सारा दिन टोकरी ढोने के बाद मज़दूर को अपनी थकान दूर करने का ज़रिया नज़र न आए, अपनी दिलबस्तगी के लिए बीवी की बातें उसे नसीब न हों न उसकी माँ हो जो उसके थके हुए कांधे पर हाथ रखकर उसकी तमाम कुलफ़तें[51] दूर कर दे, तो बताइए उस मजदूर की क्या हालत होगी—उस मज़दूर और उस वेश्या, दोनों की हालत एक-जैसी है।

वेश्या एक रंगीन शै नज़र आती है क्यों ?

इस सवाल के जवाब के लिए हमें अपना दिल टटोलना पड़ेगा। यह कमज़ोरी हम मर्दों की निगाहों की है और इस कमज़ोरी के असबाब तलाश करने के लिए हमें अपने आप ही से बातचीत करना पड़ेगी। इस बारे में ग़ौरो-फ़िक्र के बाद हम जो मालूम कर सके हैं, यह है : वेश्या का नाम लेते वक़्त हमारे दिमाग़ में एक ऐसी औरत का तसव्वुर पैदा होता है जो मर्द की शहवानी ख़्वाहिशात उसकी मर्ज़ी और ज़रूरत के मुताबिक़ पूरी कर सकती है। गौ औरत और वेश्यापन, दो बिलकुल जुदा चीज़ें हैं मगर जब हम किसी वेश्या के बारे में कुछ सोचते हैं तो उस वक़्त औरत मय अपने पेशे के सामने आ जाती है। इसमें कोई शक नहीं कि इंसान पर उसके माहौल और उसके पेशे का बहुत असर पड़ता है मगर कोई वक़्त ऐसा भी होता है जब वह इन तमाम चीज़ों से अलग हटकर सिर्फ़ इंसान होता है। इसी तरह कोई ऐसा वक़्त भी ज़रूर आता होगा जब वेश्या अपने पेशे का लिबास उतारकर सिर्फ़ औरत रह जाती होगी। मगर अफ़सोस है कि हम हर वक़्त औरत और वेश्या को एक ही जगह देखने के आदी हैं—जब वेश्या को हम इस ऐनक से देखें तो हमें इसके साथ वह चीज़ भी नज़र आती है जिसे हम मर्द ऐशो-इशरत से ताबीर करते हैं—और ऐशो-इशरत का मतलब आमतौर पर जिस्मानी लज़्ज़त होता है।

जिस्मानी लज़्ज़त क्या है ? एक वक़्ती हिज़ जो हमें अपनी बीवी या किसी और औरत की मदद से हासिल हो सकता है। अब यहाँ सवाल पैदा होता है कि शादीशुदा मर्द अपनी बीवियाँ छोड़कर इस वक़्ती लज़्ज़त के लिए बाज़ारी औरतों के पास क्यों जाते हैं ? जब उन लोगों की जिस्मानी ख़्वाहिशात घर में पूरी हो सकती हैं तो वह उसके लिए बाहर क्यों मारे-मारे फिरते हैं—इस सवाल का जवाब मुश्किल नहीं। आपको ऐसे कई मर्द नज़र आएँगे जो घर के मुरग़्ग़न[52] और लज़ीज़ खाने छोड़कर होटलों में जाते हैं। इसकी वजह सिर्फ़ यह है कि उनको होटलों के खाने की चाट पड़ जाती है। होटल की चीज़ों में गिज़ाइयत[53] कम होती है मगर उनमें एक और शै होती है जो इन लोगों को अपनी तरफ़ मुतवज्जेह करती है। इसे हम 'होटलियत' कहते हैं। एक ऐसी बुराई जो वस्फ़ बन जाती है बल्कि यूँ कहिए कि एक कशिश बन जाती है। इसमें होटल के मालिकों के फ़न का भी दख़ल होता है—इसके अलावा जो माहौल होटल में मयस्सर आ सकता है, वह उन्हें अपने घर में नसीब नहीं हो सकता। इंसान तबअन तनू पसंद है, इसलिए जब वह अपने रोज़मर्रा के प्रोग्राम मे तब्दीली चाहे तो ताज्जुब न होना चाहिए। इसमें कोई शक नही कि होटलों में इन लोगों को अच्छा खाना नहीं मिल सकता और इसमें किसी शक की गुंजाइश नहीं कि यहाँ घर की बनिस्बत ज़्यादा ख़र्च बर्दाश्त करना पड़ता है मगर यही चीज़ तो यह लोग चाहते हैं। यही फ़र्क़ तो इन्हें घर मे खींचकर होटलों मे लाता है। यह नादानी है मगर लुत्फ़ की बात यह है कि इन्हें इसी नादानी में मज़ा आता है।

उन शादीशुदा मर्दों का भी यही हाल है जो अपनी बीवियाँ छोड़कर बाज़ारी औरतों की आग़ोश में लज़्ज़त तलाश करने आते हैं। अब आप पूछेंगे कि आया उन लोगों को इस तलाश में कामयाबी होती है ? हम कहेंगे, यक़ीनन—जिन औरतों के पास यह लोग जाते हैं, वह इस फ़न की माहिर होती हैं। वह यही चीज़ तो बेचती हैं। उनका पेशा ही यह है कि

घरेलू औरतों से बिलकुल मुख़्तलिफ़ रंग की लज़्ज़त पेश करें। अगर वह ऐसा न करे तो उनका कारोबार कैसे चले?

जैसा कि हम इस मकाले[54] के आगाज़ में कह चुके हैं, इस्मत फ़रोशी ख़िलाफ़े-अक़्ल चीज़ नहीं

1 वेश्यावृत्ति, 2 जीविका, 3 मोती, 4 अफसोस की बात, 5 कामुक, विषय-लोलुप; 6. एक प्रकार की अँगीठी, 7 पूर्ति, 8 कृत्रिम, 9 सजावट, 10 निश्चित करना, 11. चाहे; 12. बदसूरत, कुरूप, 13 दुर्गंध, 14 नृशंसतापूर्ण जमाना, 15 अनुभव, 16. धर्मभीरु, 17 ईश्वर के समक्ष अपनी असमर्थता प्रकट करना, 18. पहली नजर, 19 मादक द्रव्य, 20 नई बनी हुई, 21 वर्णित; 22 किस्मे; 23 तत्त्व, 24 कज़री, 25 प्रसंग, 26 इंकार करनेवाला, 27 विषय-लोलुप, 28. प्रथम वर्णित; 29. किसी चीज को समझने की इच्छा रखना, 30 अंत में वर्णित, 31. बच्चो को झुलाने का पालना; 32. संकल्प, 33 आरंभ, 34 प्रचलित, 35 कार्यरत; 36 पैदाइशः, 37 बढ़ानेवाली, वर्धक; 38 समाप्त न होनेवाली, निरंतर, 39. नाज-नखरे; 40 चयन, 41. तीव्रता, 42 परिचित; 43. कंठस्थ; 44 प्रशंसको, 45 धन-दौलत, 46. विरोधाभास, 47. स्वभाव के अनुकूल, 48 सतीत्व की रक्षा; 49. व्यापारिक, 50 विभागो, 51 कष्टों; 52 बलिष्ठ; 53 पौष्टिक, 54 निबंध।

लरज़ता है मिरा दिल ज़हमते-मह्रे-दरख़्शाँ पर
मैं हूँ वो क़तरा-ए-शबनम जो हो ख़ारे-बियाबाँ पर

— ग़ालिब

ज़हमते-मह्रे-दरख़्शाँ

ज़हमते-महरे-दरख़्शाँ
हाईकोर्ट जजमेंट
पसमजर

बंबई छोड़कर कराची से होता हुआ ग़ालिबन सात या आठ जनवरी, 1948 ई. को यहाँ लाहौर पहुँचा। तीन महीने मेरे दिमाग़ की अजीबो-ग़रीब हालत रही। समझ में नहीं आता था कि मैं कहाँ हूँ। बंबई में हूँ, कराची में अपने दोस्त हसन अब्बास के घर बैठा हूँ या लाहौर में हूँ जहाँ कई रेस्तोरानों में क़ाइदे-आज़म फ़ंड जमा करने के सिलसिले में रक़्सो-सरूद[1] की महफ़िलें अक्सर जमती हैं।

तीन महीने तक मेरा दिमाग़ कोई फैसला न कर सका। ऐसा मालूम होता था कि पर्दे पर एक साथ कई फ़िल्म चल रहे हैं, आपस में गडमड, कभी बंबई के बाज़ार और उसकी गलियाँ, कभी कराची की छोटी-छोटी तेज़ रफ्तार ट्रामें और गधा-गाड़ियाँ और कभी लाहौर के पुरशोर रेस्तोराँ—समझ में नहीं आता था, मैं कहाँ हूँ। सारा दिन कुर्सी पर बैठा ख़यालात में खोया रहता।

आख़िर एक दिन चौंका क्योंकि जो रुपया बंबई से अपने साथ लाया था, कुछ तो घर में और कुछ घर से दूर क्लिफ़टन बार में जज़्ब हो चुका था—अब मुझे क़तई तौर पर मालूम हो गया कि मैं लाहौर में हूँ जहाँ कभी-कभी मैं अपने मुक़दमों के सिलसिले में आया करता था और करनाल शॉप से बहुत से ख़ूबसूरत चप्पल ख़रीदकर अपने साथ ले जाया करता था।

मैंने सोचना शुरू किया कि अब क्या काम किया जाए। इस्तिफ़सार[2] करने पर मालूम हुआ कि तक़सीम के बाद फ़िल्मी कारोबार क़रीब-क़रीब मफ़्लूज हो चुका है। जिन फ़िल्म कंपनियों के बोर्ड नज़र आते हैं, वे उन बोर्डों ही तक महदूद हैं—बहुत तश्वीश[3] हुई। एलाटमैंटों का बाज़ार गर्म था। मुहाजिर[4] और ग़ैर-मुहाजिर धड़ाधड़ अपने असर और रुसूख़ से कारखाने और दूकानें एलाट करा रहे थे। मुझे मश्विरा दिया गया मगर मैंने उस लूट-खसूट में हिस्सा न लिया।

उन्हीं दिनों पता चला कि फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ और चराग़ हसन हसरत मिलकर एक रोज़नामा जदीद ख़तूत पर शाया करने का इरादा कर रहे हैं। मैं उन हज़रात से मिला। अख़बार का नाम 'इमरोज़' था जो आज हर एक की ज़ुबान पर है। पहली मुलाक़ात पर अख़बार की डमी तैयार की जा रही थी, दूसरी मुलाक़ात हुई तो 'इमरोज़' के ग़ालिबन चार पर्चे निकल चुके थे। अख़बार का गेटअप देखकर जी बहुत ख़ुश हुआ। तबीयत में उकसाहट पैदा हुई कि लिखूँ लेकिन जब लिखने बैठा तो दिमाग़ को मुंतशिर[5] पाया। कोशिश के बावुजूद हिंदुस्तान को पाकिस्तान से और पाकिस्तान को हिंदुस्तान से अलहदा

न कर सका। बार-बार दिमाग़ में यह उलझन पैदा करनेवाला सवाल गूँजता : क्या पाकिस्तान का अदब अलहदा होगा ? अगर होगा तो कैसे होगा ? वो सबकुछ जो सालिम हिंदुस्तान में लिखा गया है उसका मालिक कौन है ? क्या उसको भी तकसीम किया जाएगा ? क्या हिंदुस्तानियो और पाकिस्तानियों के बुनियादी मसाइल एक-जैसे नहीं ? क्या उधर उर्दू बिलकुल नापैद हो जाएगी ? यहाँ पाकिस्तान मे उर्दू क्या शक्ल इख़्तियार करेगी ? क्या हमारी स्टेट मज़हबी स्टेट है ? स्टेट के तो हम हर हालत में वफ़ादार रहेंगे मगर क्या हमें हुकूमत पर नुक़्ताचीनी की इजाज़त होगी ? आज़ाद होकर क्या यहाँ के हालात फ़िरंगी अहदे-हुकूमत के हालात से मुख़्तलिफ़ होगे ?

गिर्दोपेश जिधर भी नज़र डालता था, इंतिशार[6]-ही-इंतिशार दिखाई देता था। कुछ लोग बेहद ख़ुश थे क्योकि उनके पास एकदम दौलत आ गई थी लेकिन उस ख़ुशी में भी इंतिशार था जैसे वह बिखरकर एक दिन हवा हो जानेवाली है। अक्सर मग़मूमो-मुतफ़िकर[7] थे क्योंकि वो लुट-पिटकर आए थे—मुहाजिरो के कैंप देखे। यहाँ ख़ुद इंतिशार के रोंगटे खड़े देखे। किसी ने कहा, अब तो हालात बहुत बेहतर हैं। कुछ अरसा पहले की हालत दीदनी[8] थी। मैं सोचने लगा अगर ये हालात की बेहतरी है तो अबतरी मालूम नहीं कैसी होगी। गर्ज़ कि अजीब इफ़्रातो-तफ़्रीत[9] का आलम था। एक का क़हक़हा दूसरे की आह से दस्तो-गिरीबाँ था। एक की जिंदगी दूसरे के आलमे-नजा[10] से मसरूफ़े-पैकार[11] थी। दो धारे बह रहे थे। एक धारा जिंदगी का, एक मौत का। इनके दरमियान ख़ुश्की थी जिस पर गुरस्नगी-ओ-तश्नगी[12], शिकमसेरी-ओ-बलानोशी[13] साथ-साथ चलती थीं—फ़ज़ा पर मुर्दनी तारी थी, जिस तरह गर्मियो के आग़ाज़ में आसमान पर बेमक़सद उड़ती हुई चीलो की चीख़ें उदास होती हैं, इसी तरह 'पाकिस्तान : जिंदाबाद' और 'क़ाइदे-आज़म : ज़िंदाबाद' के नारे भी कानों को उदास-उदास लगते थे। रेडियो की लहरें इक़बाल मरहूम का यकआहंग कलाम दिन-रात अपने काँधों पर उठा उठाकर थक और उकता गई थीं। फ़ीचर प्रोग्राम कुछ इस तरह के होते थे कि मुर्ग़ियाँ किस तरह पाली जाती हैं, जूते कैसे बनाए जाते हैं, फ़ने-दबाग़त[14] क्या है, रिफ़्यूजी कैंपो मे कितने आदमी आए और कितने गए—क़रीब-क़रीब तमाम दरख़्त नंगे-बुच्चे थे। सर्दियों मे बचने के लिए ग़रीब मुहाजिरीन ने उनकी छाल उतारकर अपनी खाल गर्म की थी, टहनियाँ काटकर पेट की आग ठंडी की थी। उन नंगे-बुच्चे दरख़्तो मे फ़ज़ा और भी दिलशिकन हद तक उदास हो गई थी। बिल्डिगों की तरफ़ देखता था तो ऐसा महसूस होता था, सोग में हैं। उनके मकीं भी मातमज़दा थे। बज़ाहिर हँसते थे, खेलते थे, कोई काम मिल जाता था तो वह भी करते थे मगर गोया ये सबकुछ ख़ला में हो रहा था, एक ऐसे ख़ला में जो लबालब होने पर भी ख़ाली था।

मैं अपने अज़ीज़ दोस्त अहमद नदीम क़ासमी से मिला, साहिर लुधियानवी से मिला। इनके अलावा और लोगों से भी मिला। सब मेरी तरह ज़ेहनी तौर पर मफ़्लूज थे। मैं यह महसूस कर रहा था कि ये जो इतना ज़बरदस्त भूचाल आया है, शायद इसके कुछ झटके आतिशफ़िशाँ[15] पहाड़ में अटके हुए हैं, बाहर निकल आएँ तो फ़जा की नोक-पलक दुरुस्त

होगी और फिर सही तौर पर मालूम हो सकेगा कि सूरते-हालात क्या है ?

सोच-सोचकर मैं आजिज़ आ गया था, चुनांचे आवारागर्दी शुरू कर दी। बेमतलब सारा दिन घूमता रहता। ख़ुद खामोश रहता लेकिन दूसरों की सुनता रहता—बेहंगम बातें, बेजोड़ दलीलें, ख़ाम सियासी मुबाहिसे[16]—इस आवारागर्दी से यह फ़ायदा हुआ कि मेरे दिमाग़ में जो गर्दो-ग़ुबार उड़ रहा था आहिस्ता-आहिस्ता बैठ गया और मैंने सोचा कि हल्के-फुल्के मज़ामीन लिखना चाहिएँ, चुनांचे मैंने 'नाक की क़िस्में' और 'दीवारों पर लिखना' जैसे फ़काहिया[17] मज़ामीन 'इमरोज' के लिए लिखे जो पसंद किए गए। आहिस्ता-आहिस्ता मिज़ाह अपने आप तंज़िया रंग इख़्तियार कर गया। यह तब्दीली मुझे बिलकुल महसूस न हुई। मैं लिखता गया और मेरे क़लम से 'सवाल पैदा होता है' और 'सवेरे जो कल आँख मेरी खुली' जैसे तेज़ और तुंद मज़मून निकल गए। जब मुझे इस अम्र का एहसास हुआ कि मेरे क़लम ने गिर्दोपेश छाई हुई धुंध में टटोल-टटोलकर एक रास्ता तलाश कर लिया है तो मुझे ख़ुशी हुई। दिमाग़ का बोझ भी किसी क़दर हल्का हो गया। मैंने ज़ोर-शोर से लिखना शुरू कर दिया—मजामीन का यह मजमूआ बाद में 'तल्ख़, तुर्श और शीरीं' के उनवान से शाया हुआ।

तबीयत अफ़साने की तरफ़ माइल नहीं होती थी—इस सन्फ़े-अदब[18] को मैं बहुत संगीन समझता हूँ—इसलिए अफ़साना लिखने से गुरेज़ करता था। उन्हीं दिनों मेरे अज़ीज दोस्त अहमद नदीम क़ासमी जो ग़ालिबन ऊटपटाँग चीजें लिख-लिखकर तंग आ गए थे, रेडियो पाकिस्तान, पेशावर से अलहदा होकर लाहौर चले आए और उन्होंने 'इदारा-ए-फ़रोग़े-उर्दू' के इश्तिराक[19] से एक माहनामा पर्चा 'नक़ूश' जारी किया। उनके इसरार के बावजूद मैं 'नक़ूश' के पहले चंद पर्चों के लिए कोई कहानी न लिख सका। जब वह नाराज़ हो गए तो मैंने पाकिस्तान में अपना पहला अफ़साना 'ठंडा गोश्त' लिखा।

क़ासमी साहिब ने यह अफ़साना मेरे सामने पढ़ा। वह ख़ामोश पढ़ते रहे मगर मुझे उनका रद्दे-अमल मालूम न हो सका। अफ़साना ख़त्म करने के बाद उन्होंने मुझसे माजरत[20] भरे लहजे में कहा : "मंटो साहिब, माफ़ कीजिएगा, अफ़साना बहुत अच्छा है लेकिन 'नक़ूश' के लिए बहुत गर्म है"

क़ासमी साहिब से कभी बहस नहीं हुई थी, इसलिए मैंने ख़ामोशी से अफ़साना वापस ले लिया और उनसे कहा : "बहुत बेहतर, तो मैं आपके लिए दूसरा अफ़साना लिख दूँगा। आप कल शाम तशरीफ़ ले आइएगा।"

क़ासमी साहिब जब दूसरे रोज़ शाम को तशरीफ़ लाए तो मैं अपने दूसरे अफ़साने 'खोल दो' की इख़्तितामी[21] सुतूर लिख रहा था। मैंने क़ासमी साहिब से कहा : "चंद मिनट आप बैठिए, मैं अफसाना मुकम्मल करके आपको देता हूँ।"

इस अफ़साने की इख़्तितामी सुतूर चूँकि बहुत ही अहम थीं, इसलिए क़ासमी साहिब को काफी देर इंतज़ार करना पडा। जब अफ़साना मुकम्मल हो गया तो मैंने मुसव्विदा[22] उनके हवाले कर दिया : "पढ़ लीजिए, ख़ुदा करे आपको पसंद आ जाए।"

क़ासमी साहिब ने अफसाना पढ़ना शुरू किया। इख़्तितामी सुतूर पर पहुँचे तो मैंने नोट

किया जैसे किसी ने उनको झंझोड़ दिया है—अफ़साना ख़त्म करने के बाद वह कुछ न बोले। मैंने उनसे पूछा : "कैसा है?"

क़ासमी साहिब पर अफ़साने का असर अभी तक ग़ालिब था। उन्होंने मुख़्तसरन कहा : "अच्छा है ...मैं लिए जाता हूँ" और आप रुख़्सत लेकर चले गए।

'खोल दो' क़ासमी साहिब के पर्चे 'नक़ूश-3' में शाया हुआ। काईरीन ने पसंद किया। हर एक का रद्दे-अमल यकसाँ था। आख़िरी सुतूर सबको झंझोड़कर रख देती थीं लेकिन एकदम हम सबको झंझोड़कर रख देनेवाला हादिसा वक़ू पज़ीर हुआ। हुकूमत को यह अफ़साना अम्ने-आमा[23] के मफ़ाद[24] के मनाफ़ी नज़र आया। चुनांचे हुक्म हुआ : 'नक़ूश' की इशाअत छः महीने तक बंद रहे—अख़बारों में हुकूमत के इस इक़दाम[25] के ख़िलाफ़ एहतिजाजन[26] बहुतकुछ लिखा गया मगर इम्तिनाई[27] हुक्म अपनी जगह पर क़ायम रहा।

मैंने एक रोज़ क़ासमी साहिब से मुसकराकर कहा : "अगर आप 'ठंडा गोश्त' शाया करते तो शायद ये बिजली आपके आशियाने पर न गिरती।"

काफ़ी दिन गुज़रने पर 'अदबे-लतीफ़' के नाइब मुदीर मेरे पास आए और 'ठंडा गोश्त' ले गए—अफसाने की किताबत हो गई, कापियाँ जम गईं, प्रूफ़ निकल गए, ग़लतियाँ दुरुस्त करके जब वापस प्रेस में गईं तो किसी की नज़र 'ठंडा गोश्त' वाली कापी पर पड़ी। उसने अफ़साना पढ़ा तो छापने से इनकार कर दिया— क़हरे-दरवेश बर-जाने-दरवेश[28] इस अफ़साने के बग़ैर ही पर्चा शाया किया गया।

चौधरी बरकत अली साहिब कोयटा में थे। वापस आए तो उन्होंने 'अदबे-लतीफ़' के दूसरे शुमारे में 'ठंडा गोश्त' छपवाने की कोशिश की मगर नाकाम रहे—अफ़साने का मुसव्विदा मुझे वापस दे दिया गया।

इस दौरान में कराची से मुहतरमा मुम्ताज़ शीरीं के मुतअद्दिद[29] ख़त आ चुके थे कि मैं उनके 'नया दौर' के लिए कोई अफ़साना भेजूँ। मैंने उठाकर 'ठंडा गोश्त' उनको रवाना कर दिया। काफ़ी देर के बाद जवाब आया कि "हम देर तक सोचते रहे कि इसे शाया किया जाए या नहीं। अफ़साना बहुत अच्छा है। मुझे बहुत पसंद है लेकिन डर है कि हुकूमत के एहतिसाब[30] के शिकार न हो जाएं—" 'ठंडा गोश्त' यहाँ से भी ठंडा होकर वापस मेरे पास पहुँच गया। मैंने सोचा, अब इसे किसी रिसाले में नहीं छपवाना चाहिए।

छः महीने की इद्दत पूरी नही हुई थी कि हुकूमत ने 'नक़ूश' पर से 'न छापो' वाली क़ैद हटा दी। चुनांचे मैंने 'नया इदारा' के लिए एक मजमूआ मुरत्तब[31] किया जिसका उनवान मैंने 'नमरूद की ख़ुदाई' रखा। उसमें 'खोल दो' के साथ मैंने 'ठंडा गोश्त' भी शामिल कर दिया मगर क़ुदरत को कुछ और ही मंज़ूर था।

अज़ीज़ी आरिफ़ अब्दुल मतीन रिसाला 'जावेद' के एडिटर मुक़र्रर हुए तो मेरे पीछे पड़ गए कि मैं उनको 'ठंडा गोश्त' का मुसव्विदा इशाअत[32] के लिए दूँ। काफ़ी देर मैंने टालमटोल की मगर आख़िरकार उनके पैहम इसरार पर मैंने 'नया इदारा' के मालिक चौधरी नज़ीर अहमद साहिब को एक चिट लिख दी : ये 'जावेद' वाले अपना पर्चा ज़ब्त कराना चाहते हैं, बराहे-करम इनको 'ठंडा गोश्त' का मुसव्विदा दे दीजिए।

आरिफ साहिब अफ़साने का मुसव्विदा ले आए और उन्होंने उसे 'जावेद' के ख़ास नंबर मत्बूआ मार्च, 1949 ई. में शाया कर दिया।

पर्चा छपकर मार्किट में आ गया। अंदरूनी और बैरूनी एजेंसियों में भी तकसीम हो गया। यहाँ तक खैरियत रही। एक महीना गुज़र गया। मैं मुतमइन हो गया कि अब 'ठंडा गोश्त' पर कोई आफत नहीं आएगी मगर प्रेम ब्राच की बागें अभी तक चौधरी मुहम्मद हुसैन साहिब (अब मरहूम) के हाथ में थीं। गो जईफ़ी[33] के बायस उनके हाथ बहुत कमज़ोर हो चुके थे मगर उन्होंने ज़ोर का एक झटका दिया और पुलिस की मशीनरी हरकत में आ गई।

मैंने एक रोज़ उड़ती-उड़ती सुनी कि छापा पड़ा है और पुलिस 'जावेद' के खास नंबर के पर्चे उठाकर ले गई है। मैंने जान-पहचान के चंद लोगों से पूछा। किसी ने इस ख़बर की तस्दीक़ की, किसी ने कहा: "अजी हटाइए, ये जावेदवालों का पब्लिसिटी स्टंट है।" इस दौरान में 'जावेद' के मालिक नसीर अनवर का रुक्क़ा मिला।

> मंटो साहिब,
>
> एक ख़बर सुनिए: आज पुलिस ने दफ्तर 'जावेद' पर छापा मारा। तलाशी लेने पर बचे-खुचे चंद पर्चे अपने क़ब्जे में ले लिए। बाक़ी पर्चों की जाँच-पड़ताल हुई तो डिस्पैच रजिस्टर ने वाज़ेह कर दिया कि तमाम पर्चा हिंदो-पाक के मुख़्तलिफ स्टेशनों पर सप्लाई हो चुका है।
>
> रजिस्टर में से तमाम एजेंसियों के पते नोट कर लिए गए और आइंदा सप्लाई का हिसाब-किताब बंद कर दिया गया। यह कार्रवाई गिरफ़्तारी का पेशख़ेमा[34] है और मुझे यक़ीन है कि जल्द ही हम मुल्ज़िमों के कटहरे में होंगे—एक और बात काबिले-ज़िक्र है कि एक मुक़ामी इदारा इस छापे को इख़्तिरा[35] और प्रोपैगंडे से मन्सूब करता है। मुझे हैरत है कि ऐसा क्यों है? खैर, इसकी तस्दीक़ ख़ुद-ब-ख़ुद हो जाएगी। मुझे तो यह कहना है कि अब ज़रा वहीं चलिए जहाँ तीन बार सजा पाने पर आप बरी क़रार दिए गए थे। मेरा ख़्याल है कि यह बार आख़िरी बार होगी।

ख़बर की तस्दीक हो गई। मामला प्रेस एडवाइज़री बोर्ड के सामने पेश हुआ जिसके कन्वीनर कर्नल फ़ैज अहमद फ़ैज़, एडिटर 'पाकिस्तान टाइम्स' थे। उसमें 'जावेद' के मालिक नसीर अनवर भी मौजूद थे। उनकी ज़बानी उस मीटिंग की मुख़्तसर रूदाद[36] सुनिए:

> 'पाकिस्तान टाइम्स' के दफ़्तर में प्रेस एडवाइज़री बोर्ड की मीटिंग थी। फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ कन्वीनर थे। मीटिंग में एफ़.डब्ल्यू. बस्टन (सिविल मिलिट्री गजट), मौलाना अख़्तर अली (जमींदार), हमीद निज़ामी (नवाए-वक़्त),

विक़ार अंबालवी (सफ़ीना) और अमीन-उद्दीन सहराई (जदीद निज़ाम) शरीक थे। चौधरी मुहम्मद हुसैन ने 'जावेद' का ख़ास नंबर पेश किया। आपने सबसे पहले पर्चे के बाग़ियाना और इश्तिआलअंगेज़[37] मज़ामीन नज़्मो-नस्र[38] गिनवाए: 'ग़ुलामी से आज़ादी तक', 'रक़्से-बिस्मिल', 'सैलाबे-चीन' यह थीं नज़्में—मज़ामीन में से 'लौरेंग से फ़्लैटी तक', 'खेड़ा बहादुर की जय' और 'चीन कितनी दूर है' ज़ेरे-बहस लाए गए। फ़ैज हुकूमत के आइद कर्दा[39] इल्ज़ाम की तरदीद करते रहे। दीगर अराकीन[40] ने हाँ-में-हाँ मिलाई और यूँ यह सियासी इल्ज़ाम टल गया—लेकिन नज़ला 'ठंडा गोश्त' पर गिरा। फ़ैज़ साहिब ने जब उसे ग़ैर फहश क़रार दिया तो मौलाना अख़्तर अली गरज उठे: "नहीं-नहीं, अब ऐसा अदब पाकिस्तान में नहीं चलेगा। जनाब सहराई ने इस पर साद किया। विक़ार साहिब ने अफ़साने को मलऊन[41] और मतऊन[42] क़रार दिया। हमीद निज़ामी ने नवाए वक़्त का साथ दिया और जब एफ़.डब्ल्यू. बस्टन को चौधरी साहिब ने अंग्रेजी में 'ठंडा गोश्त' समझाया तो मुझे बेइख़्तियार हँसी आ गई। फ़र्माने लगे: "इस कहानी की थीम यह है कि हम मुसलमान इतने बेग़ैरत हैं कि सिक्खों ने हमारी मुर्दा लड़की तक नहीं छोड़ी " मुझे हँसी तो आ गई थी लेकिन जब चौधरी साहिब ग़लत तर्जुमानी पर मुसिर[43] रहे तो मुझे अफ़सोस हुआ। मैंने लाख समझाया, फ़ैज़ साहिब ने भी हर तरह से इत्मीनान दिलाया लेकिन फ़ैसला यह हुआ कि अब अदालत ही इसका फ़ैसला करे।

चुनांचे चंद दिन बाद मैं, नसीर अनवर और आरिफ़ अब्दुल मतीन गिरफ़्तार कर लिए गए। गिरफ़्तार करनेवाले सब-इंस्पेक्टर चौधरी ख़ुदाबख़्श थे। बेहद शरीफ़। कई दिन मेरे मकान के चक्कर काटते रहे। उन दिनों मैं अक्सर बाहर होता। आखिर एक रोज़ वह मुझसे मिलने में कामयाब हो गए। बड़े अख़लाक़ से पेश आए और कहा: "कल सुबह किसी दोस्त के साथ थाना सिविल लाइंस में तशरीफ़ ले आइएगा ताकि आपकी ज़मानत हो जाए।"—इससे पहले कई मर्तबा मुझे पुलिस के आदमियो से पाला पड़ चुका था। चौधरी ख़ुदाबख़्श साहिब का नर्म रवैया मुझ पर बहुत असरअंदाज़ हुआ।

दूसरे रोज़ सुबह को मैं थाने में हाज़िर हो गया—मेरे दोस्त शेख़ सलीम ने दस्तख़त किए और हम मुक़दमे के पहले मरहले से फ़ारिग़ हो गए।

आरिफ़ अब्दुल मतीन बहुत ही परेशान थे। उनका हलक़ ख़ुश्क हुआ जाता था। यह हैरत की बात है क्योंकि वह कम्युनिस्ट पार्टी के सरगर्म कारकुन हैं। अदालत से ख़ुदा मालूम क्यों इतने ख़ाइफ़[44] थे। बहरहाल समन जारी हुए। समाअत की तारीख़ मुक़र्रर हुई और हम तीनों ज़िला में हाज़िर हुए।

मेरे लिए यह जगह कोई नई जगह नहीं थी। अपने पिछले तीन मुक़दमों के सिलसिले में मैं यहाँ कई मर्तबा आ चुका था और धूल फाँक चुका था—नाम तो ज़िला कचहरी है लेकिन बेहद ग़लीज़ जगह है: मच्छर, मक्खियाँ, कीड़े-मकौड़े—हथकड़ियों और बेड़ियों की झनकारें—निहायत ही दक़ियानूस टाइपराइटरों की उकता देनेवाली टिपटिप—तीन टाँगों-वाली कुर्सियाँ जिनकी निशस्त का बेद ही ग़ायब है—दीवारों पर से पलस्तर उखड़ रहा है—बाग़ है जिसका लॉन इफ़लासज़दा[45] मैले-कुचैले कश्मीरी के सिर की तरह गंजा है—बुर्क़ापोश औरतें नंगे, गर्द से अटे हुए फ़र्श पर आलथी पालथी मारे बैठी हैं—कोई गंदी गालियाँ बक रहा है, कोई बिसूर रहा है—अंदर कमरों में मजिस्ट्रेट साहिबान निहायत ही वाहियात मेजों के पास बैठे मुक़दमों की समाअत फ़र्मा रहे हैं, पास यार-दोस्त बैठे हैं। दौराने-समाअत उनसे भी गुफ़्तगू जारी है

अल्फाज जिला कचहरी की सही तसवीर नहीं खेंच सकते—यहाँ की फ़ज़ा अलग, यहाँ का माहौल अलग, यहाँ की ज़बान अलग, यहाँ की इस्तिलाहात[46] अलग—अजीबो-ग़रीब जगह है यह, ख़ुदा इससे दूर ही रखे

आपको नक्ल लेनी हो तो दरख्वास्त के साथ 'पहिए' लगाने पड़ेंगे। कोई मिसल मुआइने के लिए निकलवानी हो तो भी 'पहिए' लगाने पडेंगे। किसी अफ़सर से मिलना हो तो भी 'पहिए' लगाने पड़ेंगे। अगर काम फ़ौरी कराना है तो पहियों की तादाद बढ़ जाएगी—गौर से देखने की ज़रूरत नहीं। अगर आपकी आँखें सिर्फ़ देख सकती हैं तो आपको ज़िला कचहरी में हर अर्जी पहियों पर चलती नजर आएगी। एक दफ़्तर से दूसरे दफ़्तर तक चार पहिए। दूसरे दफ़्तर से तीसरे दफ़्तर तक जाने के लिए आठ पहिए वक़्स अला हाज़ा[47]—अगर आप आदी मुजरिम नहीं तो आपके दिल में जबरदस्त ख़्वाहिश पैदा होगी कि कोई आपके पहिए लगा दे और धक्का दे दे ताकि आप जिला कचहरी से बाहर निकल जाएँ।

वकील का सवाल दरपेश था। अदालत में हाज़िर होने से पहले जनाब तसद्दुक हुसैन ख़ालिद से मुलाकात हुई। आपने कमाले-मेहरबानी से ख़ुद ही कहा कि वह हमारे मुक़दमे की पैरवी करने में मसर्रत महसूस करेंगे। चुनांचे उनको ही तकलीफ दी गई।

ख़ालिद साहिब आए। हम मुल्जिमीन मियाँ ए. एम. सईद, पी.सी.एस. मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल की अदालत में पेश हुए। मियाँ साहिब मौसूफ़ किसी ज़माने में कप्तानी के ओहदे पर फाइज़[48] थे मगर अब उनसे बंदूक़ लेकर अदूलो-इंसाफ़ की तराज़ू उनके हाथ मे दे दी गई थी; छोटी-छोटी तेज़ आँखें, छरहरा बदन, रंग साँवला—कुर्सी पर बड़ी तम्कनत[49] से बैठे थे। हम मुल्ज़िमीन सलाम करके कटहरे मे खडे हुए तो आप हमारी तरफ देखे बगैर मियाँ तसद्दुक हुसैन ख़ालिद की तरफ मुतवज्जेह हुए। एक बार फिर जमानतें हुई। उसके बाद दूसरी समाअत की तारीख़ मिल गई। हमने मियाँ सईद साहिब को सलाम किया और अदालत से बाहर निकल आए।

जून का महीना था। सबके हलक़ ख़ुश्क थे मगर आरिफ़ अब्दुल मतीन का हलक़ तो

बिलकुल ही लकड़ी हो रहा था—काश ! वहाँ कोई पार्टी मेंबर होता ।

हम दो-तीन पेशियाँ इसी तरह भुगते । मौसम ज़ालिमाना हद तक गर्म हो चुका था लेकिन क़हरे-दरवेश बर जाने-दरवेश 'आवाज़ पड़ने तक' अदालत के बाहर खड़े रहते—क्योंकि डर लगा रहता कि अगर हम इधर-उधर हो गए तो मजिस्ट्रेट साहब का क़हर नाज़िल हो जाएगा । शुरू ही से उनका रवैया बहुत सख़्त था । ऐसा महसूस होता था कि वह पहले ही से अपने दिल मे हमारे खिलाफ़ फ़ैसला मुरत्तब कर चुके हैं ।

मियाँ ख़ालिद ने मुझसे कहा : ''क्यों न हम इस अदालत से अपना मुक़दमा मुंतकिल करा लें । मजिस्ट्रेट का रवैया साफ मुख़ासिमाना[50] है ।''

मैंने कहा : ''मियाँ साहिब, छोडिए । दूसरी अदालत में मुकदमा ले गए तो क्या हमें वहाँ लड्डू-पेड़े खिलाए जाएँगे । रहने दीजिए मुक़दमे को यहीं ।''

मियाँ खालिद मान गए । चुनाचे हम दो-तीन पेशियाँ भुगते—इस्तिगासे[51] की तरफ से मि. मुहम्मद याकूब वल्द मियाँ गुलाम कादिर, मैनेजर कपूर आर्ट प्रेस, लाहौर, शेख़ मुहम्मद तुफ़ैल हलीम, असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट डी.सी. ऑफिस, लाहौर, सैयद जियाउद्दीन अहमद मुतर्जिम[52] प्रेस ब्रांच, पंजाब गवर्नमेंट और चंद और हज़रात रस्मी तौर पर पेश किए गए।

सैयद जियाउद्दीन ने कहा कि मेरी राय में 'ठंडा गोश्त' तमाम-का-तमाम फ़हश है ।

मियाँ खालिद के एक सवाल का जवाब देते हुए उन्होंने कहा कि जहाँ तक मुसन्निफ की कोशिश का ताल्लुक है, वह नेक है मगर अंदाज़े-इज़हार और इस्तेमाले-अल्फाज़ गलत है ।

मियाँ खालिद ने गवाह से एक और सवाल किया : ''क्या मुसन्निफ को अपने किरदार के मुँह में ऐसे अल्फाज नहीं डालने चाहिएँ जो उसकी सही शख़्सियत पेश करें ?''

सैयद साहिब ने जवाब दिया : ''जिस किस्म का किरदार हो वैसे ही अल्फाज इस्तेमाल करने चाहिएँ''—आपने यह भी तसलीम किया कि मुसन्निफ का यह काम है कि वह अच्छे-बुरे किरदार तख़लीक़[53] करे ।

शहादते-इस्तिगासा ख़त्म हुई । मजिस्ट्रेट साहिब ने हस्बे-जाब्ता[54] रस्मी तौर पर हमसे कुछ सवाल किए जिनका मुख़्तसर जवाब दे दिया गया । यह सिलसिला अदालती ज़बान में ''इस्तिफ़सारे-मुल्ज़िम बिला हल्फ''[55] कहलाता है और कुछ इस किस्म का होता है :

सवाले-अदालत : आप पर इल्ज़ाम है कि आपने ब-हैसियते-मुसन्निफ मज़मून 'ठंडा गोश्त' जो कि रिसाला 'जावेद' के ख़ास नंबर में ब-गर्ज़े-इशाअत नसीर अनवर प्रिंटर और पब्लिशर मुल्ज़िम हमराही और आरिफ़ अब्दुल मतीन और नसीर अनवर एडिटर रिसाला मज़कूर[56] को जो कि फ़हश था, दिया । यह जुर्म ज़ेरे-दफ़ा 292 ताज़ीराते-हिंद की तारीफ़ में आता है । क्या न आपको इस जुर्म की सज़ा दी जाए ?

जवाब : (जो ख़ालिद साहिब ने मेरी तरफ से दिया) मैंने अफ़साना 'ठंडा गोश्त' 'जावेद' में ब-गर्ज़े-इशाअत दिया लेकिन वह फ़हश नहीं था और न मैं उसे फ़हश तसव्वुर करता

हूँ। यह अफसाना इस्लाही[57] है।

सवाले-अदालत : मुकदमा क्यों बनाया गया?

जवाब : पुलिस बेहतर जानती है। उसका नुक्ता-ए-अख़लाक़ो-इस्लाह हमसे मुख़्तलिफ़ है।

सवाले-अदालत : कुछ और कहना चाहते हैं?

जवाब : इस मौक़े पर नहीं।

अब हमसे सफाई के गवाहों की फ़ेहरिस्त पेश करने के लिए कहा गया। यह फ़ेहरिस्त हमने पहले ही से तैयार कर रखी थी। चुनाचे फौरन पेश कर दी गई। मियाँ सईद साहिब ने जब बत्तीस नाम देखे तो खफ़ा हो गए। कहा : "मैं इतना हजूम नहीं बुला सकता।"

मियाँ ख़ालिद ने इसरार किया कि हर गवाह अपनी जगह पर बहुत अहम है।

मियाँ सईद ने अपने अंदाज में मजहका उड़ाने की कोशिश की, मुम्ताज शीरीं साहिबा का नाम पढ़ा तो इरशाद किया : "यह मुम्ताज शांति कौन है?" अदालत के आदमी मियाँ साहिब के इस मजाक पर हँसे—हम होंठ भींचे ख़ामोश रहे।

बड़ी सिफ़ारिशों के बाद मजिस्ट्रेट साहिब, दर्जा-ए-अव्वल चौदह गवाह बुलाने पर राज़ी हुए।

चुनाचे फ़ेहरिस्त पर निशान लगा दिए गए।

समन जारी हुए—मैं किसी गवाह से न मिला क्योंकि मैं चाहता था कि हर एक मेरे अफसाने के मुताल्लिक अपनी बेलाग राय दे ताकि मुझे अपनी सही पोजीशन मालूम हो सके।

जिन गवाहों के समन की तामील हो चुकी थी, उनको सुबह सवेरे अदालत में हाजिर होना पड़ता था—मैं बेहद शर्मिंदा था क्योंकि गरीब कामकाज छोड़कर कई-कई घंटे खड़े रहते थे। हम तो मुल्जिम थे लेकिन उनकी हालत भी हम-जैसी थी। हम अंदर कटहरे में खड़े रहते थे और वो अदालत के बाहर लोहे के जंगले के साथ लगे इंतज़ार करते रहते थे कि उन्हें कब आवाज पड़ती है।

मेरे दोस्त शेख सलीम की हालत क़ाबिले-रहम थी। सुबह-शाम पीने का आदी, सारा वक़्त जमाहियाँ लेता रहता था। आख़िर उससे यह अजीयत[58] बर्दाश्त न की गई—वह छोटी-सी बोतल में व्हिस्की भर के ले आता और थोड़े-थोड़े वक्फ़े के बाद पीता रहता। अदब से उसको दूर का भी वास्ता नहीं लेकिन जब वह दूसरों से बातें करता तो यही कहता : "आख़िर फहाशी है क्या? मंटो का अफसाना 'ठंडा गोश्त' मैंने पढ़ा नहीं लेकिन यह फहश नहीं हो सकता। मंटो आर्टिस्ट है।"

हमारी तरफ से पहले गवाह सैयद आबिद अली आबिद, एम.ए.एल.एल बी., प्रिंसिपल, दयालसिंह कॉलेज, लाहौर थे। आपने बयान देते हुए कहा : "मैंने रिसाला 'जावेद' में 'ठंडा गोश्त' पढ़ा है। यह एक अदबपारा[59] है। मंटो साहिब की मैंने तमाम तसानीफ पढ़ी है। प्रेमचंद के बाद जो मुख़्तसर अफ़सानानिगार मशहूर हुए हैं, उनमें

सआदत हसन मंटो को एक खास मक़ाम हासिल है इस अफ़साने से ईशर सिंह के किरदार का नुमायाँ तरीन असर यह है कि उसने जो नारवा हरकत की, उसकी सज़ा उसे फितरत की तरफ़ से नफसियाती नामर्दी की सूरत में मिल गई "

अदालत के एक सवाल पर आबिद साहिब ने कहा : "वली से लेकर ग़ालिब तक सब, वह चीज़ जिसे फ़हश कहा जाता है, लिखते चले आए है । वह लिट्रेचर कभी फ़हश नहीं होता जो एक बार लिट्रेचर क़रार दिया जा चुका हो "

इस्तिगासे की तरफ से सवाल किया गया : "अदब मक़सूद-बिज़्ज़ात[60] है ?"

आबिद साहिब ने जवाब दिया : "मैं पहले कह चुका हूँ कि अदब तनकीदे-हयात[61] है और उसमे इस सवाल का जवाब शामिल है । हर माकूल इंसान के कौल और फेल का मतलब होता है लेकिन तमाम इसान माकूल नहीं होते ! हर कौल या फेल सोसायटी की नज़रों में अच्छा या बुरा हो सकता है । अच्छे और बुरे फेल जाँचने के लिए बेशुमार मेयार होते हैं "

इस्तिगासे के एक और सवाल के जवाब में आबिद साहिब ने कहा : "यह अफसाना मेरे सब बच्चों और बच्चियों ने पढ़ा है मेरी एक लड़की जो फ़ोर्थ इयर मे पढ़ती है, उससे कई बार सेक्स पर इल्मी बहस हो चुकी है जो उसके निसाब का जुज[62] है " फिर आपने कहा : "खास आदमियों से, जो कि अदीब है, इस अफसाने के बारे मे मेरा तबादला-ए-खयालात हुआ है, सबने इसको बहुत सराहा है "

सफाई के दूसरे गवाह मि अहमद सईद, प्रो नफसियात, दयालसिंह कॉलेज, लाहौर थे । आपने अपने बयान मे कहा कि अफसाना 'ठडा गोश्त' फहश नही है । इसमें एक बहुत बड़ा जिन्सी मसला है—उनके नजदीक फहश लफ्ज की कोई बुनयाद ही नही—दूसरे अल्फाज मे फहाशी एक इजाफ़ी[63] चीज है । जेहनी तौर पर बीमार अशखास[64] पर 'ठडा गोश्त' पढ़ने से बुरा असर हो सकता है ।

तीसरे गवाह डॉ खलीफा अब्दुल हकीम, एम ए, एल एल.बी , पी-एच डी , साबिक़ डायरेक्टर ऑफ एजूकेशन, कश्मीर थे। आपने अपने बयान में कहा : "इसानी नफसियात[65] के अदर जो खैर-शर[66] है, अदीब का यह काम है, वह उसको इस अदाज से पेश करे कि जिससे इसानी जिदगी के हकाइक समझने मे मदद मिल सके बुरे किरदार को इस अदाज से पेश करे कि उसकी बुराई देखकर नफरत पैदा हो "

खलीफा साहिब ने अपने बयान मे यह भी कहा : "जेरे-बहस अफसाने के किरदार ईशर सिह से शदीद कराहत[67] और नफरत पैदा होती है । यह किरदार बिलकुल सही है । ऐसे किरदारों पर खास कैफियतो के मातहत जिस्मानी हालत दुरुस्त होने के बावुजूद नफसियाती नामर्दी तारी हो सकती है "

इन तीन गवाहो के बयान एक पेशी मे हुए । चूँकि यह खासे तवील थे और एक-एक लफ्ज खुद मजिस्ट्रेट साहिब को लिखना पड़ता था इसलिए वह झुँझला-झुँझला जाते थे । कई बार आपने तग आकर कहा : "मैं मजिस्ट्रेट हूँ या मुहर्रिर " लेकिन बहरहाल उन्हें अपना फर्ज अदा करना ही पड़ता था ।

इस पेशी में एक बड़ी दिलचस्प बात हुई। मेरे हाथों में सिगरेटों का डिब्बा था, ग़ालिबन करेऑन ए का। मजिस्ट्रेट साहब की नजर पडी तो आपने मुझे एक बहुत बड़ी डाँट पिलाई : "यह घर नहीं है, अदालत है" मैंने मुअद्दबाना अर्ज़ किया : "लेकिन हुज़ूर, मैं पी तो नहीं रहा हूँ"

आपने और ज्यादा गर्म होकर कहा : "ख़ामोश रहो, डिब्बा अपनी जेब में रखो।"

मैंने हुक्म की तामील की—मजिस्ट्रेट साहब, दर्जा अव्वल ने मेज़ पर से अपना सिगरेट टिन उठाया और एक सिगरेट सुलगाकर पीना शुरू कर दिया और मैं मुल्ज़िमों के कटहरे में खडा उसका बिखरा हुआ धुआँ पीता रहा।

अगली पेशी पर मियाँ तसद्दुक़ हुसैन ख़ालिद तशरीफ़ न लाए क्योंकि उनके घर में कोई अलील[68] था। हमें तारीख़ मिल गई। उस तारीख़ पर मियाँ साहिब मौसूफ़ फिर तशरीफ न लाए कि उनका लडका विलायत से वापिस आ रहा था और वह उसके इस्तकबाल के लिए कराची चले गए थे। हम सख़्त उलझन में गिरफ़्तार हो गए। मैंने मजिस्ट्रेट साहिब से मुअद्दबाना[69] गुज़ारिश की कि हमें तारीख़ दे दी जाए, इसलिए कि हमारा वकील मौजूद नहीं है—आपने इससे इनकार कर दिया और हुक्म दिया कि कार्रवाई शुरू हो।

मैं बहुत भटपटाया। गवाह को आवाज दी गई। डॉ. सईद-उल्लाह एम.ए. एल.एल. बी. पी-एच.डी., डी एस-सी. (इन दिनों पाकिस्तान एयर फ़ोर्स के सिविलियन ऑफिसर) तशरीफ लाए। अब मैं सोचने लगा कि क्या करूँ, मगर शायद इसलिए कि खानदान के सब बुज़ुर्ग वकील और बाप सब-जज थे, दो बडे भाई बैरिस्टर, इस लिहाज़ से ख़ून में किसी कदर कानून घुला हुआ था, मैंने मियाँ तसद्दुक हुसैन साहिब ख़ालिद की जगह सँभाल ली और अपने गवाह नंबर चार डॉ. सईद-उल्लाह साहिब से बयान दिलवाना शुरू कर दिया। बात-बात पर मजिस्ट्रेट साहिब मुझे टोकते : "तुम इस तरह सवाल नहीं कर सकते तुम यह बात नही पूछ सकते" मैं डटा रहा।

डॉक्टर साहिब का बयान आधा ख़त्म हुआ था कि अदालत के कमरे में चार नौजवान वकील, काले कोट पहने, बड़े चुस्त, बड़े बाँके दाख़िल हुए और डॉक्टर सईद-उल्लाह साहिब के पास खड़े हो गए। एक, जिसकी पतली-पतली मूँछे थीं और जिसका रंग बाक़ी दो के मुकाबले में किसी क़दर साँवला था, मेरे साथ कटहरे के साथ लगकर खडा हो गया। थोडी देर के बाद जब मुझे साँस लेने का मौका मिला तो उसने मेरे कान में कहा : "मंटो साहिब, क्या हम आपके मुक़दमे की पैरवी कर सकते हैं?"

मैंने कुछ न सोचा और कहा : "जी हाँ, आप मुकदमे की पैरवी कर सकते हैं" चुनांचे पतली-पतली मूँछोंवाले उस नौजवान ने पैरवी शुरू कर दी।

मजिस्ट्रेट साहिब ने उससे पूछा : "आप कौन?"

वकील ने मुसकराकर जवाब दिया : "हुज़ूर, मैं इनका वकील हूँ। क्यों मंटो साहिब?"

मैंने इस्बात[70] मे सिर हिला दिया।—कार्रवाई शुरू हुई। इस वकील के बाकी तीन साथी भी हिस्सा लेने लगे। उनकी सरगर्मी में बडा दिलकश लडकपन था, वह जो कॉलेज

के ज़िंदादिल तलबा[71] में होता है।

मजिस्ट्रेट भिन्ना गए। आपने उन तीन से पूछा : "आप हज़रात क्यों बीच में बोल रहे हैं "

उन्होंने जवाब दिया : "हुज़ूर, हम मुल्ज़िमों के वकील हैं, क्यों मंटो साहिब ?"

मैंने पहले की तरह इस्बात में सिर हिला दिया।

डॉक्टर सईद-उल्लाह साहब ने अपने बयान में जो कुछ कहा मैं उसे मुख़्तसरन पेश करता हूँ। आपने फ़रमाया : 'ठंडा गोश्त' पढ़ने के बाद मैं खुद ठंडा गोश्त बन गया। पसमुर्दगी[72] और अफ़सुर्दगी, यह था इसका असर। यह अफ़साना शहवानी हेजान हरगिज़ पैदा नही करता ईशर सिंह का किरदार पेश करने के लिए मुसन्निफ़ ने दो-तीन दफ़ा गाली इस्तेमाल की है। शायद फ़नकार ने इसे मुनासिब समझा हो मगर गाली की शक्ल उसने इस तरह बदली है कि गाली मालूम नहीं होती अगर वह गाली जो ईशर सिंह ने इस्तेमाल की है, गाली भी रहती, तब भी मेरे नज़दीक अफ़साना फ़हश न होता। गाली फ़हश भी हो सकती है और फ़हश नहीं भी हो सकती अगर फ़नकार सही फनकार है तो वह गाली को बग़ैर ज़रूरत कभी इस्तेमाल नहीं करता। इस अफसाने में गाली का इस्तेमाल फनकाराना है

प्रोसीक्यूटर साहिब बड़े नस्तालीक़[73] किस्म के आदमी थे, बहुत बाँके, कजकुलाह[74], गर्दन में हल्का-सा शानदार ख़म, आँखों पर रिमलैस चश्मा जिसे वह बार-बार अपनी नाक से उतारने और जमाते रहते थे। आपने अज़-राहे-तमस्ख़ुर[75] कुछ कहा तो डॉक्टर सईद-उल्लाह साहिब बरस पडे, इस ज़ोर से कि दूसरे कमरे में सूफ़ी तबस्सुम साहिब कुर्सी पर से उछलकर बाहर निकल आए। बहरहाल मामला टल गया।

प्रोसीक्यूटर साहिब ने जिनका नाम ग़ालिबन मुहम्मद इक़बाल था, डॉक्टर साहिब से पूछा : "नफ़्से-मज़मून[76] के लिहाज़ से मुख़्तलिफ अदबा को मुख़्तलिफ़ अलक़ाब[77] दिए गए हैं, मसलन राशिद-उलख़ैरी को मुसव्विरे-ग़म, इक़बाल को मुसव्विरे-हक़ीकत और ख़्वाजा हसन निज़ामी को मुसव्विरे-फ़ितरत कहा गया है, आप "

डॉक्टर साहिब ने इक़बाल साहिब की बात काटकर कहा : "मैं 'ठंडा गोश्त' के मुसव्विरे-हयात का लक़ब दूँगा"

अब कर्नल फ़ैज़ अहमद फैज़ की बारी आई। आपने अपने बयान में कहा "मेरी राय में अफ़साना फ़हश नहीं है। एक अफ़साने के अलग-अलग अल्फ़ाज़ को फ़हश या ग़ैरफ़हश कहने के कोई मानी नहीं हैं। अफसाने पर तनक़ीद[79] करते वक़्त मजमूई तौर पर तमाम अफ़साना ज़ेरे-नज़र होगा और होना चाहिए। महज़ उर्यानी[80] किसी चीज़ के फ़हश होने की दलील नहीं। मैं समझता हूँ कि इस अफसाने के मुसन्निफ़ ने फ़हशनिगारी तो नहीं की है लेकिन अदब के आला तक़ाज़ों को भी पूरा नहीं किया है क्योंकि इसमें ज़िंदगी के बुनियादी मसाइल का तसल्लीबख़्श तज्ज़िया[81] नहीं है "

जिरह के जवाब में फ़ैज़ साहिब ने कहा : 'मेरी भप्पियाँ ले रहे थे' अगर मौज़ू तक़ाज़ा करे तो मैं ऐसे अल्फ़ाज़ का इस्तेमाल जाइज समझता हूँ। 'मुँह भर-भर के बोसे लिए',

'चूस-चूसकर उसका सारा सीना थूकों से लथेड़ दिया' यह अल्फ़ाज़ पार्लियामेंट्री नहीं लेकिन अदबी एतिबार से जाइज़ हैं।"

फ़ैज़ साहिब के बाद सूफ़ी ग़ुलाम मुस्तफ़ा साहिब तबस्सुम, प्रोफ़ैसर गवर्नमेंट कॉलेज, लाहौर, तशरीफ़ लाए, आपने अपने बयान में कहा : "अफ़साना 'ठंडा गोश्त' लोगों के अख़लाक़ को ख़राब नहीं करता। हो सकता है इसके बाज़ फ़िक़रे अलग से फ़हश हों। आज इंसानी जिंसियात को अदब का मौज़ू बनाकर हमारे लिट्रेचर का रुजहान एक सही सम्त की तरफ़ जा रहा है।"

जिरह का जवाब देते हुए सूफ़ी साहिब ने फ़रमाया : "कोई अफ़साना या अदबपारा फ़हश नहीं हो सकता जब तक लिखनेवाले का मक़सद अदब निगारी है। अदब बहैसियत अदब के कभी फ़हश नहीं होता।"

इक़बाल साहिब ने अपनी नाक पर से कई मर्तबा जल्दी-जल्दी रिमलैस चश्मा उतारा और जमाया। वह सूफ़ी साहिब को घेर-घारकर अपने मतलब की बात कहलवाना चाहते थे मगर सूफ़ी साहिब तिफ़्ले-मक्तब[82] नहीं थे। वह बीस बरस से उस्तादी करते चले आए थे, इक़बाल साहिब के जाल में न फँसे। एक मर्तबा तो आपने साफ़ कह दिया : "देखिए साहिब, आप लाख उलट-फेर करें लेकिन मैं वही कुछ कहूँगा जो मुझे कहना है।"

इक़बाल साहिब ने सवाल किया : "अगर किसी तहरीर, अफ़साने या अदबपारे के नताइज मुख़र्रिबुल[83] अख़लाक़ हों और मुसन्निफ़ का मक़सद तख़रीबे-अख़लाक़[84] न हो तो आप उस अफ़साने को फ़हश कहेंगे या नहीं?"

साफ़ ज़ाहिर था कि इक़बाल साहिब क्या चाहते हैं। सूफ़ी साहिब ने मुसकराकर जवाब दिया : "नहीं, इसलिए कि पढ़नेवालों के अपने ज़हनी रुजहानात भी शामिल होंगे, न कि मुसन्निफ़ का मतलब। तख़्लीके-अदब मुसन्निफ़ अपनी तबअ से मजबूर होकर करता है, और यह तख़्लीक़ औरों के लिए भी होती है।"

इक़बाल साहिब ने एक और सवाल किया : "अगर इस तस्नीफ़ से लोगों के अख़लाक़ पर बुरा असर पड़े तो इसकी जिम्मेदारी अदीब पर होगी या नहीं?"

सूफ़ी साहिब ने झट से जवाब दिया : "वह बरीउज़्ज़िम्मा[85] है।"

इक़बाल साहिब ने तंग आकर पूछा : "आख़िर मुख़र्रिबे-अख़लाक़ तहरीर क्या है?"

सूफ़ी साहिब ने जवाब दिया : "वह तहरीर जिससे लिखनेवाले का मक़सद महज़ तख़रीबे-अख़लाक़ हो।"

इक़बाल साहिब ने नाक पर अपना रिमलैस चश्मा जमा दिया और गर्दन को ज़रा ख़मीदा[86] करके जिरह बंद कर दी।

डॉक्टर आई. लतीफ़, हैड ऑफ़ दि साइकोलोजीकल डिपार्टमेंट, एफ़. सी. कॉलेज, लाहौर, बुलाए गए—मैंने उनका नाम सुना था लेकिन उन्हें देखा कभी नहीं था। आप सूफ़ी साहिब के बयान के दौरान में मियाँ सईद साहिब के पास बैठे थे और रिसाला 'जावेद' का ख़ास नंबर उनके हाथ में था। मैंने उनकी तरफ़ ग़ौर ही नहीं किया था। जब वह बयान देने लगे तो मैंने उन्हें ग़ौर से देखा। काला रंग। सबसे पहले मुझे उनकी तीखी मूँछें नज़र आईं।

आपने रिसाला एक तरफ़ रखा और कहना शुरू किया : "मैंने 'ठंडा गोश्त' अभी-अभी पढ़ा है। यह एक ग़लत रिसाले में छपा है। मेरा मतलब है, यह अफ़साना एक पापुलर रिसाले में नहीं छपना चाहिए था। अगर यह किसी साइंटीफ़िक रिसाले में केस हिस्ट्री के तौर पर, मर्दुमी और नामर्दुमी की ताईद या तर्दीद[87] में छपता तो इस पर फ़हाशी का इल्ज़ाम आयद नहीं हो सकता था · जिन अल्फ़ाज़ की तरफ़ इशारा किया गया है, बोलने में मैं उनको बुरा समझता हूँ लेकिन केस हिस्ट्री में यह अल्फ़ाज़ बड़ी अहमियत रखेंगे।"

ख़ुदा मालूम क्या बात हुई कि डॉक्टर लतीफ़ ने एकदम पूछा : "मि. मंटो कौन हैं ··?"

मैंने कहा : "जनाब, यह ख़ाकसार है।"

डॉक्टर साहिब की तीखी मूँछें थरथराईं। आपने मुझसे कुछ न कहा और बयान देने में मशग़ूल हो गए।

वकील साहिब ने मेरे कान में कहा : "मंटो साहिब, आपका यह गवाह तो होस्टाइल हो गया है। अब आप इस पर जिरह कर सकते हैं।"

मैंने कहा : "हटाइए··"

लेकिन वकील साहिब ने जिरह कर ही दी। इसके जवाब में डॉक्टर लतीफ़ साहिब ने कहा : "अफ़साना ऐसे रिसाले में, जिसको हर बच्चा, बूढ़ा, लड़का-लडकी पढ़ सके, नहीं छपना चाहिए था क्योंकि ऐसी तबा जो जज़्बात को मुश्तइल[88] करनेवाले तास्सुरात[89] क़ुबूल करनेवाली हों, यह अफ़साना पढ़कर मुश्तइल होंगी··"

जिरह ख़त्म हुई तो डॉक्टर लतीफ़ साहिब मेरे पास आए। उन्होंने हाथ मिलाया और कहा : "आपने मुझे गवाही के लिए बुलाया था तो कम-अज़-कम मिल तो लिए होते।"

मैंने मुसकराकर जवाब दिया : "इंशाअल्लाह[90] अब मुलाक़ात का शर्फ़[91] हासिल करूँगा·"

डॉक्टर साहिब ने फिर हाथ मिलाया और चले गए।

अब मैं उन चार नौजवान वकीलों के मुताल्लिक़ कुछ कहना चाहता हूँ जो बड़े अंदाज़ में मेरे मुक़दमे में दाख़िल हुए थे। पतली-पतली मूँछों, तीखी नाक और साँवले रंगवाले शेख़ ख़ुर्शीद अहमद थे। कॉफ़ी हाउस उनके बग़ैर नामुकम्मल है। दूसरे तीन थे : मि. मज़हर-उल-हक़, मि. सरदार मुहम्मद इक़बाल और मि. एजाज़ मुहम्मद ख़ाँ। आप लोगों को बार-रूम में मालूम हुआ कि मैं ख़ुद अपना केस कंडक्ट[92] कर रहा हूँ और परेशान हूँ तो वे मेरी मदद के लिए चले आए। मैंने उनका शुक्रिया मुनासिब व मौज़ू अल्फ़ाज़ में अदा किया।

शेख़ ख़ुर्शीद अहमद ने कहा : "इसकी कोई ज़रूरत नहीं · लेकिन दाद दीजिए कि मैंने आपका अफ़साना 'ठंडा गोश्त' पढ़ा क्या, देखा तक नहीं है·" हम सब ख़ूब हँसे। शेख़ ने कहा : "और मैं शर्त लगाने के लिए तैयार हूँ कि मि. इक़बाल ने भी यह अफ़साना अभी तक नहीं पढ़ा है·"

हमारी तरफ़ से सात गवाह अब तक पेश हुए थे। बकाया गवाहों को बुलाने के लिए जब

शेख़ खुर्शीद साहिब ने अदालत से दरख़्वास्त की तो मुस्तरद[93] कर दी गई। मजिस्ट्रेट साहिब ने इस ख़याल से कि हमारा पलड़ा वज़नी है, अदालत की तरफ़ से चार गवाह तलब किए : मौलाना ताजवर नजीबाबादी, शोरिश काश्मीरी, अबू सईद बज़्मी और डॉक्टर मुहम्मद दीन तासीर।

हमने कई तारीखें भुगतीं मगर ये हज़रात जमा न हुए। आख़िर एक तारीख़ पर सब आ गए। ताजवर साहिब से अलैक-सलैक हुई तो आपने लैक्चर पिलाना शुरू कर दिया कि मैं ऐसे गलीज़, फ़हश और वाहियात अफ़साने लिखता क्यों हूँ—मैं ख़ामोश सुनता रहा इसलिए कि मौलाना के साथ बहस करना फ़िज़ूल था।

आग़ा शोरिश बड़े पुरशोर तरीके पर मिले। अबू सईद बज़्मी ने मुझसे एक सिगरेट लिया और सुलगाकर टहलने लगे—आवाज़ पड़ी तो हम हाज़िरे-अदालत हुए। कार्रवाई शुरू हुई। पहले गवाह मिनजानिबे-अदालत[94] शम्स-उल-उलमा मौलाना एहसान-उल्लाह ख़ाँ ताजवर नजीबाबादी, प्रो. दयालसिंह कॉलेज, लाहौर थे। आपने फ़रमाया : " 'ठंडा गोश्त' किसी मस्जिद में या किसी मजलिस में जमाअती हैसियत में सुनना पसंद नहीं किया जा सकता। अगर कोई पढ़े तो अपना सिर सलामत लेकर न जा सके। चालीस साला अदबी ज़िंदगी में ऐसा ज़लील और गंदा मज़मून मेरी नज़र से नहीं गुज़रा है।"

मैंने मौलाना से चंद सवाल किए तो आपने जवाबन कहा : "यह अफ़साना मैंने पहली बार दयालसिंह कॉलेज में पढ़ा लेकिन पूरा नहीं पढ़ा। थोड़ा-सा पढ़ा और लग्व समझकर बंद कर दिया। मस्नवी गुलज़ारे-नसीम में बकावली और ताज-उल-मुलूक की शादी का तज़्किरा[95] अख़लाक से मुतनादिम[96] है। फ़साना-ए-अजायब, मस्नवी बहारे-इश्क़, मस्नवी फ़रेबे-इश्क़ और अलिफ़ लैला में जो फ़हश हिस्से हैं, वो फ़हश हैं। हिकायते-ख़ानम और कनीज़ का ज़िक्र मस्नवी मौलाना रूम में आता है लेकिन मैंने नहीं पढ़ा। जिंसी तरग़ीब[97] का पहलू मस्नवी मौलाना रूम में नहीं हो सकता।"

जी चाहता था कि मौलाना को ख़ूब सताऊँ मगर मैंने मुनासिब ख़याल न किया और चंद सवाल और करके उनको छोड़ दिया—अब आग़ा शोरिश काश्मीरी वल्द आग़ा निज़ामुद्दीन, एडिटर हफ़्तावार 'चट्टान' मूँछों के अंदर मुसकराहटें बिखेरते तशरीफ़ लाए। मेरी तरफ़ देखकर आप खिलके मुसकराए और बयान देना शुरू कर दिया।

आपने फ़रमाया : "जहाँ तक मेरे इल्म और एहसासात का तअल्लुक़ है, मैंने 'ठंडा गोश्त' में अच्छे तास्सुरात फ़राहम[98] नहीं किए। मैं जिस समाज और घराने से तअल्लुक़ रखता हूँ, उसके पेशे-नज़र मैं ऐसा मज़मून अपने पर्चे में शाया नहीं करूँगा। मेरा मदरसा-ए-फ़िक्र इसे गवारा नहीं करता।"

इस्तिग़ासे के एक सवाल का जवाब देते हुए आग़ा साहिब ने कहा : "इससे ओबाश[99] क़ारी[100] को तरग़ीब होनी है, उन लोगों को जिनका रुजहाने-तबीयत ख़ासतौर पर बदकारी की तरफ़ माइल हो।"

हमारी तरफ़ से आग़ा साहिब पर कोई जिरह न की गई—अबू सईद बज़्मी, एडिटर 'एहसान' लाहौर पेश हुए तो आपने अफ़साने को मुख़र्रिबे-अख़लाक़ क़रार दिया। उन्होंने

कहा कि : "अफ़साना मानी और मतलब की वजह से क़ाबिले-एतराज़ है ।"

मैंने बज़्मी से पूछा : "क्यों हज़रत, यह बताइए, क्या इसी अदालत में आपके ख़िलाफ़ इज़ाला हैसियते-उर्फ़ी[101] का मुकदमा चल रहा है ।"

आपने जब 'जी हाँ' कहा तो मजिस्ट्रेट साहिब ने हैरत से पूछा : "मेरी अदालत में ?"

बज़्मी साहिब ने फिर जवाब दिया : "जी हाँ ।"

मजिस्ट्रेट साहिब ने क़लम से सिर खुजाकर पाइप सुलगाया और अपने काम में मशग़ूल हो गए ।

आख़िरी गवाह मिनजानिबे-अदालत पेश हुए यानी डॉक्टर तासीर साहिब, प्रिंसिपल इस्लामिया कॉलेज, लाहौर ।

आपने अपने बयान में कहा : "कहानी अदबी लिहाज़ से नाक़िस[102] है लेकिन है अदबी । निशान लगाए हुए अल्फाज कुछ इस कहानी के लिए जरूरी हैं कुछ गैर-ज़रूरी । कुछ अल्फ़ाज़ ऐसे हैं जिनको नाशाइस्ता[103] कहा जा सकता है लेकिन मैं फ़हश इसलिए नहीं कहता कि लफ़्ज़े-फ़हश की तारीफ़ के बारे में मैं वाज़ेह नहीं हूँ । मेरे ख़याल में जिन लोगों का मैलान बदकारी की तरफ़ है, उनके लिए इस मज़मून में जिंसी तरग़ीब मौजूद है ।

1 नाचना-गाना; 2. पूछताछ; 3 दुख, चिंता; 4. शरणार्थी, 5. विखंडित, बिखरा हुआ· 6 बिखराव, 7. उदास व चिंतित; 8. दर्शनीय, 9. कमीबेशी; 10. मृत्यु के समय की स्थिति, 11. युद्धरत, संघर्षरत; 12. भूख-प्यास; 13. पेट-भर खाना व अत्यधिक शराब पीना; 14. चमड़ा कमाना; 15 ज्वालामुखी, 16. बहसें; 17. मनोरंजक; 18 साहित्यिक स्तर; 19 सहयोग; 20. क्षमा, माफी; 21 अंतिम, 22. पांडुलिपि; 23. जनता में शांति बनाए रखना; 24. लाभ, 25. कदम, पग, कार्य का आरंभ, 26 विरोध में; 27. पाबंदी, शासन द्वारा प्रतिबंध लगा देना; 28. गरीब का गुस्सा अपने ही ऊपर चलता है, 29 काफी, बहुत; 30. जाँच-पड़ताल, सेंसर करना; 31. संपादित, व्यवस्थित, 32 प्रकाशित करने; 33 बुढ़ापा, 34. पूर्वसूचक, पूर्वाभास; 35. नई बात निकालना, अनहोनी, 36 कार्यवाही, 37. भड़कानेवाला, उत्तेजक; 38. पद्य एवं गद्य; 39. आरोपित; 40 दूसरी पार्टी, विपक्ष, 41 बुरा, गंदा; 42 धिक्कार योग्य, 43 अड़ रहना, दृढ़ रहना,; 44. डरे हुए, भयभीत; 45 गरीबी का मारा हुआ; 46. परिभाषा, 47. इसी तरह, ऐसे ही, 48. नियुक्त; 49. शानो-शौकत से, घमंड से; 50. विद्वेषपूर्ण, पक्षपात पूर्ण, 51 अभियोजन पक्ष, वादी की तरफ का वकील; 52. अनुवादक; 53 रचना,; 54. कानून के अनुसार; 55. अभियुक्त को बगैर शपथ ग्रहण कराए पूछताछ करना; 56. वर्णित, उल्लिखित; 57. शुद्ध, सही, 58. दुख, तकलीफ, 59. साहित्यिक कृति, 60. अस्तित्व की अभिव्यक्ति का उद्देश्य, 61 जीवन-समीक्षा, 62. हिस्सा, भाग, 63. अतिरिक्त, अलग से, 64 जनता, लोगों; 65. मनोविज्ञान, 66. अच्छा-बुरा, 67 घृणा, 68 बीमार; 69 सम्मान सहित प्रार्थना; 70 स्वीकारोक्ति; 71 विद्यार्थी, छात्र, 72. मुर्दे के समान निर्जीव-सा, 73. सीधे व साफ, निष्कपट; 74. टेढ़ी टोपीवाला,; 75. मजाक में, 76 विषय के वर्गीकरण, 77 उपनाम, जो नाम किसी विशेषता के कारण दिया जाए; 78. उपनाम, 79 समीक्षा, 80 नग्नता, 81 विश्लेषण, 82. अनाड़ी, 83 शिष्टाचार के विपरीत, 84. शिष्टाचार के विरुद्ध, 85. अनुत्तरदायी, 86. झुकाकर, टेढ़ी करके, 87. खंडन, 88. उत्तेजक, उत्तेजित, 89. प्रभाव, 90 ईश्वर करे ऐसा ही हो, 91. सौभाग्य, गौरव, 92 संचालन, 93. रद्द कर देना; 94. अदालत की ओर से; 95. वर्णन, 96. विरोधी, विरुद्ध, 97 पाठ, सबक; 98 प्राप्त, इकट्ठा, 99 शैतान, बदतमीज, 100 पाठक, 101 जनता के मानसिक स्तर को बिगाड़ने 102 कमजोर, 103. अशिष्ट,

जिस शख्स की तबअ में मैलाने बदकारी न हो उसे इस मजमून से जिन्सी कराहत होगी, जिन्सी तरगीब नहीं होगी। 'ठंडा गोश्त' का मतलब मुर्दा लड़की है। मैं इस कहानी को एक आम जिन्सी कहानी समझता हूँ। यह – जिन्सी अखलाक खराब नहीं करती

अदालत की तमाम कार्रवाई खत्म हुई। अब फ़ैसला बाक़ी था जो मियाँ ए. एम. सईद साहिब समाअत[104] के दौरान में कई बार ज़बानी सुना चुके थे। शेख़ खुर्शीद अहमद को यक़ीन था कि हम सबको जुर्माना होगा।

फ़ैसले की तारीख सोलह जनवरी (यही साल) मुक़र्रर हुई।

नसीर अनवर बिलकुल बेपरवाह था। सारी समाअत के दौरान में वह हँसता, मुसकराता रहा। आरिफ अब्दुल मतीन अलबत्ता सारा वक्त बहुत परेशान रहे। उनकी इस परेशानी का बाइस यह भी था कि उनके मुअम्मर[105] वालिद बड़े हिरासाँ[106] थे।

जब सफाई की गवाहियाँ खत्म हुई थी तो मैंने अपना तहरीरी बयान दाखिल किया था। इस तहरीरी बयान को पढ़कर, मुझे अच्छी तरह याद है, मजिस्ट्रेट साहिब ने फरमाया था, "यह बयान ही मुल्जिम को सजा देने के लिए काफी है।"

→

104 सुनवाई, 105 वयोवृद्ध, बुजुर्ग; 106 परेशान।

तहरीरी बयान

मैं अफ़साना 'ठंडा गोश्त', मत्बूआ[107] माहनामा 'जावेद' लाहौर का मुसन्निफ हूँ जो इस्तिग़ासे के नज़दीक उर्यां और फ़हश है। मुझे इससे इख़्तिलाफ़ है। यह अफ़साना किसी भी नुक़्ताए-नज़र से ऐसा नहीं है।

फ़हाशी के मुताल्लिक़ बहुत कुछ कहा जा चुका है और कहा जा सकता है मगर यह एक तय शुदा अम्र है कि अदब हर्गिज-हर्गिज़ फ़हश नहीं हो सकता। 'ठंडा गोश्त' को अगर अदब के दायरे से बाहर कर दिया जाए तो इसके फहश होने या न होने का सवाल पैदा हो सकता है। मगर यह अफ़साना एक अदीब की तस्नीफ़ है जो अदबे-जदीद मे काफ़ी अहमियत रखता है। इसका सुबूत उसकी तसानीफ़ हैं और वो मजामीन जो क़रीब-क़रीब हर अदबी रिसाले में उसके फन पर शाया हुए हैं।

इससे पहले तीन मर्तबा मेरे अफसानों के बारे में शुब्ह हुआ था कि वो फ़हश हैं। चुनांचे मुझ पर मुक़दमे चले, सज़ाएँ हुईं लेकिन अपील करने पर हर बार सेशन कोर्ट मे मुझे और मेरे अफ़सानों को फ़हाशी के इल्ज़ाम से बरी कर दिया गया।

मेरे एक मुक़दमे के सिलसिले में मिस्टर एम. आर. भाटिया, एडीशनल सेशन जज के फ़ैसले के ये अल्फ़ाज़ क़ाबिले-गौर हैं:

> क़ाबिले-ग़ौर अम्र है कि ऐसे अशख़ास[108] मुल्जिमीन की सफ़ाई मे पेश हुए हैं जो उर्दू जबान के आलिम होने की हैसियत में बहुत मशहूर हैं, मिसाल के तौर पर ख़ान बहादुर अब्दुर्रहमान चुगताई, मि. के. एल. कपूर, प्रो. डी. ए. वी. कॉलेज, राजेंद्र सिंह बेदी और डॉ. लतीफ़, प्रो. एफ. सी. कॉलेज, जो बतौर गवाहाने-सफ़ाई पेश हुए। इन सबकी राय है कि मज़मून (बू) में ऐसी कोई चीज़ नही जो शहवानी हिस्सियात[109] पैदा करे बल्कि उन लोगों का कहना है कि मज़मून तरक़्क़ीपसंद है और उर्दू अदब के मॉडर्न रुजहान से तअल्लुक़ रखता है, हत्ताकि इस्तिगासे के गवाह नंबर चार बशीर ने दौराने-जिरह में तसलीम किया कि मज़मून इंसान के अख़लाक़ पर बुरा असर नहीं डालता।
>
> मातहत अदालते-फ़ाज़िला ने हिंदुस्तानी नौजवानों की तअय्युशपसंद[110] ज़िंदगी का ज़िक्र करते हुए अफ़सोस किया है और इस बात पर मातम किया

है कि मुल्क में हिंदुस्तानियों का पुराना केरेक्टर नाबूद हो रहा है। मातहत अदालत के फ़ाज़िल जज ने वो ख़ूबियाँ भी याद कराई हैं जिनके लिए हम हिंदुस्तानी कभी मशहूर थे और नसीहत (भी) की है कि नए फ़ैशनों को ख़त्म कर देना चाहिए।

मालूम होता है कि मातहत अदालते-फ़ाज़िला के ख़यालात तरक़्क़ीपसंद नहीं हैं। हमें ज़माने के साथ-साथ चलना है—हसीन चीज़ एक दाइमी मसर्रत[111] है। आर्ट जहाँ भी मिले, हमें उसकी क़द्र करनी चाहिए। आर्ट ख्वाह वह तसवीर की सूरत में हो या मुजस्समे[112] की शक्ल में, सोसायटी के लिए क़तई तौर पर एक पेशकश है, चाहे उसका मौज़ू ग़ैर-मस्तूर[113] ही क्यों न हो। यही कुल्लिया[114] तहरीरों पर भी मुंतबिक़[115] होता है।

जब मुल्क के मशहूरो-मारूफ़ आर्टिस्टों और अदीबों ने मुल्ज़िमीन के हक़ में कहा है तो सारा फ़ैसला यहीं हो जाता है। ज़ेरे-बहस मज़मून ऐसा नहीं कि जिस पर किसी क़ानूनी अदालत में नुक्ताचीनी की जाए इसलिए मुझे अपील मंजूर करने में कोई पसो-पेश नहीं। जुर्माना अगर अदा कर दिया गया है तो वापस किया जाए—मैं अपील करनेवालों को बरी करता हूँ।

इस फ़ैसले में यही नतीजा अख़्ज़[116] होता है कि आर्ट फ़हश नहीं हो सकता और किसी फ़नपारे पर किसी क़ानूनी अदालत मे नुक्ताचीनी नहीं की जानी चाहिए।

कोई लिट्रेरी पीस यानी अदबपारा मेयारी या ग़ैर-मेयारी हो सकता है, इसलिए कि आर्टिस्ट, हो सकता है, अपना मेयार काइम न रख सके—अफ़सानानिगार का हर अफ़साना उसका शाहकार नहीं हो सकता।

'ठंडा गोश्त' के स्टैंडर्ड के बारे में कहा-सुना जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि यह अफ़साना मेरे दूसरे अफ़सानों के पाये का नहीं—यह काम अदबी नक़्क़ादों का है और उन्हें इस बात का हक़ है कि वो जाँचे, परखें मगर इस अफ़साने पर किसी सूरत में भी फ़हाशी का इल्ज़ाम नही लगाया जा सकता। इसलिए कि मुसन्निफ़ की तरफ़ से अफ़सानवी अदब में, अच्छा-बुरा जैसा भी है, यह एक इज़ाफ़ा है। लेकिन ऐसी सूरत में कि मुझे अपनी पोजिशन साफ़ करना है, आइए हम इस अफ़साने को अच्छी तरह जाँचें कि इसमें फ़हाशी का कोई पहलू निकलता है या नहीं :

'ठंडा गोश्त' जैसा कि ज़ाहिर है, एक अफ़साना है जिसका अकबी मंज़र यूँ तो गुज़िश्ता फ़सादात हैं, लेकिन असल में जिसकी बुनियाद इंसानी नफ़्सियात पर क़ाइम है और इंसानी नफ़्सियात का जिस से चोली-दामन का साथ है।

अफ़साने में दो किरदार हैं : ईशर सिंह और उसकी दाश्ता या बीवी कुलवंत कौर।

दोनों ठेठ क़िस्म के गँवार सिक्ख हैं—दोनों जिसी लिहाज़ से बहुत तगड़े हैं। यूँ कहना चाहिए कि ईशर सिंह को जिंसी तशफ़्फ़ी[117] सिर्फ़ कुलवंत कौर ऐसी औरत ही से और

कुलवंत कौर को जिसी तशफ़्फ़ी सिर्फ़ ईशर सिंह ऐसे मज़बूत और तवाना[118] मर्द ही से मिल सकती है—दोनों की जिंसी ज़िंदगी बड़ी हमवार थी लेकिन एक ऐसा वक़्त आता है जब कुलवंत कौर महसूस करती है कि ईशर सिंह तब्दील हो गया है, उसकी जिंसी मुहब्बत में पहली-सी तवानाई नहीं रही, वह उससे बेरुख़ी बरत रहा है, किसी और औरत से उसने नाता जोड लिया है—असल बात यह थी कि ईशर सिंह एक ज़बरदस्त नफ्सियाती रद्दे-अमल का शिकार हो जाता है जिसके बायस उसकी जिंसी तवानाई क़रीब-क़रीब मफ्लूज हो चुकी थी। वह लूटमार के दौरान में क़त्लो-गारत करने के बाद एक नौजवान मुस्लिम दोशीज़ा[119] उठा लाया था कि तब्दीली के तौर पर वह उससे जिंसी हज़ उठाए मगर जब उसने ऐसा करना चाहा तो उसे मालूम हुआ कि लड़की दहशत के मारे उसके कंधों पर ही मर चुकी है। उसके सामने एक ठंडी लाश पड़ी थी। उसकी तपती हुई शहवानी ख्वाहिशात के सामने ठंडे गोश्त का लोथडा पड़ा था। उसका ईशर सिंह को कुछ ऐसा ज़बरदस्त एहसास हुआ कि वह नफ्सियाती तौर पर नामर्द हो गया।

अगर ईशर सिंह का साबिक़ा ठंडी औरतों से पड़ा होता, अगर ईशर सिंह ख़ुद ठंडा मर्द होता तो उस पर इतना ज़बरदस्त नफ्सियाती रद्दे-अमल न होता, मगर जैसा कि उसका किरदार पेंट किया गया है, वह जिंसी लिहाज से बहुत ही तवाना था और उसका जिंसी रिश्ता भी एक ऐसी औरत से था जो हर लिहाज से उसका हमपाया थी। यही वजह है कि ऊपर बयान किए गए हादिसे ने उसे जिंसी लिहाज से बिलकुल निकम्मा कर दिया।

यहाँ यह बात क़ाबिले-गौर है कि क़त्लो-गारत ने और लूटमार ने ईशर सिंह पर कोई असर नहीं किया था—उसने कई इंसानों को मौत के घाट उतारा था मगर उसके ज़मीर पर एहसास की एक हल्की-सी ख़राश भी नहीं आई थी, लेकिन जब वह लड़की की ठंडी लाश पर झुका तो उसकी मर्दानगी ग़ाइब हो गई।

'ठंडा गोश्त' के बत्न में जो कुछ भी है, ज़ाहिर है कि फ़हश नहीं। उनवान ही एक बैयिन[120] सुबूत है कि अफ़साना पढ़नेवालों के दिलो-दिमाग में शहवत की गर्म लहरें नहीं दौड़ाएगा—जो हादिसा ईशर सिंह को पेश आया, वह कैसे किसी क़ारी को शहवानी जज़्बात की तरफ़ माइल कर सकता है।

ईशर सिंह का अंदाज़े-गुफ़्तगू उसका अपना है। हज़ारों आदमी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में वो अल्फ़ाज इस्तेमाल करते हैं जो मुसन्निफ़ ने उसके मुँह से कहलवाए हैं। उसकी हरकात ग़ैर-फ़ित्री नहीं—यही कुछ कुलवंत कौर के मुताल्लिक़ कहा जा सकता है।

इस्तिग़ासे के फ़ाज़िल वकील ने ख़ासतौर पर इस बात पर ज़ोर दिया है कि ईशर सिंह के मुकालमों[121] में गालियाँ इस्तेमाल की गई हैं। मैं यहाँ गाली की नफ्सियात पर बहस नहीं करूँगा, मगर यह एक खुली हुई हक़ीक़त है कि वो अल्फ़ाज जो इस्तिग़ासे के वकील के नज़दीक गाली हैं, असल में गाली नहीं हैं।

मैं यहाँ गाली की एक-दो मिसालें पेश करता हूँ।

उर्दू के मशहूर शाइर मिर्ज़ा ग़ालिब, मिर्ज़ा शहाबुद्दीन ख़ाँ साहिब के नाम एक रुक्के में लिखते हैं :

> "ये अशआर[122] जो तुमने भेजे हैं, ख़ुदा जाने किस वल्द-उज्ज़िना[123] ने दाख़िल कर दिए हैं। अगर ये शेर मत्न[124] में पाए भी जावें तो यूँ समझना, किसी मलऊन ज़न-जल्ब[125] ने असल कलाम को छीलकर ये ख़ुराफ़ात लिख दिए है।"
>
> — उर्दूए-मुअल्ला : सफ़हा 217

मिर्जा शहाबुद्दीन के नाम एक और ख़त में इरशाद होता है :

> "मियाँ, वह क़ाज़ी मसखरा तो चूतिया है।"
>
> —उर्दूए-मुअल्ला : सफ़हा 218

गाली के ये नमूने तो हो गए, लेकिन अगर कोई शख़्स गुफ़्तगू के दौरान में यह कहे : "मैं भी अजीब चूतिया हूँ कि आप यहाँ है और मैं आपको लाहौर ढूँढ़ता फिरा" तो ज़ाहिर है, लफ़्ज़ 'चूतिया' गाली नहीं है—'साला' हमारे यहाँ बहुत बड़ी गाली मुतसव्विर की जाती है लेकिन बंबई में लफ्ज 'साला' कोई अहमियत नहीं रखता। आम गुफ्तगू में वहाँ ऐसे कई फ़िकरे आपके सुनने में आएँगे :

हमारा बाप साला बड़ा अच्छा आदमी था।
साला हमसे मिश्टेक हो गया।
साला कैसी बात करता है।

माँ-बहन की गाली यू. पी. और पंजाब मे गुफ़्तगू में आम इस्तेमाल होती है और किसी के कान खड़े नहीं होते। खास-ख़ास गाली अक्सर लोगों का तकियाकलाम भी बन जाती है—ईशर सिंह भी चंद गालियो को तकियाकलाम के तौर पर ही इस्तेमाल करता है। इसलिए इस्तिगासे के फाज़िल वकील का इस नुक्ते पर जोर देना बिलकुल बेकार है।

इसके अलावा यह अहम बात भी पेशे-नजर रहनी चाहिए कि ईशर सिंह जैसे उजड्ड और गंवार आदमी से शाइस्ता कलामी की तवक़्क़ोह कैसे की जा सकती है। उसके मुँह में अगर मुसन्निफ ने मुहज़्ज़ब और शाइस्ता अल्फाज़ डाले होते तो अफ़साने मे हकीक़त-निगारी का ख़ात्मा हो जाता, बल्कि मै तो यह कहूँगा कि अफ़साना एक निहायत ही भौंडी शक्ल इख़्तियार कर लेता और आर्ट की सतह से बहुत ही नीचे ख़ुराफ़ात के खड्ड मे जा गिरता।

सवाल यह है कि जो चीज़ जैसी है, उसे मिनोअन[126] क्यो न पेश किया जाए। टाट को अतलस[127] क्यो बनाया जाए। ग़लाजत के ढेर को ऊद और अबर के अंबार में क्यों तब्दील किया जाए--हकीकत से इन्हिराफ[128] क्या बेहतर इंसान बनने मे हमारा मम्दो-मुआविन[129] हो सकता है? हरगिज नहीं—फिर ईशर सिंह के किरदार और उसकी गुफ़्तार पर एतराज़ क्या मानी रखता है।

ईशर सिंह गंदा दहन सही, अफ़साने का मौज़ू घिनावना सही, लेकिन क्या इसको पढ़ने के बाद हमें इंसानियत की वो रमक़ दिखाई नहीं देती जो ईशर सिंह के सियाह क़ल्ब[130] में ख़ुद उसका मक्रूह[131] फ़ेल पैदा करता है—और यह एक सेहतमंद चीज़ है कि इस अफ़साने का मुसन्निफ़ इंसानों और इंसानियत से मायूस नहीं हुआ। अगर मुसन्निफ़ ने ईशर सिंह के दिल और दिमाग़ पर नफ़्सियाती रद्दे-अमल पैदा न किया होता तो यक़ीनन 'ठंडा गोश्त' एक निहायत ही मुहमल[132] चीज होती।

मुझे अफ़सोस है कि वह तहरीर, जो इंसानों को बताती है कि वो इंसान से हैवान बनकर भी इंसानियत से अलहदा नहीं हो सकते, फ़हश और शहवत को उभारनेवाली समझी जा रही है—लतीफ़ा तो यह है कि अफ़साने में एक इंसान को उसकी रही-सही इंसानियत एक बहुत बड़ी सजा देती है।

यह बात भी काबिले-गौर है कि ईशर सिंह को अपनी चिरी हुई गर्दन का बिलकुल एहसास नहीं, उसको तो आख़िरी साँस तक सिर्फ़ एक ही बात सताती रहती है : वह एक ठंडी लाश से ज़िना[133] करनेवाला था।

फ्रांस के मशहूर नावलनिगार फ्लाबेयर की तस्नीफ़ 'मादाम बोवारी' पर फ़हाशी के इल्ज़ाम में मुक़दमा चला तो वकीले-सफ़ाई मोसियो सेनार ने फ़ाज़िलाना बहस के दौरान में कहा : "हजरात! यह किताब, जो बक़ौल वकीले-इस्तिग़ासा शहवानी जज्बात को भड़काती है, मोसियो फ़्लाबेयर के वसी मुताले[134] और गौरो-फ़िक्र का नतीजा है। उसने अपनी तवज्जो मतीन[135] फ़ितरत की वसातत[136] से ऐसे ही मतीन और मलूल[137] मजामीन की तरफ़ मुन्अतिफ़[138] की है। वह ऐसा आदमी नहीं है जिसके ख़िलाफ़ वकीले-इस्तिग़ासा ने हेजानख़ेज़[139] तसवीरों की नक़्क़ाशी के इल्ज़ाम में जगह-जगह अपनी तकरीर में ज़हर उगला है—मैं फिर दोहराता हूँ कि फ़्लाबेयर की फितरत में बेइंतिहा संगीनी, शदीद संजीदगी और बेपनाह मलाल भरा पड़ा है।"

मैं अपने मुताल्लिक़ सिर्फ़ इतना कह सकता हूँ कि मैं एक शरीफ़ खानदान का फर्द हूँ। इत्तिफ़ाक़ से मेरा पेशा तस्नीफ़ो-तालीफ़[140] है। अपनी फ़ितरत, और जो तालीम और तर्बियत मुझे मिली है, उसकी बदौलत मैंने आज तक सस्ता और सूक़ियाना[141] अदब पेश नहीं किया। उर्दू के जदीद अदब से जो लोग ज़रा-सा भी वास्ता रखते हैं उनको मेरे अदबी मकाम का इल्म है—'ठंडा गोश्त' में फ्लाबेयर की फ़ितरत की बेइंतिहा संगीनी और शदीद संजीदगी शायद न हो लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि यह बेपनाह मलाल से भरा पड़ा है।

और जब सवाल मलाल का हो तो शहवत का सवाल ही कहाँ पैदा होता है।

अब अफ़साने को इस पहलू से भी देखा जाए कि मुसन्निफ़ की नीयत क्या है।

राय साहिब लाला सनराम की अदालत में अपने अफ़साने 'धुआँ' के सिलसिले में सफ़ाई का बयान देते हुए मैंने कहा था : तहरीरो-तकरीर में, शेरो-शाइरी में, संगसाज़ी और सनमसराशी में फ़हाशी तलाश करने के लिए सबसे पहले उसकी तरग़ीब टटोलनी चाहिए। अगर यह तरग़ीब मौजूद है, अगर इसका एक शायबा[142] भी नजर आ रहा है तो

वह तहरीर, वह शेर, वह बुत क़तई तौर पर फ़हश है।

ज़ाहिर है कि ऐसी कोई तरग़ीब ज़ेरे-बहस अफ़साने में नहीं है। मैं अफ़साने का तज्ज़िया ऊपर कर चुका हूँ जो यह साबित करने के लिए काफ़ी है कि मुसन्निफ़ की नीयत में कोई फ़र्क़ नहीं है और उसने महज़ एक नफ़्सियाती हक़ीक़त को उसके सही रूप में अफ़साने की सूरत में पेश किया है।

'ठंडा गोश्त' पढ़कर अगर किसी साहिब के जज़्बात बरअंगेख़्ता[143] हों तो उन्हें किसी ज़ेहनी मुआलिज[144] से रूजू करना चाहिए—'धुआँ' ही की सफ़ाई के सिलसिले में मैंने अपने बयान में कहा था : एक मरीज़ जिस्म, एक बीमार ज़ेहन ही ऐसा ग़लत असर ले सकता है। जो लोग रूहानी, जेहनी और जिस्मानी लिहाज़ से तंदुरुस्त हैं, असल में उन ही के लिए शाइर शेर कहता है, अफ़सानानिगार अफ़साना लिखता है और मुसव्विर तसवीर बनाता है मेरे अफ़साने तंदुरुस्त और सेहतमंद लोगों के लिए हैं, नार्मल इंसानों के लिए जो औरत के सीने को औरत का सीना ही समझते हैं, जो औरत और मर्द के रिश्ते को इस्तेजाब[145] की नजर से नहीं देखते

'ठंडा गोश्त' भी दूसरे अदबपारों की तरह सेहतमंद दिमाग़ों के लिए है, ऐसे दिमाग़ों के लिए नहीं जो मासूम और पाकीज़ा चीजों से भी शहवत कुरेद लेते हैं—अगर कोई औरत लोहे की मशीन की हरकत से शहवानी लज्जत हासिल करती है तो क्या लोहे की मशीन या उसकी हरकत पर सिफ़ली जज्बात बरअंगेख़्ता करने का इल्ज़ाम धरा जाएगा। दुनिया में तो ऐसे अशख़ास भी मौजूद हैं जो मुक़द्दस किताबों से भी शहवानी लज़्ज़त हासिल कर लेते हैं। ऐसे लोगों का तो इलाज होना चाहिए।

अमरीका में मशहूर मुसन्निफ़ जेम्स ज्वाइस की तस्नीफ़ 'यूलीसेस' को फहाशी से बरी करते हुए जज वूल्जे ने अपने फ़ैसले में लिखा था : एक ख़ास किताब ऐसे जज़्बात और ख़यालात पैदा कर सकती है या नहीं इसका फ़ैसला अदालत की राय में यह देखकर होगा कि औसत दर्जे के जिंसी जिबिल्लतें[146] रखनेवाले आदमी पर उसका क्या असर होता है, ऐसे आदमी पर जिसे फ्रांसीसी 'मामूली किस्म की हिस्सियात रखनेवाला इंसान' कहते हैं और जिसकी हैसियत कानूनी तफ़तीश की उस शाख़ में एक फ़र्ज़ी आमिल की होती है जैसे अदालते-ख़फ़ीफ़ा के मुक़दमों में 'समझबूझवाले आदमी' की हैसियत होती है या रजिस्ट्रेशन के क़ानून में ईजाद के मसले के मुताल्लिक़ 'फ़न के माहिर' की।

कानून का तअल्लुक़ सिर्फ़ औसत दर्जे के आदमी से है, चुनांचे 'ठंडा गोश्त' के मुताल्लिक कोई फ़ैसला मुरत्तब करने से पहले यह देखना चाहिए कि उसके मुताले से एक औसत दर्जे की जिंसी जिबिल्लतें रखनवाले आदमी के दिल और दिमाग़ पर क्या असर होता है।

मशहूर अमरीकी नावलनिगार अरस्काइन काल्डवैल की तस्नीफ़ 'गाड्स लिटिल ऐकर' को फ़हाशी के इल्ज़ाम से बरी करते हुए अदालत ने अपने फ़ैसले में लिखा था : मुसन्निफ़ का मक़सद एक सच्ची तसवीर पेंट करना था। ऐसी तसवीरों में बाज़ जरूरी तफ़्सीलों का आ जाना लाज़िमी अम्र है और चूँकि ऐसी तफ़्सीलों का गहरा तअल्लुक़ जिंदगी

के जिसी पहलू से होता है इसलिए उन्हें बहीमाना साफ़गोई के साथ बयान कर दिया जाता है। अदालत यह हुक्म सादिर नहीं कर सकती कि ऐसी तसवीरें सिरे से बनाई ही न जाएँ—किरदारों की ज़बान बिलाशुब्ह भद्दी और गंदी है मगर अदालत मुसन्निफ़ से अनपढ़ और ग़ैरमुहज़्ज़ब लोगों के मुँह में शाइस्ता ज़बान डाल देने का मुतालबा भी नहीं कर सकती।

'ठंडा गोश्त' एक सच्ची तसवीर है। इसमें कोई इबहाम नहीं। बड़ी ही बहीमाना साफ़गोई से इसमें एक नफ़्सियाती हक़ीक़त की नक़ाबकुशाई की गई है—अगर इसमें कहीं गंदगी और ग़लाज़त है तो उसे मुसन्निफ़ के साथ नहीं, अफ़साने के किरदारों की ज़ेहनी सतह के साथ मंसूब करना चाहिए—किसी तहरीर के चंद अल्फ़ाज़ अगर चिमटे से उठाकर लोगों को दिखाए जाएँ कि ये फ़हश हैं तो इससे कोई सही अंदाज़ा नहीं होगा। इन अल्फ़ाज़ की जुदागाना इशाअत क़ाबिले-गिरफ़्त हो सकती है, बिलकुल उसी तरह जैसे ग़ालिब, मीर, एरिस्टोफ़ीन, चॉसर, बुकैशियो बल्कि किताबे-मुक़द्दस तक के बाज़ मक़ामात को क़ाबिले-ताज़ीर गर्दाना जा सकता है, ताहम किसी तहरीर को समझने के लिए उसे मज्मूई तौर ही से देखना पड़ेगा।

मुझे आख़िर में यह कहने की इजाज़त दी जाए कि मुझे इंतिहाई अफ़सोस है, इस्तिग़ासे की तरफ़ से मेरी तस्नीफ़ 'ठंडा गोश्त' पर कोई अदबी तनक़ीद नहीं हुई। अगर ऐसा होता तो मुझे दिली मसर्रत होती। अफ़साने में अगर कोई फ़न्नी कमज़ोरी रह गई थी, बयान में अगर कोई सक़म[147] था, इंशा में अगर कोई ख़ामी थी तो मुझे इसका इल्म हो जाता और मैं कुछ हासिल कर पाता लेकिन मैं तो यहाँ मुल्ज़िमों के कटहरे में खड़ा हूँ और एक निहायत ही घिनावने इल्ज़ाम का मुँह देख रहा हूँ कि मैंने अपनी तस्नीफ़ के ज़रिए से लोगों के शहवानी जज़्बात उभारे हैं—इस इल्ज़ाम के ख़िलाफ़ मेरे दिल से एहतिजाज के सिवा और क्या चीज निकल सकती है।

हैरत है कि 'ठंडा गोश्त' पढ़कर क़ारी का ज़ेहन ख़ौफ़ो-नफ़रत में मलफ़ूफ़[148] होने की बजाय शहवत से मुलव्वस[149] हो सकता है!

और भी हैरत है कि ईशर सिह को जो हौलनाक सज़ा मिली, वो पढ़नेवाले के दिल और दिमाग़ में शहवानी जज़्बात बेदार कर सकती है!

→

107. मासिक प्रकाशन; 108. बहुत से लोग; 109. कामुकता; 110. ऐशो-आराम; 111. शाश्वत हर्ष; 112. प्रतिमा; 113. बेपर्दा; 114. नियम, सिद्धांत; 115. चरितार्थ, 116. निकालना; 117 संतुष्टी; 118. तंदुरुस्त; 119. युवती; 120. स्पष्ट; 121. संवाद, कथोपकथन; 122. कविता संग्रह, शेरो का संग्रह; 123. अवैध संतान; 124. पांडुलिपी; 125. एक गाली, 126 ज्यों-की-त्यो, हु-ब-हु, 127 रेशमी कपड़ा; 128. मुँह चुराना, बचना; 129. मददगार, 130. दिल, हृदय, 131. बुरा, गंदा; 132 बेकार, व्यर्थ; 133. बलात्कार; 134. गहन अध्ययन, 135 गंभीर; 136. माध्यम; 137 गंभीर; 138. आकर्षित; 139. उत्तेजक; 140. लेखन-संपादन; 141. बाजारू; 142. झलक; 143. भड़कना; 144. चिकित्सक; 145. आश्चर्य; 146. प्रवृत्ति; 147. ऐब, खराबी; 148. लिपटा हुआ, भरा हुआ; 149. मिलना, जुड़ना।

सोलह जनवरी आन पहुँची।

शेख़ सलीम बहुत परेशान था। इस परेशानी के बायस उसने ज़्यादा पीना शुरू कर दी। नसीर अनवर हस्बे-मामूल बेपरवा था। अज़ीज़ी आरिफ़ अब्दुल मतीन का हलक पहले से ज्यादा ख़ुश्क हो गया था।

सोलह जनवरी की सुबह को पाँच सौ रुपए जेब में डालकर मैं ज़िला कचहरी रवाना हुआ। शेख़ सलीम पहले ही से वहाँ मौजूद था। वह सुबह से पी रहा था। बोतल पतलून की जेब में थी। ख़ुद बहुत मुज़्तरिब[150] था लेकिन बार-बार तसल्ली देता था : "भाईजान, फ़िक्र की कोई बात नहीं, सब ठीक हो जाएगा।" मैं यह सुनकर मुसकरा देता।

इतने में नसीर अनवर और आरिफ़ अब्दुल मतीन भी आ गए। आरिफ़ ने मुझसे बड़े तश्वीश[151] भरे लहजे में पूछा : "मटो साहिब, आपका क्या ख़याल है, क्या होगा ?"

मैंने जवाब दिया : "वो जो मंज़ूरे-ख़ुदा होगा।"

मजिस्ट्रेट साहिब आ चुके थे मगर फैसला सुनाने के आसार दिखाई नहीं देते थे—ग्यारह बज गए, बारह बज गए, पानी पी-पीकर हमारे पेट अफर गए मगर आवाज़ न पड़ी। इतने में मेरे एक मुख़बिर ने मुझे बताया कि फ़ैसला तैयार है मगर मियाँ ए. एम. सईद इसमें शायद कुछ तरमीम[152] करना चाहते हैं।

थोड़ी देर बाद पता चला कि मियाँ साहिब ग़ायब हैं यानी अपने कमरे में मौजूद नहीं हैं और यह कि उन्होंने सुबह से किसी मुक़दमे को हाथ तक नहीं लगाया है—एक साहिब ने यह कहा कि वह बहुत परेशान हैं।

गरज जितने मुँह उतनी बातें।

थोड़ी देर के बाद मुख़बिर पक्की खबर लाया—एक तरफ़ ले जाकर उसने मुझसे सरगोशी में कहा : मैं फ़ैसला देख आया हूँ। जल्दी-जल्दी में देखा है और सिर्फ चंद आखिरी सुतूरें। आपको यकीनन सज़ा होगी और जुर्माना भी। आपके नाम के आगे यह लिखा है : 'and sentence him to undergo' इनका आगे जगह खाली है। दूसरे मुल्ज़िमों को सिर्फ़ जुर्माना होगा। मैं जाता हूँ और जामिन का बंदोबस्त करता हूँ।"

मैं सोचने लगा, सज़ा कितनी होगी ? एक माह की, दो माह की या चंद दिनों की ?

मैंने किसी से बात तक न की। अलबत्ता शेख़ ख़ुर्शीद साहिब को सबकुछ बता दिया। आपने फ़ौरन जमानत के कागज़ात तैयार कर लिए और मुझसे कहा : "घबराइए नहीं मंटो साहिब, सजा ज़्यादा-से-ज्यादा दस-बारह यौम[153] की होगी।" लेकिन फिर कुछ सोचकर तश्वीशनाक लहजे में कहा : "कहीं ऐसा न हो, वह ज़मानत लेने से इनकार कर दे।"

यह सुनकर मुझे बहुत तश्वीश हुई क्योंकि मजिस्ट्रेट साहिब का रवैया शुरू ही से

मुख़ासिमाना[154] रहा था। लेकिन कुछ किया भी तो नहीं जा सकता था। ख़ामोश दिल-ही-दिल में पेचो-ताब खाता रहा। आख़िर मुझसे न रहा गया और मैंने शेख़ सलीम को सारी बात बता दी। मेरे जी का बोझ तो किसी क़दर हल्का हो गया मगर शेख़ बेचारा और ज़्यादा मुज़्तरिब हो गया, लेकिन उसने तसल्ली देने की ख़ातिर मुझसे कहा : "कुछ फ़िक्र न करो भाईजान, मैं टैक्सी लेकर वहाँ जेल में पहुँचूँगा रुपया सबकुछ कर सकता है। आपको कोई तकलीफ़ नहीं होगी। मैं ऐसे मामले नबेड़ना जानता हूँ। मेरा ख़याल है, आप इस वक़्त एक बड़ा पैग लगा लीजिए "

मैंने कहा : "नहीं शेख़ साहिब, शाम को।"

शेख़ साहिब ने कहा : "तो आप मुतमइन रहें मैं आपको वहाँ पहुँचा दूँगा "

यह सुनकर मुझे बेइख़्तियार हँसी आ गई।

एक बज चुका था। शेख़ सलीम, नसीर अनवर और मैंने गवर्नमेंट कॉलेज के हास्टिल के सामने घास के मैदान पर बैठकर आलू-छोले खाए और इस ख़याल से कि कहीं आवाज न पड़ जाए, जल्दी लौट आए और फ़ैसले का इंतजार करने लगे।

नसीर अनवर और आरिफ़ अब्दुल मतीन से मैंने इशारतन कई बार कह दिया था कि वो जुर्माने का बंदोबस्त कर लें ताकि ऐन वक़्त पर परेशानी का सामना न करना पड़े—शेख़ सलीम पी-पीकर स्कीमें सोच रहा था कि वह जेल में मुझ तक कैसे पहुँचेगा और मेरी आसाइश[155] का बंदोबस्त किन ज़राए से करेगा।

अजीजी मुश्ताक़ अहमद अपने एक दौलतमंद दोस्त शरीफ़ साहिब को मेरी जमानत देने के लिए पकड़ लाए थे। ये ग़रीब भी हमारी तरह खड़े बोर हो रहे थे। शेख़ सलीम को गुस्सा था कि जब वह मौजूद है तो कोई और ज़मानत देने के लिए क्यों लाया गया है। मैंने उनसे कहा : "शेख़ साहिब, अगर आपको जमानत देने ही का शौक है तो दो मुल्जिम और मौजूद हैं।"

शेख़ साहिब उस वक़्त अच्छे मूड में थे, वो मेरी यह बात सुनकर मुसकरा दिए और एक पैग और चढ़ाकर स्कीमें सोचने में महव हो गए। उनको इस बात की बहुत फ़िक्र थी कि मंटो की शाम ख़राब हो जाएगी।

पाँच बज गए। तश्वीश और तरद्दुद बढ़ता गया। नसीर बिलकुल बेपरवा था जैसे कुछ होनेवाला नहीं। उसकी यह बेपरवाई क़ाबिले-रश्क थी। आरिफ़ अब्दुल मतीन का हलक़ अब इतना ख़ुश्क हो चुका था कि उसने बोलना बंद कर दिया था—साढ़े पाँच हुए तो हमें बुलाया गया। फ़ौरन शेख़ साहिब को इत्तिला दी गई। वो भागे-भागे आए और हम सब हाज़िरे-अदालत हुए।

मियाँ ए. एम. सईद दाँतों तले क़लम दबाए, सामने मेज़ पर फ़ैसले के काग़ज़ रखे सोच में ग़र्क़ बैठे थे। शेख़ ख़ुर्शीद के चेहरे से साफ़ ज़ाहिर था कि वो बेहद मुज़्तरिब है। मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। शेख़ सलीम का रंग जर्द था। आरिफ़ अब्दुल मतीन बार-बार होंठों पर ख़ुश्क ज़बान फेर रहा था—नसीर अनवर उसी तरह बेपरवा था।

प्रेस रिपोर्टर मौजूद थे। काग़ज़-पैंसिल हाथ में लिए वो बड़ी बेचैनी से फ़ैसले का

इंतज़ार कर रहे थे। चंद लम्हात मुकम्मल सुकूत तारी रहा, इसके बाद मियाँ ए. एम. सईद साहिब खंकारे, दाँतों की गिरफ़्त से क़लम आज़ाद किया, निब को रोशनाई दिखाई, फ़ैसले के काग़ज़ उलट-पलट किए और बहुत सोच-सोचकर एक काग़ज़ पर ख़ाली जगहें पुर कीं। इसके बाद मेरे बारे में अपना फ़ैसला सादिर फ़रमाया . तीन महीने क़ैदे-बा-मशक़्क़त और तीन सौ रुपए जुर्माना। अदम-अदायगी-ए-जुर्माना की सूरत में इक्कीस यौम मज़ीद क़ैदे-बा-मशक़्क़त।

शेख सलीम का रंग और ज़्यादा ज़र्द हो गया। उसने निगाहों-ही-निगाहों में मुझे तसल्ली दी। गोया यह कह रहा हो कुछ फ़िक्र न करो, मैं वहाँ जेल में ज़रूर पहुँचूँगा

मैं यह सोचने लगा था कि मजिस्ट्रेट ज़मानत क़ुबूल करेगा या नहीं थोड़े वक़्फ़े के बाद मियाँ ए. एम. सईद ने दूसरी ख़ाली जगहें पुर कीं और बक़ाया दो मुल्ज़िमीन के बारे में फ़ैसला सुनाया तीन-तीन सौ रुपया जुर्माना। अदम अदायगी-ए-जुर्माना की सूरत में इक्कीस यौम क़ैदे-बा-मशक़्क़त।

मैंने जुर्माना दाख़िल कर दिया। शेख ख़ुर्शीद साहिब ने मेरी ज़मानत के काग़ज़ पेश किए तो मियाँ ए. एम. सईद ने कहा "मैं अगर ज़मानत मंज़ूर करता हूँ तो सज़ा का मतलब ही फ़ौत[156] हो जाता है"

शेख ख़ुर्शीद साहिब ने यह इस्तिदलाल[157] पेश किया "आपका इर्शाद दुरुस्त। मुल्ज़िम ने जुर्माना अदा कर दिया है जो अपील मंज़ूर होने की सूरत में यक़ीनन वापस मिल जाएगा। लेकिन वो दो-तीन दिन जो ज़मानत होने से पहले मेरा मुवक्किल जेल में काटेगा, अपील मंज़ूर होने पर क्या उसे वापस मिल जाएँगे"

इस्तिदलाल बहुत माक़ूल था मगर फिर भी मियाँ ए. एम. सईद कुछ देर अड़े रहे, आख़िर में उन्होंने करमफ़र्माई[158] की और मेरी ज़मानत क़ुबूल कर ली।

आरिफ़ अब्दुल मतीन के वालिद साहिब ने उनका जुर्माना अदा कर दिया—अब रह गए नसीर अनवर। उनसे पूछा गया तो उन्होंने बड़ी बेपरवाई से कहा "मेरे पास तो फ़िलहाल कुछ भी नहीं है"

मजिस्ट्रेट साहिब ने हुक्म दिया कि हथकड़ी लगाओ और जेल में भेज दो।

नसीर अनवर उसी तरह ख़ामोश खड़ा रहा।

मेरे पास दो सौ रुपए मौजूद थे। चौ. नज़ीर, मालिक 'नया इदारा' से मैंने कहा कि वो एक सौ रुपए का बंदोबस्त कर दें मगर उनसे बंदोबस्त न हो सका। सिपाही हथकड़ियाँ लिए नसीर की पीठ पीछे खड़ा था। उनकी झनकार अदालत के कमरे में गूँज रही थी। बाहर पुलिस वैन थी, यानी सारे लवाज़िमात मौजूद थे।

आख़िर ख़ुर्शीद साहिब ही काम आए। आपने मियाँ ए. एम. सईद साहिब से बड़े मुनासिब और मौज़ूँ अल्फ़ाज़ में दरख़्वास्त की कि वो नसीर अनवर की ज़मानत ले लें, जुर्माने का रुपया वो कल सुबह दाख़िल कर देंगे। मजिस्ट्रेट साहिब ने यह दरख़्वास्त क़ुबूल कर ली। अब ज़ामिन का सवाल था। शेख ख़ुर्शीद साहिब ने पूछा : "इनकी ज़मानत कौन देगा?"

कोई आगे न बढ़ा। अचानक शेख़ सलीम ने, जो अब तक नशे में धुत हो चुके थे, शेख़ ख़ुर्शीद साहिब से मख़मूर[159] लहजे मे कहा : "नसीर साहिब की ज़मानत मैं देता हूँ "

मेरा दिल धडकने लगा—अगर अदालत को मालूम हो गया कि शेख साहिब पिए हुए हैं तो उनकी ज़मानत कौन देगा ?

मुझे यकीन था कि वो ज़रूर धर लिए जाएँगे और सारा मामला चौपट हो जाएगा मैं इसी ख़ौफ के मारे कमरे से बाहर चला गया।

मैं बार-बार अंदर झाँककर देखता कि शेख सलीम गिरफ्तार हुए हैं या कि नहीं, लेकिन खैरियत गुजरी, नसीर अनवर की जमानत हो गई शेख साहिब झूमते हुए बाहर निकले और मुझे गले लगाकर रोने लगे : "अल्लाह मियाँ ने मेरे भाई को बचा लिया।" यह कहकर आपने जेब मे बोतल निकालकर एक घूँट भरा जो कि आखिरी था : "चलो भई चलें, कहीं दूकान बद न हो जाए "

नसीर अनवर बहुत ममनूनो-मुतशक्किर[160] था। बार-बार शेख़ सलीम का शुक्रिया अदा करता था। शेख़ साहिब ने उससे कहा . "शुक्रिया अदा करने की कोई जरूरत नही। मैंने अपना फ़र्ज अदा किया है। आप मेरे दोस्त के दोस्त हैं "

अब सेशन में अपील करने की तैयारियाँ शुरू हुईं—मियाँ ए.एम. सईद के फ़ैसले की नक़ल हासिल करने के लिए दरख्वास्त दी गई। जब नकल न मिली तो दरख्वास्त के साथ नौ 'पहिए' लगाए गए, नकल फौरन मिल गई।

मियाँ साहब का फैसला अंग्रेजी में था। जेल मे उसका उर्दू तर्जमा दर्ज है.



150 बेचैन; 151. अफसोस, चिंतित, 152. परिवर्तन, 153 दिन, 154 पक्षपातपूर्ण, विद्वेषपूर्ण, 155. ऐशो-आराम; 156. समाप्त; 157 तर्क; 158 दया, मेहरबानी, 159. नशीले, 160 एहसानमद, कृतज्ञ।

फ़ैसला

एक उर्दू रिसाला बनाम 'जावेद' के एडिटर आरिफ अब्दुल मतीन, और उसके पब्लिशर नसीर का मय एक मुसन्निफ मुसम्मा[162] सआदत हसन मंटो को मेरे पास मुक़दमा ज़ेरे दफ़ा 292 पी. पी. एस. के लिए भेजा गया है। मौख़िरुल्-ज़िक्र[163] मुल्जिम के ख़िलाफ ये इल्जाम है कि वह एक फ़हश कहानी, जिसका उनवान 'ठंडा गोश्त' है, का मुसन्निफ़ है और जो मज्कूराबाला[164] रिसाला के एक खास नंबर में शाया हुई है। दूसरे दो मुल्जिमो के ख़िलाफ़ यह इल्जाम है कि उन्होंने इस कहानी को मुदर्जाबाला[165] अंदाज में शाया करने का जुर्म किया है।

रिसाला 'जावेद' का खास नंबर मार्च 1949 ई. में शाया हुआ था। यह सैयद ज़िया-उद्दीन मुतर्जिम[166] प्रेस ब्रांच, हुकूमते-पंजाब के इल्म में आया जो इस मुकदमा में गवाहे-इस्तगासा 3 की हैसियत से पेश हुआ है। उसका यह फ़र्ज़ है कि वह किसी भी नवाशुदा चीज में कोई फ़हश मवाद महसूस करे तो उसके बारे में हुकूमते-पंजाब को मुत्तला करे। उसके ख़याल में मज्कूराबाला एडिशन में शायाशुदा कहानी बउनवान 'ठंडा गोश्त' फ़हश थी, चुनाचे उसने हुकूमते-पंजाब की तवज्जोह इस तरफ मब्ज़ूल[167] करवाई और इस सिलसिले में क़ानूनी कार्रवाई के लिए कहा।

इस कहानी की तस्नीफ और खास नंबर में इसकी इशाअत से इनकार नहीं किया गया है, और न पहले दो मुल्जिम रिसाले के मुदीर[168] और नाशिर[169] होने से मुन्किर[170] हैं। लिहाज़ा अब सवाल सिर्फ यह रह जाता है कि कहानी बउनवान 'ठंडा गोश्त' फ़हश है या नहीं।

इस्तगासे ने मज़्कूरा रिसाले के खास नंबर को पेश किया है जो रिकार्ड में Ex. P. F. की हैसियत से दर्ज किया गया है। कहानी जो इस कानूनी चाराजोई[171] का मौज़ू है, इस शुमारे के सफ़हा 88 से 93 तक छपी है, मैंने निहायत गौर से इस कहानी को पढ़ा है जो मौज़ू की तश्कील करती है और देखा है कि इस (कहानी) में गंदा तर्जे-बयान और नाशाइस्ता गालियाँ इस्तेमाल की गई हैं। मैंने यह भी महसूस किया है कि इस कहानी में कई शहवतपरस्ताना[172] मकामात पेश किए गए हैं और जिन्सी इशारात का अक्सर ज़िक्र किया गया है।

यह तय करने के लिए कि आया कोई तस्नीफ, मसलन ज़ेरे-बहस कहानी, फ़हश है या नहीं, ज़रूरी है कि एक मेयार मुक़र्रर किया जाए जिससे फ़हाशी की तमीज़ की जा सके।

3 क्यू. बी. (1868 ई.) में हिक्लिन रिपोर्ट में इसी मौज़ू के एक मशहूर मुक़दमे में लॉर्ड कोकबर्न सी.जे. ने सफ़हा 360 ता सफ़हा 371 पर फ़हाशी का यह मेयार मुक़र्रर किया था : इस क़िस्म का इल्ज़ामज़दा मवाद जो उन लोगों को बदअख़लाक़ी और बदचलनी की तरग़ीब दे जिनके अज़हान[173] इस क़िस्म के मख़र्रिबुल-अख़लाक़ असरात क़ुबूल कर सकते हों और जिनके हाथों में इस क़िस्म का मवाद[174] पहुँच सकता हो—मालूम होता है कि हिंदुस्तान की तमाम अदालत-हाए-आलिया हमेशा इस मेयार की तक़लीद[175] करती रही है। इस मेयार से यह ज़ाहिर है कि क़ानून में मुस्तामला[176] उर्यानी इस माहौल से मुताल्लिक़ है जिसमें कि यह जाँची जाती है, (यानी) वो बातें जो एक पाकिस्तानी के अख़लाक़ के लिए ज़रर-रसा[177] ख़याल की जाएँ। जहाँ तक एक फ़्रांसीसी का तअल्लुक़ है (वो बातें) बिलकुल बेज़रर[178] समझी जा सकती हैं—हर सोसायटी के अपने अख़लाक़ी मेयार होते हैं और वो चीज़ें जो एक सोसायटी का अख़लाक़ी क़िवाम ख़याल की जाती हैं, बाज़औक़ात उसी दूसरी सोसायटी के मेयार के मुताबिक़ ग़ैर-अख़लाक़ी हो सकती हैं। इसी तरह इज़हार के बाज़ असालीब[179] का असर मुख़्तलिफ़ सोसायटियों के अफ़राद पर मुख़्तलिफ़ होता है, ख़्वाह यह इज़हार मुख़ालिफ़ मेयार[180] के नज़दीक ग़ैरअख़लाक़ी हो क्यों न हो, इसलिए ज़ेरे-बहस कहानी के फ़हश या ग़ैरफ़हश होने का फ़ैसला पाकिस्तान के मुरव्वजा अख़लाक़ी मेयारों के पसमंज़र पर करना होगा और उस असर के मुताबिक़ जो इस क़िस्म की तहरीर इस सोसायटी में रहनेवाले लोगों के अज़हान पर डालेगी।

लॉर्ड कोकबर्न का क़ायम कर्दा मेयार एक मुकम्मल और जामे तारीफ़ नहीं है। यह जैसा कि इसका मफ़हूम ज़ाहिर करता है, सिर्फ़ एक मेयार है। इसके अलावा कुछ और भी मेयार हो सकते हैं। उनमें से एक वह रुजहान है (यह इल्ज़ामज़दा मवाद में मौजूद है) जो क़ारईन के अख़लाक़ी एहसासात को ठेस पहुँचाता है। ये मेयार भी क़ारईन के अख़लाक़ पर मुन्हसिर है।

इस्तग़ासा ने इब्तिदा में सिर्फ़ पाँच गवाह पेश किए और केस बंद कर दिया।

गवाह इस्तग़ासा नंबर एक मि. मुहम्मद याक़ूब, मैनेजर कपूर प्रिंटिंग प्रेस, गवाह नंबर दो शेख़ मुहम्मद तुफ़ैल, गवाह नंबर चार मिर्ज़ा मुहम्मद असलम और गवाह इस्तग़ासा नंबर पाँच ख़ुदाबख़्श ने इन उमूर के मुतअल्लिक़ शहादत दी जिनका फ़हाशी से कोई तअल्लुक़ नहीं। गवाह इस्तग़ासा नंबर तीन सैयद ज़िया-उद्दीन ने दूसरे उमूर पर बयान करने के अलावा अपनी राय ज़ाहिर की कि ज़ेरे-बहस कहानी फ़हश है, ताहम रिकार्ड में कोई इस क़िस्म का मवाद नहीं जिसमें ज़ाहिर हो कि यह गवाह माहिर-अदब समझा जा सकता है। मेरे ख़याल में क़ानूने-शहादत की दफ़ा नंबर 45 की रू से उसकी शहादत क़ाबिले-क़बूल नहीं है। इसलिए जहाँ तक फ़हाशी के मसले का तअल्लुक़ है, इस्तग़ासा का केस जैसा कि इब्तिदाअन[181] पेश किया गया है, ख़ुद अदालत की राय और इल्ज़ामज़दा मवाद के मुताले के बाद उसकी माहियत पर मुन्हसिर हो गया।

मुल्ज़िमान ने सफ़ाई में सात गवाह अदबी उमूर के माहिरीन की हैसियत से पेश किए।

इन गवाहों की शहादत से यह साबित करना मकसूद था कि ज़ेरे-बहस तहरीर फ़हश नहीं है। सफाई के इख्तिताम पर इस्तिगासे ने दरख्वास्त की कि मसले की अहमियत के पेशे-नजर कुछ और माहिरीन बतौर अदालती गवाह बुलाए जाएं और मैंने इसाफ की खातिर चार और माहिरों को बतौर अदालती गवाह बुलवाया।

बेशतर माहिरीन ने ख्वाह वो सफाई की तरफ़ से पेश हुए या अदालत की तरफ़ से, किसी-न-किसी फरीक के हक में राय दी कि ज़ेरे-बहस कहानी फहश है या नहीं—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ताजीरात में फहाशी की जो इस्तिलाह[182] इस्तेमाल हुई है, उसकी टैक्नीकल अहमियत है जिसका तअय्युन[183] अदालत को करना है। माहिरीन की शहादत उसी हद तक जरूरी है जहां तक यह अदब की मुरव्वजा मेयारों, इजहार की शुस्तगी, सौकियानापन, अखलाकी या गैर-अखलाकी हैसियत और उस रुजहान के मुताल्लिक जो कोई तहरीर कारिईन के अज़हान पर असर अंदाज हो, रोशनी डालती है। इन उमूर में यह तअय्युन करना अदालत का काम है कि कोई चीज 'फहाशी' की शराइत को पूरा करती है या नहीं।

सफाई के गवाह नंबर एक मि. आबिद अली आबिद, नंबर दो मि. अहमद सईद, नंबर तीन डॉ. ... अब्दुल हकीम, नंबर चार डॉ. सईद-उल्लाह, नंबर पाँच फैज़ अहमद फैज़, नंबर छः सूफी गलाम मुस्तफा तबस्सुम और नंबर सात डॉ. आई. लतीफ सब साहिबे-इल्म हैं। उनके खयाल के मुताबिक, क्योंकि आर्ट जिंदगी का आईनादार है, इसलिए फनकार कोई ऐसी चीज जो जिंदगी की सच्ची तसवीर हो, हकीकतपसंदाना तौर पर पेश करने में अपने हकूक से तजावुज[184] नहीं करता। इसलिए वो यह जवाज पेश करते हैं कि जिंदगी का हकीकतपसंदाना इजहार फहश नहीं हो सकता। वो ज़ेरे-बहस कहानी की गैरशाइस्ता जबान और उसके सौकियाना मुहावरों को भी काबिले-गिरफ्त नहीं समझते, क्योंकि ये (मुहावरे) इस किस्म की गुफ्तगू की नुमाइंदगी करते हैं जो पेशकर्दा किरदार की सौ के लोग बोलते हैं—इनमें से बाज़ (गवाहों) ने यह कहा है कि कहानी में कारिईन के अखलाक को बिगाड़ने का कोई मैलान नहीं पाया जाता। बाज़ ने इस नुक्ते पर खामोशी इख्तियार की है।

अदालती गवाह नंबर एक मौलाना ताजवर, नंबर दो आगा शोरिश काश्मीरी, नंबर तीन मौलाना अबु सईद बज्मी और नंबर चार डॉ. तासीर भी इसी पाये के इल्मी आदमी हैं। इन गवाहों की शहादत से यह बात नुमायाँ होती है कि ज़ेरे-बहस कहानी बुरा अदब है और गैरशाइस्तगी से पेश की गई है।

सफाई के गवाह नंबर सात डॉ. आई. लतीफ़ ने राय जाहिर की कि अगर ज़ेरे-बहस कहानी किसी मेडीकल जरीदे[185] में शाया होती तो यह एक सबक-आमोज[186] केस हिस्ट्री होती लेकिन एक मकबूले-आम रिसाले में, जिसे हर शख्स पढ़ सकता है, यह नामौज़ूं मालूम होती है।

सफाई के गवाह नंबर पाँच कर्नल फैज अहमद फ़ैज का ख़याल है कि अगरचे वह इसे फ़हश नहीं कह सकते, ताहम[187] यह कहानी अदब का कोई अच्छा नमूना नहीं है। इसमें

बाज़ ग़ैरशाइस्ता मुहावरे इस्तेमाल किए गए हैं जिनसे इज्तिनाब[188] किया जा सकता था।

अदालती गवाह नंबर एक मौलाना ताजवर ने इसकी सख़्त और ग़ैरमुबहम[189] अल्फ़ाज़ में मज़म्मत[190] की और कहा कि उन्होंने अपने चालीस साला अदबी तजुर्बे में इससे ज़्यादा कोई चीज ग़ैरशाइस्ता नहीं देखी।

अदालती गवाह नंबर चार डॉ. तासीर की राय है कि इसमें उन लोगों का अख़लाक़ बिगाड़ने का रुजहान मौजूद है जो शहवानी हिर्स की तरफ़ माइल होते हैं।

पाकिस्तान के मुरव्वजा[191] अख़लाक़ी मेयार क़ुरआने-पाक की तालीम के हवाले से बहुत सही तौर पर मालूम हो सकते हैं। कहा जाता है कि गैरशाइस्तगी और शहवानियत की लगाम शैतान के हाथ में होती है। गैरशाइस्तगी, शहवानियत, नफ़्सपरस्ती[192] और सूक़ियानापन ज़िंदगी में मौजूद है। अगर अदबी मज़ाक़ के इस मेयार को तसलीम कर लिया जाए जिसे सफाई के गवाहों ने बयान किया है तो जिंदगी के पहलुओ का हक़ीक़तनिगाराना इज़हार अच्छा अदब हो सकता है, लेकिन फिर भी यह हमारे मुआशरे के अख़लाक़ी मेयार की ख़िलाफवर्ज़ी करेगा।

मुल्ज़िम सआदत हसन मंटो की लिखी हुई कहानी एक सूक़ियाना आदमी के किरदार को पेश करती है जो अपनी माशूका से, जिसे बहुत शहवतपरस्त दिखाया गया है, वहशियाना और सूकियाना अंदाज से जिंसी फेल का तालिब होता है। जिंसी तज्मीन[193] के साथ ग़ैरशाइस्ता गालियो का इस्तेमाल आम किया गया है। जिंसी नौ के अफआल[194] के सिलसिले में निस्वानी जिस्म की बाज पोशीदा आज़ा[195] का ज़िक्र निहायत बदतहजीबी से किया गया है। सारी कहानी एक नाशाइस्ता जिंसी मामले पर मर्कूज़[196] है। दरहक़ीक़त जिंसी बदतहजीबी ही इस कहानी का बुनियादी तसव्वुर है।

अदबी और नफ्सियाती माहिर कहानी का एक खास अंदाज से रद्दे-अमल कुबूल कर सकते हैं, ताहम मेरी राय में एक अल्हड़ नाबालिग पर इस क़िस्म की कहानी का रद्दे-अमल, इजहार, बोलचाल और खयालात में गैरशाइस्तगी की हौसलाअफज़ाई की सूरत में होगा।

सआदत हसन मंटो जैसे बज़ोमे-ख़ुद[197] मशहूर मुसन्निफ़ की मिसाल पेशे-नज़र रखते हुए वो नौजवान जो इस कहानी को पढ़ेंगे, इसी तरह से गैरशाइस्तगी को तर्क़ियत[198] देंगे।

कहानी बउनवान 'ठंडा गोश्त' को ग़ौर से पढ़ने के बाद मुझे इत्मीनान हो गया है कि इसमें क़ारिईन[199] का अख़लाक बिगाड़ने का मैलान मौजूद है और यह हमारे मुल्क के मुरव्वजा अख़लाक़ी मेयारों की ख़िलाफवर्ज़ी करती है। इसलिए मैं मुल्ज़िम सआदत हसन मंटो को एक फहश तहरीर पेश करने का ज़िम्मेदार ठहराता हूँ और उसे ज़ेरे-दफ़ा 292, पी.पी.सी. तीन माह क़ैदे-बा-मशक्कत और तीन सौ रुपए जुर्माने की सजा देता हूँ। अदम अदायगी-ए-जुर्माना की सूरत में उसको मज़ीद इक्कीस यौम की सज़ा भुगतनी पड़ेगी।

मुल्ज़िमीन आरिफ़ अब्दुल मतीन और नसीर अनवर जो वाज़ेह तौर पर जरीदे के मुदीर और नाशिर हैं जिसमें मज़्कूरा कहानी शाया हुई है, एक फ़हश तस्नीफ़ की इशाअते-आम के मुजरिम हैं और वो भी इसी दफ़ा के तहत आते हैं। ताहम उनके मामले में उनकी कमउम्री के पेशे-नज़र और फिर यह कि कहानी का मुसन्निफ़ एक ऐसा शख़्स था जो ख़ासी अदबी शुहरत का मालिक है, उन्होने इस एतिमाद की वजह से कहानी कुबूल कर ली होगी कि यह काबिले-कुबूल अदबपारा है, मैं उन हर दो मुल्जिमों के लिए तीन-तीन सौ रुपया जुर्माने की नर्म सजा तज्वीज़ करता हूँ। चूँकि यह इंसाफ़ के तकाज़ों को पूरा करेगी, इसलिए मैं इसके मुताबिक हुक्म देता हूँ। अदम-अदायगी-ए-जुर्माना की सूरत में मुल्ज़िमीन आरिफ़ अब्दुल मतीन और नसीर अनवर को इक्कीस यौम कैदे-बा-मशक्कत भुगतनी पड़ेगी।

दस्तख़त

ए. एम. सईद

मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल

लाहौर

→

---

161. नीचे, 162. नाम, 163. अंत में वर्णित, 164 उपरोक्त, 165. उपरिलिखित; 166. अनुवादक, 167. आकर्षित,; 168. संपादक; 169. प्रकाशक; 170. इनकार करनेवाला, किसी बात से मुकर जानेवाला; 171. दावा करना, मुकद्दमा; 172. कामुकतापूर्ण; 173. मानसिकता; 174. विषय-वस्तु, छपा हुआ अंश; 175. पैरवी, अनुकरण; 176. व्यावहारिक, 177. नुकसानदेह, हानिकारक; 178. हानिरहित, 179. रिवाजों, तरीक़ों; 180. स्तर; 181. आरंभिक; 182. परिभाषा; 183. विवेचना, निश्चित, 184. उल्लंघन; 185. अंक (पत्रिका का), 186. अनुकरणीय, शिक्षापूर्ण; 187. फिर भी; 188. बचा जाना, परहेज़; 189. स्पष्ट; 190. निंदा; 191. व्यावहारिक; 192. विषयलोलुप, कामुक; 193. उल्लेख; 194. कार्यों; 195. गुप्तांग, 196. केंद्रित; 197. स्वय के कथनानुसार; 198. बढ़ावा; 199. पाठकों।

28 जनवरी, 1950 ई. को सेशन में अपील दाइर कर दी गई—तारीख मिलने पर हम महरुल हक़ साहिब, सेशन जज, लाहौर की अदालत में पेश हुए। आपने इस बिना पर कि वह मुझे और मेरे ख़ानदान को बहुत अच्छी तरह जानते हैं और हमशहर (अमृतसर) के है, मुक़दमा मि. जोशुआ, एडीशनल सेशन जज की अदालत में मुंतक़िल कर दिया।

दूसरी पेशी पर हम हाजिर हुए तो मालूम हुआ कि मि. जोशुआ ने केस वापिस महरुल हक साहिब को भेज दिया है, यह उज्र जाहिर करके कि वह उर्दू जबान अच्छी तरह नहीं जानते।

महरुल हक़ साहिब ने सोच-विचार के बाद मुक़दमा इनायत-उल्लाह ख़ाँ साहिब, एडीशनल सेशन जज की अदालत के सिपुर्द कर दिया—हम हाजिर हुए तो इनायत-उल्लाह साहिब ने हमारे वकील से फरमाया : "यह केस चूँकि मेरे लिए अपनी नौइयत[200] का पहला केस है, इसलिए मैं अच्छी तरह स्टडी करना चाहता हूँ और इसके लिए वक़्त दरकार है। मैं आपको एक महीने बाद की तारीख देता हूँ।"

शेख़ ख़ुर्शीद अहमद ने कहा, "ठीक है।" चुनांचे दलाइल[201] के लिए 10 जुलाई की तारीख़ मुक़र्रर हो गई।

शेख़ ख़ुर्शीद अहमद साहिब ने अदालत से बाहर आकर मुझसे कहा : "अच्छा है, इस दौरान में मैं भी ख़ूब तैयारी कर लूँगा।" लेकिन उन्होंने अंदेशा जाहिर किया कि हमारा केस ग़लत आदमी के पास गया है जो बड़ा तंग ख़याल है, दाढ़ी रखता है, नमाज़-रोज़े का पाबंद है।

मैंने कहा : "हटाइए, यहाँ नहीं तो हाई कोर्ट में देखा जाएगा।"

शेख़ ख़ुर्शीद साहिब ने इस दौरान में अपनी रहबरी[202] के लिए मुझसे कहा कि मैं अपने अफ़साने 'ठंडा गोश्त' पर एक मुख़्तसर-सा तब्सिरा लिख दूँ, चुनांचे मैंने दर्ज जैल सुतूर लिखकर उनके हवाले कर दीं :

→

200. क़िस्म, प्रकार, 201. सबूत पेश करना या तर्क देना, 202. मार्गदर्शन।

तब्सिरा

यूँ तो कहानी बजाहिर जिंसी नफ्सियात के एक नुक्ते के गिर्द घूमती है लेकिन दरहकीकत इसमें इंसान के नाम एक निहायत ही लतीफ़ पैगाम दिया गया है कि वह जुल्मो-तशद्दुद और बरबरीयतो-हैवानियत[203] की आख़िरी हद्द[204] तक पहुँचकर भी अपनी इंसानियत नहीं खोता। अगर ईशर सिंह अपनी इंसानियत खो चुका होता तो मुर्दा औरत का एहसास उस पर इतनी शिद्दत से कभी असर न करता कि वह अपनी मर्दानगी ही से आरी हो जाता।

इतने शदीद किस्म के असर को नफ्सियाती नुक्ता-ए-निगाह से मुनासिब व मौजूँ और करीब-अज-हकीकत दिखाने के लिए जरूरी था कि ईशर सिंह को जिंसी लिहाज़ से आम मर्दों के मुकाबले से ज्यादा कवी[205] बताया जाता, चुनांचे मुसन्निफ़ ने कहानी में जगह-जगह अपने क़लम की जुंबिश से बकदरे-किफायत ऐसा किया है।

ईशर सिंह के किरदार के जिंसी पहलू को और ज्यादा उजागर करने और इस तरह उसके दर्दनाक अंजाम को कारी के लिए काबिले-कुबूल बनाने के लिए मुसन्निफ़ ने कुलवंत कौर का किरदार पेश किया है जो ईशर सिंह ही की तरह आम औरतों के मुकाबले में जिंसी लिहाज से कहीं ज्यादा कवी और तवाना है।

अगर ईशर सिंह एक आम मर्द होता, उसी तरह अगर कुलवंत कौर एक आम औरत होती तो यकीनी तौर पर अफसाना 'ठंडा गोश्त' का अंजाम कुछ और ही होता। आम मर्द पर, जिसका जिंसी तअल्लुक एक आम औरत से रहा हो, एक लड़की की ठंडी लाश हरगिज-हरगिज वह नफ्सियाती असर नहीं कर सकती जो ईशर सिंह ने अपने कवी और तवाना जिंसी किरदार के बायस महसूस किया, और इस शिद्दत से महसूस किया कि वह उसके नीचे दबकर, बल्कि पिसकर अपनी मर्दानगी खो बैठा।

शहवत एक जज़्बा-ए-आतशीं है। इंसान में अगर यह जज्बा बेदार हो तो उसके जिस्म में गर्म रौ दौड़ जाती है, उसका दर्जा-ए-हरारत बढ़ जाता है, उसका दिलो-दिमाग तप जाता है—जेरे-बहस अफ़साने का उनवान 'ठंडा गोश्त' है। जाहिर है कि यह उनवान जो कि मानवी एतबार ही से ठंडा है, कारी के दिलो-दिमाग़ में किसी किस्म की गर्मी पैदा नहीं कर सकता।

अगर कोई औरत जिंसी लिहाज़ से कमज़ोर हो तो हम उसे 'ठंडी औरत' कहते हैं, यानी ऐसी औरत जो मर्द में जिंसी ख़्वाहिश पैदा नहीं करती। अफ़साना 'ठंडा गोश्त' में क्लाइमैक्स पैदा करनेवाली एक लड़की की ठंडी लाश है, ऐसी ठंडी लाश जो ईशर सिंह-जैसे पुरजोश शहवानी मर्द की सारी मर्दानगी पर बर्फ की सिल की तरह गिरती है और उसे यखबस्ता कर देती है—हम बख़ूबी सोच सकते हैं कि 'ठंडा गोश्त' पढ़नेवाले क़ारिईन पर, जो यक़ीनन ईशर सिंह की तरह पुरजोश शहवानी इंसान नहीं हो सकते, इस कहानी के अंजाम ने किस क़िस्म का असर छोड़ा होगा—सफ़ाई के गवाह डॉ. सईद-उल्लाह एम. ए., एल. एल. बी., पी-एच. डी., डी. एस-सी., ने अपने तास्सुरात को मुख़्तसर मगर जामे-अल्फ़ाज़ में क्या ख़ूब बयान किया है : अफसाना 'ठंडा गोश्त' पढ़ने के बाद मैं खुद ठंडा गोश्त बन गया।

जहाँ तक नार्मल इंसानों का तअल्लुक़ है, हम बिला-ख़ौफे-तरदीद कह सकते हैं कि यह अफ़साना पढ़ने के बाद उनका रद्दे-अमल ब-ईनहु[206] ऐसा ही होगा। यह जुदा बात है कि वो डॉ. सईद-उल्लाह साहिब की तरह अपने महसूसात को ब-तरीक़े-एहसन बयान न कर सकें।

एबनार्मल इंसानों के मुताल्लिक़ हम कुछ नहीं कह सकते क्योंकि ऐसे लोग मौजूद हैं जो लाशों से भी मुबाशरत[207] कर सकते हैं।

'ठंडा गोश्त' में मर्द और औरत के जिंसी तअल्लुक़ात को किसी मक़ाम पर भी लजीज अंदाज़ में पेश नहीं किया गया। अव्वलन इसलिए कि ऐसा अदाज़ अफसाने के मकसद से मुतसादिम[208] था। सानियन[209] इसलिए कि अफ़साने का मुसन्निफ़ 'शहवतनिगार' नहीं है। 'ठंडा गोश्त' कोई जोडदार आसन नहीं पेश करता, इम्साक[210] का नुस्खा नहीं बताता, किसी ख़ुफ़िया तसवीर की झलक नहीं दिखाता—'ठंडा गोश्त' एक दर्दनाक तसवीर है, एक ऐसे मर्द की जिसमे इंसानियत की रमक, उसके किरदार की तमाम हौलनाकियो के बावुजूद बाक़ी थी। इस रमक़ ने गो उसे अंजामकार नामर्द बना दिया और वह अपने जिंसी रफ़ीक़ के हसद के बायस निहायत ही तकलीफ़देह मौत से हमकनार हुआ। लेकिन यह बात क़ाबिले-गौर है कि मरते हुए उसे अपनी मौत का एहसास बिलकुल नही था, इसलिए कि उसके दिलो-दिमाग पर सिर्फ़ एक चीज़ मुसल्लत[211] थी : उस लडकी की लाश का बर्फ़नाक रद्दे-अमल जिसके साथ वह मुबाशरत करना चाहता था।

मरने से पहले ईशर सिंह को अपनी बहीमियत[212] का एहसास भी हुआ। और यह एहसास उसके इर्द-गिर्द फैली हुई जुलमत में रोशनी की एक किरन थी। लहू ईशर सिंह की ज़ुबान तक पहुँच गया। जब उसने उसका जायका चखा तो उसके बदन पर झुरझुरी-सी दौड़ गई। उसने अपने आपसे कहा : 'और मैं... और मैं... भैनीया छः आदमियों का कत्ल कर चुका हूँ... इसी कृपान से!'

ईशर सिंह ने अपनी कृपान से छ. आदमी क़त्ल किए थे। जो नफ़्सियाती हादिसा उसे पेश आया, उससे पहले ग़ालिबन उसने कभी गौर न किया होगा कि उसके हाथों छः

आदमियों का ख़ून हो चुका है। मगर अब वह अपने ख़ून का ज़ायक़ा चखते हुए सोचता है, बल्कि यूँ कहिए कि यह सोचने के क़ाबिल हो जाता है कि जिस कृपान ने मेरा गला काटा है, उससे मैं छः आदमी काट चुका हूँ—जब वह 'छः आदमियों का क़त्ल कर चुका हूँ' के साथ 'भैनीया' इस्तेमाल करता है तो क्या हमें इस गाली में उसकी रूह की दर्दनाक चीख़ सुनाई नहीं देती ?

"और मैं और मैं भैनीया छः आदमियों को क़त्ल कर चुका हूँ ...इसी कृपान से !"

यानी : ईशर सिंह, तू दर्द और तकलीफ़ महसूस कर रहा है लेकिन जानता है कि इसी कृपान से तूने छः आदमी मारे हैं

ईशर सिंह से हम उसके खयालातो-महसूसात के ख़ुश-असलूब[213] बयान की तवक्क़ो नहीं कर सकते। वह एक गँवार आदमी है लेकिन उसने अपने ख़ास अंदाज में सबकुछ बयान कर दिया है और यह ख़ास अंदाज़ अपनी जगह पर मुनासिबो-मौज़ूँ है।

ईशर सिंह की क़ूव्वते-मर्दमी[214] सल्ब[215] हो चुकी थी लेकिन वह अपने अंदर एक नई करवट महसूस कर रहा था—उसके मुकाबले में कुलवंत कौर के दिलो-दिमाग पर सिर्फ एक खयाल मुसल्लत था, उस औरत का ख़याल जिसने उसके ख़याल के मुताबिक उसके शौहर ईशर सिंह को मोह लिया था। वह पूछती है : "कौन है वह हरामजादी ?"

ईशर सिंह की आँखें धुँधला रही थीं। एक हल्की-सी चमक उनमें पैदा हुई और उसने कुलवंत कौर से कहा : "गाली न दे उस भड़वी को "

इन छः अल्फाज में क्या मुसन्निफ ने ईशर सिंह के सारे जज्बात जमा नहीं कर दिए। वह कुलवंत कौर को मना करता है कि वह उस औरत को गाली न दे लेकिन खुद उसे 'भड़वी' कहता है। दरअसल गाली का रुख उसकी अपनी ज़ात की तरफ़ है। वह बजाहिर तो रहम उस औरत पर खाता है जिसको कुलवंत कौर 'हरामज़ादी' कहती है लेकिन दरहक़ीक़त उसको रहम अपनी हालत पर आता है।

जरा आगे चलिए तो सारा मतलब वाज़ेह हो जाता है।

कुलवंत कौर चिल्लाई : "मैं पूछती हूँ, वह कौन है ?"

ईशर सिंह के गले में आवाज रुँध गई : "बताता हूँ।" यह कहकर उसने अपनी गर्दन पर हाथ फेरा और उस पर अपना जीता-जीता खून देखकर मुसकराया : "इंसान माइया भी एक अजीब चीज़ है।"

यहाँ हम ईशर सिंह को एक फ़ल्सफ़ी, एक ख़ास फ़ल्सफ़ी की हैसियत से देखते हैं और इस ख़ास फल्सफ़ी[216] के अक़ब[217] में हमें सिर्फ़ एक चीज़ नज़र आती है : उस लड़की की ठंडी लाश जिससे ईशर सिंह जैसा गर्म मर्द मुबाशरत करना चाहता है।

वह मुसकराता है, सिर्फ़ मुसकराने के लिए नहीं। उसकी मुसकराहट दरअसल उसकी हैरत का मज़हर है। चूँकि वह समझ नहीं सकता कि उसके साथ क्या हुआ है, इसलिए वह मुसकरा देता है और अपने मुज़्तरिब जेहन से फ़रार हासिल करने के लिए ख़ुद से कहता है : 'इंसान माइया भी एक अजीब चीज़ है '

यह एक बहुत बड़ा अलमीया है जो किसी इंसान के साथ पेश आ सकता है।

उसको शहवानी जज़्बात की बरअंगेख्तगी से क्योंकर मंसूब किया जा सकता है? कहानी जिसमें एक क़वी और तवाना मर्द की शहवत सर्द हो जाती है, पढ़नेवालों के सिफ़ली[218] जज़्बात कैसे मुश्तइल कर सकती है?

इसमें कोई शक नहीं कि 'ठंडा गोश्त' में चंद ऐसे अल्फ़ाज़ और फ़िक़रे मौजूद हैं जिनको अगर अफ़साने के जिस्म से नोचकर, अलहदा करके देखा जाए तो वो नाशाइस्ता और ग़ैरमुहज़्ज़ब मालूम होंगे, मगर वो अफ़साने का लाज़िमी जुज़ हैं जिनके बग़ैर अफ़साना मुकम्मल नहीं हो सकता। किसी लफ़्ज़ को या किसी फ़िक़रे को उसके गिर्द के माहौल के साथ ही देखना पड़ता है।

अगर आप 'जिगसॉ पज़ल'[219] में से एक टुकड़े को उठा लें और कहें: "यह तो गधे की दुम है।" तो ज़ाहिर है कि आप अपनी राय सही तौर पर क़ायम नहीं कर रहे हैं, इसलिए कि उस टुकड़े को उसके सही मक़ाम पर रखकर 'जिगसॉ पज़ल' को मिन-हैसुल-मजमू[220] देखना पड़ेगा, क्योंकि हो सकता है कि वह टुकड़ा दूसरे टुकड़ों के साथ जुड़कर किसी ख़ूबसूरत औरत के गले में पड़ी हुई लोमड़ी की खाल की शक्ल इख़्तियार कर जाए।

इसके अलावा हमें यह भी देखना है कि जो नाशाइस्ता और ग़ैरमुहज़्ज़ब अल्फ़ाज या फ़िक़रे हैं वो किस क़िस्म के इंसान के मुँह से निकले हैं। ईशर सिंह एक गँवार और ग़ैरमुहज़्ज़ब इंसान है, उसके मुँह से हम शाइस्ता और मुहज़्ज़ब गुफ़्तगू की तवक़्क़ोह नहीं कर सकते।

अब हम गालियों की तरफ आते हैं जो ईशर सिंह के मुकालमों में हमें नजर आती हैं।

हम इस हक़ीक़त से कभी इग़माज[221] नहीं कर सकते कि अक्सर मुहज़्ज़ब और ग़ैरमुहज़्ज़ब इंसान (मर्द और औरतें) अपने रोज़मर्रा की गुफ़्तगू में गालियाँ इस्तेमाल करते हैं। ईशर सिंह अपनी गुफ्तगू में गालियाँ बगैर किसी तकल्लुफ के इस्तेमाल करता है, इसलिए कि उसका मक़सद गाली देना नहीं। अक्सर मक़ामात पर वह गाली को बतौर तकियाकलाम इस्तेमाल करता है।

"और मैं और मैं भैनीया छः आदमियों को क़त्ल कर चुका हूँ।"

ज़ाहिर है कि गाली का रुख़ न तो ख़ुद ईशर सिंह की तरफ़ है न उन छः आदमियों की तरफ़ जिन्हें वह क़त्ल कर चुका है।

"गला चिरा हुआ है माँया मेरा।"

जाहिर है कि 'गले' की कोई माँ नहीं है जिसको वह गाली दे रहा है।

"यह कुड़ीया दिमाग़ ही ख़राब है।"

इसके मुतािल्लक़ भी हम यही कह सकते हैं कि दिमाग की कोई बेटी नहीं है जिसको वह गाली दे रहा है।

इसी तरह कुलवंत कौर एक जगह कहती है: "यह भी कोई माँया जवाब है।"

दो मक़ामात पर ईशर सिंह कहता है: "इंसान माँया भी अजीब चीज़ है" — "इसान कुड़ीया भी अजीब चीज़ है!" जैसा कि सफ़ाई के गवाह मि. आई. लतीफ़ ने कहा है, ये गालियाँ अपनी जगह बहुत नफ़्सियाती अहमियत रखती हैं। अफ़साने को ग़ौर से पढ़ने के

बाद क़ारी समझ सकता है कि इन गालियों में ईशर सिंह के मुज़्तरिब और मुतजस्सिस[222] दिलो-दिमाग की कर्बअंगेज़[223] कैफ़ियत झलकियाँ लेती है। वह अपनी हालत का सही जाइजा लेना चाहता है लेकिन नाकाम रहता है और आख़िरकार इन अल्फ़ाज़ मे फ़रार हासिल करता है: ''इंसान माँया भी अजीब चीज़ है ! इंसान कुड़ीया भी अजीब चीज़ है !!''

→

203 जुल्म की ज्यादती व हैवानियत; 204. सीमाएँ; 205. ताकतवर, 206. उस-जैसा; 207. सभोग; 208. विपरीत, विरुद्ध; 209. दूसरे; 210. वीर्य स्तंभन (संभोग-क्षमता बढ़ाने); 211. लादा हुआ, हावी; 212 पशुता; 213 शिष्ट; 214. पौरुष, पुरुषत्व; 215. छिन चुकीं, समाप्त; 216. अधूरा दार्शनिक; 217. पीछे; 218. नीचतापूर्ण; 219. एक प्रकार की पहेली; 220. समग्र रूप से; 221. आँखें चुराना, 222. जिज्ञास. खोजी; 223. दुखदायी।

दस जुलाई का दिन गरजता हुआ आन पहुँचा।

मुझे सख़्त तश्वीश लाहिक[224] थी। घर में सब दुआएँ माँग रहे थे कि ख़ुदा ख़ैर करे।

जज साहिब ने ख़ास केस समझते हुए चार घंटे बहस के लिए वक़्फ कर रखे थे—मुझे डर था मियाँ ए. एम. सईद की तरह कहीं इनायत-उल्लाह ख़ाँ साहिब का रवैया भी मुख़ासिमाना न हो क्योंकि ज़ब्त करना मेरे लिए बहुत मुश्किल था। मियाँ सईद साहिब की अदालत में कई बार ऐसे मौके आए थे कि मैं छलक पडता मगर हैरत है, मैंने कैसे जब्त किया!

हम सब सुबह हाजिरे-अदालत हुए तो इनायत-उल्लाह ख़ाँ साहिब ने अपने धीमे लहजे में शेख़ खुर्शीद साहिब से कहा: "माफ़ कीजिए, आपको आधा घंटा इतजार करना पड़ेगा। मैं जरा ये छोटे-छोटे मामले तय कर लूँ।"

हम अदालत से बाहर निकल आए—आरिफ़ अब्दुल मतीन खामोश था। शेख़ खुर्शीद साहिब भी खामोश थे। अपने साथ वह मोटी-मोटी कानूनी किताबों का एक ढेर उठा के लाए हुए थे। उनका दिमाग़ शायद उनके हवालों में गुम था। मैं हाई कोर्ट की सोच रहा था। नसीर अनवर छिदरी घास पर रूमाल बिछाकर बैठा हुआ ग़ालिबन कोई कश्मीरी गीत गा रहा था।

पौन घंटे के बाद हमें बुलाया गया—हम अदालत के कमरे में दाख़िल हुए और हमने जज साहिब को सलाम किया।

इनायत-उल्ला खाँ साहिब ने गर्दन की एक हल्की-सी जुंबिश से उसका जवाब दिया।

हम मुल्जिमो के कटहरे की तरफ़ बढ़ने लगे तो आपने अपनी धीमी आवाज में कहा: "कुर्सियो पर तशरीफ रखिए।"

मैं समझा कि शायद यह किसी और से कहा गया है मगर उनका रूए-सुखन[225] हमारी तरफ़ ही था। मुझे बड़ा ख़ुशगवार तअज्जुब हुआ—हम कुर्सियों पर बैठ गए। नसीर अनवर के होंठों पर मुस्कराहट खेल रही थी। वह बेहद मुतमइन नजर आता था।

पेशतर इसके कि बहस शुरू होती, जज साहिब बोले: "मैंने इस केस का बग़ौर मुताला किया है, आप हजरात मुतमइन रहें, कोई दिक़्क़त पेश नहीं आएगी। मैंने मिसल मे से सिर्फ़ अदालते-मातहत का फ़ैसला पढ़ा है। गवाहियों का मैंने मुताला करना ग़ैरज़रूरी समझा है, अलबत्ता अफ़साना 'ठंडा गोश्त' बहुत ग़ौर से पढ़ा है।

बहस शुरू होनेवाली थी कि इनायत-उल्ला ख़ाँ साहिब ने इस्तिग़ासे और सफ़ाई के वकीलों की तवज्जोह चंद निकात की तरफ़ दिलाई और वज़ाहत चाही। शेख़ ख़ुर्शीद

अहमद ख़ामोश रहे। एक-दो मर्तबा जज साहिब की ताईद में अलबत्ता कुछ ज़रूर कहा। प्रॉसीक्यूटर साहिब की तरदीद खुद ख़ाँ साहिब कर रहे थे।

करीबन आधा घंटा कानूनी मूशिगाफ़ियाँ[226] करने के बाद आपने मुसकराकर कहा : "मैं सआदत हसन मंटो को अगर सजा दूँ तो वह यह कहेंगे, एक दाढ़ीवाले ने मुझे सजा दी।"

इसके बाद वह कुछ देर और अदालते-मातहत के फैसले पर कुछ कहते रहे। आख़िर में हमसे मुख़ातिब हुए : "क्या आप लोगों ने जुर्माना अदा कर दिया था?"

हम सबने कहा : "जी हाँ।"

इस पर जज साहब ने कहा : "आप बरी है। जुर्माना आपको पूरे-का-पूरा वापस मिल जाएगा।"

मैं चंद लम्हात कुछ सोच न सका कि क्या हुआ है। शेख़ खुर्शीद साहिब ने मेरा शाना पकड़कर हिलाया और कहा : "उठिए हजरत, आप बरी हैं।"

अदालत से बाहर निकलकर जब मैंने चपडासियों को दस रुपए इनआम के तौर पर दिए, तो मुझे एहसास हुआ कि मैं वाकई बरी हूँ और यह कि चौथी मर्तबा मेरा अंजाम बख़ैरो-ख़ूबी हुआ है। मैंने दिल-ही-दिल में खुदा का शुक्र अदा किया जिसने एक बहुत बड़ी लानत से मुझे रिहाई दिलाई।

शेख़ खुर्शीद साहिब अपनी कामयाबी पर बहुत खुश थे और बजा खुश थे।

[इनायत-उल्लाह ख़ाँ साहिब के अंग्रेजी जबान में लिखे हुए फैसले का उर्दू तर्जुमा यह है]



224. मिली हुई; 225. बात का रुख़, 226 नुक्ताचीनी।

अपील बखिलाफ़े-हुक्म मि. ए. एम. सईद
मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल, लाहौर
मवर्रख़ा 16 जनवरी, 1950 ई.

दावा ज़ेरे-दफ़ा 292 पी. पी. सी.

सज़ा

आरिफ़ अब्दुल मतीन : तीन सौ रुपया जुर्माना, बसूरते-अदम-अदायगी तीन हफ़्ते क़ैदे-बा-मशक़्क़त।

सआदत हसन मंटो : तीन माह क़ैदे-बा-मशक़्क़त और तीन सौ रुपया जुर्माना, बसूरते-अदम-अदायगी इक्कीस यौम क़ैदे-बा-मशक़्क़त।

नसीर अनवर : तीन सौ रुपया जुर्माना, बसूरते-अदम-अदायगी तीन हफ़्ते क़ैदे-बा-मशक़्क़त।

→

फ़ैसला

तीन नौजवानो, आरिफ अब्दुल मतीन, नमीर अनवर और सआदत हसन मंटो की तरफ से यह एक अपील है। अव्वलुज़्ज़िक्र[227] दोनों एक उर्दू रिसाला 'जावेद' के अलीअलतर्तीब मुदीर और नाशिर हैं। तीसरा एक अदीब है जिसने मज़्कूरा रिसाले के मार्च, 1949 ई. में शायाशुदा एक खास नंबर में अपनी एक कहानी जिसका नाम 'ठंडा गोश्त' है, छपने के लिए दी।

उन्हें अज़्क़ुरा मियाँ ए. एम. सईद, मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल, लाहौर मुवर्रिख़ा 16 जनवरी, 1950 ई., जेरे दफ़ा 292 पी. पी. सी. (फ़हश किताबों की फरोख़्त वगैरह) की ख़िलाफवर्ज़ी के सिलसिले में मुजरिम करार दिया गया है। मुसन्निफ़ मि. मंटो को तीन माह कैदे-बा-मशक़्क़त और तीन सौ रुपया जुर्माना, बसूरते-अदम-अदायगी-ए-जुर्माना इक्कीस यौम मजीद कैदे-बा-मशक्कत की सजा दी गई है। दूसरे दोनों मुल्ज़िमीन यानी मुदीर और नाशिर को सिर्फ़ तीन-तीन सौ रुपया जुर्माना, बसूरते-अदम-अदायगी तीन-तीन हफ्ता कैदे-बा-मशक्कत की सजा दी गई है।

ये तीनो अपील मे पेश हुए हैं।

वाकिआते-फैसला जेरे-अपील मौजूद है।

मजमून की तरफ हकूमत की तवज्जोह प्रेस ब्रांच के एक ओहदेदार ने मब्ज़ूल[228] कराई थी और चीफ सैक्रेट्री ने कानूनी चाराजोई का हुक्म दिया था।

मैंने फरीकैन के फ़ाज़िल मुशीराने-क़ानून को सुना है और मिसल का मुताला किया है—मेरा ख्याल है कि मुल्जिमीन के खिलाफ जुर्म साबित नहीं किया जा सका, इसलिए सजा बरकरार नही रह सकती। मेरा खयाल है कि मजमून जेरे-बहस को फ़हश और खास तौर पर खिलाफे-कानून क़रार नही दिया जा सकता।

मुल्जिमीन रिसाले से अपना तअल्लुक मानते हैं। अब तय करने के लिए फकत एक सवाल है कि कहानी फहश और ख़समून खिलाफे-कानून है या कि नही। इस सिलसिले में कई नुक्ते पैदा होते हैं। अव्वलन यह कि लफ्ज 'फहश' से हम क्या मुराद लेते हैं। दोम यह कि ऐसा मामला है जिसमे माहिरीन की शहादत पेश की जा सकती है, सोम यह कि आया यह मज़मून ज़ेरे-बहस क़ाबिले-इतलाक़[229] मेयारों के मुताबिक़ क़रार दिया जा सकता है?

मैंने कानूने-जराइम एडीशन 1945 ई. मे रतनलाल वगैरह की कॉमेंट्री देखी है और

वहाँ उठाए हुए सवालों पर फ़रीक़ैन[230] के पेशकर्दा दलाइल पर ग़ौर किया है—फ़हाशी की जाँच का मेयार वहाँ यह मुक़र्रर किया गया है : आया फ़हाशी के तहत इल्ज़ामज़दा मज़मून में उन लोगों के अख़लाक़ बिगाड़ने और उनको बुरी तरग़ीब देने का मैलान है जिनके ज़ेहन ऐसे गैरअख़लाक़ी असरात क़ुबूल करने के लिए तैयार हैं और जिनके हाथों में इस किस्म की अखलाक़ के लिए ज़रर-रसाँ तस्नीफ़ है, अंदाज़ा किया जाए, उनके जेहन में बदचलनी और बदकारी का असर पैदा करेगी, (अगर ऐसा है) तो यह एक फ़हश इशाअत होगी। क़ानून का मंशा है कि उस(की फ़रोख़्त) को रोका जाए। अगर कोई तहरीर हक़ीक़तन किसी एक भी जिंस के नौजवानों या ज़्यादा उम्र के लोगों के अज़हान को इंतिहाई गंदे और शहवत परस्ताना किस्म के ख़यालात समझाए तो उसकी इशाअत ख़िलाफ़े-क़ानून है, ख़्वाह मुल्ज़िम के पेशे-नज़र कोई दर-पर्दा मक़सद ही क्यों न हो जो मासूम हत्ता कि काबिले-तारीफ़ हो। कोई चीज़ जो शहवानी जज़्बात को मुश्तइल करे, फ़हश है।

फिर ऐसे फ़ैसले भी हैं जो क़रार देते है कि महज़ फ़िक़रों और जुमलों को इसलिए माफ नहीं किया जा सकता कि बाक़ी की इशाअत नाक़ाबिले-एतिराज़ है, और कि यह कोई जवाज़[231] नहीं कि शायाशुदा मज़मून किसी मुम्ताज मुसन्निफ़ का लिखा हुआ है या ऐसे उस्लूब[232] में लिखा गया है जो आसानी से हर एक की समझ में नहीं आ सकता या यह कि इशाअत मेडिकल है और सिर्फ़ मख़सूस[233] गाहकों के पास बेची जाती है—हमें न सिर्फ़ तस्नीफ की माहियत को बल्कि हाज़िर मुआशरे की हालत को भी देखना है। अगर तस्नीफ़ बाज़ार में आजादाना मुहैया हो सकती है तो हमें यह तय नहीं करना कि मख़सूस या ख़्वाहिश से खरीदनेवाले गाहक और पढनेवाले कौन है। हमें तो सिर्फ़ यह देखना है कि आया यह अवाम तक पहुँच सकती है जिनमें दोनों जिंस के जवांसाल[234] और बड़ी उम्र के लोग भी शामिल हैं—पस हमें तस्नीफ की माहियत[235] का अपने समाज की मौजूदा हालत की रोशनी में तजज़्युन करना है।

मेरे ख़याल में इस मामले को इस मक़ाम पर छोड़ा जा सकता है और हमें इसकी तरफ़ बाद में रुजू करना चाहिए, जब हम इस मसले पर ग़ौर कर चुके कि आया यह सवाल माहिरो की राय से तय हो सकता है या नहीं—जहाँ तक इस अम्र का तअल्लुक़ है, मै समझता हूँ कि यह मामला माहिरों की राय से हर्गिज तय पानेवाला नहीं। हमें इस पर ग़ौर नहीं करना कि इसके मुताल्लिक़ कुछ ख़ास और मुम्ताज अदीब क्या राय क़ायम करते है, इसके बरख़िलाफ़ हमें यह पड़तालना है कि पढ़नेवालों पर आमतौर से तहरीरे-तस्नीफ़ का क्या रद्दे-अमल होगा। अगर मेरा यह ख़याल दुरुस्त है तो फ़ाज़िल अदालते-मातहत की रिकार्ड-कर्दा शहादतों का कोई हिस्सा इस नुक्ते के लिहाज़ से क़ाबिले-क़ुबूल नही रह सकता। अगर हम उन हज़रात की शहादत को, जो फ़रीक़ैन या अदालत की तरफ़ से पेश हुए, आम पढ़नेवालों की शहादत की हैसियत से क़ुबूल करें और किसी एक फ़रीक़ को ख़ास अहमियत न दें तो रिकार्ड-शुदा शहादत अदालत को कोई ज़्यादा मदद नहीं देती। गवाहों की एक जमात ने यह कहा है कि ज़ेरे-बहस मजमून इंतिहाई फ़हश है। दूसरी जमात ने इसके ख़िलाफ़ बयान दिया है और इसे एक ऐसा फ़नपारा क़रार दिया है जिसमें कोई भी

ग़ैरअख़लाकी चीज नही—ग़ौर करने पर यह पता चल सकता है कि यह गय ऐन कुदरती फर्क़ है । मुख्तलिफ़ तबक़ों के पढ़नेवालों का रद्दे-अमल मुख्तलिफ़ होना है । जब तक हम जाँच का एक मेयार मुक़र्रर न करें जिमको पेशे-नजर रखा जाए, इत्तिफ़ाक़े-राय पैदा नही हो सकता । और यह भी जाहिर है कि मुख्तलिफ मिजाजों, उम्रों, पेशों और मुख्तलिफ़ किस्म की तालीम हासिल किए हुए लोगों का रद्दे-अमल भी जरूर मुख्तलिफ होगा, और अलावा इसके कि यह तय है, अखलाक एक इजाफी इस्तिलाह है, फहाशी के सवाल पर नजरियात जरूर एक-दूसरे से मुख्तलिफ और बहुत नुमायाँ हद तक मुख्तलिफ होंगे—(इसलिए) मेरी राय में सही बात यह है कि इस ममले को उस 'अफ़सानवी आदमी' (यानी) 'पब्लिक के एक आम रुक्न' के नुक्ता-ए-नजर से जाँचना चाहिए ।

यह तय कर चुकने के बाद हमे यह देखने के लिए ज़ेरे-बहस मजमून पर गौर करना है कि यह हमारे समाज के मुसल्लमा अखलाकी नजरियात के खिलाफ कहाँ तक जाता है—इस मौके पर हमें ज़ेरे-अपील फैसले के एक गलत मफ़रूज़े[236] और गुमराह करनेवाली दलील की तरफ इशारा करना है । फ़ाज़िल मजिस्ट्रेट ने इस बयान से इब्तिदा की है कि फ़हाशी की इस्तिलाह उस माहौल के साथ मुताल्लिक है जिसमें उसके मुताल्लिक फैसला किया जाना है । उसने कहा है कि मुख्तलिफ कौमों और सोसायटियों के मेयार मुख्तलिफ़ हो सकते है—यहाँ तक वह दुरुस्त था । उसने गलती वहाँ की, जब उसने यह समझा कि पाकिस्तान के मुरव्वजा अखलाकी मेयार कुरआने-पाक की तालीम के सिवा और कही से ज्यादा सही तरीके पर मालूम नहीं हो सकते । फिर वह यह कहता है कि ''गैरशाइस्तगी और शहवतपरस्ती शैतान की तरफ से है''—इसमें शक नही कि यह हमारा आदर्श है (कुरआने-पाक की तालीम के मुताबिक अखलाकी मेयारों की तश्कील) लेकिन सवाल यह नही है, बल्कि सवाल यह है कि (आज) हमारे समाज की असली हालत क्या है । जैसा कि जाहिर है, हमने अपना नस्बुलऐन[237] अभी तक हासिल नही किया है— (तो) अफ़आल करनेवालो को इसके मुताबिक जाँचना चाहिए जिस तरह कि हमारी सोसायटी है, न कि उस तरह जैसा कि उसे होना चाहिए ।

जब हम सोचते है कि कैसी-कैसी मत्बूआत[238] मार्किट में मौजूद हैं जिन पर कोई एहतिसाब[239] क़ायम नहीं तो हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि ज़ेरे-बहस मज़मून कहीं कम क़ाबिले-एतिराज है—मुताद्दिद 'असरारी' मत्बूआत की इशाअत के खिलाफ़ कोई पाबंदी नहीं जिनसे ज्यादा और कोई चीज फहश नही हो सकती । सिनेमाओं मे 'तमाशाओ' की नुमाइश पर कोई एहतिसाब नहीं जो ज़ेरे-बहस मजमून से कुछ कम काबिले-एतिराज़ नहीं होते—अगर हमें मग़रिबी तहजीब को अपनाना और उसको पसंद करना है जैसा कि हम कर रहे है तो मै समझता हूँ कि हम ऐसी तहरीर पर जैसी कि हमारे सामने मौजूद है, माकूल तौर पर फहाशी का एतिराज नहीं कर सकते । यह तो उस तहजीब का लाज़िमी नतीजा है और हस्बे-मामूल इसके अलावा और कुछ नही—चूमाचाटी और बग़लगीरी एक ऐसी चीज़ है जो हर रोज सिनेमाओं में पेश की जाती है । बदकारी वह आम और बुनियादी जमीन है जिस पर 'सच्ची कहानियाँ' और दाइमी मुसल्लमे उस्तवार[240] की जाती है । दरहक़ीक़त

यही तमाम अंग्रेज़ी और मग़रिबी[241] नावलों का बुनियादी प्लाट है । अगर उन पर कोई एतिराज़ नहीं किया जाता तो मुझे कोई वजह नज़र नहीं आती कि हम क्यों इन नौजवानों पर सख़्ती करें ।

ज़ेरे-बहस कहानी रिसाले के सफ़हा 88 से लेकर सफ़हा 93 तक छपी है—क़िस्सा यूँ बयान किया गया है कि एक ख़ास शख़्स, जिसका नाम ईशर सिंह था, का एक ख़ास औरत कुलवंत कौर के साथ नाजाइज तअल्लुक़ था । उसने फ़सादात के दौरान एक मकान में छः आदमियों को क़त्ल किया था और एक ख़ूबसूरत लड़की को वहाँ से उठा लाया था । उसने उस लड़की के साथ ज़िना-बिलजब्र[242] करने की कोशिश की लेकिन उसे पता चला कि लडकी मर चुकी है । वह तो ठंडा गोश्त है । इस कहानी के मुताबिक़ इस इन्किशाफ़[243] ने ईशर सिंह पर ऐसा असर किया और उसके शहवानी जज़्बात को इतना सुन्न कर दिया कि जब वह बाद में कुलवत कौर के पास गया तो वह इस क़ाबिल नहीं रहा था कि उसके साथ सो सके, हालाँकि उसने इस मकसद के लिए (कुलवंत कौर के साथ सोने के लिए) इब्तिदाई क़दम उठाए थे—इस (अफसाने) में यहाँ-वहाँ कुछ नाशाइस्ता इस्तिलाहे और कुछ क़ाबिले-एतिराज अल्फ़ाज़ मौजूद हैं और कुछ सूक़ियाना गालियाँ भी, बिलकुल उसी क़िस्म की जो हमारी सोसायटी के निचले तबके में आम हैं ।

अब किसी मज़मून की माहियत पर ग़ौर करने के लिए आदमी को कई इस्तिलाहात और तसरीहात[244] को ज़ेरे-नज़र रखना पड़ेगा, मसलन चद एक का नाम ले तो एक मज़मून 'बाज़ौक़'' या 'बदजौक़', 'ग़ैरमुनासिब' या 'सूक़ियाना', 'नाशाइस्ता' या 'फ़हश' हो सकता है । इतने तद्रीजी [245] रंगों के इम्तिजाज[246] को एक-दूसरे से अलग हटाकर इस मज़मून को जिसे फ़हश क़रार दिया जाना हो, क़तई तौर पर 'ग़ैरशाइस्ता'; 'ग़ैरअख़लाकी', 'जरर-रसां' और 'बहुत कुछ और' होना चाहिए, लेकिन ज़्यादा-से-ज़्यादा मैं इस मजमून के मुताल्लिक़ कहूँगा तो वह यह है कि यह सूक़ियाना और नाशाइस्ता है ।

फाजिल पी. पी एस. ने किसी ऐसे खास क़ाबिले-एतिराज पैरों की तरफ इशारा नही किया है जिसको वह यक़ीनी तौर पर 'फ़हश' क़रार देता है—किसी शख़्स ने कहानी की चंद सतूरों पर निशान लगाए हैं लेकिन वो ऐसी है जिनके मुताल्लिक मैं पेशतर जिक्र कर चुका हूँ और उनको दोबारा पेश करने से कोई मुफीद मकसद हासिल नही होगा । मुझे इसलिए फ़ाज़िल अदालते-मातहत से इख़्तिलाफ है । मै यह वाजेह कर देना चाहता हूँ कि मेरा मक़सद यह नही है कि मुझे इस मजमून से इत्तिफाक है लेकिन मैं इसे 'फ़हश' या ज़्यादा क़ाबिले-एतिराज नही समझता ।

—चुनांचे मैं अपील मंजूर करता हूँ और तीनों अपील करनेवालों को बरी करता हूँ । वो पहले ही ज़मानत पर हैं । जुर्माना अगर अदा कर दिया गया है तो वह सारे का सारा वापस दे दिया जाए ।



एक लतीफ़ा सुनिए।

ग्यारह जुलाई की सुबह को नज़ीर अहमद चौधरी, मालिक 'नया इदारा' और मुदीर 'सवेरा' जो दूसरे तरक़्क़ीपसंदों के साथ मिलकर मुझे रजअतपसंद[247] क़रार दे चुके हैं और हलफ़ उठा चुके हैं कि मेरी कोई तहरीर अपने 'सवेरा' में शाया नहीं करेंगे, तशरीफ़ लाए। उन्होंने बगलगीर होकर बड़ी गर्मजोशी से मुबारकबाद दी और कहा : "मंटो साहिब, 'ठंडा गोश्त' इनायत फ़रमा दीजिए कि मैं 'नमरूद की ख़ुदाई' में शामिल कर लूँ।"

मैं चौधरी साहिब की इस दरख़्वास्त पर कोई तब्सिरा नहीं करना चाहता।

चंद दिन हुए, कोहाट से एक साहिब, ऑफ़िसर कोडट मज़हर अली का ख़त मौसूल[248] हुआ :

> मुझे उम्मीद है, आपको याद होगा कि मैं कौन हूँ। रियाज़ साहिब की दूकान पर आपसे चंद मुलाक़ातों ही ने मुझे आपका गरवीदा[249] बना दिया था—बहुत दिन हुए, मैंने अख़बार में पढ़ा था कि आपको 'ठंडा गोश्त' से निजात मिल गई है। फ़ुर्सत कम होने के बाइस आपको मुबारकबाद का ख़त न लिख सका। अब गो मुबारकबाद बहुत देर से है लेकिन फिर भी आप क़बूल फ़रमाएँ। मुझे पक्का यक़ीन है कि ऐसी मुख़ालफ़तों के बावजूद आपके मद्दाह[250] बढ़ते ही जाएँगे।
>
> सुना है, चौधरी मुहम्मद हुसैन साहिब जो आपके साथ अक्सर नोक-झोंक करते रहते थे, इस दुनिया ही से चल बसे। अब तो मामला कुछ बेमज़ा-सा हो गया। लेकिन दुनिया में सिरफिरों की कमी नहीं। कोई और साहिब उनकी जगह ज़रूर सँभाल लेंगे।

मुझे चौधरी मुहम्मद हुसैन साहिब की वफ़ात[251] का बहुत अफ़सोस है। ख़ुदा उनको ग़रीक़े-रहमत[252] करे। अब कि वह इस दुनिया में नहीं है, मैं उनके मुताल्लिक़ कुछ कहना नहीं चाहता—उनकी जगह अगर कोई दूसरा सँभाल लेगा तो मैं कहूँगा : मेरे-दोस्तों सलामत कि तू ख़ंजर आज़माई।

लाहौर
29 अगस्त, 1950 ई

सआदत हसन मंटो



---

227. प्रथम वर्णित, 228. आकर्षित, ध्यानाकर्षित, 229. चर्चा किए जाने के योग्य; 230. दोनों पक्षों, 231 औचित्य, 232. शैली, 233 विशिष्ट, ख़ास, 234. नवयुवक, 235 वास्तविकता; 236 अनुमान, अंदाज़; 237. उद्देश्य; 238. मुद्रित पुस्तकें, 239. गणना, पाबंदी; 240. बनाई, मज़बूत. 241. पूर्वी, 242 बलात्कार; 243. रहस्योद्घाटन; 244 स्पष्टीकरण, 245. क्रमिक, क्रमशः; 246 सम्मिश्रण, 247. प्रतिक्रियावादी; 248 प्राप्त; 249 प्रशंसक, चाहनेवाला, 250 चाहनेवाले, प्रशंसक; 251. मृत्यु, 252. दया।

तअत्तुल[1]

'ठंडा गोश्त' का मुकद्दमा करीब-करीब एक साल चला। मातहत[2] अदालत ने मुझे तीन माह कैदे-बामशक्कत[3] और तीन सौ रुपए जुर्माने की सजा दी। सेशन में अपील की तो बरी हो गया। (इस हुक्म के खिलाफ सरकार ने हाईकोर्ट में अपील दायर कर रखी है; मुकद्दमे की समाअत[4] अभी नहीं हुई।)

इस दौरान मुझ पर जो गुजरी उसका कुछ हाल आपको मेरी किताब 'ठंडा गोश्त' के दीबाचे[5] ब-उनवान[6] 'जहमते-मेहरे-दरख्शाँ' में मिल सकता है।

दिमाग की कुछ अजीब-सी कैफियत थी। समझ में नहीं आता था कि क्या करूँ। लिखना छोड़ दूँ या एहतसाब[7] से कतअन बेपरवा होकर कलमजनी करता रहूँ—सच पूछिए तो तबीयत इस कदर खट्टी हो गई थी कि जी चाहता था, कोई चीज एलाट हो जाए तो आराम से किसी कोने में बैठकर चंद बरस कलम और दवात से दूर रहूँ, दिमाग में खयालात पैदा हों तो उन्हें फाँसी के तख्ते पर लटका दूँ; एलाटमेंट मयस्सर न हो तो ब्लैकमार्केटिंग शुरू कर दूँ या नाजायज तौर पर शराब कशीद करने लगूँ

लाहौर, 11 जनवरी 1952 (द :) सआदत हसन मंटो

1 गतिरोध, 2 निचली 3 सश्रम कारावास, 4 सुनवाई, 5 भूमिका, 6. शीर्षक से, 7. हिसाब-किताब, परिणाम।

○○

हाईकोर्ट जजमेंट

P L D 1952 Lahore 384

Before Muhammad Munir, C.J. and Muhammad Jan, J

CROWN --Appellant
versus
SAADAT HASSAN MINTO and two others—
Accused-Respondents

Crown v Saadat Hassan Minto — Muhammad Munir, CJ and Muhammad Jan, J

Crown's Appeal No. 584 of 1950, decided on 8th April, 1952, from the order of Inayat Ullah Khan, Additional Sessions Judge, Lahore, dated the 10th July 1950, acquitting the accused-respondents.

Penal Code (XLV of 1860), S. 292—
'Obscene'—Definition—
Outline of story innocuous yet details may be obscene—Obscenity to be determined with reference to standards current in society in which words are uttered or published—Intention of author—Whether material in determining obscenity.

हो सकता है कहानी की रूपरेखा एक सिरे से हानिरहित हो; इसके बाद वे ब्यौरे अश्लील हो सकते हैं जिनमे अभिव्यक्ति के कुछ प्रयुक्त पैराये इंतहाई बेहूदा हों और कुछ भोंडे इस्तआरे हों जो यौनकर्म के निष्पादन की ओर संकेत करते हों।

शालीनता और अश्लीलता की शब्दावलियाँ सापेक्ष होती हैं और एक समाज में जो चीज़ अश्लील या शालीनतारहित है, संभव है कि दूसरे समाज में वही चीज बिलकुल शालीन और नैतिक समझी जाए। इस सवाल पर गौर करते हुए कि क्या कुछ शब्द और शैलियाँ अश्लील है या नही, हमें ऐसे मानदडों का निर्धारण करना होगा जो उस समाज मे प्रचलित हों जहाँ उन शब्दों और शैलियो का प्रयोग किया गया हो। इस मुल्क में या सभ्य ससार के किसी भी कोने में समाज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए इस तथ्य में संदेह की गुंजाइश नहीं रह जाती कि सभोग की तैयारी की प्रक्रिया का वर्णन चाहे कितना ही दुरुस्त और यथार्थमूलक हो, उसे बहरहाल अश्लील समझा जाएगा। [P. 386] a

अश्लीलता की यह पहचान हमेशा क़ायम रही है कि क्या अभियोग की विषयवस्तु में ऐसे ज़ेहनों को बिगाडने और कुमार्ग की ओर प्रवृत्त करने का रुझान पाया जाता है जो अनैतिक प्रभाव ग्रहण कर सकते है और जिनके हाथों मे इस किस्म की रचनाएँ पहुँच सकती हैं और यह कि इस रचना को प्रकाशित करने का मंशा या इरादा इसे अश्लील होने से नही बचा सकता अगर इसके ब्यौरे अपने-आपमे अश्लील हों। [P 386] b

वह आपत्तिजनक इबारत जो अत्यंत पतित यौन सबधी ब्यौरों मे भरी पडी है और बिला शुब्हा दोनों लिगो के नौउम्र ज़ेहनो, यहाँ तक कि बडी आयु के लोगों के भी जेहनो मे बदकारी और यौन-प्रवृत्ति के निकृष्ट विचारों का कारण बन सकती है, इस इबारत को अश्लील करार दे दिया गया है। यह सवाल यहाँ कत्तई गैरअहम है कि इस कहानी की रचना मे लेखक का मशा क्या था। [P. 387] c

Reg v. Hicklin 1868 L R 3 Q B 360 *rel.*
Kailashchandra Acharjya v. Emperor I L R 60 Cal. 201 *ref.*
Abdul Aziz Khan, Advocate-General for Appellant (Crown).
Abdur Rahman for Respondents.

Judgment

Muhammad Munir, CJ

मुहम्मद मुनीर, चीफ जस्टिस : सुनवाई का मुआमला पाकिस्तानी दंडसंहिता की धारा 292 के अंतर्गत लाए गए अभियोग पत्र से बरी किए जाने के खिलाफ सरकार की अपील है। इस मुकद्दमे के प्रतिवादी आरिफ अब्दुल मतीन, नजीर अहमद और सआदत हसन मंटो हैं जिनके मुकद्दमे बाबत इशाअत फ़ुहशियात[1] की सुनवाई मियाँ ए.एम. सईद, प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट, लाहौर ने की और उनमें से पहले दो को तीन सौ रुपए फ़ी कस जुर्माना और तीसरे को तीन माह की कैदे-बामशक्कत और तीन सौ रुपए जुर्माना की सज़ा दी। अपील करने पर जनाब इनायतुल्लाह ख़ाँ, एडीशनल सेशन जज, लाहौर ने उपरोक्त मजिस्ट्रेट के फैसले को रद्द करार दे दिया और प्रतिवादी को बरी कर दिया।

आरिफ अब्दुल मतीन उर्दू की एक पत्रिका 'जावेद' का संपादक और नज़ीर अहमद उसका प्रकाशक है। मार्च 1949 में उपरोक्त पत्रिका ने एक छोटी-सी कहानी शीर्षक 'ठंडा गोश्त' से प्रकाशित की जो सआदत हसन मंटो की लिखी हुई थी। प्रतिवादियों की सज़ा का कारण इस कहानी का प्रकाशन था जिसे अभियोग पक्ष ने कथित रूप से अश्लील और पाकिस्तानी दंडसंहिता की धारा 292 के अंतर्गत दंडनीय करार दिया। कहानी के प्रकाशन और लेखन को स्वीकार किया गया लेकिन यह आपत्ति की गई कि उपरोक्त कहानी एक साहित्यिक कृति है और अश्लील नहीं है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने कहानी को अश्लील ठहराया लेकिन विद्वान एडीशनल सेशन जज ने आपत्ति को स्वीकार किया और अपील मंजूर की। हमारे सामने विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या उपरोक्त कहानी पाकिस्तानी

Crown v. Saadat Hassan Minto — — Muhammad Munir, CJ

दंडसहिता की धारा 292 के अनुसार 'अश्लील' है या नहीं है।

कहानी के केवल दो पात्र हैं : ईशरसिंह और उसकी रखैल कुलवंत कौर। ईशरसिंह को एक मज़बूत, हट्टा-कट्टा, ग़ुस्सैल और अक्खड़ सिख तथा कुलवंत कौर को उसी काया की हट्ठी-कट्ठी और विलासिनी स्त्री के रूप में पेश किया गया है। 1947 के सांप्रदायिक दंगों के दौरान ईशरसिंह ने अनेक लोगों को मौत के घाट उतारा और उनकी संपत्ति को हड़प कर लिया। एक दिन उसने एक ऐसे घर पर हमला किया जिसमें एक परिवार के सात व्यक्ति रहते थे। उसने उनमें से छः को मार डाला और सातवें को, जो एक सुंदर लड़की थी, अगवा कर लिया। उस लड़की को अपने कंधों पर डालकर उसे थूहड की झाड़ियों में ले गया और ज़मीन पर लिटा दिया और उससे सुख लेने की कोशिश करने ही वाला था कि उस लड़की को मुर्दा पाकर भयभीत रह गया। चंद दिनों के बाद जब उसने कुलवंत कौर से संभोग करना चाहा तो उसने ख़ुद को लाचार पाया क्योंकि उसका यौनांग काम ही न कर पाता था। उसके आठ रोज़ बाद वह दोबारा कुलवत कौर के पास संभोग के पक्के इरादे के साथ आया और हालांकि दोनों ने अपनी-सी बहुतेरी कोशिश की, फिर भी ईशरसिंह ने अभी भी ख़ुद को शारीरिक रूप से लाचार पाया। कुलवंत कौर को यह भ्रम हुआ कि उसके और ईशरसिंह के बीच कोई दूसरी औरत आ गई है। चुनाँचे उसने तरह-तरह के सवालात कर डाले। इस पर ईशरसिंह को बताना पड़ा कि उसने क्या-किया था और उस पर क्या गुज़री थी।

जहाँ तक कहानी की रूपरेखा का प्रश्न है, कहानी पूरी तरह हानिरहित है हालाँकि यह सवाल उठता है कि जो कुछ बयान किया गया है उसे संभावित यौन-क्रिया का नाम दिया जा सकता है या नहीं। अभियोगपक्ष ने जिस चीज़ को अश्लील ठहराया है वह कहानी के तत्व और कुलवंत कौर से ईशरसिंह की बातचीत में प्रयोग किए गए शब्द हैं। कुछ वाक्य अत्यंत निकृष्ट हैं और कुछ भौंडे इस्तआरे हैं जो यौन-क्रिया के संपादन की ओर इशारा करते हैं। सबसे आपत्तिजनक दृश्य यह है कि जहाँ ईशरसिंह कुलवत कौर से दोबारा मिलता है और उसे और ख़ुद को यौनकर्म के लिए तैयार करता है। रति की विधि को खुले बंदों बयान किया गया है। इबारत कुलवंत कौर के नंगे बदन के ज़िक्र से भरी हुई है और कुलवंत कौर को 'उबलती हाँडी' की मंज़िल पर लाने के लिए ईशरसिंह ने जो हरकतें कीं उसका पूरा-पूरा ब्यौरा पेश करती है। इन आरंभिक क्रियाओं को

Crown v. Saadat Hassan Minto — Muhammad Munir, CJ

एक इस्तआरे 'फेंटना' और आखिरी क्रिया को एक और इस्तआरे 'पत्ता फेंकना' के ज़रिए बयान किया गया है। शालीनता के किसी भी मानदंड के अनुसार यह इबारत निश्चित रूप से अश्लील है। यह सही है कि शालीनता और अश्लीलता की शब्दावलियाँ सापेक्ष होती हैं और एक समाज में जो चीज़ अश्लील या शालीनतारहित है, संभव है कि दूसरे समाज में वही चीज़ बिलकुल शालीन और नैतिक समझी जाए। मगर इस सवाल पर ग़ौर करते हुए कि क्या कुछ शब्द और शैलियाँ अश्लील हैं या नहीं, हमें ऐसे मानदंडों का निर्धारण करना होगा जो उस समाज में प्रचलित हों जहाँ उन शब्दों और शैलियों का प्रयोग किया गया हो। इस मुल्क में या सभ्य संसार के किसी भी कोने में समाज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए इस तथ्य में संदेह की गुंजाइश नहीं रह जाती कि संभोग की तैयारी की प्रक्रिया का वर्णन चाहे कितना ही दुरुस्त और यथार्थमूलक हो, उसे बहरहाल अश्लील समझा जाएगा। अदालत में सफ़ाई की ओर से या अदालत के गवाहों की हैसियत से इस सवाल पर कि क्या विचाराधीन कहानी अश्लील थी या नहीं, बहुत-से साहित्यकारों और विद्वानों के बयानों पर ग़ौर किया गया। डाक्टर आई. लतीफ, अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, एफ.सी. कालेज, लाहौर, गवाह सफाई सात ने बयान दिया कि यह कहानी यौनभावनाओं को भड़का सकती है और इसे किसी साहित्यिक पत्रिका में प्रकाशित नहीं होना चाहिए था। मौलाना एहसानुल्लाह ख़ाँ ताजवर नजीबाबादी, प्रोफेसर, दयालसिंह कालेज, लाहौर, गवाह अदालत एक ने संबद्ध रचना को नीतिविरुद्ध, निकृष्ट और घटिया शैली का करार दिया और कहा कि अपने चालीस वर्षीय साहित्यिक जीवन में उनका साबका कभी भी ऐसी दुखदायक और निम्न कोटि की रचना से नहीं पड़ा था। इसी तरह शोरिश काश्मीरी, गवाह अदालत दो ने यह राय जाहिर की कि उस समाज और परिवार को देखते हुए जिससे वे जुड़े हुए हैं, ऐसी अश्लील और निर्लज्ज रचना वे कभी भी न प्रकाशित करेंगे और न ही अपने लड़कों और लड़कियों को उसे पढ़ने की इजाजत देंगे। मौलाना अबू सईद बज्मी, संपादक 'एहसान', लाहौर, गवाह अदालत तीन ने बयान दिया कि यह कहानी नैतिकता की दुश्मन है।

प्रतिवादी मंटो ने अपने लिखित बयान में इस नुक्ते पर ज़ोर दिया कि लेखक का मंशा इस तथ्य का निर्धारण करता है कि प्रयोग किए जानेवाले शब्द अश्लील हैं या नहीं। प्रतिवादी के पक्ष को अनेकों लेखकों का अनुमोदन प्राप्त हुआ है जिन्होंने सफ़ाई की तरफ़ से

Crown v. Saadat Hassan Minto — Muhammad Munir, CJ

शहादतें दी है, मसलन जनाब आबिद अली आबिद, प्रिंसिपल, दयालसिंह कालेज, लाहौर, अहमद सईद, प्रोफ़ेसर, दयालसिंह कालेज, डाक्टर खलीफ़ा अब्दुल हकीम, अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र एवं मनोविज्ञान विभाग, और भूतपूर्व डीन, जामिया उस्मानिया; डाक्टर सईदुल्लाह, सिविलियन आफ़िसर, रायल पाकिस्तान एयरफोर्स; और सूफ़ी गुलाम मुस्तफ़ा तबस्सुम, प्रोफेसर, गवर्नमेंट कालेज, लाहौर। बड़े अफसोस की बात है कि अदालत में यह मुआमला साहित्यकारों के बीच मतभेद का मामला बन गया और हैरत की बात यह है कि उनमें इस कहानी के अश्लील होने के बारे मे मतभेद पाया गया। जिन लोगों ने इस कहानी के प्रकाशन को अहानिकार समझा है, उनकी साहित्य और कला संबंधी धारणा कुछ भी हो, उन्हे यह बात याद दिलाना जरूरी है कि कानून मे अश्लीलता की धारणा जिन अर्थो मे व्यवहृत है उसे समझने मे वे एक सिरे से गलती पर रहे है।

Reg Hicklin 1868 L R 3 Q B 360 के मुकद्दमे से लेकर आज तक, अश्लीलता की यह पहचान हमेशा कायम रही है कि क्या अभियोग की विषयवस्तु मे ऐसे जेहनो को बिगाडने और कुमार्ग की ओर प्रवृत्त करने का रूझान पाया जाता है जो अनैतिक प्रभाव ग्रहण कर सकते हैं और जिनके हाथो में इस किस्म की रचनाएं पहुंच सकती हैं और यह कि इस रचना को प्रकाशित करने का मंशा या इरादा इसे अश्लील होने से नही बचा सकता अगर इसके ब्यौरे अपने-आपमे अश्लील हों। इस मुल्क के कई मुकद्दमो मे यह परिभाषा लगातार स्वीकार की जाती रही है जिसकी हालिया मिसाल Kailash Chandra Acharjya Emperor I L R 60 Cal. 201 का मुकद्दमा है और जिसमें इस विषय पर विस्तृत चर्चा की गई है। कहानी की वह इबारत जिसकी तरफ इस फैसले मे ऊपर विशेष रूप से संकेत किया गया है, अत्यंत पतित यौन संबंधी ब्यौरो से भरी पड़ी है और बिला शुब्हा दोनो लिंगों के नौउम्र जेहनो, यहां तक कि बड़ी उम्र के लोगो के भी जेहनो मे बदकारी और यौन-प्रवृत्ति के निकृष्ट विचारो का कारण बन सकती है। यह सवाल यहां कत्तई गैर अहम है कि इस कहानी की रचना मे लेखक का मंशा क्या था। ऐसे मामलो मे अहमियत का पात्र मंशा या नीयत नहीं बल्कि रूझान होता है। बात यूं न होती तो एक दोशीजा जो माल रोड पर नग्नता की स्थिति मे शरीर के खतूत की नुमाइश टहल-टहलकर कर रही होती, उसे किसी भी अश्लील क्रिया का दोषी न समझा जाता अगर

Crown v Saadat Hassan Minto
-
Muhammad Munir, C J

ऐसा करने में उसका मंशा महज नग्नतावाद के शारीरिक लाभों का प्रदर्शन होता। लेकिन उपरोक्त उदाहरण में क्या इसके बारे में दो रायें हो सकती हैं कि यह कार्य अश्लील होगा या नहीं?

अब जिस प्रश्न पर विचार करना बाकी रह जाता है वह प्रतिवादी के विद्वान वकील का पेश किया हुआ है। हमने पहले ही यह बात स्पष्ट कर दी है कि प्रतिवादियों के खिलाफ जो जुर्म है उसका संबंध पूरी कहानी से है। विद्वान वकील की आपत्ति यह है कि विद्वान एडीशनल सेशन जज ने प्रतिवादियों को जब बरी कर दिया तो विद्वान एडवोकेट जनरल का यह कर्त्तव्य था कि वे कहानी के उन हिस्सों को स्पष्ट करते जो अभियोगपक्ष की दृष्टि से अश्लील थे, खास तौर पर जबकि अपील के तर्कों में यह अभियोग लगाया गया कि कहानी के कुछ हिस्से अश्लील हैं। हम इस आपत्ति में कोई वज़ नहीं पाते क्योंकि यह प्रकाशन जिसे अश्लील ठहराया गया है, कोई किताब नहीं सिर्फ एक छोटी-सी कहानी है जो पूरी की पूरी अश्लील है। इससे अलग हटकर हमने अपील की सुनवाई को उस समय मुल्तवी कर दिया जब यह एतराज उठाया गया ताकि प्रतिवादियों के विद्वान वकील को एडवोकेट जनरल की ओर से वे हिस्से पहुंच जाएँ जिन्हें अभियोग पक्ष ने अश्लील ठहराया है। उन हिस्सों की आखिरकार निशानदेही कर दी गई और उनमें वह उद्धरण भी शामिल है जिसका हमने विशेष उल्लेख किया है। उपरोक्त कारणों के आधार पर हम सभी प्रतिवादियों को दोषी करार देते हैं और चूंकि पाकिस्तान के कुछ साहित्यिक क्षेत्रों में शालीनता के बारे में निहायत गुमराह करनेवाले विचार प्रचलित हो गए हैं और मंटो इन्हीं क्षेत्रों में शामिल है इसलिए हम प्रतिवादियों में हर एक को मुबलिग तीन सौ रुपए जुर्माने या एक माह कैदे-बामशक्कत की सज़ा देते हैं।

Respondents sentenced.

O

अनुवाद : नरेश नदीम

O O

पसमजर

आज की ताज़ा ख़बर सुनी आपने ?

कोरिया की ?

जी नहीं ।

बेगम जूनागढ की ?

जी नहीं ।

क़त्लो-ग़ारत की किसी नई वारदात की ?

जी नहीं सआदत हसन मंटो की ।

क्यों ? मर गया ?

जी नहीं । कल गिरफ़्तार कर लिया गया ।

फ़हाशी[1] के सिलसिले में ?

जी हाँ पुलिस ने उसकी ख़ाना-तलाशी भी ली ।

कोकीन या नाजाइज़ शराब वग़ैरह निकली ?

नहीं अख़बारों में लिखा था कि उसके मकान से कोई नाजाइज़ चीज बरामद नही हुई ।

लेकिन उसका वुजूद बज़ाते-ख़ुद[2] नाजाइज़ है ।

जी हाँ कम-अज-कम हुकूमत तो यही समझती है ।

फिर उसे बरामद क्यों न किया गया ?

यह बरामद और दरामद का मामला हुकूमत के अपने हाथों में है जिसे चाहे बरामद करे, जिसे चाहे दरामद करे ! सच पूछिए तो यह काम हुकूमतों ही के हाथ में होना चाहिए । वो इसका सलीक़ा जानती हैं ।

इसमें क्या शक है ।

तो क्या ख़याल है आपका ? इस मर्तबा तो मंटो को फाँसी की सज़ा ज़रूर मिलनी चाहिए

मिल जाए तो अच्छा है । रोज का टंटा ख़त्म हो ।

आपने ठीक कहा है । 'ठंडा गोश्त' के बारे में हाई कोर्ट ने उसके ख़िलाफ़ जो फ़ैसला दिया है, इसके बाद तो उस कमबख़्त को ख़ुद-ब-ख़ुद मर जाना चाहिए था मेरा मतलब

है खुदकुशी कर लेनी चाहिए थी।

अगर वह इस कोशिश में नाकाम रहता

तो उस पर यक़ीनन मुकदमा चलता कि उसने अपनी जान लेने की कोशिश की।

मेरा ख़याल है, यही वजह है कि वह ख़ुदकुशी से बाज रहा। वगरना वह बाज़ रहनेवाला आदमी नहीं।

तो आपका मतलब है कि वह अपनी फहाशी जारी रखेगा?

अजी हजरत! यह उस पर पाँचवाँ मुकदमा है। अगर उसे बाज रहना होता तो पहले मुकदमे के बाद ही नाइब[1] होकर कोई शरीफाना काम शुरू कर देता। मिसाल के तौर पर गवर्नमेंट की मुलाजिमत कर लेता या घी बेचता, या महल्ला पीर गीलानियाँ के गुलाम अहमद साहिब की तरह कोई दवा ईजाद कर लेता।

जी हाँ, ऐसे सैकड़ों शरीफाना काम हैं। मगर वह परले दर्जे का हठधर्म है। लिखेगा और जरूर लिखेगा।

मालूम है आपको, इसका अंजाम क्या होगा?

कुछ बुरा ही नज़र आता है।

छः मुकदमे उस पर पंजाब में चल रहे होंगे, दस सिंध में, चार सूबा सरहद में, तीन मशरिक़ी पाकिस्तान में वह इनकी ताब न लाकर पागल हो जाएगा।

दो मर्तबा तो पागल हो चुका है।

यह उसकी दूरअंदेशी थी वह रिहर्सल कर रहा था ताकि सचमुच पागल हो जाए तो पागलख़ाने में आराम से रहे।

पागल होकर क्या करेगा?

पागलों को होशमंद बनाने की कोशिश करेगा।

यह भी जुर्म है?

मालूम नहीं। यह तो कोई वकील ही बता सकता है कि ताजीराते-पाकिस्तान में इसके लिए कोई दफा मौजूद है या नहीं।

होनी चाहिए। पागलों को होशमंद बनाना दफा 292 की रोशनी में तो बहुत खतरनाक जुर्म मालूम होता है।

दफ़ा 292 के बारे में तो अब हाई कोर्ट ने 'ठंडा गोश्त' का फैसला करते हुए साफ तौर पर कह दिया है कि क़ानून को मुसन्निफ़ की नीयत से कोई वास्ता नहीं। वह नेक हो या बद, कानून को तो सिर्फ यह देखना है कि मैलान[1] क्या है?

इसीलिए तो मैं अर्ज कर रहा था कि पागलों को होशमंद बनाने के फेल में नीयत कैसी भी हो, उसके मैलान को जेरे-गौर रखना पड़ेगा, और जाहिर है कि इस फ़ेल का मैलान किसी सूरत में भी बेजरर[6] क़रार नहीं दिया जा सकता।

ये कानूनी मूशिगाफियाँ[7] हैं। इनसे हमें दूर रहना चाहिए।

आपने बहुत अच्छा किया जो बर्वक्त तंबीह[8] कर दी क्योंकि ऐसी बातों के मुताल्लिक़ सोचना ही अज़ख़ुद एक बड़ा संगीन जुर्म है।

लेकिन हज़रत, मैं सोचता हूँ, अगर मंटो सचमुच पागल हो गया तो उसके बीवी-बच्चों का क्या होगा ?

उसके बीवी-बच्चे जाएँ जहन्नम में। कानून को उनसे क्या वास्ता।

दुरुस्त है लेकिन हुकूमत क्या उनकी मदद नहीं करेगी ?

हाँ, हुकूमत... हुकूमत की बात जुदा है। मेरा खयाल है उसे मदद करनी चाहिए। और कुछ नहीं तो अखबारों में इस बात का एलान कर देना चाहिए कि वह इसके मसाइल पर गौर कर रही है।

जब तक गौर होगा, तब तक मामला साफ हो जाएगा।

जाहिर है। अब तक होता तो ऐसा ही रहा है।

लानत भेजिए मंटो और उसके बीवी-बच्चों पर। आप यह बताइए, हाई कोर्ट के फैसले का उर्दू अदब पर क्या असर होगा ?

उर्दू अदब पर भी लानत भेजिए।

नहीं साहिब, ऐसा न कहिए... सुना है कि अदब कौम का बहुत बड़ा सरमाया होता है।

होगा भाई... हम तो उसे सरमाया कहते हैं जो तिजोरी की सूरत में बैंक में पड़ा हो।

लाख रुपए की बात कही आपने... तो मोमिन, मीर, अहसन, शौक, गालिब, हाफिज वगैरह सब दफा 292 साफ कर देगी ?

करना चाहिए वर्ना उसके वजूद का मतलब ही क्या है ?

ये जितने अदीब और शाइर बने फिरते हैं अब इनको चाहिए कि होश में आएँ और कोई शरीफाना पेशा इख्तियार करें।

लीडर बन जाएँ

सिर्फ मुस्लिम लीग के ?

जी हाँ, मेरा मतलब यही था। किसी और लीग का लीडर बनना फहश है।

बेहद फहश।

लीडरी के अलावा और भी शरीफाना पेशे मौजूद हैं... डाकखानों के बाहर बैठकर पाकीज़ा इबारत में खततनवीसी करें। दीवारों पर इश्तहार लिखें। बराजगारों के दफ्तर में क्लर्क हो जाएँ... नया-नया मुल्क बना है, हजारों आसामियाँ खाली हैं, कहीं भी समा जाएँ... ।

जी हाँ... इतनी खाली ज़मीन पड़ी है।

हुकूमत सोच रही है कि तवाइफों और रंडियों के लिए रावी के पास एक बस्ती बना दे ताकि शहर की गलाज़त दूर हो। क्या न इन शाइरों, अफसानानिगारों और अदीबों[10] को भी उनमें शामिल कर लिया जाए ?

बहुत अच्छा खयाल है, ये लोग वहाँ खुश रहेंगे।

लेकिन अंजाम क्या होगा ?

अंजाम की कौन सोचता है... जो होना होगा, हो जाएगा

हाँ... वहाँ पड़े अक मारते रहेंगे... लोहे को लोहा काटता है, फहाशी को फहाशी काटती रहेगी।

बड़ा दिलचस्प सिलसिला रहेगा।

मंटो को तो ख़ासतौर पर वहाँ अपनी दिलचस्पी का मनभाता सामान मिल जाएगा।

लेकिन वह कमबख़्त उनका मुजरा सुनने के बजाय उन पर लिखेगा। कई सौगंधियाँ, कई सुल्तानाएँ पेश करेगा।

और कई ख़ुशिया[11], कई ढोंडू

मालूम नहीं, कमबख़्त को ऐसे गिरे हुए इंसानो को उठाने मे क्या मजा आता है। सारी दुनिया उन्हें ज़लील और हक़ीर समझती है मगर वह उनको सीने से लगाता है, उनको प्यार करता है।

उसकी बहन इस्मत ने उसके मुताल्लिक कुछ ठीक ही कहा था कि मंटो को अजीबो-गरीब तहलका डाल देनेवाली और सोतो को चौंका देनेवाली चीजों से बडी रगबत है। वह सोचता है, अगर बहुत से लोग सफेद कपडे पहने बैठे हों, और कोई कीचड मलकर वहाँ चला जाए तो सब हक्का-बक्का रह जाएँगे सब लोग रो-पीट रहे हों, वहाँ एक ऊँचा कहकहा लगा दो तो सब दम साधकर टुकर-टुकर मुँह देखने लगेगे। बस धाक बैठ जाएगी, सिक्का जम जाएगा

उसका भाइ मुम्ताज हुसैन कहता है : वह नेकी की तलाश मे निकलता है और उसकी एक किरन ऐसे इंसान के पेट से निकालता है जिसके बारे में आप इस किस्म की कोई तवक्को ही नही रखते। यह है मंटो का कारनामा।

यह बडी लग्व[12] हरकत है बल्कि फहश हरकत है कि ऐसे इसान के पेट से रोशनी की एक किरन निकाली जाए जिसमें सिवाय अंतडियो और फ़ुज़्ले[13] के और कुछ न हो।

और कीचड मल के सफेदपोश लोगों के दरमियान कूद पडना

यह और भी फ़हश है।

यह इतनी कीचड लाता कहाँ से है?

मालूम नही। कहीं-न-कहीं से ढूँढ निकालता है।

गदगी का गव्वास[14] जो ठहरा।

आइए हम दुआ माँगे कि खुदा हमे उसके लानती वुजूद से निजात दिलाए इसमें खुद मटो की भी निजात है :

> ऐ खुदा, ऐ रब्बुलआलमीन ऐ रहीम, ऐ करीम! हम दो गुनहगार बंदे तेरे हुज़ूर गिडगिडाकर दुआ माँगते हैं कि तू सआदत हसन मंटो को जिसके वालिद का नाम गुलाम हसन मंटो है और जो बहुत शरीफ़, परहेजगार और खुदातरस आदमी था, इस दुनिया से उठा ले, जहाँ वह खुशबूएँ छोड देता है और बदबुओ की तरफ भागता है। नूर में वह अपनी आँखें नहीं खोलता लेकिन अँधेरे में ठोकरें खाता फिरता है। सत्र[15] मे उसको कोई दिलचस्पी नहीं, वह सिर्फ़ इंसानो का नंग देखता है। मिठाइयों से उसे कोई रगबत नही, कडवाहटों पर अलबत्ता जान देता है। घरेलू औरतों की तरफ वह आँख उठाकर भी नही देखता लेकिन वेसवाओं से घुल-मिल के बातें करता है।

साफ़ और शफ़्फ़ाफ़ पानी छोड़ के बदरौओं[16] में नहाता है। जहाँ रोना है, वहाँ हँसता है और जहाँ हँसना है, वहाँ रोता है। कोयलों की दल्लाली में जो अपना मुँह काला करते हैं, उनकी कालिख साफ़ करके हमें दिखाता है। तुझे भूलकर उस शैतान के पीछे मारा-मारा फिरता है जिसने तेरी उदूल-हुक्मी की थी ऐ रब्बुलआलमीन, उस शरअंगेज़[17], नजिसपसंद[18] और शरीर इंसान को इस दुनिया से उठा ले जिसमें वह बदकिरदारों और बदअतवारों[19] के नामा-ए-आमाल[20] की सियाहियाँ मिटाने की कोशिश में मसरूफ़ है ऐ ख़ुदा, वह बहुत शरपसंद है। अदालतों के फ़ैसले सुबूत हैं लेकिन ये अर्जी अदालतें हैं, तू उसे इस दुनिया से उठा और अपनी आसमानी अदालत में उसके ख़िलाफ मुक़दमा चला और उसको क़रार वाक़ई सज़ा दे। लेकिन देख, उसे अदाएँ बहुत आती हैं, ऐसा न हो तुझे उसकी कोई अदा पसंद आ जाए तू सबकुछ जाननेवाला है। हमारी सिर्फ़ यह दुआ है कि वह इस दुनिया में न रहे। रहे तो हम-जैसा बनकर रहे, हम जो एक-दूसरे के ऐबों पर पर्दा डालते हैं

'ई दुआ अज़-मनो-अज-जुमला जहाँ आमीन बाद!'[21]

1. अश्लील, 2. अपने आपमें; 3. तौबा करनेवाला; 4 अभिरुचि; 5. काम; 6. निडर, 7. नुक्ताचीनी, 8 चेतावनी देना, ख़बरदार करना; 9. ख़त लिखना, 10. साहित्यकार; 11. मंटो के अफ़साने 'ख़ुशिया' का पात्र; 12. बहुत बुरी, वाहियात; 13. भिष्टा, मल-मूत्र, 14. ग़ोताख़ोर; 15. पर्दा, छुपाव; 16. गंदा पानी, 17. बुराई फैलानेवाले; 18. ग़लीज, गंदगीपसंद, 19 बुरे तौर-तरीक़े, कुरीतियाँ; 20. सूची; 21. यह प्रार्थना अक्षरशः सत्य एवं फलीभूत हो।

पाँचवाँ मुक़दमा

एक

अपने अफ़सानों के सिलसिले में मुझ पर चार मुकदमे चल चुके हैं, पाँचवाँ अब चला है जिसकी रूदाद[1] मैं बयान करना चाहता हूँ।

पहले चार अफ़साने जिन पर मुक़दमा चला, उनके नाम हस्बे-जैल है :

एक : काली शलवार

दो : धुआँ

तीन : बू

चार : ठंडा गोश्त

और

पाँचवाँ : ऊपर, नीचे और दरमियान

पहले तीन अफसानों में तो मेरी ख़लासी हो गई . 'काली शलवार' के सिलसिले में मुझे दिल्ली से दो-तीन बार लाहौर आना पडा।

'धुआँ' और 'बू' ने मुझे बहुत तग किया, इसलिए कि मुझे बम्बई से लाहौर आना पड़ता था

लेकिन 'ठडा गोश्त' का मुक़दमा सबसे बाजी ले गया। इसने मेरा भुरकस निकाल दिया।

यह मुक़दमा गो यहाँ पाकिस्तान ही में हुआ, मगर अदालतो के चक्कर कुछ ऐसे थे जो मुझ-ऐसा हस्सास[2] आदमी बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि अदालत एक ऐसी जगह है जहाँ हर तौहीन बर्दाश्त करना ही पडती है।

ख़ुदा करे, किसी को जिसका नाम 'अदालत' है, से वास्ता न पडे—ऐसी अजीब जगह मैंने कहीं भी नहीं देखी।

पुलिसवालो से मुझे नफ़रत है—उन लोगो ने मेरे साथ हमेशा ऐसा सुलूक किया है जो घटिया क़िस्म के अख़लाक़ी मुल्ज़िमों से किया जाता है।

पिछले दिनों जब कराची के एक पर्चे 'पयामे-मशरिक़' ने मेरी इजाजत के बग़ैर मेरा मज़मून 'ऊपर, नीचे और दरमियान' लाहौर के अख़बार 'एहसान' में नक्ल किया तो

कराची की हुकूमत ने मेरा वारंट जारी कर दिया।

मैं घर पर नहीं था। पुलिस के दो सब-इंस्पेक्टर, चार सिपाहियों के साथ आए और मेरे घर का मुहासरा[3] कर लिया।

मेरी बीवी ने उनसे कहा कि मंटो बाहर गया है। अगर आप चाहें तो मैं उसे अभी बुला लेती हूँ—वो मुसिर[4] थे कि मंटो घर ही में है और मेरी बीवी झूठ बोल रही है।

जब पुलिस आई थी, मैं उस वक्त चौधरी नज़ीर अहमद की दूकान 'नया इदारा' में, जो 'सवेरा' का दफ़्तर भी है, बैठा था और मैंने एक अफ़साना लिखना शुरू किया था।

इस अफ़साने की मैंने बमुश्किल दस सतरें लिखी होंगी कि चौधरी रशीद अहमद साहिब, जो चौधरी नज़ीर के छोटे भाई हैं और 'मकतबा जदीद' के मालिक हैं, तशरीफ़ लाए—उन्होंने कुछ तवक्कुफ़[5] के बाद पूछा : "यह आप क्या लिख रहे हैं?"

मैंने जवाब दिया : "एक अफ़साना शुरू किया है और यह बहुत लंबा होगा।"

चौधरी रशीद साहिब ने बड़े तश्वीशनाक[6] लहजे में कहा : "मैं आपको एक बहुत बुरी खबर सुनाने आया हूँ।"

ज़ाहिर है कि मेरा रद्दे-अमल क्या होगा—चन्द मिनट तो मैं सोचता रहा कि 'बहुत बुरी खबर' क्या हो सकती है। कई खयाल दिमाग़ में आए। मैं ऊपर, नीचे और दरमियान होता रहा मगर कुछ समझ में न आया।

आखिर मैंने चौधरी रशीद से पूछा कि भाई, क़िस्सा क्या है?

उन्होंने कहा : "किस्सा यह है कि पुलिस आपके घर के दरवाज़े के बाहर खड़ी है। वह मुसिर है कि आप घर में हैं, इसलिए वह ज़बरदस्ती अंदर दाखिल होने की कोशिश कर रही है।

मेरे पास अहमद राही और हमीद अख्तर बैठे थे। जब उन्होंने यह सुना तो वो बहुत मुज़्तरिब[7] हुए। चुनांचे वो भी मेरे साथ हो लिए।

हमने तांगा लिया और घर रवाना हुए।

जब वहाँ पहुँचे तो देखा कि फ्लैट के दरवाज़े के पास पुलिस खड़ी है।

मेरा भानजा (हामिद जलाल) और बिरादरे-निस्बती[8] (ज़हीरुद्दीन) अपनी मोटरों के पास खड़े पुलिसवालों से महवे-गुफ़्तगू[9] थे और उनसे कह रहे थे कि अगर आप तलाशी लेना चाहते हैं तो ले सकते हैं। आप यकीन मानिए कि मंटो घर में नहीं है।

वो ये बातें कर ही रहे थे कि मैं, अहमद राही और हमीद अख्तर ताँगे में घर पहुँच गए—हमने रास्ते में चौधरी रशीद साहिब से कह दिया था कि वह अखबारों को टेलीफोन कर दें ताकि दूसरे रोज़, जो कुछ मेरे साथ गुज़रे, अखबारों में छप जाए।

मैं, हमीद अख्तर और अहमद राही जब घर पहुँचे तो देखा कि अब्दुल्ला मलिक खड़ा पुलिस के अफ़सरों से गुफ़्तगू में मसरूफ़ है।

अब्दुल्ला मलिक कम्युनिस्ट है। उसकी तहरीर हमेशा 'सुर्ख' होती है हालाँकि मैंने उसमें कभी वह सुर्खी नहीं देखी जो असल सुर्खी है।

अब्दुल्ला कम्युनिस्ट मेरे मकान के बाहर खड़ा था और सब-इंस्पेक्टरों और सिपाहियों से गुफ़्तगू कर रहा था कि मैं, अहमद राही और हमीद अख्तर ताँगे में पहुँचे।

सब-इंस्पेक्टरों और सिपाहियो ने मेरी बीवी और बहन को यह धमकी दी थी कि वो तलाशी लेना चाहते हैं और अगर दरवाज़े न खोले गए तो वो ज़बरदस्ती अंदर घुस आएँगे।

मैं जब पहुँचा और बाहर कंपाउंड में उन पुलिस अफ़सरों से मुलाक़ात हुई तो मेरा ख़याल है कि उन्हें बक़दरे-किफ़ायत नदामत[10] हुई—मैंने उन्हें अंदर मकान में तशरीफ लाने के लिए कहा। यह दावत उन्होंने क़ुबूल फ़रमाई और अंदर तशरीफ़ ले आए।

दो अफ़सर थे, बड़े अक्खड़ क़िस्म के—मैंने उनसे मुलाक़ात की वजह पूछी तो उन्होंने फरमाया कि कराची से वारंट आए हैं कि आपकी ख़ाना-तलाशी ली जाए।

मुझे बड़ी हैरत हुई—मैं कोई ख़ुफ़िया-फ़रोश नहीं हूँ। अफ़्यून नहीं बेचता, शराब का ग़ैरक़ानूनी कारोबार नहीं करता। मेरे पास कोकीन भी नही है, फिर ये पुलिसवाले, जो कराची से वारंट लेकर आए हैं, मेरी ख़ाना-तलाशी क्यो ले रहे है।

पुलिस अफ़सर जब अदर तशरीफ़ लाए तो उन्होने मुझसे पहले यह सवाल किया कि तुम्हारी लाइब्रेरी कहाँ है?

मैं उनसे क्या कहता—मेरी लाइब्रेरी यहाँ पाकिस्तान मे चद किताबों पर मुश्तमिल[11] है। उनमें तीन डिक्शनरियाँ या लुग़त है।

मैंने उनसे अर्ज़ की : "मेरी जितनी किताबें थी, वो तो बंबई में रह गईं। आपको अगर किसी पर्चे या पुर्ज़े की तलाश है तो आप बंबई तशरीफ़ ले जाएँ। एड्रेस हाज़िर है।"

वो अफसर कुछ ऐसे बदजोक थे कि उन्होंने इस बज़्लासंजी[12] की दाद न दी और मेरी ख़ाना-तलाशी शुरू कर दी। ख़ाना मेरा मैख़ाना नही। बीयर की आठ-दस ख़ाली बोतलें ज़रूर थीं, लेकिन पुलिस अफसरों ने उनको देखने की जहमत न की।

अल्मारियों में चीनी के प्याले थे। एक तिपाई पर छोटा-सा बक्स था जिसमे कुछ काग़ज़ात थे—पुलिस अफ़सरो ने एक-एक पुर्जा देखा। अख़बारों के कुछ तराशे थे, वो उन्होंने अपने क़ब्ज़े में ले लिए।

उसके बाद मैंने उन अफ़सरो से कहा कि अब बराहे-करम तलाशी के वारंट जो दारुल-हुकूमत कराची से आए हैं, मुझे दिखा दीजिए—मगर उन्होने इनकार कर दिया।

वारंट का कागज एक हवालदार के हाथ में था, उसने मुझे दूर से दिखाते हुए कहा: "यह है।"

मैंने उससे पूछा: "यह क्या है?"

उसने जवाब दिया: "यह वही चीज़ है जिसके ज़रिए से हम यहाँ पहुँचे हैं।"

जब मैंने इसरार किया कि मैं यह कागज़ देखे बग़ैर नहीं टलूँगा तो उन्होंने वारंट का कागज़ दोनों हाथों में मज़बूती से पकड़े रखा और कहने लगे: "आप पढ़ लीजिए।"

मैंने सरसरी तौर पर पढ़ा तो मुझे मालूम हुआ कि ख़ाना-तलाशी के अलावा यह कागज़ मेरी गिरफ्तारी का वारंट भी है।

अब ज़मानत का मरहला[13] दरपेश आया।

पुलिस अफ़सर कुछ इतने ख़ुदसर थे कि उन्होंने किसी की ज़मानत क़ुबूल न की—मेरा भानजा था गज़ेटिड अफ़सर। मेरा बिरादरे-निस्बती, वह भी गजेटिड अफ़सर। मगर

पुलिसवालों ने उनकी ज़मानत क़ुबूल न की, उनसे यह कहकर कि आप हुकूमत के मुलाजिम हैं, हो सकता है कि आप कल बरतरफ़ कर दिए जाएँ।

क़िस्सा मुख़्तसर यह है कि मैंने दो मर्तबा अपनी अलालत के बायस कराची की अदालत को माज़रतनामा[14] मय डॉक्टरी सर्टिफ़िकेट पेश किया कि मैं हाज़िरे-अदालत नहीं हो सकता, लेकिन बकरे की माँ कब तक ख़ैर मनाएगी। मुझे बिलआख़िर कराची जाना ही पड़ा।

एक दिलचस्प लतीफा : यहाँ जब आख़िरी वारंट आए तो ज़मानत देने के लिए घर में कोई मौजूद नहीं था।

मैं अपने बहुत से दोस्तों के पास गया मगर उनमें से कोई भी न मिला—आख़िर मुहम्मद तुफ़ैल साहिब के पास गया। वह बड़े शरीफ़ आदमी हैं, मेरे साथ बादिले-नाख़्वास्ता या ख़्वास्ता हो लिए। ज़मानत हो गई, इसलिए कि उनका एक अदबी इदारा है (वह 'नक़ूश' के मालिक भी हैं और मुदीर भी) और उनकी दूकान में जितनी किताबें हैं, वो इसकी ज़मानत हैं कि वह पाँच हजार की ज़मानत दे सकते हैं।

एक और लतीफ़ा सुनिए : ''तुफ़ैल साहिब ने ज़मानत तो दे दी मगर उन्हें यह ख़तरा पैदा हो गया कि शायद मैं तारीख़े-मुकर्रर पर अदालत में हाज़िर नहीं हूँगा।

ख़ुदा गवाह है कि मेरे पास ज़हर खाने को भी एक पैसा न था—तुफ़ैल साहिब सुबह पाँच बजे मेरे ग़रीबख़ाने पर तशरीफ़ लाए। उनकी जेब में सैकिंड क्लास के दो टिकट थे—ताँगे का ख़र्च भी उन्होंने दिया। स्टेशन तक छोड़ने गए और जब तक गाड़ी कराची रवाना न हुई, वह मेरे साथ रहे—मेरे साथ उन्होंने मेरा एक दोस्त नसीर अनवर कर दिया था, ताकि मैं कराची यक़ीनी तौर पर पहुँच जाऊँ।

कराची में जो कुछ मुझ पर बीती, उसका हाल आपको फिर कभी सुनाऊँगा इसलिए कि सख़्त बीमार हूँ।

1. पहले; 2. सूर्य की; 3. तेज़ी, गर्मी; 4. सुसज्जित, पहने हुए; 5 बातचीत में व्यस्त; 6. साफ़, स्वच्छ; 7. ख़ुशी; 8. गणना, अंकों; 9. कब्र के ऊपर लगाया जानेवाला मृतक के परिचय का पत्थर; 10. रहस्य एवं भेद; 11. समानता।

दो

(पाँचवाँ मुक़दमा) : 'नक़ूश के किसी पिछले शुमारे मे (शुमारा : 29-30 फरवरी-मार्च, 1953 ई) इस उनवान से मैंने एक मज़मून लिखना शुरू किया था लेकिन मुकम्मल न कर सका था, इसलिए कि मैं सख़्त बीमार था—बीमार तो मैं अब भी हूँ, और मेरा ख़याल है कि सदा बीमार रहूँगा, बाज अहबाब[1] कहते हैं कि तुम्हारी यह बीमारी ही सबकुछ है, यानी मेरी मज़मूननिगारी और अफ़सानानवीसी।

तुफ़ैल साहिब जो इस पर्चे के मालिक और एडिटर हैं, उन्होने मेरे मुताल्लिक़ एक मजमून भी 'मंटो साहिब' के उनवान से लिखा है—इस मजमून पर बिरादरम अहमद नदीम क़ासमी ने, जो बदक़िस्मती से 'इमरोज़' के कायरम-मक़ाम एडिटर मुकर्रर हो गए है, दर्ज-ज़ैल तब्सिरा किया है, 'नक्काद' के नाम से :

> मुहम्मद तुफ़ैल का मजमून 'मंटो साहिब' शख़्सी और बहुत हद तक निजी हैसियत रखता है, और हमारे खयाल में तुफ़ैल साहिब को उन 'राजहाए दरूने-पर्दा'[2] को दरूने-पर्दा ही रखना चाहिए था जो मंटो साहिब के और उनके सरपरस्त[3] मे मुताल्लिक़ हैं—नाशिर और अदीब नीज एडिटर और अदीब के ताल्लुक़ात का यूँ सरे-बाजार ऐलान होने लगे तो न नाशिरों को कहीं ठिकाना मिले और न अदीबो को—कमजोरियाँ और ख़ामियाँ किस में नहीं होतीं लेकिन उनको छापे के हवाले कर देना कम-अज-कम हमारी नज़र में हुदूदे-एतिदाल[4] से तजावुज़[5] करना है। यह दुरुस्त है कि अदीबों और फनकारों की नन्ही ख़ामियों पर से नक़ाबकुशाई[6] उनकी शख़्सियत को ज़्यादा उजागर करने में मदद देती है, मगर ऐसी नकाबकुशाई भी क्या कि दूसरा आदमी नक्कू बनकर रह जाए—मजमून के मुताले से मालूम होता है कि तुफ़ैल साहिब की नीयत बुरी नहीं, जज़्बात की रौ में आकर वह चंद बातें ऐसी कह गए हैं जो न कही जातीं या यूँ न कही जातीं तो बेहतर था।

मैं इस तब्सिरे से पहले तुफ़ैल साहिब को यह ख़त लिख चुका था :

बिरादरम, अस्सलाम अलैकुम !

कल रात मुझे सफ़िया ने बताया था कि आपने मुझ पर 'नक़ूश' में मज़मून लिखा है—ज़्यादा पीने की वजह से मुझसे ठीक पढ़ा नहीं जा रहा था; चूँकि सफ़िया को मज़मून पसंद था, इसलिए उसने मेरे कहने पर इधर-उधर से सुनाया जो मुझे क़तअन पसंद न आया; यही सबब हुआ कि मैंने आपको आधी दर्जन के क़रीब गालियाँ दीं; और उसके बाद मुझे नींद आ गई। सुबह उठकर अपनी आँखों से मज़मून पढ़ा तो मुझे पसंद आ गया—आपने जो कुछ लिखा है, उससे मुझे इनकार नहीं; अपनी कमज़ोरियों के बावुजूद (मैं) बेहद ख़ुश हूँ कि आपने जो कुछ लिखा है, उसमें हिचकिचाहट का शायबा[7] तक नहीं; जो कुछ मैं हूँ वह इस मज़मून में मौजूद है बल्कि वाफ़िर[8] मौजूद है—इस (मज़मून) मे बाज़ बातें ऐसी (मौजूद) हैं जो मुझमें मौजूद थीं मगर मेरे लिए महसूस की हद से बाहर थी।

ख़ाकसार
सआदत हसन मंटो

मै अब इस (मजमून) के मुताल्लिक कुछ और कहना नही चाहता—जो हकीक़त है, उसमे मुझे कभी इनकार नही होगा; मैं अगर शराब पीता हूँ तो मैं इसमे क्यो इनकार करूँ, मैंने अगर किसी से उधार लिया है तो मुझे इसमे भी इनकार नहीं होना चाहिए; अगर मुझे दुनिया इस लिहाज से बुरा समझती है तो समझा करे—मैं अगर दुनिया की ऐसी बातों के मुताल्लिक़ ही सोचता रहना तो मेरा खयाल है कि मैं सौ से ज़्यादा अफ़सानों का मुसन्निफ न होता।

साहिबे-नक्दो-नज़र[9] (अहमद नदीम कासमी) फरमाते है : "यह दुरुस्त है कि अदीबों और फनकारों की नन्ही-नन्ही खामियो पर से नकाबकुशाई उनकी शख्सियत को ज्यादा उजागर करने मे मदद देती है। मगर ऐसी नक़ाबकुशाई भी क्या कि दूसरा आदमी नक्कू बनकर रह जाए"—मुझे मालूम नहीं कि तुफ़ैल साहिब के मज़मून के बाद मैं नक्कू बनकर रह गया हूँ या नहीं; इसका फ़ैसला होता रहेगा।

मुझे तुफ़ैल साहिब के इस मज़मून के मुताल्लिक़ सिर्फ़ इतना अर्ज करना है कि उन्होंने अपने बीमार भाई के दवा-दारू को महज़ इसलिए पसे-पुश्त[10] रखा और मेरी मदद फरमाई कि उन्हें अपने बुज़ुर्गों का यह क़ौल याद आ गया था कि किसी की ज़मानत हर्गिज़-हर्गिज नहीं देनी चाहिए, जिसका मुझे अफ़सोस है; अगर मुझे उनकी इस कमज़ोरी का इल्म होता तो मैं कभी अदालत मे हाज़िर न होता; वह गिरफ़्तार होते, और जब वह किसी ज़ामिन की तलाश करते तो मैं उनसे कहता कि हज़रत, बुज़ुर्गों की उस नसीहत को पेशे-नज़र रखिए जिसको आप महज़ मुरव्वत की ख़ातिर भूल गए ज़मानत को छोड़िए और चलिए मेरे साथ जेल में।

जैसा कि आपने इस मज़मून की पहली क़िस्त में पढ़ा होगा, यह मेरे पाँचवें मुक़दमे की रूदाद है।

मैं और मेरा दोस्त नसीर अनवर स्टेशन पहुँचे; टिकट तुफ़ैल साहिब ने ले ही दिए थे, मगर अब सवाल यह था कि जगह कैसे मिले—(फिर) हमारे पास बीयर की बोतलें (भी) थीं, (और) गाड़ी में उनके लिए भी जगह न थी।

मुझे मअन[11] याद आया कि मेरा एक हमजमात याकूब तौफ़ीक़ लाहौर स्टेशन पर असिस्टेंट स्टेशन मास्टर है; इत्तिफ़ाक़ की बात है कि वह उस वक़्त ड्यूटी पर थे; मैं उनसे मिला तो उन्होंने सीटों का बंदोबस्त कर दिया—चुनांचे हम कराची रवाना हो गए।

जिस डिब्बे में हमें जगह दी गई (थी), उसमें एक मौलवी साहिब भी सवार थे—वह तस्बीह के दाने फेर रहे थे।

मैंने सोचा कि यह तो वबाले-जान हो जाएँगे, चुनांचे (मुझे) एक तरकीब सूझी। मैंने नसीर अनवर से कहा कि भई, एक बीयर की बोतल तो खोलो।

उसने फ़ौरन सीट के नीचे से एक बोतल निकाली और खोलकर मेरे हवाले कर दी।

मौलवी साहिब अपनी तस्बीह के दाने फेरते हुए दूसरे स्टेशन पर उतर गए।

मुझे यहाँ एक और लतीफ़ा याद आ गया (है):

लाहौर स्टेशन पर हमारे कंपार्टमेंट में एक साहिब अपनी अहलिया[12] के साथ तशरीफ़ लाए—साहिब को तो ख़ैर मैं और नसीर अनवर बर्दाश्त कर लेते, मगर साहिबा को बर्दाश्त करना बहुत मुश्किल था; असल में वह हमें बर्दाश्त न कर सकती थीं।

चुनांचे जब वो दोनों कंपार्टमेंट में दाख़िल हुए तो मैंने साहिब से कहा: "देखिए हज़रत, हम शराबी आदमी हैं बीयर की पंद्रह बोतलें हमारे पास हैं हम पिएँगे और वाही-तबाही बकेंगे।... आप शरीफ़ आदमी हैं और ग़ालिबन अपनी बीवी के साथ हैं इसलिए बेहतर है कि आप किसी और कंपार्टमेंट में जगह तलाश कर लें।"

अब कि मैं यह मज़मून लिख रहा हूँ तो मुझे तुफ़ैल साहिब बताते हैं कि उन साहिब ने, जो अपनी बुर्क़ापोश अहलिया के हमराह थे, स्टेशन मास्टर से कहा कि फ़लाँ-फ़लाँ डिब्बे में जहाँ उन्हें जगह दी गई है, दो बदमाश बैठे हैं

स्टेशन मास्टर ने ताज्जुब का इज़हार किया और कहा कि उस डिब्बे में तो सआदत हसन मंटो है जोकि बेहद शरीफ़ आदमी है—मगर उन साहिब ने कहा: "जी नहीं उसने मुझसे ख़ुद कहा है कि वह शराबी-कबाबी है"

बहरहाल वह बला टल गई, वह यूँ कि उन साहिब को किसी और कंपार्टमेंट में जगह दे दी गई और हम निश्चिंत हो गए।

(लाहौर से) कराची तक का सफ़र निहायत ज़लील है; सैकिंड क्लास में भी इतनी गर्द

आती है कि अलअमां[13]—बहरहाल सफ़र बीयर की बोतलों की बदौलत कट ही गया।

मेरा ख़याल था कि किसी होटल में ठहरा जाए, मगर जेब इजाज़त न देती थी—मैंने फ़ैसला किया कि ख़्वाजा नसीरुद्दीन के यहाँ ठहरा जाए, इसलिए भी कि बीवी ने ताकीद की थी कि : "देखो, मेरे भाई के पास जाना···"

मैंने सोचा कि सारी ख़ुदाई एक तरफ़, जोरू का भाई एक तरफ़—मैंने सारी ख़ुदाई को एक तरफ रखा और जोरू के भाई के पास चला गया।

(ख़्वाजा नसीरुद्दीन) बड़ा शरीफ़ आदमी है; माशाअल्लाह अच्छी मुलाज़िमत पर है, माक़ूल तनख़्वाह मिलती है; बहुत बड़े फ़्लैट में रहता है—उसने हमारी बड़ी आवभगत की। इत्तिफाक़ से उसके साथवाला फ़्लैट ख़ाली था, वह मुझे और नसीर अनवर को दे दिया गया।

मुझे कोई ख़्वाहिश नहीं थी कि मैं वहाँ कराची में ज़्यादा दिन रहूँ, इसलिए कि बंबई में पंद्रह बरस रहने के बाद कराची में कोई कशिश नज़र नहीं आती थी।

दूसरे दिन हम मजिस्ट्रेट साहिब की ख़िद्मत में हाज़िर हुए।

मामूली-सी इमारत थी—एक छोटा-सा कमरा था जिसमें एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट तशरीफ फ़रमा थे।

मुझ पर लाहौर मे कई मुकदमे चल चुके थे; मैं ज़िला कचहरी के आदाब से वाकिफ था, यानी (वह जगह) जहाँ अदब-आदाब का कोई वास्ता ही नहीं।

मै मजिस्ट्रेट साहिब के हुज़ूर सर-ता-पा[14] बंदगी बनके खड़ा हो गया।

उन्होने मेरी तरफ देखा और पूछा : "आप क्या चाहते हैं ?"

मजिस्ट्रेट साहिब के लहजे की मुलाइमी मेरे लिए बड़ी ताज्जुबख़ेज़ थी— मैंने अर्ज़ की : "जनाब, मेरा नाम सआदत हसन मंटो है आज आपने मुझे मेरे मज़मून 'ऊपर, नीचे और दरमियान' के सिलसिले मे फहशनिगारी की दफा 292 के मातहत तलब फ़रमाया है "

आपने मुझे बडे गौर से देखा और कहा : "तशरीफ रखिए !"

मैंने खयाल किया कि मालूम नही, उन्होंने किससे तशरीफ़ रखने को कहा है, क्योंकि लाहौर की अदालतों मे तो ऐसा रिवाज नही—मैं खड़ा रहा।

जब मजिस्ट्रेट साहिब ने देखा कि मैंने तशरीफ नहीं रखी तो उन्होंने दोबारा कहा : "तशरीफ रखिए मंटो साहिब !"

मैं उनकी मेज के पास रखी हुई बेंच पर बैठ गया।

मजिस्ट्रेट साहिब थोडी देर के बाद मुझसे मुख़ातिब हुए : "आप इतने दिन तशरीफ़ क्यों न लाए ?"

मैंने अर्ज़ की . "जनाब ! मेरी तबीअत नासाज थी···"

मजिस्ट्रेट साहिब ने फरमाया : "आपने मेडीकल सर्टीफ़िकेट भेज दिया होता !"

मैंने झूठ बोला : "मैं इस क़दर बीमार था कि मेडीकल सर्टीफ़िकेट भेजने के मुताल्लिक़

सोच ही नहीं सकता था।"

मजिस्ट्रेट साहिब ने मेरा झूठ सुना और ख़ामोश रहे। फिर कहा : "आप क्या चाहते हैं?"

मैं सोचने लगा कि मैं क्या चाहता हूँ। असल में तो मैं अपना छुटकारा चाहता था—मुझे बार-बार तुफ़ैल साहिब का ख़याल आता था जिन्होंने मेरी ज़मानत दी थी और बाद में उनको मेरी लाउबाली तबीयत के बायस सुबह-सवेरे सैकिंड क्लास के दो टिकटों के साथ आना पड़ा था।

मैंने कुछ देर सोचा और फिर मजिस्ट्रेट साहिब से कहा : "मुझे आप फ़ारिग़ कर दीजिए, मैं जल्दी वापस जाना चाहता हूँ।"

आपने फ़रमाया : "इतनी जल्दी तो यह काम नहीं हो सकता मैंने आपका मज़मून अभी तक नहीं पढ़ा है इंशाअल्लाह आज पढ़ लूँगा और कल सुबह फ़ैसला सुना दूँगा"

मैंने और नसीर अनवर ने उनको आदाब अर्ज की और मोटरसाइकिल-रिक्शा में बैठकर बीयर पीने चले गए—यह रिक्शा मुझे कराची मे बहुत पसंद आई; फटफट करती चलती है; घंटों का फ़ासला मिनटों में तय होता है और किराया भी कुछ ज्यादा नहीं होता।

दूसरे रोज़ हम अदालत में हाजिर हुए।

मजिस्ट्रेट साहिब ने मेरे सलाम का जवाब दिया और फरमाया : "तशरीफ रखिए!"

मैंने बेंच पर तशरीफ़ रख दी।

आपने एक छोटा-सा काग़ज़ निकाला और फरमाया : "मैंने फ़ैसला लिख लिया है" उसके बाद उन्होंने रीडर की तरफ देखा और उससे कहा : "आज क्या तारीख़ है?"

उसने जवाब दिया : "पच्चीस !"

मैं ज़रा ऊँचा सुनता हूँ—मेरे कान एक अरसे से ख़राब हैं—मैं समझा कि मुझे पच्चीस रुपए जुर्माना हुआ है, चुनांचे मैंने मजिस्ट्रेट साहिब से कहा :" जनाब, पच्चीस रुपए जुर्माना?"

पच्चीस रुपए जुर्माने का यह मतलब था कि मैं अपील नहीं कर सकता था; उस सूरत में सज़ा बहाल रहती।

मजिस्ट्रेट साहिब ने ग़ालिबन पाँच सौ रुपए जुर्माना किया था, मगर जब उन्होंने यह सुना : 'पच्चीस रुपए जुर्माना' तो वह मुसकराए; क़लम लिया और जुर्माना पच्चीस रुपए में तब्दील कर दिया।

नसीर अनवर ने फ़ौरन जेब से पच्चीस रुपए निकाले और अदा कर दिए और साथ ही मुझसे कहा : "सस्ते छूटे हो, अपील-वपील का झंझट ग़लत होता, कब तक यहाँ अदालतों की ठोकरें खाते रहते क्या तुम्हें 'ठंडा गोश्त' का मुक़दमा याद नहीं"

मुझे 'ठंडा गोश्त' का मुक़दमा याद आ गया और मैं काँप-काँप गया।

मैंने ख़ुदा का शुक्र अदा किया कि उसने इतनी जल्दी मेरी खलासी कर दी।

मैं मजिस्ट्रेट साहिब को आदाब अर्ज़ करके जाने ही वाला था कि उन्होंने मुझसे कहा : "आप कब वापस जा रहे हैं ?"

मैंने जवाब दिया : "ग़ालिबन आज ही चला जाऊँगा।"

उन्होंने कहा : "नहीं, आज न जाइए मैं आपसे मिलना चाहता हूँ।"

मुझे बहुत हैरत हुई कि वह मुझसे क्यों मिलना चाहते हैं—बहरहाल मैंने उनसे कहा : "मैं कल तक ठहर जाऊँगा।"

उन्होंने मुझसे पूछा : "कल चार बजे आपसे कहाँ मुलाक़ात हो सकती है ?"

मैं जिन-जिन बारों में जाकर बीयर पीता रहा था, मैंने उनका नाम ले दिया—वह परहेज़गार क़िस्म के आदमी थे, फ़ैसला कॉफ़ी हाऊस पर हुआ।

वक़्त चार बजे तय हुआ था मगर हम पंद्रह मिनट देर से पहुँचे।

मजिस्ट्रेट साहिब मौजूद थे—आपसे रस्मी-रस्मी गुफ़्तगू होती रही।

थोड़ी देर के बाद उन्होंने मुझसे बड़े प्यार से कहा : "मंटो साहिब, मैं आपको इस दौर का बहुत बड़ा अफसानानिगार मानता हूँ आपसे मिलने का मक़सद सिर्फ़ यह था कि आप यह ख़याल दिल में लेकर न जाएँ कि मैं आपका मद्दाह[15] नहीं "

मैं सख़्त मुतहय्यर[16] हुआ : "आप मेरे मद्दाह हैं तो जनाब, आपने मुझे जुर्माना क्यों किया ?"

वह मुसकराए : "इसका जवाब मैं आपको एक बरस के बाद दूँगा "

कई महीने गुज़र चुके हैं, चंद बाक़ी रह गए हैं—देखिए, मजिस्ट्रेट साहिब, जो अपने वादे के पक्के मालूम होते हैं, क्या इन्किशाफ़[17] फरमाते हैं।

---

1. कुछ लोग; 2. आंतरिक रहस्य; 3. संबंध; 4. बराबरी का दर्जा; 5. सीमा से बाहर होना, धृष्टता; 6. पर्दा उठाना, रहस्योद्घाटन; 7. झलक; 8. बहुत ज़्यादा; 9. आलोचनात्मक दृष्टिवाले; 10. नज़रंदाज़; 11. सहसा, अकस्मात; 12. पत्नी; 13. घबराहट में बोलने की इंतिहा; 14. सिर से पैर तक; 15. प्रशंसक; 16. स्तब्ध, आश्चर्यचकित; 17. रहस्य प्रकट करते हैं।

अफ़सानवी सफ़र

ईंतिसाब[1] और दीबाचे[2]

1. समर्पण, 2. भूमिका

पहला पड़ाव

चंद फ़िक्रतलब अफ़सानों का मजमूआ

आतिश पारे

वालिद मरहूम के नाम

यह अफ़साने दबी हुई चिनगारियाँ हैं।
इनको शोलों में तब्दील करना पढ़नेवालों का काम है।

अमृतसर : 5 जनवरी, 1936

दूसरा पड़ाव

मंटो के अफ़साने

पहली इशाअत[1] में : अख़बार 'दीन दुनिया', देहली के नाम
जिसमें मेरे खिलाफ़ सबसे ज़्यादा गालियाँ छपीं।

दूसरी इशाअत से : एक बार फिर
अख़बार 'दीन दुनिया', देहली के नाम
जिसमें मेरे खिलाफ़ सबसे ज़्यादा गालियाँ छपीं।

['मंटो के अफ़साने' की पहली इशाअत और दूसरी इशाअत के दीबाचे मुख़्तलिफ़ हैं—दूसरी इशाअत का दीबाचा एक तक़रीर[2] है, जो मंटो ने बंबई के जोगेश्वरी कॉलेज की मजलिसे-अदब में तालिबे-इल्मों के सामने पढ़ी थी—यह तक़रीर 'अदबे-जदीद'[3] के उनवान से 1944 में 'अदबे-लतीफ़'[4], लाहौर के सालनामे में शाया हुई थी, और इस तक़रीर या मज़मून पर हुकूमते-पंजाब ने ज़ेरे-दफ़ा 38, डिफ़ेंस ऑफ इंडिया रूल्ज़ के तहत मुक़दमा चलाया था। इसे आप चौथे खंड में 'लज़्ज़ते-संग' के शीर्षक के तहत पढ़ सकते हैं—जहां तक 'मंटो के अफ़साने' की पहली इशाअत में मुख़्तसर-सी भूमिका का संबंध है, वह कोशिश के बावजूद हमें न मिल सकी।]

1. संस्करण, 2. भाषण, 3. आधुनिक साहित्य, 4. पत्रिका का नाम.

तीसरा पड़ाव

धुआँ

हसन अब्बास[1] के नाम

पश लफ़्ज़

जब इस किताब का पहला अफसाना 'साक़ी' में शाय हुआ तो मेरे एक दोस्त[2] ने, जो अंग्रेज़ी और उर्दू, दोनों जबानों में लिखते हैं, इस पर गयजनी करते हुए कहा : ''तुम्हारा ताज़ा अफ़साना 'धुवाँ' फ़लां साहबा[3] ने पढ़ा उनका खयाल है कि यह निहायत गलीज है।''

यह साहिबा डॉक्टरी का इम्तिहान पास कर चुकी हैं, मगर अब एक अर्से से प्रैक्टिस नहीं करती—मैं समझता हूँ कि इसी वजह से उन्हें वह अमले-जराही पसंद नहीं आया, जो मेरे अफ़साने में मौजूद है—बहरहाल मैं अपने अंग्रेजी और उर्दू में लिखनेवाले दोस्त और इल्मे-तिब में सनदयाफ़्ता खातून का बेहद ममनून हूँ कि मुझे अपनी कहानियों के दूसरे मजमूए[4] का उनवान उस अफसाने में मिल गया, जो दोनों को नापसंद था।

देहली : 7 दिसंबर, 1941

1. *हसन अब्बास : अमृतसर मे मंटो की आवारगी के दिनो का लँगोटिया।*
2. *अंग्रेज़ी और उर्दू, दोनों ज़बानों में लिखनेवाला दोस्त : मुल्कराज आनंद।*
3. *फ़लाँ साहबा : मंटो और मुल्कराज आनंद, दोनों ख़ामोश रहे हैं।*
4. *मंटो ने 'धुवाँ' को अपनी कहानियो का दूसरा मजमूआ कहा है। यह गलत है। 'धुवाँ' तीसरा मजमूआ है।*

चौथा पड़ाव

अफ़साने और ड्रामे[1]

तसनीम[2] के नाम

पेश लफ़्ज़

मगर इसकी जरूरत ही क्या है।

बंबई : 28 नवंबर, 1943

---

1. इस मजमूए में सात अफसाने और छः ड्रामे शामिल हैं।

2. तसनीम : नवाब छत्तारी की साहबजादी तसनीम सलीम छत्तारी; एक आई-गई अफसानानिगार।

पाँचवा पड़ाव

चुग़द

उस चुग़द के नाम
जो अपने चुग़द होने का बीच खेत इक़रार करे।

दीबाचा

इस किताब का पहला एडीशन बंबई में छपा था—बँटवारे के बाद इसका पूरा मुसव्वदा कुतुब पब्लिशर्ज़ लिमिटेड के हवाले करके मैं पाकिस्तान चला आया था। यहाँ से मैंने अली सरदार जाफ़री को, जो उन दिनों कुतुबवालों के हाँ मुलाज़िम थे, लिखा : 'किताब जल्द शाय होने की सिर्फ़ एक ही सूरत है कि इसका दीबाचा आप ख़ुद ही लिख लें। आप जो कुछ भी लिखेंगे, मुझे मंज़ूर होगा।'

आपने जवाब में लिखा : 'मैं बड़ी ख़ुशी से तुम्हारी किताब पर दीबाचा लिखूँ, हालाँकि तुम्हारी किताब के लिए दीबाचे और ख़ुसूसियत से मेरे दीबाचे की ज़रूरत नहीं है। तुम जानते हो कि मेरे और तुम्हारे अदबी नज़रिये में बहुत इख़्तिलाफ़[1] है, लेकिन इसके बावुजूद मैं तुम्हारी क़द्र करता हूँ और तुमसे बहुत-सी तवक़्क़आत[2] वाबस्ता किए हुए हूँ।'

मैंने यह ख़त मिलने पर जाफ़री साहब से कहा : 'तो ठीक है, किताब बग़ैर दीबाचे ही के चलने दीजिए।' लेकिन इस दौरान में मुझे उनका दूसरा ख़त मिला, जिससे मालूम हुआ कि उन्होंने एक मुख़्तसर दीबाचा लिखकर किताब में शामिल भी कर लिया है—यह दीबाचा जैसा भी है, 'चुग़द' के पहले एडीशन में मौजूद है।

इस एडीशन में उसको मैंने हज़फ़[3] कर दिया है, इसलिए नहीं कि ख़ुदानख़्वास्ता मुझे जाफ़री साहब से कोई अनाद[4] पैदा हो गया है, या मैं उनसे नफ़रत करने लगा हूँ—दरअसल पिछले दिनों बंबई के नामनिहाद तरक़्क़ीपसंदों ने मेरी तहरीरों के बारे मे जो बेमानी शोर बरपा किया और मुझे यक क़लम 'अदब बाहर' किया, उसके पेशे-नज़र मैं मुनासिब नहीं समझता कि इस हलक़े का एक बहुत ही सरगर्म कारकुन मेरी 'रजअतपसंदी[5]' का दुमछल्ला बना रहे।

इस किताब का एक अफ़साना 'बाबू गोपीनाथ' जब 'अदबे-लतीफ़' में शाया हुआ तो मैं बंबई ही में मुक़ीम था। तमाम तरक़्क़ीपसंद मुसन्निफ़ीन ने इसकी बहुत तारीफ़ की। इसको उस साल का शाहकार अफ़साना क़रार दिया। अली सरदार जाफ़री, इस्मत चुग़ताई और कृश्न चंदर ने ख़ुसूसन इसको बहुत सराहा। 'हल के साए' में कृश्न ने इसको नुमाया जगह दी—मगर यकायक ख़ुदा मालूम कैसा दौरा पड़ा कि सब तरक़्क़ीपसंद इस अफ़साने की अज़्मत[6] से मुनहरिफ़[7] हो गए। शुरू-शुरू में दबी ज़बान से इस पर तनक़ीद[8] शुरू हुई। सरगोशियों में इसको बुरा-भला कहा गया, मगर अब भारत और पाकिस्तान के तमाम तरक़्क़ीपसंद ममटियों पर चढ़कर इस अफ़साने को रजअतपसंद, इख़लाक़ से गिरा हुआ, घिनावना और शरअंगेज़[9] क़रार दे रहे हैं।

यही सलूक मेरे अफ़साने 'मेरा नाम राधा है' के साथ किया गया, हालाँकि जब शाया हुआ था तो तमाम तरक़्क़ीपसंदों ने उछल-उछलकर उसकी तारीफ़-तौसीफ़[10] की थी।

अली सरदार जाफ़री ने 'चुग़द' पर जब दीबाचा 'सुपुर्दे-तरक़्क़ीपसंदी' किया तो मुझे ख़त लिखा : 'दीबाचे के मुताल्लिक़ तुम्हारी राय मालूम करना चाहता हूँ। मैंने बहुत ख़ुलूस और मुहब्बत से लिखा है—मैं तुम्हारी अफ़सानानिगारी पर एक तवील मज़मून लिखने का इरादा कर रहा हूँ। तुम्हें अब तक दक़ियानूसी क़िस्म के लोगों ने सिर्फ़ गालियाँ ही दी हैं। उनसे और किसी चीज़ की तवक़्क़ोह बेकार थी।'

यह सुतूरें पढ़ के क्या जी नहीं चाहता कि उनके सब अल्फ़ाज़ तरक़्क़ीपसंदों के मुँह पर दे मारे जाएँ और रजअतपसंदी को ज़ेरे-लब मुसकराने का मौक़ा दिया जाए।

इसी ख़त में अली सरदार जाफ़री लिखते हैं : 'तुम्हारी कहानी 'खोल दो' को मैं इस दौर का शाहकार समझता हूँ।'

तरक़्क़ीपसंदों के साथ या इस कहानी के साथ यह ट्रेजिडी हुई कि यह माहनामा 'नक़ूश', लाहौर में शाया हुई, जो पाकिस्तानी तरक़्क़ीपसंदों के गुरु जनाब अहमद नदीम क़ासमी मोदज 'ज़िंदगी आमोज व ज़िंदगी आमेज़ अदब' की ज़ेरे-इदारत[11] शाया होता था, वर्ना यह भी 'अदब बाहर' कर दी जाती और मैं तरक़्क़ीपसंदी का सुर्ख़ मुँह देखता रह जाता।

मेरी किताब 'सियाह हाशिए' तरक़्क़ीपसंदों ने सिर्फ़ इसलिए नापसंद की कि इस पर दीबाचा हसन असकरी का था, जिसका नाम वह सियाह फ़ेहरिस्तियों में दर्ज कर चुके थे—चुनांचे अली सरदार ने हस्बे-मामूल बड़े ख़ुलूस और मुहब्बत के साथ मुझे लिखा : 'यहाँ लाहौर से मेरे पास एक ख़बर आई है कि तुम्हारी किसी नई किताब पर हसन असकरी मुक़दमा[12] लिख रहे हैं। समझ में नहीं आ सका, तुम्हारा और हसन असकरी का क्या साथ है? मैं हसन असकरी को बिलकुल मुख़्लिस नहीं समझता।'

तरक़्क़ीपसंदों की ख़बर रसानी का सिलसिला और इंतज़ाम क़ाबिले-दाद है। यहाँ की ख़बरें खेतवाड़ी के 'क्रेमलिन' में बड़ी सेहत से यूँ चुटकियों मे पहुँच जाती हैं—अली सरदार को यहाँ से जो ख़बर मिली, बड़ी मोतबर[13] थी, चुनांचे नतीजा यह हुआ कि 'सियाह

हाशिए' प्रेस की सियाही लगने से पहले ही 'रूसियाह'[14] करके रजअतपसंदी की टोकरी में फेंक दी गई।

जिस वक़्त अली सरदार ने 'चुग़द' पर दीबाचा लिखने के लिए क़लम उठाया तो उन्होंने यह न सोचा कि मंटो और उनका क्या जोड़ है, जबकि उनके कहने के मुताबिक़ हमारे अदबी नज़रियों में बहुत इख़्तिलाफ़ है, मगर मेरे तरक़्क़ीपसंद दोस्त सोचा नहीं करते। यह उनके लिए शायद एक फ़अले-मनफ़ी[15] है।

सोचने की एक दिलचस्प मिसाल पेश करता हूँ :

'नया इदारा' का 'सवेरा', जिसके मालिक नज़ीर अहमद चौधरी हैं, 'अदब की तरक़्क़ीपसंद तहरीक का तर्जुमाँ' है। इसमें एक तरफ़ मेरा नाम सियाह फ़ेहरिस्तियों में शामिल करके मुझे रजअतपसंद, मफ़ादपरस्त[16] इन्फ़िरादियतपसंद[17], लज़्ज़तपरस्त और फ़रारी क़रार दिया जाता है, और दूसरी तरफ़ 'नया इदारा' मेरी एक तस्नीफ़ का इश्तिहार इन लफ़्ज़ों में देता है :

> सआदत हसन मंटो सदाक़त का अलमबरदार है—उसके हाथ में सचाई की दोधारी तलवार है, जिसे वह हुकूमत और समाज के घने जंगल में इंतिहाई बेरहमी से घुमाता है और बनावट और रिया के परदों को चाक करता चला जाता है। उसे गालियाँ मिलती हैं और वह मुसकरा देता है। वह दुआओं और सज़ाओं की परवाह किए बग़ैर एक ऐसी राह पर गामज़न[18] है, जिस पर सिर्फ़ वही चल सकता है।

मैंने जब यह इश्तिहार 'सवेरा' में पढ़ा था तो मैं मुसकराने के बजाय ख़ूब हँसा था—इश्तिहार की 'इसके पढ़ने से बहुतों का भला होगा' वाली ज़बान को छोड़िए और सोचिए कि यह तरक़्क़ीपसंद और उनके तरक़्क़ीपसंद नाशिर[19] ज़मीर की परवाह किए बग़ैर क्या एक ऐसी राह पर गामंज़न नहीं, जिस पर सिर्फ़ वही चल सकते हैं।

पिछले दिनों भोपाल क़ान्फ़्रेंस में इस्मत शाहिद लतीफ़ ने भरे मजमा में मर्दानावार अपने उन तमाम अफ़सानों पर लानत भेजकर उनसे क़लम ख़लासी करा ली थी, जो तवक़्क़ीपसंदी के धरमकाँटे में पूरे नहीं उतरते थे—यह तरक़्क़ीपसंद नाशिर क्यों इस्मत की-सी दयानतदारी से काम नहीं लेते। उन्हें चाहिए कि सियाह फ़ेहरिस्तिए रजअतपसंदों की तमाम किताबें नज़्रे-आतिश कर दें। अगर वह ऐसा करें तो मैं उनके हाथ चूम लूँ।

आख़िर में मुझे यह कहना है कि तरक़्क़ीपसंदी से मुझे कोई कद नहीं, लेकिन नामनिहाद तरक़्क़ीपसंदों की उलटी-सीधी ज़क़ंदें[20] बहुत खलती हैं।

लाहौर : 26 अगस्त, 1950

1 मनभेद; 2. आशाएँ, 3. निकाल देना; 4. दुश्मनी, 5. प्रतिक्रियावादी; 6. महत्त्व, 7 विमुख, 8. व्यंग्य; 9. उपद्रवी; 10. बडाई; 11. संपादन; 12 भूमिका, 13. विश्वमनीय, 14. काला मुँह; 15. तयाज्य कर्म; 16. अवमरवादी; 17. अलगाववादी; 18 चलना; 19 प्रकाशक; 20 छलाँग।

छटा पड़ाव

लज़्ज़ते-संग

पहली इशाअत : मुहम्मद हुसैन चौधरी के नाम
मर्दे नादाँ पर कलामे-नर्म व नाज़ुक बेअसर

दूसरी इशाअत से : चौधरी मुहम्मद हुसैन साहब मरहूम के नाम
ख़ुद अज़ करदा-ए-ख़ुद शर्मसारतर गरोद

लाहौर के एक रुसवा-ए-आलम रिसाले में, जो फ़हाशी व बेहूदगी की इशाअत को अपना पैदाइशी हक समझता है, एक अफ़साना शाय हुआ है, जिसका उनवास है 'बू' और इसके मुसन्निफ है मिस्टर सआदत हसन मंटो

मुक़दमा

सर खुजाता है जहाँ जख़्म-सर अच्छा हो जाए
लज्ज़ते-संग बांदाजा-ए-तक़रीर नहीं

—ग़ालिब

सातवाँ पड़ाव

सियाह हाशिये

उस आदमी के नाम
जिसने अपनी ख़ूँरेज़ियों का ज़िक्र करते हुए कहा :
"जब मैंने एक बुढ़िया को मारा तो मुझे ऐसा लगा,
मुझसे क़त्ल हो गया है !"

(इस किताब का दीबाचा 'हाशिया आराई' के उनवान से मुहम्मद हसन असकरी ने लिखा था ।)

आठवाँ पडाव

ख़ाली बोतलें ख़ाली डिब्बे

एक ख़ाली बोतल के नाम

पेश लफ़्ज़

जैसा कि पहले ऐलान किया गया था, यह किताब मेरे मत्बूआ[1] अफ़सानों और मज़मूनों का मख़लूत[2] मजमूआ थी, मगर जब मुसव्वदा कातिब के सुपुर्द किया जाने लगा तो मैंने सोचा, अफसानों और मजमूनों का जोड कुछ ठीक नहीं। चुनाचे मैंने मज़मून निकाल लिए और उनकी जगह नए अफ़साने लिख दिए।

इन नए अफ़सानों मे कुछ मत्बूआ हैं, कुछ गैर मत्बूआ—इनकी ख़ुसूसियत, अलावा इसके कि यह मेरे लिखे हुए हैं, यह है कि हर अफसाना एक ही निशस्त में लिखा गया है।

यह अफसाने मेरे पहले अफसानों से किसी क़दर मुख़्तलिफ़ होंगे। इनमें अल्फ़ाज बकदरे-किफ़ायत इस्तेमाल किए गए हैं और फ़िरोई तफसीलात से परहेज किया गया है। यह अम्र मलहूज़े-ख़ातिर[3] रहा है कि कम-से-कम अल्फ़ाज़ में हर्फ़े-मुद्दआ[4] बयान हो जाए—मेरा ख़याल है, मुझे इसमें कामयाबी हुई है, लेकिन मुझे देखना है कि पढ़नेवालों का रद्दे-अमल क्या है।

ऐसे ही अफसानों का एक दूसरा मजमूआ 'ठंडा गोश्त' के उनवान से पेश कर रहा हूँ, जो अग़लबन 'ख़ाली बोतलें ख़ाली डिब्बे' के साथ ही मार्केट में आ जाएगा।

'ठंडा गोश्त' वह अफसाना है, जिसको फाजिल अदालत के मातहत फ़हश क़रार देकर मुझे तीन सौ रुपए जुर्माना और तीन महीने कैदे-बामशक़्क़त की सज़ा दी थी, लेकिन अपील करने पर सेशन ने मुझे बरी कर दिया था।

'पेश-लफ़्ज़' की कोई ज़रूरत नहीं थी, लेकिन चूँकि मुझे क़ारिईन से यह चंद बातें करना थीं, इसलिए 'सरगश्ता ख़ुमारे-रसूमो-क़यूद' होना पड़ा।

लाहौर : 26 अगस्त, 1950

1 प्रकाशित, 2 सम्मिलित, 3 ध्यान रखने योग्य, 4 उद्देश्य।

नौवाँ पड़ाव

ठंडा गोश्त

ईशर सिंह के नाम
जो हैवान बनकर भी इंसानियत न खो सका।

(मंटो ने इस किताब के दीबाचे के तौर पर 'ज़हमते-मह्रे-दरख़्शाँ को इस्तेमाल किया था जो आप पहले पढ़ चुके हैं।)

दसवाँ पड़ाव

नमरूद की ख़ुदाई

1. इस किताब का न कोई इंतिसाब है और न कोई दीबाचा।
2. किताब का उनवान ग़ालिब के इस शेर से लिया गया है :

   क्या वह नमरूद की ख़ुदाई थी।
   बंदगी में मेरा भला न हुआ।

3. मशहूर अफ़साना 'खोल दो' इसी किताब का पहला अफ़साना है।

ग्यारहवा पड़ाव

बादशाहत का ख़ात्मा

ब्रिजमोहन* के नाम

पेश लफ्ज़

मुझे इन अफ़मानों के मुताल्लिक सिर्फ यह कहना है कि यह मेरे अफसाने हैं—इनकी ख़ूबी, अलावा इसके कि यह मेरे हैं, यह है कि यह बहुत मुख्तसर अर्से मे सुपुर्दे-कलम हुए है। जिन हालात में यह लिखे गए, उसका हाल मैं जानता हूँ या मेरा ख़ुदा, जो बड़ा बेनियाज[1] है।

हर अफ़साने के इख्तिताम[2] पर एक तारीख दर्ज है, जो बताती है कि अफसाना कब लिखा गया—इन तारीख़ों से आपको मालूम हो सकता है कि मैंने यह मजमूआ मजमूई तौर पर कितने अर्से मे तैयार किया—साहबे-नज़र क़ारिईन इस तारीखी मजमूए मे मेरे ज़ेहन के मुताल्लिक़ एक ख़ास अर्से की हद तक अपने-अपने खयाल के मुताबिक राय ज़रूर कायम कर सकेंगे।

इन अफ़सानों मे एक ख़ूबी या बुराई यह भी है कि इनकी तवालत[3] करीब-करीब यकसाँ है। यह मैंने अफसानानिगारी में एक नया तजुर्बा किया है इसके मुताल्लिक मै नाकिदीने-फन[4] की राय बड़ी दिलचस्पी से पढ़ूँ और सुनूँगा।

और कुछ कहना नहीं चाहता, सिवाय इसके कि पाकिस्तान में अभी तक जिंदा हूँ।

लाहौर 14 जन. 1950

ब्रिजमोहन : मंटो का बंबई के दिनो का एक अजीबो-गरीब दोस्त—मंटो ने दो अफसाने, 'बादशाहत का ख़ात्मा' और 'पैरन', अपने अजीबो-गरीब दोस्त के किरदार से लिए है।

1. बेफिक्र, 2. अंत; 3. लंबाई; 4. आलोचकों।

बारहवाँ पड़ाव

यज़ीद[1]

(इस किताब का कोई इंतिसाब[2] नहीं है।)

ज़ेबे-कफ़न

फ़ारिग़[3] मुझे न जान कि मानिंदे सुब्ह व महर[4]
है दाग़े-इश्क़ ज़ीनते[5]-जैबे-कफ़न हनूज़[6]

—ग़ालिब

जी चाहता है, आज आपसे, अपनी तहरीरें पढ़नेवालों से, तमाम 'मुक़द्दमाई' और 'दीबाचाई' तकल्लुफ़ात बरतरफ़ रख के बातें करूँ—यूँ तो मेरे अफ़सानों, ड्रामों और नीम अफ़सानवी मज़मूनों में भी अक्सर ऐसी बातें होती हैं, जिनका ताल्लुक़ बराहे-रास्त मेरे दिलो-दिमाग़ के उस ख़ाने से होता है जो आमतौर पर इंसान की अपनी ज़ात के लिए मख़्सूस होता है, लेकिन उन पर चौखटा चूँकि अफ़साने का होता है, इसलिए आप इन्हें उसी शक्ल में देखते रहे हैं।

आज मेरा दिल बहुत अफ़सुर्दा है। एक अजीब-सा इज़्मेहलाल[7] उस पर छाया हुआ है।

चार-साढ़े चार बरस पहले जब मैंने अपने दूसरे वतन बंबई को ख़ैरबाद कही थी तो मेरा दिल इसी तरह मग़मूम था। मुझे वह जगह छोड़ने का सदमा था, जहाँ मैंने अपनी ज़िंदगी के बड़े पुरमशक़्क़त दिन गुज़ारे थे। उस ख़ित्ता-ए-ज़मीन ने मुझ-जैसे आवारा और ख़ानदान के धुत्कारे हुए इंसान को अपने दामन में जगह दी थी—उसने मुझसे कहा था: "तुम यहाँ दो पैसे रोज़ाना पर भी ख़ुश रह सकते हो और दस हज़ार रोज़ाना पर भी अगर तुम चाहो तो दोनों सूरतों में दुनिया के मग़मूमतरीन इंसान की ज़िंदगी बसर कर सकते

हो ... यहाँ तुम जो चाहो, करो। तुम्हारी ऐब जुई[8] कोई नहीं करेगा ... यहाँ तुम्हें कोई नासेह[9] भी नहीं मिलेगा ... हर कठिन काम तुम्हें ख़ुद करना होगा। अपनी ज़िंदगी का हर अहम फ़ैसला तुम्हें ख़ुद ही करना पड़ेगा ... तुम फुटपाथ पर रहो या किसी आलीशान महल में, इससे मुझे कोई सरोकार नहीं ... तुम जाओ या रहो, मुझे इससे कोई फ़र्क़ महसूस नहीं होगा ... मैं जहाँ हूँ, मौजूद हूँ और मौजूद रहूँगी।''

वहाँ बारह बरस रहने के बाद जो कुछ मैंने सीखा, यह उसी का बायस है कि मैं यहाँ पाकिस्तान में मौजूद हूँ। यहाँ से कहीं और चला गया तो वहाँ भी मौजूद रहूँगा—मैं चलता-फिरता बंबई हूँ। मैं जहाँ भी क़याम करूँगा, वहीं मेरा अपना जहान आबाद हो जाएगा।

बंबे छोड़ने के बाद मैं अफ़सुर्दा था। वहां मेरे दोस्त थे, जिनकी दोस्ती पर मुझे नाज है—वहाँ मेरी शादी हुई। वहीं मेरा पहला बच्चा हुआ। दूसरे ने भी अपनी ज़िंदगी का पहला दिन वहीं शुरू किया—मैंने वहाँ चंद रुपयों से लेकर हज़ारों और लाखों तक कमाए और खर्च किए—मुझे बंबे से मुहब्बत थी और आज भी है।

मुल्क के बँटवारे से जो इन्क़िलाब बरपा हुआ, उससे मैं एक अर्से तक बाग़ी रहा और अब भी हूँ—लेकिन बाद में इस ख़ौफ़नाक हक़ीकत को मैंने तस्लीम कर लिया, मगर इस तरह कि मायूसी को मैंने अपने पास तक न आने दिया।

मैंने उस ख़ून के समंदर में ग़ोता लगाया, जो इंसान ने इंसान की रगों से बहाया था और चंद मोती चुनकर लाया, अर्के-इन्फिआल[10] के और मशक्क़त के, जो उसने अपने भाई के ख़ून का आख़िरी क़तरा बहाने में सर्फ की थी; उन आँसुओं के, जो इस झुँझलाहट में कुछ इंसानों की आँखों से निकले थे कि वह अपनी इंसानियत क्यों ख़त्म नहीं कर सके—यह मोती मैंने अपनी किताब 'सियाह हाशिए' में पेश किए।

मैं इंसान हूँ, वही इंसान जिसने इंसानियत की इस्मतदरी[11] की थी; जिसने फ़ना को बादा-ए-हर जाम[12] बनाया था, जिसने दूसरी इजनास[13] की तरह इंसान के गोश्त-पोस्त को दूकानों में सजा-सजाकर बेचा था; मैं वही इंसान हूँ, जिसने पैग़ंबरी का रुत्बा हासिल किया और मैं वही इंसान हूँ, जिसने पैगंबरों के ख़ून से अपने हाथ रंगे—मुझ में वह तमाम कमज़ोरियाँ और ख़ूबियाँ मौजूद हैं, जो दूसरे इंसानों में हैं।

यक़ीन मानिए कि मुझे उस वक़्त दुख हुआ, बहुत बड़ा दुख, जब मेरे चंद हमअसरों ने मेरी इस कोशिश ('सियाह हाशिए') का मज़हका उड़ाया। मुझे लतीफ़ाबाज़ या-वा गो, मनकी, नामाकूल और रजअतपसंद कहा गया। मेरे एक अज़ीज़ दोस्त ने तो यहाँ तक कहा कि मैंने लाशों की जेबों में से सिगरेट के टुकड़े, अंगूठियाँ और इसी क़िस्म की दूसरी चीज़ें निकाल-निकालकर जमा की हैं। इस अज़ीज़ ने मेरे नाम एक खुली चिट्ठी भी शाया की, जो वह बड़ी आसानी से मुझे ख़ुद दे सकते थे। इस खुली चिट्ठी में भी उन्होंने 'सियाह हाशिए' की तज़्हीक[14] में खुले तौर पर क़लमकारी की।

मैं इंसान हूँ। मुझे ग़ुस्सा आया। मैंने उस आलम में उस कीचड़ के जवाब में ऐसी कीचड़ तैयार की, जो बहुत देर तक मेरे नामनिहाद नक़्क़ादों के चेहरों पर जमी रहती।

लेकिन फिर मैंने सोचा और महसूस किया कि ऐसा करना ग़लती है—ईंट का जवाब पत्थर से देना इंसान की ख़सलत[15] है, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन ख़ामोश रहना उसकी दानिशमंदी है, उसका तहम्मुल[16] है, उसकी बुर्दबारी[17] है।

मुझे ग़ुस्सा था, इसका नहीं कि अलिफ़ ने मुझे क्यों ग़लत समझा। मुझे ग़ुस्सा था, इस बात का कि अलिफ़ ने महज़ फ़ैशन के तौर पर एक सक़ीमोह-अक़ीम[18] तहरीक की उँगली पकड़कर, बैरूनी सियासत के मस्नूई अबरू के इशारे पर, मेरी नीयत पर शक किया, और मुझे उस कसौटी पर परखा जिस पर सिर्फ़ 'सुर्ख़ी' ही सोना थी।

मुझे ग़ुस्सा था कि इन लोगों को क्या हो गया है—यह कैसे तरक़्क़ीपसंद हैं, जो तनज़्ज़ुल[19] की तरफ़ जाते हैं; यह इनकी सुर्ख़ी कैसी है, जो सियाही की तरफ़ दौड़ती है, यह इनकी मज़दूर दोस्ती क्या है, जो मज़दूर को पसीना बहाने से पहले ही मज़दूरी के मुतालबे[20] पर उकसा रही है; यह इनकी सरमाए के ख़िलाफ़ मेहनत की मुबारज़त[21] किस क़िस्म की है कि यह ख़ुद सरमाए से मुसल्लह[22] होना चाहते हैं और अपने महबूब हथियार दरांती और हथौड़ा अपने मुख़ालिफ़ों के हाथ में दे रहे हैं; यह इनका अदब में किस क़िस्म का इज्तिहाद[23] है कि ग़ज़ल को मशीन और मशीन को ग़जल बनाने के मन्सूबे सोचे जा रहे हैं।

मुझे ग़ुस्सा था उनके आए दिन के मनशूरो[24] पर, उनकी तवील-तवील क़रारदादों[25] पर, उनके मुख़्तलिफ़ बयानों पर जिनका मसाला बराहे-रास्त रूस के क्रेमलिन से बंबई की खेतवाड़ी में आता था और वहाँ से मैकलोड रोड पहुँचता था—रूस के फ़लाँ शाइर ने यह कहा है, रूस के फ़लाँ अफ़सानानिगार का यह बयान है, रूस के फ़लाँ दानिशवर ने यह दानिशमंदाना बात कही है—मुझे ग़ुस्सा आता था कि यह लोग उस ख़ित्ता-ए-अर्ज़[26] की बात क्यों नहीं करते, जिस पर कि ख़ुद साँस लेते हैं—अगर हमने दानिशवर पैदा करने बंद कर दिए हैं तो इस बाँझपन का इलाज क्या सुर्ख़ तुख़्मरेज़ी[27] ही बाक़ी रह गया है?

मुझे ग़ुस्सा था, इसलिए कि मेरी बात कोई भी नहीं सुनता था—तक़सीमे-मुल्क के बाद मुल्क में इफ़ातो-तफ़ीत[28] का आलम था। जिस तरह लोग मकान और मिलें अलाट करवा रहे थे, उसी तरह वह बुलंद मक़ामों पर भी क़ब्ज़ा करने की जद्दोजहद[29] में मसरूफ़ थे। कोई एक लम्हे के लिए भी नहीं सोचता था कि इतने बड़े इन्क़िलाब के बाद हालात वह नही रहेंगे जो पहले थे। पुरानी पगडंडियाँ बड़ी सड़कें बनेंगी या उनका वुजूद ही मिट जाएगा, इसके मुतल्लिक़ वुसूक़[30] से उस वक़्त कुछ भी नहीं कहा जा सकता था। ग़ैर की हुकूमत और अपनों की हुकूमत में क्या फ़र्क़ होगा, इसके बारे में हतमी[31] तौर पर कोई क़यासआराई[32] नहीं हो सकती थी। फ़जा कैसी होगी और उसमें ख़यालातो-एहसासात की सही नशो-व-नुमा क्योंकर होगी और रियासत और हुकूमत से फ़र्द और जमात का रिश्ता कैसा होगा, यह ऐसी बातें थीं जिन पर इतिहाई ग़ौरो-फ़िक्र की ज़रूरत थी। यह काम ऐसा था, जिसमें हमें बैरूनी नुस्ख़ों पर अमल नहीं करना चाहिए था—लेकिन अफ़सोस कि हमारे नामनिहाद दानिशवरों ने बड़ी जल्दबाज़ी से काम लिया और क़यादत[33] के शौक़ में अपना नीमरस जौहर प्याली में डाल दिया, जहाँ वह अदम निगहदाश्त[34] के बायस गलने-सड़ने लगा।

अदब के इन तरक़्क़ीपसंद ठेकेदारों ने पहले फ़ैसला किया कि उनकी जमात का कोई रुक्न किसी सरकारी पर्चे में काम करेगा न उसके लिए लिखेगा—मैंने इसकी मुख़ालफत की और उनको समझाया कि यह इक़दाम सरीहन ग़लत है, ग़लत ही नहीं बल्कि मज़हकाख़ेज है, इसलिए कि यह फ़ैसला इस एहतिमाल[15] पर चुग़ली खाता था जो तरक़्क़ीपसंद मुसन्निफ़ीन की जमात को अपने अरकान की ग़ैर साबितक़दमी के मुताल्लिक़ था या हो सकता था। इसके अलावा ऐसा फैसला तो फरीके-मुख़ालिफ़ की तरफ़ से होना चाहिए था। मैं उसे भी बेहूदा क़रार देता, क्योंकि कोई भी सरकार सिर्फ़ वही चीज़ मुतख़ब[16] करेगी, जो उसकी मंशा के मुताबिक़ होगी।

हमारी सरकार ने भी चुनांचे यही मज़हकाख़ेज बात की, कुछ देर के बाद, जब कि तरक़्क़ीपसंद अपनी अदम तआवुन की क़रारदाद का ढोल काफ़ी ऊँचे सुरों में पीट चुके थे, रेडियो के नश्रयात[17] और सरकारी पर्चों के औराक़ तरक़्क़ीपसंदों के इफ़कार के लिए बंद कर दिए गए। बाद में कुछ तरक़्क़ीपसंद 'अमृतधारा एक्ट' के तहत जेल में ठूँस दिए गए—हुकूमत हिमाक़त का दूसरा नाम है, इसलिए जो हिमाक़तें पै-दर-पै हुकूमत से तरक़्क़ीपसंदों को ख़ामोश करने के सिलसिले में सरजद हुई, मैं उन पर तब्सिरा करना नहीं चाहता।

मुझे अफ़सोस है कि अहमद नदीम क़ासमी और ज़हीर काश्मीरी वग़ैरा, जो बड़े बेज़रर[18] क़िस्म के इंसान हैं और जिनकी दिमाग़ी और जिस्मानी साख़्त लफ़्ज 'साजिश' के सही मानों की मुतहम्मिल[19] नहीं हो सकती, बेकार जेल में डाले गए। पहले को बहनें बनाने का शौक है, दूसरे को भाई। मालूम नहीं, दोनों के इस मासूम शुग़्ल में सियासी रद्दे-अमल की शरारत हुकूमत को कहाँ से नजर आ गई।

ग़ुस्से में आकर बग़ैर सोचे-समझे हुकूमत ने इन लोगों को जेल में डाल दिया और ऐसे नाई के सुपुर्द कर दिया जो इनका हुलिया बिगाड़ के रख देगा—कुछ देर के बाद जब यह रिहा होकर आएँगे तो कौन कह सकता है कि यह किस क़िस्म की मख़लूक़[40] होंगे। सिर से पाँव तक मुँडे होंगे या उन पर बाल-ही-बाल होंगे; ग़ाज़ी[41] कहलाएँगे या शहीद लीडर बन जाएँगे या बाज़ार में मजमे लगाकर दवाइयाँ बेचेंगे; शाइरी और अफ़सानानिगारी से तौबा कर लेंगे या उन पर मर्दे-तसमा-पा की तरह सवार हो जाएँगे—इसमें तज्हीक का कोई पहलू नहीं। अगर मुझे जेल में ठूँसा जाता तो मैं अपने मुताल्लिक़ भी यही कहता, बल्कि इससे कुछ ज़्यादा, इसलिए कि मैं बहुत ज़की अलहिस[42] हूँ।

हुकूमत और तरक़्क़ीपसंद मुसन्निफ़ीन की जमात, दोनों अहसासे-कमतरी का शिकार हुए—मुझे इसका अफ़सोस था और अब भी है। ज़्यादा अफ़सोस तरक़्क़ीपसंदों का था, जिन्होंने ख़्वाहमख़्वाह सियासत के फट्टे में अपनी टाँग अड़ाई। अदब और सियासत का जोशांदा तैयार करनेवाले यह अताई[43], क्रेमलिन के तज्वीज़कर्दा नुस्ख़े पर अमल कर रहे थे। मरीज़ जिसके लिए यह जोशांदा बनाया जा रहा था, उसका मिज़ाज कैसा है और उसकी नब्ज़ कैसी है, इसके मुताल्लिक किसी ने ग़ौर न किया। नतीजा जो हुआ, वह आपके सामने है कि आज सब अदब के जमूद[44] का रोना रो रहे हैं।

मेरा दिल आज बहुत अफ़सुर्दा है कि वह पर्चे, जो तरक्कीपसंद मुसन्निफ़ीन की जमात के नुमाइंदे थे, उन्हें अपने नाख़ुदाओं के साथ कई उल्टी-सीधी ज़क़दें[45] लगाना पड़ीं और आख़िर में अपने तमाम मनशूरों, अपने तमाम बयानों और अपनी तमाम करारदादों को काग़ज़ों पर से खुरचना पड़ा और उन अदीबों का दुबारा तआवुन[46] हासिल करने के लिए कई तावीलें[47] और कई माज़रतें[48] पेश करना पड़ीं, जिनको वह अपनी सियाह फ़ेहरिस्त में दाख़िल कर चुके थे और अपनी तरफ़ से हमेशा-हमेशा के लिए मलऊनो-मतऊन करार दे चुके थे।

मेरा दिल आज बहुत अफ़सुर्दा है, जब मैं सरकार से अदम तआवुन[49] का फ़ैसला करनेवालों को अपने फ़ैसले पर नज़रे-सानी[50] करते देखता हूँ—उन्होंने क्यों न सोचा कि इंसान की जद्दोजहद के वसी दायरे में सबसे अहम जद्दोजहद पेट की है। हमारी हिम्मते-मर्दाना यज़दां पर कमंद डाल सकती है, हमारे जनून के दश्त में जिब्रील एक ज़बूं सैद[51] हो सकता है, मगर यह छिपी हुई हकीकत नहीं कि हमें पेट की ख़ातिर बाज़ औक़ात किसी उल्लू के पट्ठे नवाब की मदह-सराई[52] भी करना पड़ती है—यह इंसान का बहुत बड़ा अलमिया[53] है, लेकिन यह अलमिया ही इंसान का दूसरा नाम है।

मेरे दिल में अब सारा गुस्सा अफ़सुर्दगी में तब्दील हो गया है। मैं बहुत मलूलो-मग़मूम हूँ। जो कुछ मैंने देखा है और जो कुछ मैं देख रहा हूँ, उससे मेरी अफ़सुर्दगी मुज़्महिल[54] होती जा रही है—मेरी मौजूदा ज़िंदगी मसायब[55] से पुर है। दिन-रात मशक्कत करने के बाद बमुश्किल इतना कमाता हूँ, जो मेरी रोज़मर्रा की ज़रूरियात के लिए पूरा हो सके। यह तकलीफ़देह एहसास हर वक्त मुझे दीमक की तरह चाटता रहता है कि अगर आज मैंने आँखें मींच लीं तो मेरी बीवी और तीन कमसिन बच्चियों की देखभाल कौन करेगा? मैं फ़हशनवीस, दहशतपसंद, सनकी, लतीफ़ाबाज़ और रजअतपसंद सही, लेकिन मैं एक बीवी का ख़ाविंद और तीन लड़कियों का बाप हूँ—उनमें से अगर कोई बीमार हो जाए और मौज़ूं व मुनासिब इलाज के लिए मुझे दर-दर की भीख माँगनी पड़े तो मुझे बहुत कोफ़्त होती है। मेरे दोस्त भी हैं जो मुझसे ज़्यादा माफ़ूकुलहाल[56] हैं, बरवक्त अगर मैं उनकी मदद न कर सकूँ तो मुझे तकलीफ़ होती है। दीनवी मामलात में अगर मैं किसी का या अपना सर झुका हुआ देखूँ तो ख़ुदा की कसम मुझे दुख होता है।

लेकिन जब मैं सोचता हूँ, अगर मेरी मौत के बाद मेरी तहरीरों पर रेडियो और लाइब्रेरियों के दरवाज़े खोल दिए गए और मेरे अफ़सानों को वही रुतबा दिया गया जो इक़बाल मरहूम के शेरों को दिया जा रहा है तो मेरी रूह सख़्त बेचैन होगी। मैं उस बेचैनी के पेशे-नज़र इस मुल्क से बेहद मुतमइन हूँ जो अब तक मुझसे रवा रखा गया है—ख़ुदा मुझे उस दीमक से महफ़ूज़ रखे जो कब्र में मेरी सूखी हड्डियाँ चाटेगी।

मैं आज बहुत अफ़सुर्दा हूँ, जब मैं अपने गर्दो-पेश नब्ज़ शनासों[57] को यह कहते सुनता हूँ कि अदब पर जुमूद तारी हो गया है, अदब इन्हितात[58] पज़ीर है, अदब एक तअत्तुल[59] में गिरफ़्तार है—यह गुफ़्तार 'इस्लाम ख़तरे में है' की गुफ़्तारे-लायानी[60] से मिलती-जुलती है। अदब कायम बिलज़ात है, जिस तरह कि इस्लाम है—कुव्वत कभी इन्हितात पज़ीर

नहीं होती। उस पर कभी जुमूद या तअत्तुल तारी नहीं होता—एटम की कुव्वत उसके इन्किशाफ़[61] से पहले भी मौजूद थी और उसके इन्किशाफ़ के बाद भी मौजूद है और रहेगी उसके ग़लत इस्तेमाल या उसके अदम इस्तेमाल का यह मतलब नहीं होगा कि वह नहीफ़ हो गई है, जाँ ब लब[62] है, या मर गई है।

अदब उसी कुव्वत, उसी तवानाई, उसी आबो-ताब से ज़िंदा है, जिस तरह कि वह मनस्सए-शुहूद[63] पर आने से पहले ज़िंदा था; उस पर जुमूद और तअत्तुल तारी होने का सवाल ही पैदा नहीं होता—यह हमारा अपना जुमूद और तअत्तुल है, जिसे हम अदब के जुमूद और तअत्तुल से ताबीर करते हैं।

इस बोहरान के असबाबो-अलल[64] चुनांचे हमें अदब में नहीं, ख़ुद अपने अज़्हान में ढूंढ़ने चाहिएं, और यह कोई मुश्किल काम नहीं। अदब के मुस्तक़ीम रास्ते से हटकर अगर हम इधर-उधर निकल जाएँ तो हमें यह नहीं कहना चाहिए कि रास्ता हमारे आगे से हट गया है—सियासत का मुक़ाम अलग है। उस तक पहुँचने के लिए अदब का रास्ता इख़्तियार करना ग़लत है। इसी तरह अदब की मंज़िले-सही तक पहुँचने के लिए सियासत के पेच-दर-पेच रास्तों पर गामज़न होना भी ग़लत है।

सोवियत रूस के (मौजूदा) अदब का लाख ढिंढोरा पीटा जाए, मगर यह हक़ीक़त है कि वह दोगली तहरीरें, जो वहाँ लाखों टन काग़ज़ों पर छपती है, अदब नहीं है, हर्गिज़ नहीं हैं। अदब, अदब है या कोई और शै है जिसका एक नमूना रूसी अदीबों की हालिया तहरीरों की शक्ल में पेश किया जा सकता है।

अदब पर किसी की इजारादारी हुई है न होगी। यह कोई ऐसा काम नहीं, जिसे ठेके पर देकर करा लिया जाए—'अदब पर जुमूद तारी है', यह एक ढकोसला है 'इस्लाम ख़तरे में है' की किस्म का। इसे खड़ा करनेवाले भी वही है, जो आज से चंद साल पेशतर सर्राटियो पर चढ़कर पुकारते रहे हैं कि तरक़्क़ीपसंद मुसन्निफ़ीन ने तक़सीमे-हिंद के बाद अदब की लाज रख ली है—ग़रीब अदब मर रहा था, मगर उन्होंने अपना ख़ून देकर उसे ज़िंदा कर दिया है—हैरत होती है कि इतनी जल्दी उनके गिनती के चंद अरकान के मक़ैयद[65] होने के फ़ौरन बाद अदब की ज़िंदगी फिर क्यों ख़तरे में पड़ गई।

मैं आज बहुत अफ़सुर्दा हूँ—पहले मुझे तरक़्क़ीपसंद तस्लीम किया जाता था, बाद में एकदम मुझे रजअतपसंद बना दिया गया। और अब फ़तवे देनेवाले सोच रहे है और फिर से यह तस्लीम करने के लिए आमादा हो रहे हैं कि मैं तरक़्क़ीपसंद हूँ।

और फ़तवों पर अपने फ़तवे देनेवाली सरकार मुझे तरक़्क़ीपसंद यक़ीन करती है, यानी एक 'सुर्ख़ा', एक कम्युनिस्ट। वह कभी-कभी झुंझलाकर मुझ पर फ़हशनिगारी का इल्ज़ाम लगा देती है और मुक़दमा चला देती है। दूसरी तरफ़ यही सरकार अपनी मत्बूआत में यह इश्तहार देती है: 'सआदत हसन मंटो हमारे मुल्क का बहुत बड़ा अदीब और अफ़सानानिगार है, जिसका क़लम गुज़िश्ता हंगामी दौर में भी रवाँ-दवाँ रहा।'

मेरा अफ़सुर्दा दिल लरज़ता है कि मुतल्लून[66] मिज़ाज सरकार ख़ुश होकर एक तमग़ा मेरे कफ़न से टाँक देगी, जो मेरी दाग़े-इश्क़ की बहुत बड़ी तौहीन होगी।

बँटवारे के बाद अब तक मैं यह किताबें तर्तीबवार आपकी खिद्‌मत में पेश कर चुका हूँ। इनमें आप बतरीके-एहसन मेरी दिमागी कैफ़ियत का जायजा ले सकते हैं :

1. तल्ख़, तुर्श और शीरीं : इदारा-ए-फ़रोगे-उर्दू (ग़ैर अफ़सानवी तख़्लीक़ात)
2. लज़्ज़ते-संग : नया इदारा
3. सियाह हाशिए : मकतबा-ए-जदीद
4. खाली बोतलें खाली डिब्बे : मकतबा-ए-जदीद
5. ठंडा गोश्त : मकतबा-ए-जदीद
6. नमरूद की खुदाई : मकतबा-ए-जदीद नया इदारा
7. बादशाहत का ख़ात्मा : मकतबा-ए-उर्दू

इनके बाद अफसानों का यह ताज़ा मजमूआ पेशे-खिद्‌मत है। इसमें सिर्फ़ दो अफ़साने मत्बूआ हैं, 'यज़ीद' और '1919 की एक बात'। बाक़ी ग़ैर मत्बूआ हैं—यह मजमूआ कितने अर्से में लिखा गया और कितने अर्से में शाय होकर आप तक पहुँचा, यह आपको मुतल्लिक़ा तारीखों से मालूम हो सकता है।

इस मजमूए का आखिरी अफ़साना 'मम्मी' लिखना शुरू किया था कि 16 अक्तूबर को ख़ान लियाक़त अली ख़ाँ, वज़ीरे-आज़म पाकिस्तान के क़त्ल की ख़बर मौसूल हुई, जिससे दिमाग़ बहुत मुज़्तरिब रहा। इसके बाद मेरी मँझली बच्ची ज़ुजयाजी तपे-महरक़ा में मुब्तला हो गई। इसके बायस भी मैं कई दिन परेशान रहा। नतीजन इस अफ़साने की तकमील में तावीक़ हो गई।

लाहौर : 28 अक्तूबर, 1951

1 मंटो की पुस्तक का शीर्षक, 2 समर्पण, 3 आज़ाद, 4 प्रेम, 5 सौंदर्य, 6 अभी, 7 उदासी, 8 निंदा, 9 नसीहत करनेवाला, 10 सकोचपूर्ण पसीना, 11 अपमान, 12. हरेक पैग की शराब, 13 नम्र, 14 मजाक उडाना, 15 आदत, 16 सहनशक्ति, 17 गभीरता, बडप्पन, 18 रुग्ण; 19 नपुंसक, 20 पतन, 21 युद्ध लडाई, 22 हथियारबंद, 23 प्रयास; 24 लेखो; 25 प्रस्तावो, 26 भूभाग, 27 बीजारोपण, 28 न्यूनाधिक, 29 सघर्ष, 30 विश्वास, 31. निश्चित रूप से, 32 अनुमान लगाना, 33 नेतृत्व, 34 देखभाल, 35 सदेह, 36 सकलित, 37 प्रसारण, 38 निडर, 39 सहनशील, 40 सृष्टि, 41 धर्मयोद्धा, 42. अति सवेदनशील, 43 नीम हकीम, 44. गत्यावरोध, 45 उछाल, छलाग, 46 सहयोग, 47 स्पष्टीकरण, 48 क्षमा, 49. असहयोग, 50 पुनरावलोकन, 51 निकृष्ट आलेट, 52 बडाई, 53 दुखद परिणाम, 54. [illegible] हुआ, 55 दुख-तकलीफ, 56. बदहाल, निर्धन, 57 नब्ज के जानकार, नाडीविद्, 58 पतनशील, 59 गत्यावरोध; 60 व्यर्थ वार्तालाप; 61 रहस्योद्घाटन, 62 मरणासन्न, 63 वह स्थान जहाँ ईश्वर की महिमा प्रकट हो; 64 कारण, 65 बदी, कैदी, 66 अस्थिर।

तेरहवाँ पड़ाव

सड़क के किनारे

यह नन्हें चिराग़
यह नन्हें सरदार
सिर्फ़ अपने लिए चमकते हैं,
जो कुछ यह देखते हैं,
जो कुछ यह सुनते हैं,
किसी को नहीं बताते।

(इस किताब का कोई दीबाचा नहीं, कोई इन्तिसाब नहीं। बस शुरू के एक सफ़े पर रूसी शाइर सयानतलफ़ की नज़्म 'चिराग़ हाये सर-ए-राह' का एक बंद दर्ज है, शायद 'सड़क के किनारे' के ताल्लुक़ से।)

चौदहवाँ पड़ाव

सरकंडों के पीछे

इशाअत . अक्तूबर 1954

(कोई दीबाचा नहीं कोई इंतिसाब नहीं

पंद्रहवाँ पड़ाव

फुंदने

इशाअत : जनवरी 1955

(न कोई दीबाचा, न कोई इनिमाय)

सोलहवाँ पड़ाव

बुर्क़े

उन औरतों के नाम
जिन्हें बुर्क़ों से नफ़रत है।

(कोई दीबाचा नहीं।
यह किताब मंटो की मौत के बाद छपी थी।)

सत्रहवाँ पड़ाव : शिकारी औरतें

अट्ठारहवाँ पड़ाव : बग़ैर इजाज़त

उन्नीसवाँ पड़ाव : रत्ती, माशा, तोला

(मुंदरिजा बाला तीनों किताबें मंटो की मौत के बाद छपी थी। किसी किताब का कोई इंतिसाब नहीं, कोई दीबाचा नहीं।)

○○

मैं अफ़साना क्योंकर लिखता हूँ

मुअज़्ज़िज़ ख़्वातीन[1] व हज़रात !

मुझसे कहा गया है कि मैं यह बताऊँ कि मैं अफ़साना क्योंकर लिखता हूँ।

यह 'क्योंकर' मेरी समझ में नहीं आया—'क्योंकर' के मानी लुग़त[2] में तो यह मिलते हैं : कैसे और किस तरह।

अब आपको क्या बताऊँ कि मैं अफ़साना क्योंकर लिखता हूँ। यह बड़ी उलझन की बात है। अगर मैं 'किस तरह' को पेशे-नज़र रखूँ तो यह जवाब दे सकता हूँ : "मैं अपने कमरे में सोफ़े पर बैठ जाता हूँ, कागज़-क़लम पकड़ता हूँ, और बिस्मिल्लाह करके अफ़साना लिखना शुरू कर देता हूँ—मेरी तीन बच्चियाँ शोर मचा रही होती हैं। मैं उनसे बातें भी करता हूँ, उनकी बाहम लड़ाइयों का फ़ैसला भी करता हूँ। अपने लिए सलाद भी तैयार करता हूँ—कोई मिलनेवाला आ जाए तो उसकी ख़ातिरदारी भी करता हूँ—मगर अफ़साना लिखे जाता हूँ।"

अब 'कैसे' का सवाल आए तो मैं यह कहूँगा : "मैं वैसे ही अफ़साना लिखता हूँ, जिस तरह खानां खाता हूँ, ग़ुस्ल करता हूँ, सिगरेट पीता हूँ और झक मारता हूँ।"

अगर यह पूछा जाए कि मैं अफ़साना क्यों लिखता हूँ तो इसका जवाब हाज़िर है।

"मैं अफ़साना अव्वल तो इसलिए लिखता हूँ कि मुझे अफ़सानानिगारी की शराब की तरह लत पड़ गई है।"

मैं अफ़साना न लिखूँ तो मुझे ऐसा महसूस होता है कि मैंने कपड़े नहीं पहने या मैंने ग़ुस्ल नहीं किया या मैंने शराब नहीं पी।

मैं अफ़साना नहीं लिखता, हक़ीक़त यह है कि अफ़साना मुझे लिखता है।

मैं बहुत कम पढ़ा-लिखा आदमी हूँ—यूँ तो मैंने बीस से ऊपर किताबें लिखी हैं, लेकिन मुझे बाज औक़ात हैरत होती है कि यह कौन है, जिसने इस क़दर अच्छे अफ़साने लिखे हैं, जिन पर आए दिन मुक़दमे चलते रहते हैं।

जब क़लम मेरे हाथ में न हो तो मैं सिर्फ़ सआदत हसन होता हूँ, जिसे उर्दू आती है न फ़ारसी, अंग्रेज़ी न फ़्रांसीसी।

अफ़साना मेरे दिमाग़ में नहीं, जेब में होता है, जिसकी मुझे कोई ख़बर नहीं होती।

मैं अपने दिमाग़ पर ज़ोर देता हूँ कि कोई अफ़साना निकल आए—अफ़सानानिगार बनने की भी बहुत कोशिश करता हूँ। सिगरेट पे सिगरेट फूँकता हूँ, मगर अफ़साना दिमाग़ से बाहर नहीं निकलता—आख़िर थक-हारकर बाँझ औरत की तरह लेट जाता हूँ।

अनलिखे अफ़साने के दाम पेशगी वुसूल कर चुका होता हूँ, इसलिए बड़ी कोफ़्त होती है।

करवटें बदलता हूँ; उठकर अपनी चिड़ियों को दाने डालता हूँ; बच्चियों को झूला झुलाता हूँ, घर का कूड़ा-करकट साफ़ करता हूँ; नन्हे-मुन्ने जूते, जो घर में जा-बजा बिखरे होते हैं, उठाकर एक जगह रखता हूँ—मगर कमबख़्त अफ़साना, जो मेरी जेब में पड़ा होता है, मेरे ज़ेहन में उतरता नहीं—और मैं तिलमिलाता रहता हूँ।

जब बहुत ज़्यादा कोफ़्त होती है तो बाथरूम में चला जाता हूँ, मगर वहाँ से भी कुछ हासिल नहीं होता।

सुना है कि हर बड़ा आदमी ग़ुस्लख़ाने में सोचता है—मुझे तजबे से यह मालूम हुआ है कि मैं बड़ा आदमी नहीं हूँ, इसलिए कि मैं ग़ुस्लख़ाने में भी नहीं सोच सकता।

हैरत है कि फिर भी मैं पाकिस्तान और हिंदुस्तान का बहुत बड़ा अफ़सानानिगार हूँ!

मैं यही कह सकता हूँ कि मेरे नक़्क़ादों[3] की ख़ुशफ़हमी है, या मैं उनकी आँखों में धूल झोंक रहा हूँ, उन पर कोई जादू कर रहा हूँ।

क़िस्सा यह है कि मैं ख़ुदा को हाज़िरो-नाज़िर रखकर कहता हूँ कि मुझे इस बारे में कोई इल्म नहीं कि मैं अफ़साना क्योंकर लिखता हूँ और कैसे लिखता हूँ।

अक्सर औक़ात ऐसा हुआ है कि जब मैं ज़च-बच[4] हो गया हूँ तो मेरी बीवी ने मुझसे कहा है : "आप सोचिए नहीं···क़लम उठाइए और लिखना शुरू कर दीजिए।"

मैं उसके कहने पर क़लम या पैंसिल उठाता हूँ और लिखना शुरू कर देता हूँ।

दिमाग़ बिलकुल ख़ाली होता है, लेकिन जेब भरी होती है और ख़ुद-ब-ख़ुद कोई अफ़साना उछल के बाहर आ जाता है।

मैं ख़ुद को इस लिहाज़ से अफ़सानानिगार नहीं, जेबकतरा समझता हूँ, जो अपनी जेब ख़ुद ही काटता है और आपके हवाले कर देता है।

मुझ-ऐसा भी बेवक़ूफ़ दुनिया में कोई और होगा!

1. महिलाएँ; 2 शब्दकोश; 3 आलोचकों; 4 परेशान, हताश।

मंटो

मंटो के मुताल्लिक़ अब तक बहुत कुछ लिखा और कहा जा चुका है, उसके हक़ में कम और ख़िलाफ़ ज़्यादा। यह तहरीरें अगर पेशे-नज़र रखी जाएँ तो कोई साहबे-अक़्ल मंटो के मुताल्लिक़ कोई सही राय क़ायम नहीं कर सकता। मैं यह मज़मून लिखने बैठा हूँ और समझता हूँ कि मंटो के मुताल्लिक़ अपने ख़यालात का इज़हार करना बड़ा कठिन काम है, लेकिन एक लिहाज से आसान भी है, इसलिए कि मंटो से मुझे क़ुर्बत[1] का शर्फ़[2] हासिल रहा है सच पूछिए तो मैं मंटो का हमज़ाद[3] हूँ।

अब तक उस शख़्स के बारे में जो कुछ लिखा गया है, मुझे उस पर कोई एतिराज़ नहीं, लेकिन मैं इतना समझता हूँ कि जो कुछ उन मज़ामीन में पेश किया गया है, हक़ीक़त से बालातर है। बाज लोग उसे शैतान कहते हैं, बाज गंजा फ़रिश्ता ... ज़रा ठहरिए, मैं देख लूँ, कहीं वह कमबख़्त सुन तो नहीं रहा ... नहीं-नहीं, ठीक है, मुझे याद आ गया कि यह वह वक़्त है जब वह पिया करता है ... उसको शाम के छः के बाद कड़वा शर्बत पीने की आदत है।

हम इकट्ठे ही पैदा हुए और ख़याल है कि इकट्ठे ही मरेंगे, लेकिन यह भी हो सकता है कि सआदत हसन मर जाए और मंटो न मरे, और हमेशा मुझे यह अंदेशा बहुत दुख देता है, इसलिए कि मैंने उसके साथ अपनी दोस्ती निभाने में कोई कसर उठा नहीं रखी ... अगर वह ज़िंदा रहा और मैं मर गया तो ऐसा होगा कि अंडे का खोल तो सलामत है और अंदर की ज़र्दी और सफ़ेदी ग़ाइब हो गई है।

अब मैं ज़्यादा तम्हीद[4] में जाना नहीं चाहता, आपसे साफ़ कहे देता हूँ कि मंटो-ऐसा वन टू आदमी मैंने अपनी ज़िंदगी में कभी नहीं देखा जिसे अगर जमा किया जाए तो वह तीन बन जाए ... मुसल्लस[5] के बारे में उसकी मालूमात काफ़ी हैं, लेकिन मैं जानता हूँ कि अभी उसकी तम्लीस नहीं हुई है ... यह इशारे ऐसे हैं जो सिर्फ़ बाफ़हम सामिईन[6] ही समझ सकते हैं।

यूँ तो मंटो को मैं उसकी पैदाइश ही से जानता हूँ ... हम दोनों इकट्ठे एक ही वक़्त ग्यारह मई सन् 1912 ईसवी को पैदा हुए ... लेकिन उसने हमेशा यह कोशिश की है कि ख़ुद को कछुआ बनाए रखे, जो एक दफ़ा अपना सिर और गर्दन छुपा ले तो आप लाख ढूँढ़ते रहें, उसका सुराग़ न मिले ... लेकिन मैं भी आख़िर उसका हमज़ाद हूँ, मैंने उसकी हर जुंबिश का मुताला कर ही लिया है।

लीजिए, अब मैं आपको बताता हूँ कि यह ख़रज़ात अफ़सानानिगार कैसे बना ...

तन्क़ीदनिगार[7] बड़े लंबे-चौड़े मज़ामीन लिखते हैं, अपनी हमादानी[8] का सुबूत देते हैं शौपेनहावर, फ्रायड, हीगल, नीत्शे, मार्क्स के हवाले देते हैं, मगर हक़ीक़त से कोसों दूर रहते हैं।

मंटो की अफ़सानानिगारी दो मुतज़ाद अनासिर[9] के तसादुम[10] का नतीजा है उसके वालिद, ख़ुदा उन्हें बख़्शे, बड़े सख़्तगीर थे और उसकी वालिदा बेहद नर्मदिल इन दो पाटों के अंदर पिसकर यह दाना-ए-गंदुम किस शक्ल में बाहर निकला होगा, इसका अंदाज़ा आप कर सकते हैं।

अब मैं उसकी स्कूल की ज़िंदगी की तरफ़ आता हूँ बहुत ज़हीन लड़का था और बेहद शरीर। उस ज़माने में उसका क़द ज़्यादा-से-ज़्यादा साढ़े तीन फ़ुट होगा। वह अपने बाप का आख़िरी बच्चा था। उसको अपने माँ-बाप की मुहब्बत तो मयस्सर थी, लेकिन उसके तीन बड़े भाई जो उम्र में उससे बहुत बड़े थे और विलायत में तालीम पा रहे थे, उनसे उसको कभी मुलाक़ात का मौक़ा ही नहीं मिला था, इसलिए कि वह उसके सौतेले भाई थे वह चाहता था कि वह उससे मिलें, उससे बड़े भाइयों-ऐसा सुलूक करें, लेकिन यह सुलूक उसे उस वक़्त नसीब हुआ जब दुनिया-ए-अदब उसे बहुत बड़ा अफ़सानानिगार तस्लीम कर चुकी थी।

अच्छा अब उसकी अफ़सानानिगारी के मुताल्लिक़ सुनिए वह अव्वल दर्जे का फ्रॉड है पहला अफ़साना उसने बउनवान 'तमाशा' लिखा जो जलियाँवाले बाग के ख़ूनी हादिसे से मुताल्लिक़ था। यह अफ़साना उसने अपने नाम से न छपवाया। यही वजह है कि वह पुलिस की दस्तबुर्द[11] से बच गया।

इसके बाद उसके मिज़ाज मुतलव्विन[12] में एक लहर पैदा हुई कि वह मजीद तालीम हासिल करे यहाँ इसका ज़िक्र दिलचस्पी से ख़ाली नहीं होगा कि उसने एन्ट्रेंस का इम्तिहान दो बार फ़ेल होकर पास किया था, वह भी थर्ड डिवीज़न में और आपको यह सुनकर हैरत होगी कि वह उर्दू के पर्चे में नाकाम रहा था।

अब लोग कहते हैं कि वह उर्दू का बहुत बड़ा अदीब है और मैं यह सुनकर हँसता हूँ, इसलिए कि उर्दू अब भी उसे नहीं आती वह लफ़्ज़ों के पीछे यूँ भागता है जैसे कोई जालीवाला शिकारी तितलियों के पीछे। वह उसके हाथ नहीं आतीं। यही वजह है कि उसकी तहरीरों में ख़ूबसूरत अल्फ़ाज़ की कमी है। वह लट्ठमार है, लेकिन जितने लट्ठ उसकी गर्दन पर पड़े हैं, उसने बड़ी ख़ुशी से बर्दाश्त किए हैं।

उसकी लट्ठबाजी आम महावरे के मुताबिक़ जाटों की लट्ठबाज़ी नहीं है। वह बनोट[13] और फ़केत[14] है वह एक ऐसा इंसान है जो साफ़ और सीधी सड़क पर नहीं चलता, बल्कि तने हुए रस्से पर चलता है। लोग समझते हैं कि अब गिरा, अब गिरा, लेकिन वह कमबख़्त आज तक नहीं गिरा शायद गिर जाए औंधे मुँह कि फिर न उठे लेकिन मैं जानता हूँ कि मरते वक़्त वह लोगों से कहेगा "मैं इसीलिए गिरा था कि गिरावट की मायूसी ख़त्म हो जाए।"

मैं इससे पेशतर कह चुका हूँ कि मंटो अव्वल दर्जे का फ्रॉड है। इसका मज़ीद सुबूत यह

है कि वह अक्सर कहा करता है कि वह अफ़साना नहीं सोचता, ख़ुद अफ़साना उसे सोचता है। यह भी एक फ्रॉड है मैं जानता हूँ कि जब उसे अफसाना लिखना होता है तो उसकी वही हालत होती है जो किसी मुर्गी की अंडा देते वक्त होती है लेकिन वह अंडा कहीं छुपकर नहीं देता, सबके सामने देता है उसके यार-दोस्त बैठे होते हैं, उसकी तीन बच्चियाँ शोर मचा रही होती हैं, और वह अपनी मख़्सूस[15] कुर्सी पर ऊँकड़ू बैठा अंडे दिए जाता है जो बाद में चूँ-चूँ करते अफसाने बन जाते हैं।

उसकी बीवी उससे बहुत नालाँ[16] है। वह अक्सर उससे कहा करती है, "अफ़सानानिगारी छोड दो, कोई दुकान खोल लो" लेकिन मंटो के दिमाग़ में जो दुकान खुली है, उसमें मनिहारी के सामान से कहीं ज़्यादा सामान मौजूद है वह अक्सर सोचा करता है, अगर उसने कभी कोई स्टोर खोल लिया तो ऐसा न हो कि वह ख़ुद कोल्ड स्टोरेज यानी सर्दख़ाना बन जाए, जहाँ उसके तमाम ख़यालात और अफ्कार[17] मुंजमिद[18] हो जाएँ।

मैं यह मजमून लिख रहा हूँ और मुझे डर है कि मंटो मुझसे ख़फ़ा हो जाएगा उसकी हर चीज बर्दाश्त की जा सकती है, लेकिन ख़फ़गी बर्दाश्त नहीं की जा सकती ख़फ़गी के आलम में वह बिलकुल शैतान बन जाता है, लेकिन सिर्फ चंद मिनटों के लिए और वह चंद मिनट, अल्लाह की पनाह

अफ़साना लिखने के मामले में वह नखरे जरूर बघारता है, लेकिन मैं जानता हूँ, इसलिए कि उसका हमजाद हूँ कि वह फ्रॉड कर रहा है एक दफ़ा उसने ख़ुद लिखा था कि उसकी जेब में बेशुमार अफसाने पड़े होते हैं हकीकत इसके बरअक्स है। जब उसे अफसाना लिखना होगा तो वह रात को सोचेगा, उसकी समझ में कुछ नहीं आएगा; सुबह पाँच बजे उठेगा और अख़बारों से किसी अफ़साने का रस चूसने का ख़याल करेगा, लेकिन उसे नाकामी होगी; फिर वह ग़ुस्लख़ाने में जाएगा और वहाँ अपने शौरीदा सिर को ठंडा करने की कोशिश करेगा कि सोचने के काबिल हो सके, लेकिन नाकाम रहेगा; फिर झुँझलाकर अपनी बीवी से ख़्वामख़्वाह का झगड़ा शुरू कर देगा; अब भी नाकामी होगी तो पान लेने चला जाएगा; पान उसकी टेबिल पर पड़ा रहेगा और अफ़साने का मौज़ू उसकी समझ में फिर भी नहीं आएगा आख़िर वह इंतिकामी तौर पर क़लम या पैंसिल हाथ में थाम लेगा और 786 लिखकर जो पहला फ़िक़रा उसके जेहन में आएगा, उससे अफ़साने का आगाज कर देगा 'बाबू गोपीनाथ', 'हतक', 'मम्मी', 'टोबा टेक सिंह', 'मौज़ील', यह सब अफ़साने उसने इसी फ्रॉड तरीके से लिखे हैं।

यह अजीब बात है कि लोग उसे बड़ा ग़ैर मज़हबी और फहश इंसान समझते हैं, और मेरा भी ख़याल है कि वह किसी हद तक इस दर्जे में आता है, इसलिए कि अक्सर औक़ात वह बड़े गंदे मौज़ूआत पर कलम उठाता है और ऐसे अल्फाज अपनी तहरीर में इस्तेमाल करता है, जिन पर एतिराज़ की गुंजाइश हो सकती है, लेकिन मैं जानता हूँ कि जब भी उसने कोई अफ़साना लिखा, पहले सफ़हे की पेशानी पर 786 जरूर लिखा, जिसका मतलब है बिस्मिल्लाह यह शख़्स जो अक्सर ख़ुदा से मुन्किर[19] नज़र आता है, काग़ज़ पर मोमिन बन जाता है वह काग़ज़ी मंटो है जिसे आप काग़ज़ी बादामों की तरह सिर्फ उँगलियों ही से

तोड़ सकते हैं, वरना वह लोहे के हथौड़े से भी टूटनेवाला आदमी नहीं।

अब मैं मंटो की शख़्सियत की तरफ़ आता हूँ, और चंद अल्फ़ाज़ में बयान किए देता हूँ वह चोर है झूठा है दग़ाबाज़ है मजमागीर है

उसने अक्सर अपनी बीवी की ग़फ़लत से फ़ाइदा उठाते हुए कई-कई सौ रुपए उड़ाए हैं! इधर आठ सौ लाकर दिए और उधर चोर आँख से देखता रहा कि वह कहाँ रख रही है, और फिर दूसरे ही दिन उनमें से एक सब्ज़ा[20] ग़ाइब कर दिया जब उस बेचारी को अपने नुक़सान की ख़बर होती, वह नौकरों को डाँटना-डपटना शुरू कर देती।

यूँ तो मंटो के मुताल्लिक मशहूर है कि वह रास्तगो[21] है, लेकिन मैं इससे इत्तिफ़ाक़ करने के लिए तैयार नहीं वह अव्वल दर्जे का झूठा है। शुरू-शुरू में उसका झूठ घर में चल जाता था, इसलिए कि उस झूठ में मंटो का एक ख़ास टच होता था, लेकिन बाद में उसकी बीवी को मालूम हो गया कि अब तक उसे उस ख़ास मामले के मुताबिक जो कुछ कहा जाता रहा है, झूठ था मंटो झूठ बक़दरे-किफ़ायत बोलता है, लेकिन उसके घरवाले, मुसीबत यह है, अब यह समझने लगे हैं कि उसकी हर बात झूठी है, उस तिल की तरह जो किसी औरत ने अपने गाल पर सुर्मे से बना रखा हो।

वह अनपढ़ है, इस लिहाज़ से कि उसने कभी मार्क्स का मुताला नहीं किया, फ्रायड की कोई किताब आज तक उसकी नज़र से नहीं गुज़री, हेगल का वह सिर्फ नाम ही जानता है, लेकिन मज़े की बात यह है कि लोग, मेरा मतलब है तन्कीदनिगार यह कहते हैं कि वह इन तमाम मुफक्किरों[22] से मुतास्सिर है जहाँ तक मैं जानता हूँ, मंटो किसी दूसरे शख़्स के ख़यालात से मुतास्सिर होता ही नहीं वह समझता है कि समझानेवाले सब चुग़द हैं; दुनिया को समझाना नहीं चाहिए, उसको ख़ुद समझना चाहिए ख़ुद को समझा-समझाकर वह एक ऐसी समझ बन गया है, जो अक़्लो-फ़हम से बालातर है वह बाज़ औक़ात ऐसी ऊटपटाँग बातें करता है कि मुझे हँसी आती है।

मैं आपको पूरे वुसूक़ के साथ कह सकता हूँ कि मंटो, जिस पर फ़हशनिगारी के सिलसिले में कई मुक़दमे चल चुके हैं, तहारत पसंद[23] है, लेकिन मैं यह भी कहे बग़ैर नहीं रह सकता कि वह एक ऐसा पाअंदाज़ है जो ख़ुद को झाड़ता-फटकता रहता है।

---

1 सामीप्य 2 सौभाग्य. 3 जुड़वा (एक साथ पैदा होनेवाला), 4 भूमिका, 5. त्रिभुज, त्रिकोण; 6 श्रोतागण, 7. समीक्षक; 8. विद्वता, 9 परस्पर विरोधी स्वभाववाले व्यक्तियों, 10. विरोधाभास, 11. हत्थे चढ़ना, 12 चंचल; 13. लाठीबाज़ी का एक पैंतरा; 14 लाठीबाज़ी का एक पैंतरा 15. विशिष्ट, 16. दुखी, 17. रचनाएँ, 18. जमना; 19 नास्तिक, 20. रुपया, 21 सत्यवादी; 22 विचारक, 23 सफ़ाई-पसंद।

मंटो के ख़तत

एक — नदीम के नाम
दो — गवाह सफ़ाई के नाम
तीन — मुहम्मद तुफ़ैल के नाम
चार — तीन सिफ़ारिशी ख़त
पाँच — एक हिंदुस्तानी पब्लिशर के नाम
छह — मंटो का आख़िरी ख़त

जब अख़्तर शीरानी* के परचे 'रोमान' में अहमद नदीम क़ासमी+ का अफ़साना 'बेगुनाह'‡ छपा तो मंटो को 'बेहद पसंद' आया। मंटो उन दिनों बंबई के फ़िल्मी हफ़्त रोज़ा 'मुसव्विर' का 'एडिटर इंचार्ज' था—उसने अख़्तर शीरानी के तवस्सुत[1] से अहमद नदीम क़ासमी का 'तआरुफ़ हासिल' किया।

बात जनवरी, 1937 की है—बात 'हुमायूँ' में 'नया क़ानून' की इशाअत[2] से चंद माह पहले की है।

मंटो और अहमद नदीम क़ासमी के दरमियान जनवरी, 1937 में ख़तो-किताबत शुरू हो गई—फ़रवरी, 1948 से मंटो ने क़ासमी को आख़िरी ख़त लिखा, लाहौर से पेशावर।

मंटो ने क़ासमी को ग्यारह बरस और दो माह की मुद्दत में नब्बे ख़त लिखे और एक तार भेजा—यह मवाद[3] क़ासमी ने 1962 में, मंटो की मौत के सात बरस बाद, एक मजमूए की सूरत में, बउनवान 'मंटो के ख़ुतूत, नदीम के नाम' शाया किया।

अहमद नदीम क़ासमी की अहमक़ाना और ग़ैर ज़िम्मेदाराना तरतीब[4] के बावुजूद मंटो के ख़ुतूत का यह मजमूआ इस लिहाज़ से अहम है कि मंटो ने इतनी बाक़ाइदगी से इतने लंबे अर्से तक और इतनी तादाद में किसी और को ख़त नहीं लिखे।

मंटो के ख़ुतूत की तफ़सीलात यूँ हैं :

एक : पहले तीन ख़त बंबई से लिखे गए, जनवरी और फ़रवरी, 1937 के दरमियान।

दो : चौथा ख़त नासिक शहर से लिखा गया, अप्रैल, 1937 में, जहाँ मंटो एक फ़िल्म की शूटिंग के सिलसिले में गया हुआ था।

तीन : फिर उनसठ ख़त बंबई से लिखे गए, मई, 1937 और दिसंबर, 1940 के दरमियान।

चार : वाहिद तार सात सितंबर, 1940 को भेजा गया।

पाँच : जनवरी, 1941 और जुलाई, 1942 के दरमियान देहली से तेरह ख़त लिखे गए।

* रूमानी शाइर, सलमा और अज़रा, दो ख़याली महबूबाओं का ख़ालिक़।

\+ शाइर, अफ़सानानिगार, जर्नलिस्ट, एडिटर—पहले तरक़्क़ीपसंद अदीब और गुलाबी कम्युनिस्ट, फिर मुस्लिम लीगियों में बड़ा मुस्लिम लीगी।

‡ एक हद दर्जा मामूली अफ़साना।

छ : फिर सितंबर, 1942 और जुलाई, 1947 के दरमियान बंबई से तेरह ख़त और लिखे गए।

सात : आख़िरी ख़त फ़रवरी, 1948 में लाहौर, पाकिस्तान से लिखा गया।

यानी

एक : पहले तरेसठ ख़त सिर्फ़ चार बरसों में लिखे गए।

दो : अगले तेरह ख़त उन्नीस महीनों में लिखे गए।

तीन : फिर तक़रीबन पाँच बरसों में सिर्फ़ तेरह ख़त लिखे गए।

चार : आख़िरी ख़त तक़सीम के बाद लिखा गया।

'मंटो-क़ासमी ख़तो-किताबत' का दूसरा रुख़ यूँ है :

'मंटो के ख़ुतूत' से पता चलता है कि क़ासमी ने मंटो को नब्बे से कहीं ज़्यादा ख़त लिखे—मंटो जनवरी, 1948 में क़ासमी के ख़ुतूत का बंडल बंबई से अपने साथ लाहौर ले गया था।

पंद्रह सितंबर, 1948 को क़ासमी ने मंटो के नाम एक तवील[5] ख़त लिखा।(दोनों दोस्त लाहौर में थे—क़ासमी पेशावर से लाहौर आ चुका था) यह ख़त न तो मंटो को दिया गया और न पोस्ट किया गया, बल्कि 'एक खुली चिट्ठी' के तौर पर पेशावर के तरक़्क़ीपसंद परचे 'संगे-मील' में छपा।

कहा जाता है कि मंटो को जब 'खुली चिट्ठी' की इत्तिला मिली तो उसने 'खुली चिट्ठी' पढ़े बगैर अपने घर जाकर क़ासमी के ख़ुतूत का बंडल उठाया और आग में डाल दिया।

हम मंटो के ख़ुतूत के सिर्फ़ वह इक्तिबासात[6] पेश कर रहे हैं, जिनसे हम उसकी ज़ेहनी कैफ़ियत का अंदाज़ा लगा सकते हैं।

—संपादक

नदीम के नाम

बंबई* : फ़रवरी, 1937

आपने मेरी क़ाबलियत और अहलियत[7] का अंदाज़ा लगाने में बहुत जल्दी से काम लिया है। शायद आपको मालूम नहीं कि मैंने ख़ुद को कभी अदीब की हैसियत से पेश नहीं किया—मैं एक शिकस्ता दीवार हूँ जिस पर से पलस्तर के टुकड़े गिर-गिरकर जमीन पर मुख़्तलिफ़ शक्लें बनाते रहते हैं।

हस्बे-इरशाद[8] फ़ोटो भेज रहा हूँ। इससे आपको मालूम हो जाएगा कि मैं एक इन्टेलेक्चुअल रैक हूँ।

नासिक शहर : अप्रैल, 1937

मैं एक अर्से से अपने वुजूद को, तुर्गनेफ के अल्फ़ाज़ में, छकड़े के पाँचवें बेमानी पहिये के मानिंद फ़िज़ूल समझता हूँ।

बंबई : 10 मई, 1937

मुझ में बहैसियत एक इंसान के बेहद कमज़ोरियाँ हैं। इसलिए मुझे हर वक़्त डर रहता है कि यह कमज़ोरियाँ दूसरों के दिल में मेरे मुताल्लिक़ नफ़रत पैदा करने का मूजिब न हों। और अक्सर औक़ात ऐसा हुआ है कि इन्हीं कमज़ोरियों के बायस मुझे कई सद्मे उठाने पड़े हैं। मैं इसी तल्ख़ हकीक़त के पेशे-नज़र शायद आपसे कई बार कह चुका हूँ कि आप मेरे मुताल्लिक़ कोई राय मुरत्तब[9] न करें।

मैं बंबई में पचास रुपए माहवार कमा रहा हूँ और बेहद फ़िज़ूलख़र्च हूँ। अगर आप यहाँ चले आएँ, तो मेरा ख़याल है कि हम दोनों गुजर कर सकेंगे। मैं अपनी फ़िज़ूलख़र्चियाँ बंद कर सकता हूँ। मुझे आपकी मजबूरियों का कामिल[10] एहसास है, इसलिए कि मैं इन मजबूरियो मे ख़ुद गुज़र चुका हूँ। मैं आपको किराया रवाना कर देता और कर सकता था, इसलिए कि अभी आठ रोज़ हुए, मेरे पास पाँच सौ रुपए थे, और अब यह हालत है कि सिर्फ बीस रुपए बाक़ी हैं—मुझे किताबें ख़रीदने और यूँ ही रुपए बरबाद करने का ख़ब्त है और मैं

* *"मैं चलता-फिरता बंबई हूँ।"*
मंटो : लाहौर 28 अक्तूबर, 1951

इसी से लुत्फ़ उठाता हूँ—ज़िंदगी रहे तो रुपया पैदा किया जा सकता है।

आप यहाँ तशरीफ़ ला सकते हैं, मगर यह बात याद रखिए कि आपको मेरी ज़िंदगी की धूप-छाँव में रहना होगा। मेरे पास छोटा-सा कमरा है जिसमें हम दोनों रह सकते हैं। खाने को मिले या न मिले मगर पढ़ने के लिए किताबें मिल जाया करेंगी।

बंबई : मई, 1937

जुआ खेलना, शराब पीना और इसी क़िस्म के दूसरे फ़अल जिस्म से ताल्लुक़ रखते हैं—मुझमे (तो) रूहानी कमज़ोरियाँ और ज़ेहनी ख़ामियाँ (भी) हैं जिनकी तफ़सील में जाने के लिए मेरे कल्ब[11] में सकूल नहीं! यह चीज़ें आपको मेरे क़रीब रहने ही से मालूम हो सकती है।

बंबई : जून, 1937

स्टीवेन्सन की जिन तसानीफ़ का आपने जिक्र किया है, वह बहुत अच्छी हैं और फ़नी[12] व अदबी नुक़्ता-ए-निगाह से भी उनका मर्तबा बुलंद है, लेकिन जो चीज़ आपको रूसी नाविलनवीसों के अफ़्कार[13] में मिलेगी, उसका इन किताबो में नामो-निशान भी नहीं।

बंबई : मई, 1938

यह बहुत अच्छा है कि आप और मुझमें काफ़ी फ़ासला है और हमने अभी तक एक-दूसरे को नहीं देखा, क्योंकि मुझे यकीन है कि जब हम एक-दूसरे के क़रीब हो गए तो वह बात जाती रहेगी जो इस वक्त मैं या आप महसूस करते हैं—इंसान बेहद ज़लील है माफ़ कीजिएगा और दिल ऐसी चीज है कि उस पर मैल जमते देर नहीं लगती

मुझमें एक लाख एक ऐब हैं जो इस वक़्त आपकी निगाहों से पोशीदा हैं—आप मेरे क़रीब आ गए तो मैं बिलकुल नंगा हो जाऊँगा—क्या यही अच्छा नहीं कि हम दूर-ही-दूर रहें।

बंबई : सितंबर, 1938

मेरी शादी?

मेरी शादी अभी मुकम्मल तौर पर नहीं हुई। मैं सिर्फ़ 'निकाहया' गया हूँ।

मेरी बीवी लाहौर के एक कश्मीरी ख़ानदान से ताल्लुक़ रखती है—उसका बाप मर चुका है, मेरा बाप भी ज़िंदा नहीं। वह चश्मा लगाती है, मैं भी चश्मा लगाता हूँ। वह ग्यारह मई को पैदा हुई, मैं भी ग्यारह मई को पैदा हुआ था। उसकी माँ चश्मा लगाती है

मेरी वालिदा भी चश्मा लगाती है। उसके नाम का पहला हर्फ़ 'एस' है, मेरे नाम का पहला हर्फ़ भी 'एस' है—हम में इतनी चीज़ें कॉमन हैं, वक़ाया हालात के मुताल्लिक़ मैं ख़ुद कुछ नहीं जानता—पहले वह पर्दा नहीं करती थी, मगर जब से उस पर मेरा हक़ हुआ है, उसने पर्दा करना शुरू कर दिया है, सिर्फ़ मुझसे।

बंबई : नवंबर, 1938

मेरी असली शादी में अभी कुछ देर है—इस देर का बायस मेरी माली कमज़ोरी के सिवा और क्या हो सकता है।

बंबई : नवंबर, 1938

पतिव्रता स्त्रियों और नेकदिल बीवियों के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अब ऐसी दास्तानें फ़िज़ूल हैं—क्यों न ऐसी औरत का दिल खोलकर बताया जाए जो अपने पति की आग़ोश से निकलकर किसी दूसरे मर्द की बग़ल गरमा रही हो और उसका पति कमरे में बैठा सबकुछ ऐसे देख रहा हो, गोया कुछ हो ही नहीं रहा।

ज़िंदगी को उसी शक्ल में पेश करना चाहिए जैसी कि वह है, न कि जैसी वह थी, या जैसी होगी, या जैसी होनी चाहिए।

बंबई : दिसंबर, 1938

माफ़ कीजिएगा, मैं बहुत बातूनी हूँ—लेकिन यह ख़याल रहे कि मैं सिर्फ़ उन लोगों ही से बातें किया करता हूँ, जिनको मैं अपना अजीज़ यक़ीन करता हूँ।

बंबई : जनवरी, 1939

कल रात से मेरा मूड ठीक नहीं। तबीयत पर एक बोझ-सा महसूस कर रहा हूँ। एक अजीबो-ग़रीब थकान-सी तारी है। मैं इस इज्मेहलाल[14] का सबब जानता हूँ मगर इस सबब के पीछे इतनी चीजें कारफ़रमा[15] हैं कि मैं फ़र्दन-फ़र्दन उन पर ग़ौर नहीं कर सकता और इज्तिमाई[16] सूरत में यह एक धुंध-सी मालूम होती हैं। मैं दरअसल आजकल उस जगह पहुँचा हुआ हूँ जहाँ यक़ीन और इनकार में तमीज़ नहीं हो सकती। जहाँ आप समझते भी हैं और नहीं भी समझते। बाज़ औक़ात ऐसा महसूस होता है कि दुनिया सारी-की-सारी मुट्ठी में चली आई है और बाज़ औक़ात यह ख़याल पैदा होता है कि हम हाथी के जिस्म पर च्यूँटी की तरह रेंग रहे हैं। यह एक ऐसा कांप्लेक्स है जो लफ़्ज़ों में बयान नहीं हो सकता। इससे रूह और दिमाग़ को सख़्त तकलीफ़ पहुँच रही है। समझ में नहीं आता कि क्या किया जाए।

मैं यह चाहता हूँ कि मेरे पास एक ऐसा स्विच बोर्ड आ जाए जिससे मैं हस्बे-ख़्वाहिश रोशनियाँ पैदा कर सकूँ। जिस वक़्त चाहूँ, घुप अँधेरा कर दूँ और जिस वक़्त चाहूँ, रोशनी का सैलाब बहा दूँ। क्या ऐसी चीज मिल जाएगी ? कुछ कहा नहीं जा सकता!

कुछ भी हो, मुझे इत्मीनान नसीब नहीं है। मैं किसी चीज़ से मुतमइन नहीं हूँ। हर शै में मुझे एक कमी-सी महसूस होती है। मैं ख़ुद अपने आपको नामुकम्मल समझता हूँ। मुझे अपने-आपसे कभी तस्कीन नहीं होती। ऐसा महसूस होता है कि मैं जो कुछ हूँ, जो कुछ मेरे अंदर है, वह नहीं होना चाहिए–उसके बजाय कुछ और ही होना चाहिए।

इश्क़ो-मुहब्बत के मुताल्लिक सोचता हूँ तो सिर्फ़ शहवानियत ही नज़र आती है–औरत को शहवत से अलग करके देखता हूँ तो वह पत्थर की एक मूर्ति रह जाती है–मगर यह ठीक बात नहीं, मैं जानता हूँ–नहीं, मैं जानना चाहता हूँ कि फिर आख़िर क्या है–क्या होना चाहिए–अगर यह नहीं तो फिर और क्या होगा।

किस क़दर अफ़सोसनाक चीज है कि औरतों के हमसाये होकर भी हम उनके बारे में कोई राय कायम नहीं कर सकते।

यह राजेंद्र सिंह साहब बेदी कौन है–यह भी 'मिट्टी के ढेले' मालूम होते हैं। ख़ूब लिखते हैं। इनके अफसाने आप गौर से पढ़ा करें।

बंबई : जनवरी, 1939

मैं आगे कुछ और लिखना चाहता था कि सअन मेरे दिमाग में यह ख़याल आया कि आप और मैं, यानी कासमी और मंटो, मिट्टी के दो ढेले हैं जो लुढक-लुढ़ककर क़रीब आना चाहते हैं–मिट्टी के दो ढेले–ठीक है, इंसान मिट्टी का ढेला ही तो है।

बंबई : फरवरी, 1939

मैं अपनी ज़िंदगी का तीन चौथाई हिस्सा बदपरहेज़ियों की नजर कर चुका हूँ–जब से मैंने होश सँभाला है, परहेज़ नहीं किया। अब तो यह वक्त आ गया है कि 'परहेज' लफ़्ज़ ही मेरी डिक्शनरी से ग़ाइब हो गया है। मैं समझता हूँ कि ज़िंदगी अगर परहेज़ में गुज़ारी जाए तो भी क़ैद है, अगर बदपरहेज़ियों में गुज़ारी जाए तो भी क़ैद–किसी-न-किसी तरह हमें इस ऊनी जुराब के धागे का एक सिरा पकड़कर उसे उधेड़ते रहना है और बस। मैं अपना काम आधे से ज़्यादा कर चुका हूँ। बाक़ी आहिस्ता-आहिस्ता करूँगा, इसलिए कि मैं बहुत जल्द मरना नहीं चाहता। जिस रोज मुझे मालूम हो गया कि मैं क्या हूँ तो मौत को बुलाने में कोई पसो-पेश न करूँगा।

मेरी ज़िंदगी एक दीवार है, जिसका पलस्तर मैं नाख़ूनों से खुरचता रहता हूँ। कभी चाहता हूँ कि इसकी तमाम ईंटें परागंदा कर दूँ, कभी यह जी चाहता है कि इस मलबे के ढेर पर एक नई इमारत खड़ी कर दूँ।

इसी उधेड़बुन में लगा रहता हूँ। दिमाग़ हर वक़्त काम करने के बायस तपता रहता है। मेरा नार्मल दर्जाए-हरारत एक डिग्री ज्यादा है, जिससे आप मेरी अंदरूनी तपिश का अंदाज़ा लगा सकते हैं।

मै बहुत कुछ लिखना चाहता हूँ मगर नक़ाहत, वह मुस्तक़िल थकावट जो मेरे ऊपर तारी रहती है, कुछ करने नहीं देती। अगर मुझे थोड़ा-सा सुकून भी हासिल हो तो मैं वह बिखरे हुए ख़यालात जमा कर सकता हूँ जो बरसात के पतंगों के मानिंद उड़ते रहते हैं मगर अगर अगर-मगर करते-करते किसी रोज मर जाऊँगा और भी यह कहकर ख़ामोश हो जाएँगे : 'मंटो मर गया !' मंटो तो मर गया, सही है, मगर अफ़सोस इस बात का है कि मंटो के वह ख़यालात भी मर जाएँगे जो उसके दिमाग़ में महफ़ूज़ हैं।

मंटो, मंटो के लिए ज़िंदा नहीं है, मगर इससे किसी को क्या—मंटो है क्या बला—छोडिए इस फ़िज़ूल क़िस्से को—आइए कोई और बात करें।

कृश्न चंदर साहब ख़ूब लिखते हैं 'हुमायूँ'* और 'अदबी दुनिया'+ वग़ैरह में उनके अफ़साने पढ़ने का इत्तिफाक़ हुआ है।

बंबई : मार्च, 1939

दरअसल मैं थक गया हूँ, बेहद थक गया हूँ।

आजकल मैं यह सोच रहा हूँ कि मुझे क्या सोचना चाहिए।

मेरे सीने में शिद्दत का दर्द हो रहा है। लिख रहा हूँ और ऐसा मालूम होता है कि कलम में भी टीसें उठ रही हैं।

बंबई : जून, 1940

ज़िंदगी के जिन अदवार[17] से मैं गुजर रहा हूँ, उन पर नजर करने की मेरे पास फ़ुर्सत नहीं—कई स्टेशन आते हैं जिन पर मेरी जिंदगी की गाड़ी ठहरती है मगर मैं थकावट से चूर सफ़र के आग़ाज़[18] ही से तंग आया हुआ वह बोर्ड ही नहीं पढ़ सकता जिससे मुझे स्टेशन का नाम मालूम हो जाए। अजब हालत है। कुछ समझ में नहीं आता और समझ में आए भी कैसे जबकि समझने की फ़ुर्सत ही नहीं।

कृश्न चंदर कहते हैं, मैं उनके लिए नया अफ़साना लिखूँ—जी चाहता है, उनको अपना ताजा फ़ोटो खिंचवाकर भेज दूँ। आँखोंवाले उसे देखकर कई नए अफ़साने पढ़ लेंगे।

मुझसे पूछो तो यह अफ़सानानिगारी बिलकुल बकवास है जिसके एवज सिर्फ़ शुक्रिया मिले—मेरा डॉक्टर, जो हर रोज मुझे दवा भेजता है, शुक्रिए के अलावा रुपए भी माँगता

* उस जमाने का एक अच्छा अदबी परचा।

+ उस जमाने का एक अच्छा अदबी परचा।

है। कल उसने एक रुपया वापस भेज दिया था, इसलिए कि उसमें खनखनाहट कम थी—ख़याल था कि कल अफ़साना शुरू करूँगा मगर उस कम खनखनाहटवाले रुपए को हथेली पर रखा तो मेरी सब खनखनाहट ग़ाइब हो गई।

बहरहाल अफ़साना लिख दूँगा, इसलिए कि तुम्हारी सिफ़ारिश है और कृश्न चंदर से भी मुझे प्यार है—कृश्न चंदर साहब को इतना ज़रूर लिख दूँ कि मेरी माँ मर गई है। उसका मातम करने के लिए मुझे जो फ़ुर्सत मिल सकती है, वह मैं उनके हवाले कर दूँगा।

बंबई : जुलाई, 1940

'नए ज़ाविए'* के लिए अफ़साना हाज़िर है—बच्चे की बीमारी और उसकी तीमारदारी के साथ-साथ मैंने यह अफ़साना पूरे आठ दिनों में मुकम्मल किया है, और लुत्फ़ यह है कि हर वक़्त इसी काम में मसरूफ़ रहा हूँ।

'हतक' के मुताल्लिक आपका क्या ख़याल है? 'हतक' पढ़कर आप फ़ौरन बज़रिया रजिस्ट्री मिस्टर कृश्न चदर को भेज दें। मेरे पास इसकी कोई नक़ल नहीं है। अगर आपको तकलीफ न हो तो इसकी एक नकल बनाकर अपने पास रख लें या मुझे रवाना कर दें—बेहद मम्नून हूँगा।

बंबई, अगस्त, 1940

मैं सिर्फ़ इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सिर्फ़ फ़रेबकारी ही की बदौलत इंसान कामयाबी हासिल कर सकता है। क्या मैं फ़रेबकार बन जाऊँगा, मैं इसका जवाब अभी नहीं दे सकता। बहुत मुमकिन है कि हालात मुझे ऐसा आदमी बनने पर मजबूर कर दें।

नदीम साहब, अभी तक मैं जो कुछ चाहता हूँ, नहीं लिख सका। परेशानियाँ इस क़दर हैं कि ख़यालात गडमड हो जाते हैं—इसके अलावा जो कुछ मैं कहना चाहता हूँ, उसको सुनने के लिए कौन तैयार है?

मैं बहुत ख़ुश हुआ कि आपको 'हतक' पसंद आया। मुझे ख़ुद यह अफ़साना पसंद है। मैं ऐसे बहुत से अफ़साने लिख सकता हूँ।

बंबई अगस्त, 1940

कृश्न साहब का खत मुझे मिल गया था। उन्होने अफसाना पसंद किया है—आजकल मैं 'ख़ुशिया' के उनवान से एक नया अफ़साना लिखने की कोशिश कर रहा हूँ। इसमें एक दल्लाल का जिक्र है।

कृश्न चंदर की तरतीब दी हुई किताब—'नए ज़ाविए' की सिर्फ़ दो जिल्दें छपी थीं; पहली जिल्द में मंटो का अफ़साना 'हतक' शामिल था और दूसरी में 'सूतरी'।

बंबई : 23 सितंबर, 1940

जब मैं किसी से दोस्ती करता हूँ तो मुझे इस बात की तवक़्क़ो होती है कि वह अपना आप मेरे हवाले कर देगा। दोस्ती करने के मामले में मेरे अंदर यह एक ज़बर्दस्त कमज़ोरी है जिसका इलाज मुझसे नहीं हो सकता।

देहली* : जनवरी, 1941

मैं देहली से बोल रहा हूँ।

आपको यह तो मालूम हो गया होगा कि मैं रेडियो में नीम सरकारी मुलाजिम हो गया हूँ।

चूँकि मेरी सेहत अक्सर ख़राब रहती थी, इसलिए मैंने बंबे छोड़ दिया है और अब यहाँ एक सौ पचास रुपया माहवार पर चला आया हूँ—आपको यह सुनकर तो ज़रूर ख़ुशी होगी कि चंद दिनों ही में मेरी सेहत बहुत अच्छी हो गई है।

देहली : अप्रैल, 1941

मेरा आरिफ़+ सिर्फ दो दिन बीमार रहकर कल रात ग्यारह बजे इरविन हस्पताल में मर गया।

देहली : अप्रैल, 1942

आपसे कोई ग़लती या गुस्ताख़ी नहीं हुई। यह सारा क़ुसूर मेरे इज़्मेहलाल का है जो कई दिनों से मुझ पर तारी है। आजकल मैं बेहद सुस्त हो गया हूँ। बंबे की जिंदगी और यहाँ की ज़िंदगी में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। वहाँ मैं दोस्तनुमा दुश्मनों से अलग-थलग था, लेकिन यहाँ ऐसे बेशुमार लोगों से मिलना पड़ता है जिसके बायस बहुत कोफ़्त होती है—यही बायस है इस इज़्मेहलाल का और यही बायस है आपको ख़त न लिखने का।

देहली : जुलाई, 1942

यह दिल्ली बहुत बुरी जगह है। ख़ुदा की कसम, इसने मुझ पर जुमूद तारी कर दिया है—बंबई में था तो कितनी जल्दी ख़तों का जवाब तुम्हें मिल जाता था। यहाँ ख़ुद तो मैं ख़तो का जवाब देता नहीं, लेकिन ख़तों का इंतज़ार ज़रूर करता हूँ—आजकल मेरे दिमाग की बहुत बुरी हालत है।

* मंटो उन्नीस महीने तक 9, हसन बिल्डिंग, निकल्सन रोड, देहली में रहा।

\+ मंटो ने आरिफ़ की मौत के नौ बरस बाद 1950 में एक बेटे की मौत पर बड़ा ही ख़ूबसूरत और नाज़ुक अफ़साना 'ख़ालिद मियाँ' लिखा था।

बंबई : सितंबर, 1942

देहली में तुम्हारा ख़त मिला था। मैं जवाब देता लेकिन अफ़रातफ़री में यहाँ आना पड़ा। यहाँ आते ही बीमार पड़ गया। छः दाँत अब तक निकलवा चुका हूँ। सारा फ़साद इन दाँतों ही का था।

बंबई : मई, 1943

चंद रोज़ हुए, जबकि सफ़िया बिस्तरे-अलालत[19] पर पड़ी थी, देवेंद्र सत्यार्थी* का टेलीफ़ोन आया—मैंने उसको गालियाँ दीं। मेरे दिल में उसके मुताल्लिक़ जो ख़यालात भी थे, उनका इज़हार कर दिया और उससे खुले लफ़्ज़ों में कह दिया : "मैं तुमसे मिलना नहीं चाहता ।"

उसने इसके बाद कमाले-ढिटाई से दो-तीन मर्तबा फिर फोन किया, लेकिन मैंने अपना इरादा तब्दील न किया बल्कि उसकी इस ढिटाई ने मुझे और मुतनफ्फ़िर[20] कर दिया—अगर वह जवाब में मुझे गालियाँ देता और उस हमले का जवाब देता जो मैंने उस पर किया था तो बहुत मुमकिन है मैं ख़ुद उसके पास जाकर उसे ले आता और अपने यहाँ मेहमान ठहरा लेता।

सफिया ने फोन पर मेरी यह तमाम बातें सुनीं तो मुझे बुरा-भला कहा—मैंने उससे कहा. "मैं दिल में नफरत रखते हुए जबान पर प्यार-मुहब्बत के अल्फ़ाज़ नहीं ला सकता।"

बहुत ज्यादा शराब पीने लगा हूँ, इसलिए नहीं कि कुछ लिख सकूँ। पीकर मैं लिख ही नहीं सकता। दरअसल मैं अपने अंदर वह बात ढूँढ रहा हूँ जो मुझे करना है। अगर मुझे यही कुछ करना है जो मै अब तक कर चुका हूँ तो यह कुछ भी नहीं, यानी कोई बडा कारनामा नहीं।

बंबई : अक्तूबर, 1945

मैं सख़्त शर्मिंदा हूँ कि आप तो मुझसे इतनी मुहब्बत करें और मैं आपको ख़तों का जवाब भी न दे सकूँ। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या उज़्र पेश करूँ, सिवाय इसके कि मैं बेहद सुस्त और काहिल हो गया हूँ।

समझ में नहीं आता, मुझे क्या हो गया है। ख़त लिखते वक़्त ऐसा महसूस होता है जैसे मैं बेकार की जिस्मानी मशक़्क़त कर रहा हूँ। क्या ही अच्छा होता, अगर आदमी लिखे बग़ैर अपने ख़यालात दूसरे तक पहुँचा सकता!

असल में इस एटम बम ने मेरी ज़िंदगी को बहुत सद्मा पहुँचाया है। ऐसा लगता है कि हर शै फ़िज़ूल है।

---

* *'फ्रॉड मुझे पहली बार मंटो ने कहा था, और बड़ी मुहब्बत से।'—देवेंद्र सत्यार्थी : नई दिल्ली 1965.*

बंबई : सितंबर, 1946

परसों सफ़िया के नाम आपका तार मिला—मुझे सख़्त शर्मिंदगी है कि मैं इतना अर्सा ख़ामोश रहा और आपको एक ख़त भी न लिख सका। इसका बायस कुछ तो तसाहुल[21] है जो बिलकुल क्रोनिक[22] हो चुका है और कुछ मसरूफ़ियत भी थी।

आपको यह सुनकर ख़ुशी होगी कि नौ जुलाई को ख़ुदावंद तआला ने हमें एक नन्ही-सी बच्ची अता फ़रमाई है। मैंने उसका नाम निगहत* रखा है। उम्मीद है, आप पसंद करेंगे।

बंबई : फ़रवरी, 1947

मैं सख़्त नादिम[23] हूँ। मुझे आप-ऐसे ख़लीक़[24] और पुर ख़ुलूस दोस्त को बाक़ाइदा ख़त लिखना चाहिए—मैं क़ुसूरवार हूँ, लेकिन क्या क़ुसूरवार होकर भी आदमी एक क़िस्म का लुत्फ़ नहीं उठा सकता—अगर आप मुझे इस लुत्फ़ इस इस क़ुसूर आलूद लज्ज़त से महरूम रखना चाहते हैं तो लीजिए, मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि मैं अब से बाक़ायदा ख़तो-किताबत जारी रखूँगा।

बंबई : जुलाई, 1947

आपका शिकायतनामा मिला।

मैंने 'सवेरा' के लिए अफ़साना नहीं भेजा था।

बहरहाल आपके इरशाद पर एक नया अफ़साना 'पढ़िए कलमा' भेज रहा हूँ। उम्मीद है, आप पसंद करेंगे।

'स्वराज के लिए' के मुताल्लिक़ आपका क्या ख़याल है?

सफ़िया बख़ैरियत है। निगहत कल ख़ुदा के फ़ज़्ल से एक बरस की हुई है। उसकी सेहत इतनी अच्छी नहीं, इसलिए कि दाँत निकाल रही है।

उम्मीद है, आप पेशावर में ख़ुश होंगे—यहाँ फ़िल्म इंडस्ट्री की हालत क़ाबिले-रहम है।

लाहौर† : फ़रवरी, 1948

मुझे अफ़सोस है कि वादा करके आप तशरीफ़ न लाए। बहरहाल मैं ख़ुद एक काम से अपने एक अज़ीज़ दोस्त के साथ पेशावर आ रहा हूँ। इन्शाअल्लाह ख़ूब बातें होंगी। ज़ाहिर है कि तीन-चार रोज़ तक आप ही के पास क़याम रहेगा।

सफ़िया सलाम लिखवाती है। निगहत माशाल्लाह बसेहत है।

आपका

सआदत

---

* *निगहत के अलावा मंटो की दो बेटियाँ और हैं। दोनों की पैदाइश तक़सीम के बाद लाहौर में हुई थी।*

† *मंटो बंबई से सात या आठ जनवरी, 1948 को लाहौर पहुँचा था—उसकी बीवी और बच्ची कई माह पहले ही से लाहौर में थीं।*

○

(1)

अहमद नदीम क़ासमी 'मंटो के ख़ुतूत' की भूमिका में
लाहौर : दस मई, 1962

"मगर फिर मैंने दो-तीन बार मंटो की ज़ात पर तनक़ीद कर दी। साथ ही उसके चंद ऐसे दोस्तों को बुरा-भला कह दिया जो मारे ख़ुलूस के उसकी बर्बादी की रफ़्तार को तेज़तर करते रहते थे। इसी पर मंटो मुझसे बिगड़ गया—मुझे उसका यह फ़िक़रा कभी नहीं भूलेगा : 'मैंने तुम्हें अपने ज़मीर की मस्जिद का इमाम मुक़र्रर नहीं किया है, सिर्फ़ दोस्त बनाया है' नतीजा यह कि मैंने मंटो से कतराकर निकल जाने ही में अपनी और जज़्बात की आफ़ियत[25] समझी।"

(2)

जब भी हुकूमतें 'मेहरबान' हुईं, मंटो पर मुक़दमा चला।

मंटो की अदबी ईमानदारी का यह आलम था कि वह जिन लोगों को अपने दिफ़ाअ[26] में बनाता था, उनसे मिलता तक न था—वह तमाम-तमाम लोगों को एक ही मज़मून का बस ख़त लिख दिया करता था।

'ठंडा गोश्त' के मुक़दमे में उसने डॉक्टर आई. लतीफ़, हैड ऑफ़ दी साइकोलोजी डिपार्टमेंट, एफ़ सी. कॉलेज, लाहौर को बुलवाया था जिसका उसने नाम तो सुन रखा था, लेकिन देखा न था—अदालत में अपना बयान देने के दौरान में डॉक्टर लतीफ़ ने एकदम पूछा था "मिस्टर मंटो कौन हैं?"

तो यह था मंटो।

इसी सिलसिले में उसका एक ख़त.

—संपादक

बंबई : 30 सितंबर, 1945

मुकर्रमी,

तस्लीमात। लाहौर की अदालत में मेरे एक अफ़साने 'धुआँ' पर फ़हाशी के इल्ज़ाम में मुक़दमा चल रहा है। मैंने आपको गवाह सफ़ाई के तौर पर बुलाया है। मुतज़क्किरा[27] सदर अफ़साने के बारे में आपकी जो राय भी हो, मुझे मंज़ूर होगी, इसलिए कि फ़हाशी और ग़ैर फ़हाशी के अहम मौज़ू पर आप जैसे अहलराय अदीब और साहबे-क़लम के ख़यालात न सिर्फ़ मेरे लिए बल्कि मुल्की अदब के लिए मुफ़ीद होंगे।

मुझे उम्मीद है कि आप मेरी यह दावत क़ुबूल फ़रमाएँगे।

नियाज़केश
सआदत हसन मंटो

(3)

'नक़ूश'* का मालिक एडिटर मुहम्मद तुफ़ैल जब राइटर बन बैठा तो उसने एक ख़ाका 'मंटो साहब' लिखा और अपने परचे में छाप डाला।

'निजी हैसियत' के इस मज़मून को पढ़कर अहमद नदीम क़ासमी को तो तकलीफ़ हो गई, लेकिन मंटो ने मुहम्मद तुफ़ैल को मुंदरिजा ज़ैल ख़त लिखा :

लाहौर : 1953

ब्रादरम, अस्सलामुअलैकुम।

कल रात मुझे सफ़िया ने बताया था कि आपने मुझ पर 'नक़ूश' में मज़मून लिखा है—ज़्यादा पीने की वजह से मुझसे ठीक पढ़ा नहीं जा रहा था, चूँकि सफ़िया को मज़मून पसंद था, इसलिए उसने मेरे कहने पर इधर-उधर से सुनाया जो मुझे क़तअन पसद न आया; यही सबब हुआ कि मैंने आपको आधी दर्जन के क़रीब गालियाँ दीं; और इसके बाद मुझे नींद आ गई।

सुबह उठकर अपनी आँखो से मज़मून पढ़ा तो मुझे पसंद आ गया—आपने जो कुछ लिखा है, उससे मुझे इनकार नहीं। अपनी कमजोरियों के बावजूद (मैं) बेहद ख़ुश हूँ कि आपने जो कुछ लिखा है, उसमें हिचकिचाहट का शायबा[28] तक नहीं। मै जो कुछ हूँ, वह इस मज़मून में मौजूद है, बल्कि वाफ़िर[29] मौजूद है—इस (मज़मून) में बाज बातें ऐसी मौजूद हैं जो मुझ में मौजूद थीं मगर मेरे लिए महसूस की हद से बाहर थीं।

ख़ाकसार
सआदत हसन मंटो

(4)

अब पहले तीन ख़त पढ़िए :

ब्रादरम मुकर्रम जनाब डॉक्टर साहब‡,

अस्सलामुअलैकुम। मैंने बहुत कोशिश की कि आपके दौलतख़ाने का पता मिल जाए मगर न मिल सका। आज इतवार है, इसलिए आपसे कॉलेज मे भी मुलाक़ात नहीं हो सकती। हामिले-रुक्का[30] असदुल्लाह† मेरे अज़ीज़ तरीन दोस्त हैं। इनको बोर्डिंग में दाख़िला चाहिए और इसके लिए आपकी सिफ़ारिश की ज़रूरत है।

---

* *पाकिस्तान का एक मशहूर अदबी परचा।*

‡ *डॉक्टर मुहम्मद बाक़र : प्रोफ़ेसर एंड हैड ऑफ़ परशियन डिपार्टमेंट, पंजाब यूनीवर्सिटी, लाहौर।*

† *मुहम्मद असदुल्लाह : मंटो का एक नौजवान दोस्त जिसने मंटो की मौत के बाद 1955 में मंटो की ज़िंदगी के आख़िरी दो बरसों पर एक किताब 'मंटो मेरा दोस्त' लिखी—आजकल बर्लिन मे है—जनवरी 1987 में लंदन में एक इत्तिफ़ाक़िया मुलाक़ात के दौरान मुहम्मद असदुल्लाह और बलराज मेनरा के दरमियान मंटो पर एक तफ़सीली बातचीत हुई।*

उम्मीद है, आप मेरी ख़ातिर यह काम कर देंगे। कभी हलका[++] में मुलाक़ात हुई तो मैं शुक्रिया अदा करूँगा। आपके ख़ुलूस के पेशनज़र चंद सतूर लिखी हैं। ख़ुदा करे, आप मेरा यह काम बग़ैर किसी तकलीफ़ के कर सकें।

उम्मीद है, आप बख़ैरियत होंगे। अब हलक़ा में अगर मुझे अफ़साना पढ़ना हो तो आप सदारत फ़रमाइएगा। ज़रा लुत्फ़ आ जाता है।

ख़ाकसार
सआदत हसन मंटो
(लाहौर) 5 अक्तूबर, 1952

प्यारे* अजीज,

अस्सलामअलैकुम। मैं बहुत अर्से से बीमार हूँ, इसलिए 'माहे-नौ'[†] के लिए कुछ न लिख सका। और भी कुछ वजूह हैं जो आपको मालूम हो गई होंगी।

बहरहाल अब आपसे एक काम लेना है। हामिले-रुक्क़ा मेरे अजीज़ दोस्त मुहम्मद असदुल्लाह हैं। वह कराची के किसी होस्टेल में जगह चाहते हैं। मुझे पूरी उम्मीद है कि आप इनकी मदद करेंगे। देखिए, मुझे मायूसी न हो।

उम्मीद है, आप बख़ैरियत होंगे। मैं 'माहे-नौ' के लिए दो अफसाने बहुत जल्द आपकी ख़िदमत में रवाना करूँगा।

ख़ाकसार
सआदत हसन मंटो
(लाहौर) यकुम अगस्त, 1953

मुकर्रमी व मोहतरमी जनाब हलीम साहब,**

तस्लीमात। आपको शायद याद न हो, मैं किसी ज़माने में जब कि आप अलीगढ़ यूनीवर्सिटी में थे, वहाँ का एक बदक़िस्मत तालिबे-इल्म था, क्योंकि मुझे अलालत[††] के बायस तीन महीने के बाद यूनीवर्सिटी छोड़ना पड़ी थी।

मैं इस छोटे-से रिश्ते की बिना पर आपसे एक अजीज़ दोस्त मुहम्मद असदुल्लाह की

++ हलका अरबाबे ज़ौक़—अदबी अंजुमन।

* *मशहूर नावलिस्ट अज़ीज अहमद।*

† *हुकूमते-पाकिस्तान का एक अदबी माहनामा।*

*** बी. ए. हलीम : वाइस चांसलर, कराची यूनीवर्सिटी।*

†† इस शक पर कि मंटो को टी बी की शिकायत है, उसे अलीगढ़ यूनीवर्सिटी से निकाल दिया गया था—बात 1935 की है।

सिफ़ारिश करता हूँ। यह एस.एम. कॉलिज में दाख़िला चाहते हैं। तफ़सीलात वह ख़ुद ज़बानी अर्ज़ कर देंगे। अगर हो सके तो इनके लिए होस्टेल का बंदोबस्त भी फ़र्मा दीजिएगा। मैं मम्नूनो-मश्कूर हूँगा।

अगर ज़िंदगी हुई तो आपसे नियाज़ हासिल करूँगा। आपको यक़ीनन अपनी यूनीवर्सिटी का सबसे शरीर तालिबे-इल्म सरदार ख़ान बिलोच याद होगा। ख़ुदा जाने, वह कहाँ है?

ख़ुदा आपको ख़ुश रखे।

नियाज़केश
सआदत हसन मंटो
(लाहौर) यकुम अगस्त, 1953

मुंदरिजे बाला तीनों सिफ़ारशी ख़त मंटो ने अपने नौजवान दोस्त मुहम्मद असदुल्लाह के लिए लिखे थे—मंटो ने इसी तरह के बेशुमार ख़ुतूत बेशुमार लोगों के लिए बेशुमार लोगों को लिखे थे।

मंटो एक दर्दमंद दिल रखता था—जरूरतमंद, मजबूर और दुखी लोग उसके पास सुबह-शाम पहुँचते थे और वह सिफारशी ख़त लिख दिया करता था।

मंटो के ताल्लुकात इतने वसी थे और उसका नाम इस कदर मशहूर था कि वह किसी को न भी जानता हो, सब उसे जानते थे—उसके एक ख़त से ज़रूरतमंद का काम हो जाता था।

(5)

एक ख़त एक हिंदुस्तानी पब्लिशर के नाम :

786

लाहौर।

यूसुफ़ साहब* !

अस्सलामुअलैकुम। मुझे बेहद अफ़सोस है कि मेरे बार-बार ख़त लिखने पर भी आपने मेरी दरख़्वास्तों पर कोई तवज्जोह न दी—आपने यहाँ मुझसे पाँच हज़ार रुपए का

---

* *तरक्कीपसंद परचे 'शाहरा' और मकतबा शाहरा, उर्दू बाजार, दिल्ली, का मालिक।*

मुआहदा[31] किया था कि आप मेरी तमाम किताबों के हक़ूक़ की वहाँ निगहदाश्त[32] करेंगे और जो किताब वहाँ छपेगी, उसका मुआवज़ा वसूल करते रहेंगे—वहा मेरी कई किताबें शाया हुई हैं। ज़ाहिर है कि आपने काफ़ी रुपया वसूल किया होगा।

अगर आप मेरी शराफ़त से और ज्यादा फ़ायदा नहीं उठाना चाहते हो तो अज़ राहे-करम क़तील शिफ़ाई† साहब को मुआहदे की रक़म में से दो हज़ार अदा कर दे, वर्ना मुझे कोई दूसरी सूरत इख़्तियार करनी पड़ेगी, यानी मुझे ख़ुद वहाँ आने की तकलीफ़ बर्दाश्त करनी पड़ेगी।

याद रहे कि मैं अभी तक बकैदे-हयात[33] हूँ और अपना हक़ वसूल करना जानता हूँ।

ख़ाकसार
सआदत हसन मंटो
30 फ़रवरी, 1954

मुकर्रर : मैंने क़तील साहब को अपनी तरफ़ से मुकम्मल इख़्तियारात दे दिए हैं। वह जो मनासिब समझेंगे, करेंगे।

उन दिनों उर्दू के हिंदुस्तानी पब्लिशरों ने मंटो की दर्जनों किताबें छाप डाली थी—इधर उसका कोई नया अफ़साना छपता, उधर कोई पब्लिशर नए अफ़साने के नाम पर पुराने अफ़सानों समेत एक किताब छाप डालता।

एक पब्लिशर ने तो एक किताब 'मंटो के फ़हश अफ़साने'‡ के नाम से छाप डाली और ढेरों रुपया बटोरा।

(6)

मंटो का आख़िरी ख़त, जो ग़ालिबन मंटो की आख़िरी तहरीर भी है। यह ख़त मंटो ने मरने से एक दिन पहले कराची के मैजिस्ट्रेट मेहंदी अली सिद्दीक़ी* को लिखा था :

मुकर्रमी व मुअज़्ज़मी मेहंदी अली ख़ाँ साहब,

तस्लीमात। मुझे अफ़सोस है कि इस दौरान मैं आपसे ख़तो-किताबत न कर सका। दरअसल मैं अलील था।

---

† *मशहूर पाकिस्तानी शाइर जो 'शंकर व शाद' मुशाइरे में दर्जनों बार देहली आ चुका है।*

‡ *पंडित नेहरू के नाम एक ख़त मे मंटो ने इस किताब का ज़िक्र किया है।*

* *मेहंदी अली सिद्दीक़ी ने फ़हाशी के जुर्म में मंटो को सज़ा दी थी।*

मैं आपसे कोई-न-कोई सिफ़ारिश करता ही रहता हूँ, सिर्फ़ इसलिए कि मुझे आपके ख़ुलूस और मुहब्बत ने बहुत मुतास्सिर किया था, और मैं अपनी दानिस्त के मुताबिक़ यह समझता हूँ कि आप मेरी सिफ़ारिश कभी रद्द नहीं करेंगे।

हामिले-रुक्क़ा रफ़ीक़ चौधरी साहब मेरे अज़ीज़ हैं। इन पर आपकी करम फ़रमाई मुझ पर बहुत बड़ी करम फ़रमाई होगी। यह आपको ज़बानी तमाम हालात बता देंगे।

मेरे लायक़ कोई ख़िद्मत?

मेरा इरादा है कि चंद दिनों के लिए कराची आऊँ। उम्मीद है, आपसे मुलाक़ात होगी।

नियाज़केश
सआदत हसन मंटो
17 जनवरी, 1955

(लाहौर)

1. माध्यम; 2. प्रकाशन; 3. सामग्री, विषयवस्तु; 4. प्रशिक्षण. 5 लंबा; 6. उद्धरण; 7. बुद्धिमत्ता, 8. आज्ञानुसार; 9. निश्चित; 10. संपूर्ण, 11. दिल, 12. कलात्मक, 13. दृष्टिकोण; 14 उदासी; 15. कार्यरत; 16. सम्मिलित, सामूहिक, 17. चरण, दौर; 18. आरंभ; 19. रोगशय्या; 20. विलग, घृणा से अलग होने का भाव; 21. आलस्य; 22. प्राचीन; 23. शर्मिंदा, 24. अच्छे स्वभाववाला; 25. भलाई; 26. रक्षा हेतु; 27. चर्चित; 28. झलक; 29. अत्यधिक मात्रा में; 30. पत्रवाहक, 31. अनुबंध; 32. देखभाल; 33. जीवन की कैद में, जीवित।

मेरी शादी

मैंने कभी लिखा था कि मेरी ज़िंदगी में तीन बड़े हादिसे हैं:

एक: मेरी पैदाइश, जिसकी तफ़सीलात का मुझे कोई इल्म नहीं।

दो: मेरी शादी।

तीन: मेरा अफ़सानानिगार बन जाना।

आख़िरी हादिसा चूँकि अभी तक हुआ चला जा रहा है, इसलिए उसके मुताल्लिक़ कुछ कहना क़ब्ल-अज़-वक़्त[1] होगा।

वह लोग जो मेरी ज़िंदगी के अंदर झाँककर देखना चाहते हैं, उनकी ख़ातिर मैं अपनी शादी की दास्तान बयान करता हूँ। यह मनो-अन[2] नहीं होगी, क्योंकि बाज़ वाकिआत मुझे मसलहतन[3] गोल करने पड़ेंगे।

मैं पहले इस हादिसे का अक़बी मंज़र[4] पेश करता हूँ ताकि इसकी तफ़सीलात[5] उभर आएँ।

सन मुझे याद नहीं। ग़ालिबन बारह-तेरह बरस पहले जब अलीगढ़ यूनीवर्सिटी से मुझे इसलिए बाहर निकाल दिया गया था कि मुझे दिक़ का आर्ज़ा लाहक़[6] है, मैं अपनी बहन से कुछ रुपए लेकर सेहत दुरुस्त करने की ख़ातिर बटोत* चला गया वहाँ तीन महीने क़याम[7] करने के बाद मैं वापस अपने शहर अमृतसर में आया तो मुझे मालूम हुआ कि मेरी बहन† का लड़का फ़ौत[8] हो गया है।

यहाँ पर मैं यह बताना ज़रूरी समझता हूँ कि मैं वालिद के साए से महरूम[9] था। बहन की शादी पर जो जमा-पूँजी मौजूद थी, वह मेरी सादा लोह और नेकदिल माँ ने मेरे बहनोई के हवाले कर दी थी। अब यह हालत हो गई थी कि हम दूसरों के मोहताज थे—मेरे दो सौतेले बड़े भाई हमें चालीस रुपए माहवार दिया करते थे।

अमृतसर आते ही मेरा दिलो-दिमाग़ सख़्त मुज़्तरिब[10] हो गया। जी चाहता था, कहीं भाग जाऊँ या ख़ुदकुशी कर लूँ। मज़बूत इरादे का मालिक होता तो यक़ीनन मैंने ख़ुद को हलाक कर लिया होता—इसीलिए जब बंबे से हफ़्तावार 'मुसव्विर' के मालिक मिस्टर नजीर ने मुझे ख़त लिखा कि मैं बंबे आकर उनके परचे की इदारत[11] सँभाल लूँ तो मैंने फ़ौरन

* जम्मू और श्रीनगर के दरमियान एक गाँव।

† वह बंबे में ब्याही हुई थी और चंद रोज़ अमृतसर रहकर वापस बंबे चली गई थी।

बोरिया बिस्तर बाँधा और बंबे चल दिया। मैंने यह भी न सोचा कि वालदा अमृतसर में अकेली रह जाएगी।

मिस्टर नज़ीर ने मुझे चालीस रुपए माहवार पर नौकर रख लिया। जब मैं उनके दफ़्तर में सोने लगा तो उन्होंने किराए के तौर पर दो रुपए तनख़्वाह में से काटना शुरू कर दिए—इसके बाद जब उन्होंने मुझे इंपीरियल फ़िल्म कंपनी में बहैसियत मुंशी यानी मुकालमानिगार[12] चालीस रुपए माहवार पर मुलाज़िम करा दिया तो मेरी तनख़्वाह आधी यानी बीस रुपए कर दी, जिसमें से दो रुपए दफ़्तर को रिहाइश के लिए इस्तेमाल करने के सिलसिले में काटे जाते रहे।

यह वह ज़माना था, जब इंतिहाई उरूज[13] के बाद इंपीरियल फ़िल्म कपनी रू-ब तनज़्ज़ुल[14] थी। इसके मालिक सेठ आरडेशर ईरानी, जो एक बाहिम्मत आदमी थे, सरतोड़ कोशिशों में मसरूफ़ थे कि उनकी कपनी की हालत सँभल जाए।

ज़ाहिर है कि ऐसी डगमग हालत मे मुलाजिमों को तनख़्वाहे वक़्त पर नहीं मिलती थीं—सेठ आरडेशर ने एक और ज़ुल्म किया कि हिंदुस्तान का पहला रंगीन फ़िल्म बनाने का फ़ख़्र हासिल करने के लिए बाहर से 'सिने कलर प्रोसेस' की मशीनें मँगवा लीं—वह इससे पेशतर हिंदुस्तान का सबसे पहला नातिक़[15] फ़िल्म 'आलमआरा' पेश करने का फ़ख़्र हासिल कर चुके थे।

कंपनी पर जब यह रंगीन बोझ पड़ा तो उसकी माली हालत और भी कमज़ोर हो गई, मगर जूँ-तूँ काम चलता रहा। कुछ-न-कुछ एडवांस के तौर पर मिल जाया करता था और बाक़ी हिसाब में जमा रहता था।

इत्तिफ़ाक़ ऐसा हुआ कि उस रंगीन फ़िल्म की डायरेक्शन मिस्टर मोती बी गुडवानी के सुपुर्द हुई, जो तालीमयाफ़्ता थे और मुझे पसद करते थे—उन्होंने मुझसे कहानी लिखने के लिए कहा, जो मैंने लिख दी और उन्होंने पसंद की, मगर एक पेच आन पड़ा कि वह सेठ से कैसे कहें, पहली रंगीन फ़िल्म की कहानी का मुसन्निफ़[16] एक मामूली मुशी है—बहुत सोच-बिचार के बाद यह तय हुआ कि अच्छे दाम वुसूल करने की ख़ातिर कहानी पर किसी शख़्सियत का नाम दिया जाए।

ऐसी कोई शख़्सियत मेरे दायरा-ए-अहबाब[17] मे नहीं थी, लेकिन जब मैंने चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई तो मुझे बहुत दूर शांति निकेतन में प्रोफ़ेसर ज़ियाउद्दीन (मरहूम) दिखाई दिए, जो टैगोर की यूनीवर्सिटी में तलबा को फ़ारसी पढ़ाते थे—मैंने उनको ख़त लिखा—वह मुझसे प्यार करते थे, इसलिए वह हमारे फ़्रॉड में शरीक हो गए। कहानी उन्हीं के नाम से पेश हुई और फ़िल्म बहुत बुरी तरह नाकाम रही।

कंपनी की हालत और भी अबतर[18] हो गई—इसी दौरान में मिस्टर नज़ीर की सिफ़ारिश से मुझे सौ रुपए माहवार पर 'फ़िल्म सिटी' में मुलाज़्मत मिल गई।

कारदार साहब कलकत्ते से बंबे आए तो 'फ़िल्म सिटी' ने एक फ़िल्म के लिए उनसे मुआहदा[19] किया। कहानियाँ तलब की गईं। उनमें एक कहानी मेरी भी थी, जो मियाँ कारदार ने पसंद की और उस पर काम भी शुरू कर दिया गया, मगर क़ुदरत को कुछ और

ही मंज़ूर था।

सेठ आरदेशर को पता चल गया कि मैं 'फ़िल्म सिटी' में हूँ—गो उनकी वह पहली-सी साख नहीं थी, लेकिन अपने तमाम हमउम्र प्रोड्यूसरों पर उनका रोब और दबदबा वैसे-का-वैसा क़ायम था। 'फ़िल्म सिटी' के मालिकों को उन्होंने कुछ ऐसी डाँट पिलाई कि मुझे कान से पकड़कर वापस इंपीरियल फ़िल्म कंपनी में भेज दिया गया, और साथ ही मेरी कहानी भी।

अब मेरी तनख़्वाह चालीस के बजाय अस्सी कर दी गई और वादा किया गया कि मुझे मेरी कहानी का मुआवज़ा अलहदा मिलेगा—उस कहानी की डायरेक्शन हाफ़िज़ जी (रतन बाईवाले) के सुपुर्द की गई।

जब मैं 'फ़िल्म सिटी' में मुलाज़िम हुआ था तो मैंने 'मुसव्विर' के दफ़्तर में रिहाइश छोड़कर पास ही एक निहायत ही ग़लीज़ चाल में एक खोली नौ रुपए माहवार पर ले ली थी। इस खोली में इस क़दर खटमल थे कि छत पर से बारिश के क़तरों की तरह गिरते थे।

इस दौरान मे मेरी वालदा बंबे आ गई थीं और अपनी लड़की के पास क़यामपज़ीर[20] थीं—जब पहली बार वह मुझसे मिलने के लिए उस ग़लीज़ खोली में आईं तो उनकी आँखों में आँसू आ गए।

मेरे और मेरे बहनोई के ताल्लुकात कशीदा[21] थे— उसे ख़ुदा बख़्शे, उसका किरदार बहुत ही ख़राब था। मैं चूँकि नुक्ताचीनी करता था, इसलिए उसने अपने घर में मेरा दाखिला बंद कर दिया था और मेरी बहन पर यह पाबंदी आइद[22] कर दी थी और वह मुझसे नहीं मिल सकती।

मैं अपनी माँ के आँसुओं का ज़िक्र कर रहा था, जो इसलिए उनकी आँखों से निकले थे कि उनका बेटा, जो नाज़ो-नअम[23] मे पला था, अब ज़माने की गर्दिश से ऐसे ग़लीज़ जगह में रहता है। उसके पास कपड़े नहीं। वह रात को मिट्टी के तेल का लैंप जलाकर काम करता है। होटल में रोटी खाता है।

वह जब तक रोती रही, मैं शदीद[24] क़िस्म की दिमाग़ी और रूहानी अज़ियत[25] मे मुब्तला रहा—जो दिन गुज़र चुके है, उनकी याद मेरे नज़दीक हमेशा फ़िज़ूल रही है और फिर रोने-धोने का क्या मतलब है—मुझे हमेशा आज से ग़र्ज़ रही है। गुज़री हुई कल या आनेवाली कल के मुताल्लिक़ मैंने कभी नहीं सोचा। जो होना था, हो गया और जो होनेवाला है, हो जाएगा।

रोने से फ़ारिग होकर मेरी वालदा ने बड़ी संजीदगी से पूछा : "सआदत, तुम ज़्यादा क्यों नहीं कमाते ?"

मैंने जवाब दिया : "बीबीजान, ज्यादा कमाकर क्या करूँगा ? जो कुछ कमा रहा हूँ, मेरे लिए काफ़ी है।"

उन्होंने मुझे ताना दिया : "नही बात असल में यह है कि तुम ज़्यादा कमा नहीं सकते ज्यादा पढ़-लिखे नहीं हो ना!"

बात दुरुस्त थी—पढ़ने मे मेरा जी ही नहीं लगा था। तीन बार इंटरेंस में फ़ेल होने के

बाद जब कॉलेज में दाख़िल हुआ था तो मेरी आवारगी और भी बढ़ गई थी और मैं एफ़. ए. के इम्तिहान में दो मर्तबा नाकाम रहा था। फिर अलीगढ़ यूनीवर्सिटी में पढ़ने गया तो वहाँ से इस बिना पर निकाल दिया गया था कि मुझे दिक़ का आर्ज़ा[26] लाहक़ है—इन तल्ख़ हक़ायक़[27] को महसूस करने के बावुजूद मैंने बीबीजान की बात को हँसी-मज़ाक़ में टालने की कोशिश की।

मैंने कहा : "बीबीजान, मैं जो कुछ कमाता हूँ, मेरी ज़ात के लिए काफ़ी है घर में बीवी होती तो फिर आप देखतीं, मैं कैसे कमाता हूँ कमाना कोई मुश्किल काम नहीं। आदमी आला तालीम के बग़ैर भी ढेरों रुपया हासिल कर सकता है।"

मेरी बात सुनकर वालदा ने अचानक मुझसे सवाल किया : "शादी करोगे?"

मैंने ऐसे ही कह दिया : "हाँ, क्यों नहीं!"

"तो इस इतवार को तुम माहिम आ जाना। फ़ुटपाथ पर खड़े रहना। मैं तुम्हें देखकर नीचे आ जाऊँगी" वालदा ने यह कहकर मेरे सिर पर हाथ फेरा : "तुम्हारी शादी का बंदोबस्त हो जाएगा, इन्शाल्लाह लेकिन देखो, अपने बाल कटवा के आना!"

मैंने बाल न कटवाए। सनीचर की रात मैंने अपने कैनवस शूज़ पर पालिश की। और फिर इतवार की सुबह डबल रेट पर धुलवाई हुई सफ़ेद पतलून पहनकर और माहिम पहुँचकर इनिंग लिटोमैन्शंज़ के पास फुटपाथ पर खड़ा हो गया।

वालदा तीसरी मंज़िल के फ़्लैट की बालकनी पर मेरी मुंतज़िर[28] थीं। उन्होने मुझे देखा तो नीचे आ गईं और मुझे साथ चलने को कहा।

बीस-पच्चीस गज़ के फासले पर एक बिल्डिंग थी जाफ़र हाऊस—वालदा ने उसकी दूसरी मंज़िल के एक फ़्लैट का दरवाज़ा खटखटाया, जो शायद नौकरानी ने खोला—हम अंदर दाख़िल हो गए।

वालदा ज़नाने में चली गईं।

मेरा इस्तिक़बाल[29] एक गोरे-चिट्टे अधेड़ उम्र के आदमी ने किया। उसने मुझे मर्दाने में बड़ी मुहब्बत और बड़े ख़ुलूस[30] के साथ बिठाया और फ़ौरन बेतकल्लुफ़ हो गए—आपने मुझसे और मैंने उनसे एक-दूसरे के मशाग़िल[31] के मुताल्लिक़ मालूमात हासिल कीं।

वह गवर्नमेंट के मुलाज़िम थे, पुलिस के महकमे में फ़िंगर प्रिंट स्पेशलिस्ट। तनख़्वाह वाजबी थी। कई बच्चों के बाप थे। रेस और फ़्लैश के रसिया। क्रॉस वर्ड पज़ल्स[32] बड़ी बाक़ाइदगी से हल करते थे, मगर कोई इनाम हासिल नहीं कर सके थे।

मैंने उनको अपने सारे हालात बता दिए— यह भी कह दिया कि मैं एक ऐसी फ़िल्म कंपनी में मुलाज़िम हूँ जहाँ तनख़्वाह नहीं मिलती, सिर्फ़ साँस की आमदो-रफ़्त जारी रखने के लिए कभी-कभी एडवांस के तौर पर कुछ मिल जाता है।

मैंने जब उनको यह बताया कि ऐसी पतली हालत में भी शाम को बीयर की एक बोतल ज़रूर पीता हूँ तो उन्होंने बुरा न माना—मुझे ताज्जुब हुआ।

मेरी बातों को उन्होंने बड़े ग़ौर से सुना था—जब मैं जाने के लिए उठा, तब तक मलिक हसन साहब मेरी किताबे-ज़िंदगी के तमाम ज़रूरी औराक़ का मुताला[33] कर चुके थे।

जब हम वहाँ से निकले तो वालदा ने मुझे बताया : "यह लोग अफ़्रीक़ा से आए हैं। तुम्हारे भाइयों* को अच्छी तरह जानते हैं इनके हाँ एक लड़की है, जिसका ब्याह करना चाहते हैं कई रिश्ते आ चुके हैं, मगर इनको पसंद नहीं आए, असल में कोई कश्मीरी घराना चाहते हैं मैंने इनसे तुम्हारी बात की है और कोई बात पोशीदा[34] नहीं रखी है।"

रही-सही जो कसर रह गई थी, वह वालदा ने पूरी कर दी थी।

मैं सोचने लगा कि यह सिलसिला क्या है। अगर वह लोग मान गए—हालाँकि मुझे इसका यकीन नहीं था, इसलिए कि मुझमें ऐसी कोई बात नहीं थी कि वह मुझे अपनी लड़की देते—तो क्या सचमुच मुझे शादी करना पड़ेगी और फिर ढेरों रुपए कमाना पड़ेंगे।

मलिक हसन साहब ने मुझे अगले इतवार खाने पर मदऊ[35] किया था—मैं हस्बे-वादा[36] वहाँ पहुँचा तो उन्होंने मेरी बड़ी आवभगत की। खाना आया। मुर्ग़ था, कोफ़्ते थे, साग-सालन भी था और धनिए-पोदीने और अनारदाने की चटनी। हर चीज़ लज़ीज़ थी, लेकिन गर्म मसाला और मिर्चें इस क़दर कि अलामान[37]। मेरे पसीने छूट गए।

दो-तीन इतवारों के बाद जब मैं उन लोगों में घुल-मिल गया तो मेरी वालदा ने मुझे बताया कि उन्होंने मेरा रिश्ता क़ुबूल कर लिया है।

जब मैंने सुना तो चकरा गया। मैं तो शादी के इस क़िस्से को मज़ाक़ समझ रहा था। इसके अलावा मुझे क़तअन यक़ीन नहीं था कि मुझे कोई होशमंद इंसान अपनी लड़की देगा। मेरे पास था ही क्या। इंटरेंस पास, वह भी थर्ड डिवीज़न में। और मुलाज़मत ऐसी जगह, जहाँ तनख़्वाह के बजाय एडवांस मिलता था। और पेशा फ़िल्म और अख़बार-नवीसी—ऐसे लोगों को शरीफ़ आदमी कब मुँह लगाते हैं।

एक ग़लीज़ खोली हासिल करने के लिए मुझे कितने जतन करने पड़े थे कि मालिक मकान को मालूम हो गया था, मैं फ़िल्म कंपनी में काम करता हूँ—बड़ी सिफारिशों के बाद वह अंजाम कार राज़ी हुआ था।

जब वालदा ने कहा कि उन्होंने बात पक्की कर दी है तो मैं सख़्त परेशान हुआ। मैं यह ख़बर सुनने के लिए बिलकुल तैयार नहीं था—मैंने वालदा से कुछ न कहा और दिन-रात उठते-बैठते इस सोच मे ग़र्क़[38] रहने लगा कि जो मुसीबत मैंने ख़ुद मोल ली है, उससे निजात कैसे होगी।

बहुत सोच-बिचार के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि अब सोच-बिचार बिलकुल फ़िज़ूल है और कि चे बादाबाद[39] कहकर मुझे अपनी किश्ती इस मँझधार में डाल देनी चाहिए।

मैंने फ़ैसला तो कर लिया, मगर यह सवाल बहुत ही परेशान करनेवाला था कि निकाह की रस्म के लिए रुपया कहाँ से आए—कंपनी से अब एडवांस मिलना भी बंद हो गया था, और उधर वालदा ने तारीख़ मुक़र्रर कर दी थी।

मैंने कई मर्तबा सोचा कि बंबे से भाग जाऊँ, लेकिन किसी ग़ैर मरई ताक़त ने मेरे पाँव

---

* मेरे बड़े सौतेले भाइयों ने दस-बारह बरस मशरिक़ी अफ़्रीका में बैरिस्ट्री की थी।

जकड़ रखे थे—एक ही सूरत थी कि सेठ आरडेशर से मिलूँ और उनसे अपने निकाह के इख़राजात[40] के लिए कुछ रुपए माँगूँ—कंपनी की तरफ़ मेरे क़रीब-क़रीब डेढ़ हज़ार रुपए निकलते थे। अगर यह मिल जाते तो समझिए, मेरा सब तरद्दुद[41] दूर हो जाता बल्कि ऐश हो जाते।

मैं आरडेशर साहब से मिला—उनको इतनी फ़ुर्सत नहीं थी कि मेरी दास्तान ग़ौर से सुनते। उन्होंने टहलते-टहलते, जो कुछ मैंने कहा, बदरजा-ए-मजबूरी सुना।

आख़िर में उन्होंने मुझसे कहा : "देखो, कंपनी की जो हालत है, वह तो तुम जानते हो ··· अगर हालत अच्छी होती तो हम तुम्हारी शादी ख़ुद कर देते।"

उनकी बात सही थी--जब कंपनी की हालत अच्छी थी तो वह अपने मुलाज़िमों की बेदरेग़ माली इमदाद किया करते थे—वह बड़े मुख़य्यर[42] थे, मगर अब उनका हाथ इस क़दर तंग था कि उन्हें इस एहसास से बडी उलझन होती थी कि वह किसी सवाली की मदद नहीं कर सकते।

मेरी मायूसी का अंदाज़ा आप लगा सकते हैं—मैं चलने लगा तो उन्होंने मुझे आवाज़ दी और पास बुलाकर कहा : "मैं सिर्फ़ इतना कर सकता हूँ कि तुम्हें कुछ ज़रूरी चीज़ें ले दूँ ··· जाओ हाफ़िज़ जी को बुला लाओ।"

मैं हाफ़िज़ जी को उनके पास लेकर गया तो उन्होंने दो दूकानों का पता बताया और एक चिट पर कुछ लिखकर हाफ़िज़ जी को दिया : "मुंशी, मंटो को अपने साथ ले जाओ और जो कुछ इसे चाहिए, ले दो।"

मैं हाफ़िज़ जी के साथ हो गया—हम मोटर में एक बज़ाज़ की दूकान पर पहुँचे। वहाँ से मैंने दो साड़ियाँ लीं, सेठ आरडेशर के ज़ाती एकाऊंट में।

दूसरी दूकान जौहरी की थी—मेरी दरख़्वास्त पर वहाँ से एक मुलाज़िम मुख़्तलिफ़ अक़साम[43] के ज़ेवरात लिए मेरे साथ चल पड़ा, क्योंकि मैं चाहता था कि लड़की ख़ुद अपने लिए ज़ेवर पसंद करे।

मैं और जौहरी का आदमी, दोनों जाफ़र हाऊस पहुँचे—लड़की की वालदा को, जिनको मैं 'ख़ालाजान' कहता था, ज़ौहरी के आदमी ने कुछ ज़ेवरात दिखाए। उन्होंने हीरे की एक अँगूठी, मोतियों की बूटियाँ, एक पेंडेंट और दो तिलाई चूड़ियाँ पसंद कीं—मैंने ख़ालाजान पर बहुत ज़ोर दिया कि वह चंद और ज़ेवरात भी रख लें, मगर वह मुझ पर ज़्यादा बोझ डालना नहीं चाहते थे—काश! मैंने उनसे यह कह दिया होता : 'ख़ालाजान, ऐसा मौक़ा मुझे फिर कभी नहीं मिलेगा ··· मुझे कंपनी से डेढ़ हज़ार रूपया लेना है ··· जाते चोर की लँगोटी न छोड़िए ···' मगर अफ़सोस, मैं उनसे यह कह न सका और यूँ उस रक़म में से सिर्फ़ चार-पाँच सौ रुपए ही वुसूल हो पाए, क्योंकि कंपनी मेरे निकाह होने के फ़ौरन बाद मरहूम हो गई।

अब नज़ीर साहब ने मेरी माहवारी तनख़्वाह फिर चालीस रुपए कर दी, जिससे मुझे कुछ ढारस हुई कि शाम को बीयर का सिलसिला जारी रहेगा।

निकाह मेरे लिए, ज़ाहिर है, बहुत मुह्लिक[44] साबित हुआ—कंपनी से जो रुपया लेना था, वह अलग ग़र्क़ हुआ और घुटना अलग ज़ख़्मी हुआ।

घटना ज़ख्मी होने की दास्तान भी सुन लीजिए—बंबे में न कोई दोस्त था, न कोई अज़ीज । बहन थी, लेकिन वहाँ मेरा हुक्का-पानी बंद था । सारे काम मुझे ख़ुद ही करना थे—चंद आदमियों को इत्तिला देनी थी कि मेरा निकाह हो रहा है। छुआरे और इलायचीदाने ख़रीदना थे। बाल कटवाने थे और बस पर सवार होकर महाज़[45] पर जाना था।

मैं शाहजहाँ महल होटल के मालिक सैयद फ़ज़ल शाह को रस्म निकाह में शिरकत करने की दावत देकर जब लौट रहा था तो पथरीले फ़र्श पर मेरा पाँव फिसला और मैं इतने ज़ोर से गिरा कि बेहोश हो गया।

मैं ज़िंदगी में सिर्फ़ तीन मर्तबा बेहोश हुआ हूँ—सबसे पहले अपने निकाह पर सैयद फ़ज़ल शाह (मरहूम) को दावते-शिरकत देने पर। दूसरी मर्तबा अपनी वालदा की अचानक मौत पर। फिर अपने लड़के की वफ़ात[46] पर।

यह गिरकर बेहोश हो जाना भी अच्छा शगुन नहीं था—चोट इस क़दर शदीद थी कि जब मुझे होश आया और मैं सीढ़ियाँ उतरने लगा तो मजरूह[47] टाँग ने चलने से इनकार कर दिया। बडी मुश्किल से मार्केट तक पहुँचा। दर्द इस क़दर था कि हर क़दम पर बिलबिला उठता।

ख़ैर, छुआरे और इलायचीदाने लिए और माहिम पहुँचा। जाफ़र हाऊस की सीढ़ियाँ उफ़ताँ व ख़ीज़ाँ[48] तय कीं और निकाह की महफ़िल में जा पहुँचा—पंद्रह-बीस अश्ख़ास[49] मौजूद थे। मैं गावतकिए का सहारा लेकर बैठ गया। ज़ख़्मी टाँग दोहरी नहीं हो पा रही थी, इसलिए उसे अलग लेटे रहने दिया, गो यह बड़ी बदतमीज़ी थी—मगर जब अजीबो-ग़रीब नामवाले क़ाज़ी मरख़े ने मुझे दो ज़ानू बैठने के लिए कहा तो मैंने जी कड़ा करके और दर्द की सारी टीस पीकर उनका हुक्म माना।

इजाबो-क़ुबूल[50] की रस्म ख़त्म हुई तो मेरी जान-में-जान आई—टाँग सीधी की, दर्द के कई घूँट और पिए, मुबारकबादें वुसूल कीं और लँगड़ाता-लँगड़ाता अपने घर पहुँचा—मिट्टी के तेल का लैंप रोशन किया और खटमलों भरी खाट पर दराज़[51] होकर सोचने लगा कि आया सचमुच मेरा निकाह हो गया है—मैं आपसे सच अर्ज़ करता हूँ कि जेब में छुआरे और इलायचीदाने मौजूद होने और घुटने की चोट के बावुजूद मुझे यक़ीन नहीं आता था, मेरी ज़िंदगी का इतना बड़ा हादिसा वक़ूपज़ीर[52] हो चुका है।

मैं क़रीब-क़रीब शादीशुदा था। फ़र्क़ बस सिर्फ़ इतना था कि मेरी बीवी मेरी नौ रुपए माहवार की खोली में मौजूद नहीं थी। कानून की रू से मैं जब भी चाहता, उसे अपने साथ चलने को कह सकता था, लेकिन इतनी हिम्मत कहाँ थी। उसे खिलाता कहाँ से? सामनेवाले ईरानी होटल मे और वह भी उधार? और उसे रखता कहाँ? खोली में तो एक ज़ाइद[53] कुर्सी के लिए भी जगह नही थी।

ज़ाहिर है कि बीवियाँ नहाती भी हैं, मगर वहाँ तो ग़ुस्लख़ाना ही नहीं था। दो मंज़िला बिल्डिंग थी, जिसमें चालीस खोलियाँ थीं। उन सबके साकिनों के बाहम इस्तेमाल के लिए सिर्फ़ दो ग़ुस्लख़ाने थे, जिनके दरवाज़े, मालूम नहीं, कब के ग़ाइब हो चुके थे।

मुझे इस एहसास से बड़ी उलझन होती थी कि मेरा निकाह हो गया है और एक लड़की के साथ, आज नहीं तो कल, मुझे शौहर की हैसियत से ज़िंदगी गुज़ारना होगी। इससे क़ब्ल[54] मैंने ऐसा कोई तजुर्बा नहीं किया था। मुझे क़त्अन मालूम नहीं था कि बीवी क्या होती है और शौहर क्या होता है।

मेरी ज़िंदगी में दो-तीन लड़कियाँ ज़रूर आई थीं, मगर वह नौकरानियाँ थीं। उनसे मेरा तसादुम[55] ऐसे ही हुआ था, जैसे सड़क पर राह चलते दो अंधे एक-दूसरे से टकराएँ और चुटकियों में उस तसादुम से फ़रागत[56] हासिल करके अपनी-अपनी राह लें—मैं बड़ी ईमानदारी से महसूस कर रहा था कि मैं और सबकुछ तो बन सकता हूँ, लेकिन शौहर नहीं बन सकता—यह कोई मज़मूननवीसी और अफ़सानानिगारीवाला मामला नहीं था।

वक्त गुज़रता गया—मैंने कोशिश की और सरोज मूवीटोन नामी फ़िल्म कंपनी में सौ रुपए माहवार पर मुलाज़िम हो गया। यह कंपनी तो शायद मेरी आमद ही की मुंतजिर थी। अभी दो माह भी न गुज़रे होंगे कि इसका दीवाला पिट गया—अब तो मुझे यक़ीन हो गया कि मेरा निकाह मेरे लिए बहुत मनहूस साबित हुआ है—लेकिन स्वर्गवासी सरोज मूवीटोन के चलते पुर्ज़े मालिक सेठ नानू भाई देसाई ने कुछ ऐसी तिगड़म लड़ाई कि एक मालदार मारवाड़ी को फाँस लिया और सरोज मूवीटोन का नाम हटाकर हिंदुस्तान सिने टोन के नाम से एक नई फ़िल्म कंपनी खड़ी कर दी।

इस नई फ़िल्म कंपनी के लिए मैंने अपनी दूसरी फ़िल्मी कहानी 'कीचड़' के उनवान से लिखी, जो बाद में 'अपनी नगरिया' जैसे बेढंगे और बेतुके नाम से पेश हुई और कामयाब रही।

यह फ़िल्म अभी निस्फ़[57] भी तैयार नहीं हुई थी कि मारवाड़ी सेठ चाँदी के सट्टे में अपनी सारी दौलत गँवा बैठे, हत्ता के अपनी शानदार मोटर भी, जिसका रंग बेदाग़ सफ़ेद था—मैंने इस हादिसे का रिश्ता भी अपने निकाह से जोड़ा। मुझे यक़ीन था कि चंद दिनों ही में इस नई कंपनी का दीवाला जरूर पिटेगा, लेकिन नानू भाई देसाई ने किसी-न-किसी तरह इधर-उधर से क़र्ज़ लेकर फ़िल्म मुकम्मल कर ही ली।

मेरा निकाह हुए करीब-करीब दस माह हो चले थे कि मुझे एक निहायत शर्मनाक हादिसे से दो-चार होना पड़ा—मेरा एक बेवक़ूफ़ दोस्त आशिक़ था। अनपढ़, जाहिल, ख़ुशामदी। लेकिन रक़्स के फ़न का माहिर—मुझे ख़ुश करने के लिए एक शाम उसने मुझे बीयर पिलाई, थोड़ी-सी ख़ुद भी पी और चहकने लगा। चहकते-चहकते वह मुझे अपने एक दोस्त की मोटर में बिठाकर एक लड़की के पास ले गया, जो बक़ौल उसके उसकी शागिर्द थी।

जब उसने दरवाज़े पर दस्तक दी तो अंदर से किसी निसवानी[58] आवाज़ ने पूछा : "कौन है ?"

आशिक़ ने कहा : "आशिक़।"

अंदर से एक मोटी गाली बाहर निकली : "आशिक़ की   "

आशिक़ को जो ग़ुस्सा आया तो वह दरवाजा तोड़कर अंदर दाख़िल हो गया।

थोड़ी देर बाद जब मैं अंदर गया तो मैंने देखा, वह एक नौकर को बुरी तरह पीट रहा है।

क़िस्सा मुख़्तसर करता हूँ—दूसरे रोज़ आशिक़ गिरफ़्तार हुआ तो उसने पुलिसवालों से कह दिया कि उसके साथ एक और आदमी भी था—चुनांचे मुझे भी गिरफ़्तार कर लिया गया।

माहिम में मेरे ससुराल को फ़ौरन मेरी गिरफ़्तारी का पता चल गया—मैं बहुत परेशान हुआ कि अब किस मुँह से उन लोगों के पास जाऊँगा, मेरी मन्कूहा[59] ने मेरे मुताल्लिक़ यक़ीनन बहुत बुरी राय क़ायम की होगीं, वह ज़रूर रोती होगी कि किस बदमाश से उसका पल्ला बाँध दिया गया है जिससे छुटकारा हासिल करना भी मुमकिन नहीं।

मैंने बहुत देर तक बड़ी ईमानदारी से ख़ुद को अपनी मन्कूहा की पोज़ीशन में रखकर ग़ौर किया और इस नतीजे पर पहुँचा कि मुझे ख़ालाजान से साफ़-साफ़ कह देना चाहिए : 'अगर इस वाक़े के बाद, जो वाक़ई शर्मनाक है, आप मुझे अपनी बेटी देना मुनासिब ख़याल न करें तो मैं तलाक़ देने के लिए तैयार हूँ ।'

जब मैंने उनसे अपने इन ख़यालात का इज़हार किया तो उन्होंने मुझसे कहा : "तुम पागल हो, जो ऐसी बातें सोचते हो हमें तुम्हारी बेगुनाही का यक़ीन है।"

मेरे सीने का बोझ तो हल्का हो गया, मगर मेरे इस वहम में और इज़ाफ़ा हो गया कि निकाह मेरे लिए नहूसत-ही-नहूसत[60] लेकर आया है—कंपनी की हालत बहुत पतली हो गई थी। अब तनख़्वाहों के बदले एडवांस मिलना शुरू हो गया था! मेरी कहानी का हक्कुलख़िदमत[61] वाजिबुलअदा[62] था, मगर कोई सूरत नज़र नहीं आती थी कि यह कभी मिल भी पाएगा।

उधर वालदा ने मेरे ससुराल के इसरार पर रुख़्सती की तारीख़ मुक़र्रर कर दी थी—एक बरस के करीब हो गया था निकाह हुए। वह लोग इंतजार करते-करते तंग आ गए थे।

मुझे कोई जल्दी नहीं थी, बल्कि यूँ कहिए कि मेरी दिली ख़्वाहिश थी कि रुख़्सती की नौबत ही न आए—मैं बहुत खाइफ़[63] था कि मुझसे घर-बार न चलाया जा सकेगा और एक शरीफ़ लड़की की सारी उम्र बग़ैर किसी क़ुसूर के अज़ाब[64] में कटेगी—मगर दिन मुक़र्रर हो चुका था, जो मेरे लिए रोज़े-क़यामत[65] था।

हालाँकि हफ़्तावार 'मुसव्विर' की हालत बहुत अच्छी हो गई थी और अब उसका दफ़्तर भी बेहतर जगह पर मुंतक़िल हो चुका था, टेलीफ़ोन भी मौजूद था और मिस्टर नज़ीर के पास एक छोटी-सी कार भी थी, जिसमें वह इधर-उधर घूमकर इश्तिहार फ़राहम करते थे, मगर मेरी तनख़्वाह तो वही चालीस रुपए माहवार थी, हाँ अब मेरी रिहाइश मिस्टर नज़ीर के साथ दफ़्तर ही में थी।

मैं हर इतवार माहिम जाता, कभी-कभी दरवाज़े की दरज़ों में से अपनी बीवी की एक-आध झलक देख लेता और रात का खाना खाकर जब वापस आता तो सोते वक़्त अपने आप पर लानत भेजता कि मैंने क्यो शादी का खेल खेला, जबकि मुझे इस क़दर फिसड्डी निकलना था। मगर अब क्या हो सकता था। न पाए रफ़्तन न जाए मांदन[66] वाला मामला था।

रुख़्सती की तारीख़ में जब सिर्फ़ दस रोज़ बाक़ी रह गए तो मैं चौंका—एकदम उठा और दफ़्तर के पास ही, यानी उसी बिल्डिंग में, एक फ़्लैट पैंतीस रुपए माहवार पर ले लिया। चालीस मुझे मिस्टर नज़ीर से मिलते थे। मैंने उनसे कह दिया कि वह हर माह मेरा किराया अदा कर दिया करें—अब गोया मुझे पाँच रुपए माहवार पर अपना और अपनी बीवी का पेट पालना था।

मैंने फ़्लैट को अच्छी तरह साफ़ किया। उसका चोबी[67] फ़र्श और दरवाज़े, जो बेहद ग़लीज़ थे, सोडा कास्टिक से साफ़ किए और ताला लगाकर सीने में एक मोहूम[68] उम्मीद लिए नानू भाई देसाई की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और अपनी कहानी के मुआवज़े[69] और तनख़्वाहों के बक़ाया का तक़ाज़ा किया।

सेठ साहब ने साफ़ जवाब दे दिया कि वह मुझे एक डेढ़या भी नहीं दे सकते।

मैंने जब टका-सा जवाब सुना तो भिन्ना गया। ग़ुस्से में आकर मैंने सेठ को गालियाँ तक दे दीं—नतीजा यह हुआ कि मुझे बाहर निकाल दिया गया।

मैंने फ़ौरन 'फ़िल्म इंडिया' के एडिटर बाबूराव पटेल को टेलीफ़ोन किया। सारा माजरा सुनाकर मैंने उनसे कहा : "अगर नानू भाई ने मेरा हिसाब न चुकाया तो भूख-हड़ताल कर दूँगा मेरा यह फ़ैसला अटल है।"

बाबूराव, जो मेरी हट से वाक़िफ़ था, बहुत मुज़्तरिब हुआ—उसने फ़ौरन नानू भाई को टेलीफ़ोन किया और कहा कि अगर मंटो ने भूख-हड़ताल शुरू कर दी तो सारा प्रेस उसका साथ देगा। इसलिए उसे चाहिए कि वह फ़ौरन उसके साथ समझौता कर ले।

टेलीफ़ोन पर तो कोई समझौता न हुआ, लेकिन जब बाबूराव कंपनी के दफ़्तर में नानू भाई से मिला तो मुझे बुलाया गया—नानू भाई ने मुझसे माफ़ी माँगी और मैंने उससे—आख़िर फ़ैसला यह हुआ कि मैं आधी रक़म पर राज़ी हो जाऊँ, इसलिए कि कंपनी की हालत नाज़ुक है।

मुझे नौ सौ रुपए का एक पोस्ट डेटेड बेयरर चैक दिया गया—चंद रोज़ गुज़र जाने के बाद जब मैंने नानू भाई देसाई को टेलीफ़ोन किया कि तारीख़ आ गई है और मैं चैक कैश कराने जा रहा हूँ तो उसने कहा : "पहले मुझसे मिल लो।"

मैं उससे मिला तो उसने बड़े दुख भरे लहजे में कहा : "बैंक में रुपया नहीं है क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम पाँच सौ रुपए नक़द पर राज़ी हो जाओ"

मैं फ़ौरन राज़ी हो गया, हालाँकि मेरी हक़ हलाल की कमाई के अट्ठारह सौ रुपए पहले नौ सौ हुए और फिर पाँच सौ—मैं मजबूर था कि रुख़्सती में अब सिर्फ़ चार रोज़ बाक़ी थे।

मैंने कंपनी की मोटर ली। उसमें सिर्फ़ पैट्रोल पंप तक जाने के लिए पैट्रोल था। मैंने अपनी गिरह से पैट्रोल डलवाया और ड्राइवर से कहा कि वह सीधा मार्केट चले।

पाँच सौ रुपए जेब में थे—मैंने उनसे अपनी दुलहन के लिए साड़ियाँ वग़ैरह ख़रीदीं—जब घर पहुँचा तो जेब क़रीब-क़रीब ख़ाली थी। और घर तो बिलकुल ख़ाली था। था। टूटी हुई कुर्सी तक न थी।

मेरे एक बुज़ुर्ग थे, हकीम मुहम्मद अबू तालिब अश्क अज़ीमाबादी। बड़े

मरंजांमरंज[70] आदमी थे—मैंने जब उनसे ज़िक्र किया कि दुलहन ला रहा हूँ, मगर घर ख़ाली है तो वह मुझे फ़र्नीचर की एक दूकान पर ले गए—उस दूकान का मालिक उनको अच्छी तरह जानता था, चुनांचे मुझे आसान क़िस्तों पर कुछ सामान मिल गया, मिसाल के तौर पर लोहे के स्प्रिंगोंवाली दो चारपाइयाँ, बरतन वग़ैरह रखने की एक अलमारी, एक लिखनेवाला मेज़, एक कुर्सी और एक सिंगार मेज़। यह सिंगार मेज़ सैकिंड हैंड था।

जब मैंने यह सारा सामान फ़्लैट में सजाने की कोशिश की तो मुझे बड़ी मायूसी हुई—दो जहाज़ी कमरे थे और उनमें यह फ़र्नीचर दिखाई ही नहीं देता था। चुनांचे मैंने दो मूढे ख़रीदे और एक कोने में जमा दिए। वह भी दूसरे फ़र्नीचर की तरह गुम हो गए। इधर-उधर से मुझे जो चीज़ भी मिली, मैंने कहीं-न-कहीं टिका दी—हर चीज़ ठिकाने लगाने के बाद कमरे पर बार-बार नज़र डालता और अपने आपको फ़रेब देने की कोशिश करता कि अब फ़्लैट भरा-भरा नज़र आता है।

रोज़े-महशर आख़िर आन पहुँचा—मैं सुबह से 'मुसव्विर' के दफ़्तर में बैठा हुआ था—वालदा अब मेरे पास आ गई थीं। उनसे मैं यह कहकर आया था कि बरात का बंदोबस्त करने जा रहा हूँ।

मिस्टर नज़ीर ने मुख़्तलिफ़ लोगों के नाम रुक्क़े भेज दिए थे, जिनमें से अक्सर फ़िल्म लाइन में वाबस्ता[71] थे। मेरी बरात गोया एक फिल्मी बरात थी। मियाँ कारदार, डायरेक्टर गुंजाल, उस ज़माने के मशहूर एक्टर ई बिलीमोया और डी बिलीमोर्या, नूर मुहम्मद चार्ली और मिर्जा अशरफ़, बाबूराव पटेल और पहली रंगीन फ़िल्म की हीरोइन पदमा देवी, यह सब शरीक थे।

बाबूराव पटेल को जब मालूम हुआ था कि 'मंटो के घर में सिर्फ़ उसकी माँ है, जिसे अकेली मेहमानों की ख़ातिर-तवाज़े[72] करनी पड़ेगी' तो उसने पदमा देवी को हमारे हाँ भेज दिया था कि वह मेरी वालदा का हाथ बँटाए।

मैंने किराए पर कुर्सियाँ मँगवा ली थीं और पासवाले ईरानी होटल से विमटो की बोतलें भी कि उन पर जो ख़र्च उठता, वह मैं बाद में इत्मीनान से अदा कर सकता था, इसलिए मुझे उस तरफ़ से कोई तरद्दुद नाहक़[73] नहीं था—मैं तो इस तकलीफ़ और सोच में ग़र्क़ था कि घरबार कैसे चलेगा।

मैं दफ्तर में बैठा हुआ था कि माहिम से मेरी बहन का टेलीफ़ोन आया—उसने मुझसे पूछा : "कहो, क्या हाल है?"

पहले मैंने जवाब में आगा हश्र का मशहूर फ़िक़रा दोहराया : "शेर लोहे के जाल में है" फिर मैंने कहा : "अजीब मख़मसे[74] में गिरफ़्तार हूँ। बरात की तैयारियाँ कर रहा हूँ, लेकिन जेब में सिर्फ़ साढ़े चार आने हैं चार आने में सिगरेट की डिबिया आ जाएगी और दो पैसे में माचिस चलो क़िस्सा पाक "

वह बेचारी मेरी मदद करने से मजबूर थी। उसके शौहर ने तो उसको इतनी इजाज़त भी न दी थी कि वह रुख़्सती की रस्म में शरीक होती और अपने भाई को दूल्हा बना हुआ देखती।

उसने मुझसे कहा : "सआदत, मैं तुम्हारे वारी जाऊं, ज़रा-की-ज़रा अपनी मोटर मेरे घर के सामने रोकना ...मैं तुम्हें देखना चाहती हूँ।"

मैंने और ज़्यादा गुफ़्तगू न की, क्योंकि वह बहुत ज़्यादा जज़्बाती हो रही थी।

टेलीफ़ोन का सिलसिला मुनक़ता[75] करने के बाद मैं उठा—पड़ोस के सैलून से बाल कटवाए, हमाम में ग़ुस्ल किया। यह सब उधार।

शाम तक मैंने सिगरेट की सारी डिबिया फूँक डाली। अब मेरी जेब में सिर्फ़ एक माचिस थी, वह भी आधी।

फिर मैंने कपड़े तब्दील किए—टाई बाँधी और वह सूट पहना, जो मुझे ससुराल से मिला था—आईने में जब मैंने अपनी शक्ल देखी तो एक कार्टून-सा नज़र आया—मैं ख़ूब हँसा।

बत्तियाँ जलने से पहले सारे बराती जमा हो गए—पदमा देवी और मेरी वालदा ने सबकी ख़ातिर-तवाज़े की—इसके बाद वह क़ाफ़िला, जो दस-पंद्रह मोटरों पर मुश्तमिल[76] था, माहिम की तरफ़ रवाना हो गया।

मैं नानू भाई देसाई की मोटर में था, बग़ैर सेहरे के, सिर से नंगा—मेरे बालों की लंबाई माक़ूल थी।

जब हम जाफ़र हाऊस के क़रीब पहुँचे तो मैंने ड्राइवर से कहा कि वह मोटर ज़रा आगे ले जाए।

फ़ुटपाथ पर मेरी बहन खड़ी थी। उसकी आँखों में आँसू तैर रहे थे। उसने जब मेरे सिर पर मुहब्बत का हाथ फेरा, दुआएँ और मुबारकबाद दी तो मैं जल्दी से वापिस मोटर में बैठ गया और मैंने ड्राइवर से कहा कि वह मोटर बैक कर ले।

ख़ालाजान ने ऊपर खुले टैरेस पर दावत का इंतज़ाम किया था, जो बहुत अच्छा था—रफ़ीक़ ग़ज़नवी, डायरेक्टर नंदा और आग़ा ख़लिश काश्मीरी के दरमियान बड़ी पुरलुत्फ़ नोकझोंक होती रही—सबने डटकर खाया, क्योंकि खाना बहुत उम्दा और लज़ीज़ था, कश्मीरियों की रिवायत के ऐन मुताबिक़।

खाना खाने के बाद ख़ुश गप्पियाँ शुरू हो गईं—आग़ा ख़लिश साहब ने एक पुर मज़ाह[77] नज़्म पढ़ी, जो उन्होंने फ़िलबदीह[78] की थी।

यह सिलसिला ख़त्म हुआ तो मुझे नीचे बुलाया गया और दुलहन को मेरे सुपुर्द कर दिया गया।

यह सब मुझे एक ख़्वाब-सा मालूम होता है—दिमाग़ में जाने कितने ख़यालात तले-ऊपर आ रहे थे। दुलहन मेरे साथ थी—मैंने उसका हाथ पकड़ा और लरज़ाँ आवाज़ में कहा : "चलो भई !"

हम नीचे उतरे। मिसेज़ बिलीमोर्या ने अपनी कार पेश की। वालदा मेरे साथ थीं। पहले उन्होंने दुलहन को बिठाया। उसके बाद आप बैठीं, फिर मुझे अंदर आने को कहा—वह मेरे और दुलहन के दरमियान थीं और उनके घुटनों पर मख़मली जुज़दान में लिपटा हुआ क़ुरआन शरीफ़ था—मेरी और दुलहन की गर्दन हारों से लदी-फंदी थी। मोटर स्टार्ट हुई तो वालदा ने ज़ेरे-लब कोई आयत पढ़ना शुरू कर दी—मैं अब किसी क़दर सँभल चुका था।

मेरा जी चाह रहा था कि दुलहन से ज़रा छेड़खानी करूँ, मगर वालदा बीच में बैठी थीं और फिर कलामे-पाक पढ़ रही थीं। मेरी शरीर ख़्वाहिशें वहीं-की-वहीं सर्द हो गईं।

मुझे मालूम नहीं, रास्ता कैसे और कितने अर्से में कटा। बस एकदम घर आ गया—वह बिल्डिंग जो बहुत पुरानी वज़े की थी, जिसकी साख़्त में लकड़ी ज़्यादा और ईंटें कम इस्तेमाल की गई थीं, जिसके मुताल्लिक़ मशहूर था कि वह किसी ज़माने में बंबई का बड़ा आलीशान होटल हुआ करती थी और जिसे हिज़ हाइनेस सर आग़ा ख़ाँ ने एक दोस्त से शर्त में जीता था।

वालदा दुलहन के साथ ऊपर फ़्लैट में चली गई। मैंने अपने दोस्तों का शुक्रिया अदा किया—इतने में मिर्ज़ा मुशर्रफ़ उस ट्रक में आन पहुँचा, जिसमें दुलहन का जहेज़ था : खाने का मेज़, कुर्सियाँ, स्प्रिंगवाला पलंग, तिपाइयाँ, सोफ़ा सेट और संदूक़ वग़ैरह।

यह असबाब उतरवाया गया तो मिर्ज़ा मुशर्रफ़ का ट्रकवाले से किराए पर झगड़ा हो गया, जो काफी देर तक जारी रहा। मिर्ज़ा मुशर्रफ़ ने अपने ममख़रेपन का जी भर के मुजाहिरा किया—आख़िर जब यह झगडा निपटा और सारा सामान फ़्लैट में पहुँच गया और आर्ज़ी तौर पर इधर-उधर टिका दिया गया तो मिर्ज़ा मुशर्रफ़ ने जाते हुए मेरे कान में कहा : "मुन्ने, देखो हमारी नाक न कट जाए कहीं !"

मैं थककर चूर-चूर था, हलक़ सूख के लकडी हो रहा था, इसलिए ममख़रे मिर्ज़ा मुशर्रफ़ के उस मजाक़ का कोई जवाब न दे सका।

दूसरे रोज मैंने महसूस किया कि मेरे वुजूद का एक चौथाई हिस्सा शौहर में तब्दील हो चुका है। इस एहसास से मुझे बहुत इत्मीनान हासिल हुआ।

मुझे बाहर बालकनी में एक रस्सी तनी नजर आने लगी, जिस पर पोतड़े और कलोट टँगे हुए थे।

---

1 समय से पूर्व, 2 ज्यों-का-त्यों, 3 अच्छाई के दृष्टिकोण से, 4 पृष्ठभूमि, 5 विवरण, 6. रोगग्रस्त; 7. निवास, 8 मृत, 9. वंचित, 10 बेचैन, 11 संपादन, 12 संवाद-लेखक, 13 प्रगति, 14 पतन की ओर, 15. वाचाल, 16 लेखक, 17. मित्र-मंडली; 18 खराब, 19. अनुबंध, 20 ठहरी हुई, 21 तनावपूर्ण; 22. लागू, 23 लाड-प्यार; 24 तेज, 25 पीड़ा, 26 बीमारी, 27 तथ्यों, 28. प्रतीक्षक, 29. स्वागत, 30. अपनत्व, 31 काम, 32 वर्ग पहेली, 33. अध्ययन, 34 गुप्त, 35 आमंत्रित, 36 वायदे के अनुसार, 37. अल्लाह की पनाह, 38 तल्लीन; 39. जो होगा देखा जाएगा, 40. खर्च; 41. चिंता; 42. दानी; 43 प्रकार; 44. प्राणघातक, 45 मोर्चा; 46. मृत्यु, 47. घायल, 48 जैसे-तैसे; 49. व्यक्ति, 50 निकाह के समय वर-वधु द्वारा एक-दूसरे से वचनबद्ध होना; 51 लंबा; 52. घटित; 53. अधिक; 54. पहले, 55. परस्पर टकराव, 56. निबटना; 57. आधा, 58. जनाना; 59. धर्मपत्नी; 60 दुर्भाग्य-ही-दुर्भाग्य; 61. पारिश्रमिक, 62 देय, 63. भयभीत; 64. यमलोक में दिया जानेवाला पापों का दंड; 65. क़यामत का दिन; 66. मजबूरी जाहिर करने के लिए किसी तरह बात नहीं बनती, 67. लकड़ी का; 68. क्षीण; 69. मूल्य; 70. ऐसा व्यक्ति जो न तो दूसरो को दुखी करे और न स्वयं हो, 71. संबोधित; 72. आवभगत; 73. ग्रस्त होना, ; 74. दुविधा, 75 विच्छेद; 76. आधारित; 77. व्यंग्यात्मक, 78. तुरंत तैयार करना।

बग़ैर उनवान के

'मंटो के ख़ुतूत'[1] में से चंद जुमले 'बग़ैर उनवान के' के बारे में :

सितंबर, 1940 :	मैं आजकल एक अफ़साना बउनवान 'उनवान के बग़ैर'[2] लिख रहा हूँ। 'कारवाँ'[3] में पढ़िएगा।
सितंबर, 1940 :	आप यह लिखिए कि 'बगैर उनवान के' कैसा है ? इसकी दूसरी किस्त गौर से देखिएगा। तीसरी क़िस्त अभी नहीं लिखी। कल लिखना शुरू करूँगा। मेरा ख़याल है कि यह आठ-दस क़िस्तों में छपेगा।
सितंबर, 1940 :	आपने 'बग़ैर उनवान के' के मुताल्लिक़ कुछ नहीं लिखा।
अक्तूबर, 1940 :	क्या 'बग़ैर उनवान के' आप बाक़ाइदा पढ़ रहे हैं ?
अक्तूबर, 1940 :	'बग़ैर उनवान के' में आपने उस फ़िक़रे की दाद नहीं दी; बहुत ज़ुल्म किया : 'उसके नन्हे से सीने पर छातियों का उभार ऐसे था जैसे किसी मद्धम राग में दो सुर ग़ैर इरादी तौर पर ऊँचे हो गए हों।'
अक्तूबर, 1940 :	मुझे ख़ुशी हुई कि आपने 'बग़ैर उनवान के' पसंद किया। यह सिलसिला[4] ख़ुदा मालूम कब तक जारी रहेगा। इस हफ़्ते की क़िस्त क़ाबिले-ग़ौर है, कई लिहाज़ से।

1. अहमद नदीम क़ासमी के नाम।
2. मंटो ने 'उनवान के बगैर' को बाद मे 'बगैर उनवान के' कर दिया।
3. बंबई का एक हफ़्तरोज़ा—मंटो 'कारवाँ' में यकुम अगस्त, 1940 को साठ रुपए माहवार पर शरीक हुआ। मंटो को जुलाई के आखिर में, चार बरस की मुलाज़मत के बाद, फ़िल्मी हफ़्तरोजा 'मुसव्विर' से बिला वजह अलग कर दिया गया था—'कारवाँ' की इशाअत महदूद (सीमित) थी और मंटो नहीं चाहता था कि उसके हर अम्र 'कारवाँ' के लिए अपनी ग़ैर मत्बूआ (छपी हुई) तख़लीक़ात भेजें—उसने सितंबर के दूसरे हफ़्ते मे 'कारवाँ' का पेट भरने के लिए, 'बग़ैर उनवान के' लिखना शुरू कर दिया।
4. नवंबर, 1940 के ख़ुतूत में 'बग़ैर उनवान के' का कोई ज़िक्र नहीं है। दिसंबर, 1940 में मंटो बहुत मसरूफ़ रहा और बंबई और लाहौर के गिर्द चक्कर काटता रहा।
जनवरी, 1941 में वह आल इंडिया रेडियो, दिल्ली में नीम सरकारी मुलाज़िम हो गया।
यूँ 'बग़ैर उनवान के' नामुकम्मल रह गया—1940 में इसके सिर्फ़ आठ बाब 'कारवाँ' में छपे।
जब 1954 में यह नामुकम्मल नाविल किताबी सूरत में छपा तो मंटो ने इसका इंतिसाब 'पंडित नेहरू के नाम' किया।



आए दिन सईद को ज़ुकाम हो जाता था—एक दिन जब ज़ुकाम ने ताज़ा हमला किया तो उसने सोचा : 'मुझे इश्क़ क्यों नहीं होता !'

सईद के जितने दोस्त थे, सबके-सब इश्क़ कर चुके थे; उनमें से कुछ तो अभी तक इश्क़ में गिरफ़्तार थे—उसकी अपनी हालत यह थी कि वह जिस क़दर मुहब्बत को अपने पास देखना चाहता, उसी क़दर उसको अपने से दूर पाता।

अजीब बात है कि उसको अभी तक इश्क़ नहीं हुआ था—जब कभी वह सोचता कि वाक़ई उसका दिल इश्क़ो-मुहब्बत से ख़ाली है तो उसे शर्मिंदगी-सी महसूस होती और उसके विक़ार[2] को ठेस पहुँचती।

बीस बरस का अर्सा, जिसमें कई बरस उसके बचपन की बेशऊरी की धुंध में लिपटे हुए थे, कभी-कभी उसके सामने लाश की मानिंद अकड़ जाता और वह सोचता कि उसका वुजूद अब तक बिलकुल बेकार रहा है··· मुहब्बत के बग़ैर आदमी क्योंकर मुकम्मल हो सकता है।

सईद को इस बात का एहसास था कि उसका दिल ख़ूबसूरत है और इस क़ाबिल है कि मुहब्बत उसके दिल में रहे : 'वह मरमरीं महल किस काम का, जिसमें रहनेवाला कोई भी न हो··'

उसका दिल मुहब्बत करने का अहल था—उसे इस ख़याल से बहुत दुख होता कि उसकी धड़कनें बिलकुल फ़िज़ूल ज़ाया हो रही हैं।

उसने लोगों से सुन रखा था कि ज़िंदगी में एक बार मुहब्बत ज़रूर आती है—ख़ुद उसे भी इस बात का हल्का-सा यक़ीन था कि मौत की तरह मुहब्बत भी एक बार ज़रूर आती है : 'मगर कब··· ? काश ! मेरी किताबे-हयात मेरी अपनी जेब में होती जिसे खोलकर मैं फ़ौरन जवाब पा लेता··· मगर किताबे-हयात तो वाक़िआत ख़ुद लिखते हैं··· जब मुहब्बत आएगी, ख़ुद-ब-ख़ुद किताबे-हयात में नए वर्क़ों का इज़ाफ़ा हो जाएगा···'

वह उन नए वर्क़ों के इज़ाफ़े के लिए बहुत बेताब था।

वह चुपचाप उठकर रेडियो खोलकर गीत सुन सकता था, जब चाहे खाना खा सकता था, अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ व्हिस्की भी पी सकता था जिसकी उसके मज़हब में मुमानअत[3] थी—वह अगर चाहता तो उस्तरे से अपने गाल भी ज़ख़्मी कर लेता, मगर वह हस्बे-मंशा किसी से मुहब्बत नहीं कर सकता था।

एक बार उसने बाज़ार में एक नौजवान लड़की देखी—लड़की की छातियाँ देखकर उसे ऐसा मालूम हुआ कि दो बड़े-बड़े शलजम ढीले कुरते में छुपे हुए हैं—शलजम उसे बहुत पसंद थे। सर्दियों के मौसम में कोठे पर जब उसकी माँ लाल-लाल शलजम काटकर सुखाने के लिए हार पिरोया करती थी तो वह कई कच्चे शलजम खा जाया करता था—उस लड़की को देखकर उसकी ज़बान पर वही ज़ाइक़ा पैदा हुआ जो शलजम का गूदा चबाते वक़्त होता है, मगर उसके दिल में उस लड़की से इश्क़ करने का ख़याल पैदा न हुआ। वह उसकी चाल को ग़ौर से देखता रहा जिसमें टेढ़ापन था, वैसा ही टेढ़ापन जैसा कि बरसात के मौसम में चारपाई के पायों में कान के बायस पैदा हो जाया करता है—वह उस लड़की के इश्क़ में ख़ुद को गिरफ़्तार न कर सका।

इश्क़ करने के इरादे से सईद अक्सर औक़ात अपनी गली के नुक्कड़ पर दरियों की दूकान पर जा बैठता था—वह दूकान उसके एक दोस्त की थी जो हाई स्कूल की एक लड़की से मुहब्बत कर रहा था। उस लड़की से उसके दोस्त लतीफ़ की मुहब्बत लुधियाने की एक दरी के ज़रिए से पैदा हुई थी। दरी के दाम, लड़की के बयान के बमूजिब[4], उसके दुपट्टे के पल्लू मे खुलकर कहीं गिर पड़े थे, और लतीफ़ चूँकि लड़की के घर के पास ही रहता था, इसलिए उसने अपने चचा की झिड़कियों और गालियों से बचने के लिए लतीफ़ से दरी उधार माँगी थी और दोनों में मुहब्बत हो गई थी।

सईद की नज़रों के सामने से काफ़ी तादाद में औरतें गुज़रा करती थीं कि शाम को बाज़ार में आमदो-रफ़्त ज़्यादा हो जाती थी और फिर दरबार साहब जाने के लिए रास्ता भी वही था, मगर जाने क्यों उसे ऐसा महसूस होता कि जितने लोग बाज़ार में चलते-फिरते हैं, सबके-सब शफ़्फ़ाफ़[5] हैं—उसकी निगाहें किसी औरत, किसी मर्द पर रुकती नहीं थीं। लोगों की भीड़भाड़ को उसकी आँखें एक ऐसी मुतहर्रिक[6] झिल्ली समझती थीं जिसमें से वह आसानी के साथ, जब चाहतीं, देख सकती थीं।

उसकी आँखें किधर देखती थीं, यह न उसकी आँखों को मालूम था न ख़ुद उसे—उसकी निगाहें दूर, बहुत दूर सामने चूने और गारे के बने हुए पुख़्ता मकानों को छेदती हुई निकल जातीं, न जाने कहाँ, और फिर न जाने कहाँ-कहाँ घूमकर लौट आतीं, बिलकुल उन बच्चों के मानिंद जो अपनी माँ की छाती पर औंधे मुँह लेटे, उसके नाक और कान और बालों से खेल-खालकर अपने ही हाथों को ताज्जुब आमेज़ दिलचस्पी से देखते-देखते नींद के नर्म-नर्म गालों में धँस जाते हैं।

लतीफ़ की दूकान पर बहुत कम गाहक आते थे, इसलिए वह सईद की मौजूदगी को ग़नीमत जानते हुए उससे मुख़्तलिफ़ क़िस्म की बातें किया करता था—सईद सामने लटकी हुई दरी की तरफ़ देखता रहता जिसमें रंग-बिरंग के बेशुमार धागों के उलझाव ने एक डिज़ाइन पैदा कर दिया था—लतीफ़ के होंठ हिलते रहते और सईद यह सोचता रहता कि उसके दिमाग़ का नक़्शा दरी के डिज़ाइन से किस क़दर मिलता-जुलता है; बाज़ औक़ात तो वह यह ख़याल करता कि उसके अपने ख़यालात ही बाहर निकलकर उस दरी पर रेंग रहे हैं।

उस दरी और सईद की दिमाग़ी हालत में बला की मुशाबहत[7] थी। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना

था कि रंग-बिरंग के धागों के उलझाव ने उसके सामने दरी की सूरत इख़्तियार कर ली थी और उसके अपने रंग-बिरंगे ख़यालातो-महसूसात के उलझाव ने ऐसी सूरत इख़्तियार नहीं की थी कि वह उसको दरी की मानिंद अपने सामने बिछाकर या लटकाकर देख सकता।

लतीफ़ बेहद ख़ाम[8] था। गुफ़्तुगू करने का सलीक़ा तक उसे नहीं आता था—किसी शै में ख़ूबसूरती तलाश करने के लिए अगर उससे कहा जाता तो वह फ़र्ते-हैरत[9] से बिलकुल बेवक़ूफ़ दिखाई देता—उसके अंदर वह बात ही नहीं थी जो एक आर्टिस्ट में होती है, लेकिन इसके बावुजूद एक लड़की उससे मुहब्बत करती थी।

वह लड़की लतीफ़ को ख़त भी लिखती थी जिनको वह यूँ पढ़ता था, जैसे किसी तीसरे दर्जे के अख़बार में जंग की ख़बरें पढ़ रहा हो—उन ख़ुतूत में वह कँपकँपाहट उसे नज़र नहीं आती थी जो हर लफ़्ज़ में गुंधी होती है। वह लफ़्ज़ों की नफ़्सियाती अहमियत से बिलकुल बेख़बर था, फिर भी एक लड़की उससे मुहब्बत करती थी और उसे ख़त भी लिखती थी।

अगर लतीफ़ से यह कहा जाता, देखो लतीफ़, यह पढ़ो, लिखती है :

'मेरी फूफी ने कल मुझसे कहा : ''क्या हुआ है तेरी भूख को तूने खाना-पीना क्यों छोड़ दिया है '' जब मैंने यह सुना, तब मुझे मालूम हुआ कि सचमुच मैं आज़कल बहुत कम खाती हूँ देखो, मेरे लिए कल शहाबुद्दीन की दूकान से खीर लेते आना जितनी लाओगे, सब चट कर जाऊँगी अगली-पिछली कसर निकाल दूँगी '

कुछ मालूम हुआ लतीफ़, इन सुतूरों में क्या है—तुम शहाबुद्दीन की दूकान से खीर का एक बहुत बड़ा दोना लेकर जाओगे लोगों की नज़रों से बच-बचाकर ड्योढ़ी में जब तुम उसे यह तोहफ़ा दोगे तो इस ख़याल से ख़ुश न होना कि वह सारी खीर खा जाएगी वह कभी नहीं खाएगी पेट भरकर वह कुछ खा ही नहीं सकती जब दिमाग़ में ख़यालात का हुजूम जमा हो जाए तो पेट ख़ुद-ब-ख़ुद भर जाया करता है—लेकिन यह फ़लसफ़ा लतीफ़ की समझ में कैसे आता। वह समझने-समझाने से बिलकुल कोरा था। जहाँ तक शहाबुद्दीन की दूकान से चार आने की खीर ख़रीदने का ताल्लुक़ था, लतीफ़ की समझ में आता था; लेकिन खीर की फ़रमाइश क्यों की गई थी और उस ज़रिए से इश्तिहा[10] पैदा करने का ख़याल किन हालात के तहत उसकी महबूबा के दिमाग़ में पैदा हुआ, इससे लतीफ़ को कोई सरोकार नहीं था। वह इस क़ाबिल ही नहीं था कि इन बारीकियों को समझ सकता। वह मोटी अक़्ल का आदमी था जो लोहे के ज़ंग आलूद गज़ से निहायत भौंडे तरीक़े से दरियाँ मापता था और शायद इसी तरह के गज़ से अपने एहसासात की पैमाइश भी करता था—लेकिन यह हक़ीक़त है कि एक लड़की उसकी मुहब्बत में गिरफ़्तार थी जो हर जहत[11] से उसके मुक़ाबले में अरफ़ा[12] व आला थी। लतीफ़ और उस लड़की में उतना ही फ़र्क़ था, जितना लुधियाने की दरी और कश्मीर के क़ालीन में होता है।

सईद की समझ में नहीं आता था कि मुहब्बत कैसे पैदा होती है, बल्कि यूँ कहिए, पैदा हो सकती है—वह जिस वक़्त चाहता, ख़ुद पर रंजो-अलम तारी कर सकता था, लेकिन मुहब्बत—मुहब्बत, जिसके लिए वह इस क़दर बेताब था—कैसे पैदा होती है, कैसे पैदा हो

सकती है।

उसका एक और दोस्त, जो इस क़दर काहिल था कि मूँगफली और चने सिर्फ़ उसी सूरत में खा सकता था अगर उनके छिलके उतरे हुए हों, अपनी गली की एक हसीन लड़की से मुहब्बत कर रहा था—अगर उसके दोस्त से कहा जाता : 'ज़रा अपनी महबूबा के हुस्न की तारीफ़ करो' तो वह यक़ीनन ख़ालीउज़्ज़ेहन[13] हो जाता। वह हुस्न की तारीफ़ में दो लफ़्ज़ तक न बोल सकता था। कॉलेज में तालीम पाने के बावुजूद उसके ज़ेहन की नशोनुमा[14] बड़े अदना तरीक़े पर हुई थी, लेकिन उसकी मुहब्बत की दास्तान इतनी लंबी थी कि एक बड़ी किताब तैयार हो जाती।

'आख़िर इन जाहिलों को, इन लोगों को इश्क़ो-मुहब्बत करने का क्या हक़ हासिल हैं… ?' कई बार यह सवाल सईद के दिमाग़ में पैदा हुआ और वह इस नतीजे पर पहुँचा कि मुहब्बत करने का हक़ हर शख़्स को हासिल है, ख़्वाह वह बेशऊर हो या बा-शऊर!

दूसरों को मुहब्बत करते देखकर दरअसल उसके दिल में हसद की चिंगारी भड़क उठती थी। वह जानता था कि यह बहुत बड़ा कमीनापन है, मगर वह ख़ुद को मजबूर पाता—मुहब्बत करने की ख़्वाहिश उस पर इस क़दर ग़ालिब रहती कि बाज़ औक़ात वह दिल-ही-दिल में मुहब्बत करनेवालों को गालियाँ भी दिया करता ; गालियाँ देने के बाद वह अपने आपको कोसता भी कि नाहक़ उसने किसी को बुरा-भला कहा है : 'अगर दुनिया के सारे आदमी एकदम मुहब्बत करने लगें तो इसमें मेरे बाबा का क्या जाता है मुझे सिर्फ़ अपनी ज़ात से ताल्लुक़ रखना चाहिए अगर मैं किसी की मुहब्बत में गिरफ़्तार नहीं होता तो इसमें दूसरों का क्या क़ुसूर है… बहुत मुमकिन है, मैं किसी लिहाज़ से इस क़ाबिल ही नहीं हूँ… क्या पता, बेवक़ूफ़ और बेअक़्ल होना ही मुहब्बत करने के लिए ज़रूरी हो… '

सोचते-सोचते एक दिन वह इस नतीजे पर पहुँचा कि मुहब्बत एकदम पैदा नहीं होती : 'वह लोग झूठे हैं जो कहते हैं कि मुहब्बत एकदम पैदा होती है… अगर ऐसा होता तो ज़ाहिर है, मेरे दिल में अब से बहुत अर्सा पहले मुहब्बत पैदा हो गई होती… अब तक कई लड़कियाँ मेरी निगाहों से गुज़र चुकी हैं… अगर मुहब्बत एकदम पैदा हो सकती तो मैं उनमें से किसी एक के साथ वाबस्ता हो सकता था…' किसी लड़की को सिर्फ़ एक-दो बार देख लेने से मुहब्बत कैसे पैदा हो जाती है, यह उसकी समझ में नहीं आता था।

उसके एक दोस्त ने जब उससे कहा : "कंपनी बाग़ में आज मैंने एक लड़की देखी… एक ही नज़र में उसने मुझे घायल कर दिया…" तो उसकी तबीयत मुकद्दर[15] हो गई—ऐसे फ़िक़रे उसे बहुत पस्त मालूम होते थे: 'एक ही नज़र में उसने मुझे घायल कर दिया… लाहौल वला… जज़्बात का किस क़दर आमियाना[16] इज़हार है।'

जब वह इस क़िस्म के पस्त और तीसरे दर्जे के फ़िक़रे किसी की ज़बान से सुनता तो उसे ऐसा महसूस होता जैसे उसके कानों में पिघलता हुआ सीसा डाल दिया गया है—पस्त ज़ेहनीयत और लंगड़े मज़ाक़ के लोग इस क़िस्म के फ़िक़रों से ख़ुश हो जाते थे—यह लोग, जो इश्क़ो-मुहब्बत की लताफ़तों[17] से बिलकुल कोरे थे, उसके मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा सुकून और आराम की ज़िंदगी बसर कर रहे थे।

मुहब्बत और ज़िंदगी को एम. असलम* की निगाहों से देखनेवाले ख़ुश थे मगर सईद, जो मुहब्बत और ज़िंदगी को अपनी साफ़ और शफ़्फ़ाफ़ आँखों से देखता था, मग़मूम[18] था, बेहद मग़मूम।

एम. असलम से उसे बेहद नफ़रत थी। इतना छिछोरा रोमाननवीस उसकी नज़रों से कभी न गुज़रा था—एम. असलम के अफ़साने पढ़कर सईद का ख़याल टब्बी और कटरा कनयाँ की खिड़कियों की तरफ़ दौड़ जाता, जिनमें से रात को कसबियों के ग़ाज़ा लगे गाल नज़र आते हैं—उसे ताज्जुब होता था कि अक्सर नौजवान लड़कों और लड़कियों में एम. असलम के अफ़साने मुआश्क़ा[19] पैदा करते हैं।

'जो इश्क़ एम. असलम के अफ़साने पैदा करते हैं, किस क़िस्म का इश्क़ होगा!' जब वह इस ख़याल पर थोड़ी देर ग़ौर करता तो उसे यह इश्क़ एक ऐसे सफ़ले आदमी की शक्ल में दिखाई देता जिसने नुमाइश की ख़ातिर अपने सब अच्छे-अच्छे कपड़े पहन रखे हों, एक के ऊपर एक।

वह जानता था, एम.असलम के अफ़सानों के बारे में उसकी राय कैसी भी हो, लेकिन हक़ीक़त यह है कि नौजवान लड़कियाँ उन्हें छुप-छुपकर पढ़ती हैं और जब उनके जज़्बात बरअंगेख़्ता[20] हो जाते हैं तो वह उस आदमी से मुहब्बत करना शुरू कर देती हैं जो उन्हें सबसे पहले नज़र आ जाता है—इसी तरह बहज़ाद†, जिसकी ग़ज़लें हिंदुस्तान की हर जान और बाई रात को कोठे पर गाती है, नौजवान लड़कों और लड़कियों में बहुत मक़बूल[21] था—क्यों, यह सईद की समझ से बालातर था।

बहज़ाद की वह आनिधाना ग़ज़ल जिसका मतला है: 'दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे।' क़रीब-क़रीब हर शख़्स गाता था। सईद के अपने घर में उसकी चपटी नाकवाली नौकरानी, जो अपनी जवानी की मंज़िलें जैसे-तैसे तय कर चुकी थी, बर्तन माँजते वक़्त हमेशा धीमे सुरों में गुनगुनाया करती थी: 'दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे।'

इस ग़ज़ल ने सईद को दीवाना बना दिया था। वह जहाँ जाता, 'दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे' अलापा जा रहा होता। आख़िर क्या मतलब है' 'छत पर चढ़ो तो काना इस्माईल एक आँख से अपने उड़ते हुए कबूतरों की तरफ़ देखकर ऊँचे सुरों में गा रहा है: 'दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे ' लतीफ़ की दरियों की दूकान पर बैठो तो बग़ल की दूकान में लाला किशोरीमल बज़ाज़ अपने बड़े-बड़े चूतड़ों की गद्दियों पर आराम से बैठकर निहायत भौंडे तरीक़े से गाना शुरू कर देता है: 'दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे ' दरियों की दूकान से उठो और घर जाकर बैठक में बैठो और रेडियो खोलो तो अख़्तरी बाई फ़ैज़ाबादी गा रही है: 'दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे ' क्या बेहूदगी है! सईद हर वक़्त यही सोचता रहता।

एक मामूली नाविलिस्ट जिसने तक़रीबन एक लाख सफ़हात लिखे।

†*एक मामूली शाइर—राजकपूर की पहली फिल्म 'आग' के गीत बहज़ाद ही ने लिखे थे।*

एक रोज़, जबकि वह बिलकुल ख़ालीउज़्ज़ेहन था और पान बनाने के लिए छालिया काट रहा था, उसने ग़ैर इरादी तौर पर गाना शुरू कर दिया : 'दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे ' दूसरे ही लम्हे वह अपने आपमें बेहद ख़फ़ीफ़ हुआ। उसे ख़ुद पर बहुत ग़ुस्सा आया। फिर एकाएकी ज़ोर से हँसने के बाद उसने जानबूझकर ऊँचे सुरों में गाना शुरू कर दिया : 'दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे ' यूँ गाते हुए उसने तसव्वुर-ही-तसव्वुर में बहज़ाद की शाइरी एक ऊँचे क़हक़हे के नीचे दबा दी और जी-ही-जी में ख़ुश हो गया।

एक-दो बार उसके दिल में ख़याल पैदा हुआ कि वह भी एम.असलम की अफ़सानानवीसी और बहज़ाद की शाइरी का गरवीदा[22] हो जाए और यूँ किसी से इश्क़ करने में कामयाबी हासिल करे, लेकिन क़स्द[23] करने पर भी वह एम.असलम का अफ़साना पूरा न पढ़ सका और न ही बहज़ाद की ग़ज़ल में कोई ख़ूबसूरती देख सका।

एक दिन उसने अपने दिल में अहद कर लिया : 'जो हो, सो हो, मैं एम.असलम और बहज़ाद के बग़ैर ही अपनी ख़्वाहिश पूरी करूँगा यही है ना कि नाकाम रहूँगा, तो भी मेरी नाकामी उन दो डुगडुगी बजानेवालों से अच्छी ही होगी '

उस दिन से उसके अंदर इश्क़ करने की ख़्वाहिश और भी तेज़ हो गई और उसने हर रोज़ सुबह को नाश्ता किए बग़ैर रेल के फाटक पर जाना शुरू कर दिया जहाँ से कई लड़कियाँ हाई स्कूल की तरफ़ जाती थीं।

फाटक के दोनों तरफ़ लोहे का एक बहुत बड़ा तवा, जिस पर लाल रोग़न पेंट किया गया था, जड़ा हुआ था—दूर से जब वह उन दो लाल-लाल तवों को एक-दूसरे के पीछे देखता तो उसे मालूम हो जाता कि फ़्रंटियर मेल आ रही है। उसके फाटक के पास पहुँचते ही फ़्रंटियर मेल मुसाफ़िरों से लदी हुई आती और दनदनाती हुई स्टेशन की जानिब ग़ाइब हो जाती।

फाटक खुलता और वह लड़कियों के इंतज़ार में एक तरफ़ खड़ा हो जाता—उधर से पच्चीस-छब्बीस लड़कियाँ आतीं और लोहे की पटरियों को तय करके कंपनी बाग़ के साथवाली सड़क की तरफ़ हो जातीं, जिधर उनका स्कूल था—उन पच्चीस-छब्बीस लड़कियों में से दस को, जो कि हिंदू थीं, वह इसलिए ग़ौर से न देख सका कि बाक़ी पंद्रह-सोलह मुसलमान लड़कियों की शक्लो-सूरत बुर्क़ों में छुपी रहती थी।

दस रोज़ वह मुतवातिर फाटक पर जाता रहा। शुरू-शुरू में दो-तीन दिन वह उन पर्दापोश और बेपर्दा लड़कियों की तरफ़ मुतवज्जेह रहा, मगर दसवीं रोज़ जब सुबह की ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी और जिसमें कंपनी बाग़ के तमाम फूलों की ख़ुशबू बसी हुई थी, उसने यकलख़्त अपने आपको लड़कियों के बजाय उन पस्त क़द दरख़्तों की तरफ़ मुतवज्जेह पाया जिनमें बेशुमार चिड़ियाँ चहचहा रही थीं।

'सुबह की ख़ुमार आलूद ख़ामोशी में चिड़ियों का चहचहाना कितना भला मालूम होता है ' जब उसने ग़ौर किया तो उसे पता चला कि वह एक हफ़्ते से लड़कियों की बजाय उन चिड़ियों, उन दरख़्तों और फ़्रंटियर मेल की मौत-जैसी यक़ीनी आमद से दिलचस्पी लेता रहा है।

इश्क़ शुरू करने के लिए उसने और भी बहुत से हीले किए मगर वह नाकाम रहा।

आख़िरकार उसने सोचा : 'क्यों न अपनी गली ही में कोशिश की जाए।'

चुनांचे एक रोज़ उसने अपने कमरे में बैठकर गली की उन तमाम लड़कियों की फ़ेहरिस्त बनाई जिनसे इश्क़ किया जा सकता था—जब फ़ेहरिस्त तैयार हो गई तो नौ लड़कियाँ उसके पेशे-नज़र थीं :

नंबर एक : हमीदा ; नंबर दो : सुग़रा ; नंबर तीन : नईमा ; नंबर चार : पुष्पा ; नंबर पाँच : बिमला ; नंबर छह : राजकुमारी ; नंबर सात : फ़ातिमा उर्फ़ फातो ; नंबर आठ : ज़ुबैदा उर्फ़ बेदी ; नंबर नौ :—उसका नाम उसे मालूम न था। नंबर नौ पशमीने के सौदागरों के हाँ नौकर थी।

अब उसने नंबरवार ग़ौर करना शुरू किया।

हमीदा ख़ूबसूरत थी—बड़ी भोली-भाली लड़की ; उम्र बमुश्किल पंद्रह बरस की होगी ; सदा मुतबस्सुम[24] रहती थी; बड़ी नाज़ुक—उसे देखकर ऐसा मालूम होता था कि सफ़ेद शक्कर की पुतली है, भुरभरी-सी; अगर ज़रा उसको हाथ लगाया तो उसके जिस्म का कोई हिस्सा गिर जाएगा—उसके नन्हे-से सीने पर छातियों का उभार ऐसे था जैसे किसी मद्धम राग में दो सुर ग़ैर इरादी तौर पर ऊँचे हो गए हों—अगर हमीदा से वह कभी यह कहता : 'हमीदा, मैं तुमसे मुहब्बत करना चाहता हूँ' तो यक़ीनन हमीदा के दिल की हरकत बंद हो जाती। वह हमीदा से सीढ़ियों ही में ऐसी बात कह सकता था—उसने सोचा कि हमीदा ऊपर से तेज़ी के साथ नीचे उतर रही है, उसने हमीदा को रोका है, ग़ौर से उसकी तरफ़ देखा है और कहा है : 'मैं तुमसे मुहब्बत करना चाहता हूँ', हमीदा का नन्हा-सा दिल सीने में फड़फड़ाया है जैसे तेज़ हवा में दीए की लौ, और वह कुछ नहीं समझ सका है—वह हमीदा से कुछ नहीं कह सकता था। वह इस क़ाबिल ही नहीं थी कि उससे मुहब्बत की जाती। वह सिर्फ़ शादी के क़ाबिल थी। कोई भी ख़ाविंद उसके लिए मुनासिब था, क्योंकि उसके जिस्म का हर ज़र्रा बीवी था। उसका शुमार उन लड़कियों में हो सकता था जिनकी सारी ज़िंदगी शादी के बाद घर के अंदर सिमटकर रह जाती है ; जो बच्चे पैदा करती हैं और चंद ही बरसों में अपना सारा रंग-रूप खो देती हैं, और रंग-रूप खोकर भी जिनको अपने में कोई ख़ास फ़र्क़ महसूस नहीं होता—ऐसी लड़कियों से, जो मुहब्बत का नाम सुनकर यह समझें कि उनसे एक बहुत बड़ा गुनाह सरज़द हो गया है, वह मुहब्बत नहीं कर सकता था—उसे यक़ीन था कि अगर वह किसी रोज हमीदा को ग़ालिब का एक शेर सुना देता तो वह कई दिनों तक नमाज़ के साथ बख़्शिश की दुआएँ माँगकर भी यह समझती कि उसकी ग़लती माफ़ नहीं हुई है—फिर हमीदा ने सारी बात अपनी माँ से कह सुनाई होती और इस पर जो ऊधम मचता, उसके तसव्वुर ही से वह काँप-काँप उठता। ज़ाहिर है कि सब उसे मुजरिम क़रार देते और सारी उम्र के लिए उसके किरदार पर एक बदनुमा दाग़ लग जाता—कोई इस बात की तरफ़ ध्यान ही न देता कि वह तो सिदक़ दिली से मुहब्बत करने का मुतमन्नी[25] है।

नंबर दो सुग़रा और नंबर तीन नईमा के बारे में सोचना ही बेकार था, इसलिए कि वे एक कट्टर मौलवी की लड़कियाँ थीं। उनका तसव्वुर करते ही सईद की आँखों के सामने

मस्जिद की वह चटाइयाँ आ गईं जिन पर मौलवी क़ुदरतुल्ला साहब लोगों को नमाज़ पढ़ाने और अज़ान देने में मसरूफ़ रहते थे—दोनों लड़कियाँ जवान और ख़ूबसूरत थीं, मगर अजीब बात है कि उनके चेहरे मेहराबनुमा थे—जब सईद अपने घर में बैठा उनकी आवाज़ सुनता तो उसे ऐसा लगता कि आदत के तौर पर कोई धीमे-धीमे सुरों में दुआ माँग रहा है, ऐसी दुआ जिसका मतलब वह ख़ुद भी नहीं समझता—दोनों बहनों को सिर्फ़ ख़ुदा से मुहब्बत करना सिखाया गया था, इसलिए सईद उनसे मुहब्बत करना नहीं चाहता था—वह इंसान था और इंसान को अपना दिल देना चाहता था—सुग़रा और नईमा की इस दुनिया में इस तौर पर तर्बियत हो रही थी कि वह दूसरे जहान में नेकोकार[26] मर्दों के काम आ सकें—जब सईद ने उनके मुताल्लिक़ सोचा तो अपने आपसे कहा : 'भई नहीं, इनसे मैं इश्क़ नहीं कर सकता जो अंजामकार दूसरे मर्दों के हवाले कर दी जाएँगी... मुझे इस दुनिया में गुनाह भी करने हैं, इसलिए मैं यह जुआ खेलना नहीं चाहता... मुझसे यह न देखा जाएगा कि इस दुनिया में जिनसे मैं मुहब्बत करता हूँ, उस दुनिया में मेरे चंद गुनाहों के बदले वह किसी परहेज़गार के सुपुर्द कर दी जाएँ...' चुनांचे उसने फ़ेहरिस्त में से सुग़रा और नईमा का नाम काट दिया।

नंबर चार पुष्पा, नंबर पाँच बिमला और नंबर छः राजकुमारी—यह तीनों लड़कियाँ जिनका आपस में ख़ुदा मालूम क्या रिश्ता था, सामनेवाले मकान में रहती थीं—पुष्पा के मुताल्लिक़ सोच-विचार करना फ़िज़ूल था, इसलिए कि उसका ब्याह होनेवाला था, एक बज़ाज़ से, जिसका नाम उतना ही बदसूरत था जितना पुष्पा का ख़ूबसूरत। वह अक्सर उसे छेड़ा करता था। वह खिड़की में से उसको अपनी अचकन दिखाकर कहा करता था : "पुष्पा, बताओ तो मेरी अचकन का रंग क्या है...?" पुष्पा के गालों पर एक सेकिंड के लिए गुलाब की पत्तियाँ-सी थरथरा जाती थीं और वह बहादुरी से जवाब दिया करती थी : "नीला..." उसके होनेवाले ख़ाविंद का नाम कालूमल था—"लाहौलवला... किस क़दर ग़ैर शाइराना नाम है... जाने यह नाम रखते हुए इसके वालदैन ने क्या मसलहत देखी थी..." वह जब भी पुष्पा और कालूमल के मुताल्लिक़ सोचता तो अपने दिल-ही-दिल में कहा करता : 'अगर और किसी वजह से पुष्पा की शादी नहीं रुक सकती तो सिर्फ़ इस वजह से रुक जानी चाहिए कि उसके होनेवाले पति का नाम निहायत ही लग़्व है... कालूमल... एक तो 'कालू' और उस पर 'मल'... लानत है... आख़िर इसका मतलब क्या हुआ...' लेकिन फिर वह सोचता : 'अगर पुष्पा की शादी कालूमल बज़ाज़ से न हुई तो किसी घमीटाराम हलवाई या किसी करोड़ीलाल सर्राफ़ से हो जाएगी...' बहरहाल वह पुष्पा से इश्क़ नहीं कर सकता था, और अगर करता तो उसे हिंदू-मुस्लिम फ़साद का डर था... 'मुसलमान और हिंदू लड़की से मुहब्बत... अव्वल तो मुहब्बत वैसे ही बहुत बड़ा जुर्म है और फिर मुसलमान लड़के और हिंदू लड़की की मुहब्बत...' शहर में कई हिंदू-मुस्लिम फ़साद हो चुके थे लेकिन जिस गली में वह रहता था, नामालूम वुजूहात की बिना पर फ़सादात के असरात से अब तक महफ़ूज़ रही थी। अगर वह पुष्पा, बिमला या राजकुमारी से मुहब्बत करने का इरादा कर लेता तो ज़ाहिर है, दुनिया की तमाम गाएँ और तमाम सूअर उस गली में इकट्ठे हो

जाते—हिंदू-मुस्लिम फ़सादों से सईद को सख़्त नफ़रत थी, इसलिए नहीं कि लोग एक-दूसरे का सिर फोड़ते हैं और लहू के छींटे उड़ाते हैं, नहीं, बल्कि इसलिए कि इन फ़सादों में सिर निहायत भद्दे तरीक़े पर फोड़े जाते हैं और लहू-जैसी ख़ूबसूरत शै को निहायत ही भौंडे तरीक़े पर ख़ाक में मिलाया जाता है—राजकुमारी जो पुष्पा और बिमला, दोनों से छोटी थी, उसे पसंद थी। राजकुमारी के होंठ, जो साँस की कमी के बायस ख़फ़ीफ़ तौर पर खुले रहते थे, उसे बेहद पसंद थे। उनको देखकर उसे हमेशा ख़याल आता था कि शायद एक बोसा उनके साथ छूकर आगे निकल गया है—एक मर्तबा उसने राजकुमारी को, जो अभी अपनी उम्र की चौदहवीं मंज़िल तय कर रही थी, अपने मकान की तीसरी मंज़िल पर बराए-नाम-से ग़ुस्लख़ाने में नहाते देखा था—अपने मकान के झरनों में से जब सईद ने राजकुमारी को देखा तो उसे ऐसा महसूस हुआ कि उसका कोई निहायत ही अछूता ख़याल दिमाग़ में से उतरकर सामने आ खड़ा हुआ है। सूरज की मोटी-मोटी किरनें, जिनमें बेशुमार फ़ज़ाई ज़र्रे[27] मुक्कैश[28] का छिड़काव-सा कर रहे थे, राजकुमारी के नंगे बदन पर फिसल रही थीं। उन किरनों ने उसके गोरे बदन पर सोने का पतरा-सा चढ़ा दिया था। बालटी में से जब उसने डोंगा निकाला और खड़ी होकर अपने बदन पर पानी डाला तो वह सोने की पुतली दिखाई दी। पानी के मोटे-मोटे क़तरे उसके बदन पर से गिर रहे थे, जैसे सोना पिघल-पिघलकर गिर रहा हो—राजकुमारी यूँ भी पुष्पा और बिमला के मुक़ाबले में बहुत होशियार थी। उसकी पतली-पतली उँगलियाँ, जो हर वक़्त यूँ मुतहर्रिक रहती थीं जैसे ख़याली जुराबें बुन रही हों, सईद को बहुत पसंद थीं। उन उँगलियों में रानाई थी और उस रानाई का सुबूत करोशिए और सुई के उन कामों से मिलता था जो वह कई बार देख चुका था—एक बार राजकुमारी के हाथ का बना हुआ मेज़पोश देखकर उसे ख़याल आया था कि राजकुमारी ने अपने दिल की बहुत-सी धड़कनें भी ग़ैर इरादी तौर पर मेज़पोश के नन्हे-नन्हे ख़ानों में गूँथ दी हैं—और एक बार जब कि वह उसके बिलकुल पास खड़ी थी, उसके दिल में मुहब्बत करने का ख़याल पैदा हुआ, मगर जब उसने राजकुमारी की तरफ़ देखा तो वह उसे एक मंदिर की सूरत में दिखाई दी। उसने महसूस किया कि वह उसके पहलू में मस्जिद की शक्ल में खड़ा है : 'मस्जिद और मंदिर में क्योंकर दोस्ती हो सकती है···' गली की तमाम लड़कियों के मुक़ाबले में राजकुमारी ज़ेहनी लिहाज़ से भी बुलंद थी। उसकी पेशानी, जिस पर हर वक़्त एक मद्धम-सी सलवट गहराई इख़्तियार करने का इरादा किए रहती थी, सईद को बहुत भली मालूम होती थी। उसका माथा देखकर वह दिल-ही-दिल में कहा करता : 'जब दीबाचा[29] इतना ख़ूबसूरत है तो मालूम नहीं, किताब कितनी ख़ूबसूरत होगी···मगर आह···' उसकी ज़िंदगी में ये 'मगर' सचमुच का मगर बन के रह गया था जो उसे ग़ोता लगाने से हमेशा बाज़ रखता था—और बिमला बेचारी तो पुष्पा और राजकुमारी के बीच में कहीं खो गई थी।

नंबर सात फ़ातिमा उर्फ़ फातो ख़ाली नहीं थी। उसके दोनों हाथ इश्क़ से भरे हुए थे, एक अमजद से जो किसी वर्कशॉप में काम करता था और दूसरा अमजद के चचेरे भाई से जो दो बच्चों का बाप था—फ़ातिमा उर्फ़ फातो उन दोनों भाइयों से इश्क़ लड़ा रही थी, गोया

एक पतंग से दो पेच लड़ा रही थी। एक पतंग में जब दो और पतंग उलझ जाएँ तो काफ़ी दिलचस्पी पैदा हो जाती है, लेकिन अगर उस तिगड्डे में एक और पेच का इज़ाफ़ा हो जाए तो ज़ाहिर है, उलझाव एक भूल-भुलैया की सूरत इख़्तियार कर लेगा—सईद को इस क़िस्म का उलझाव पसंद नहीं था। इसके अलावा फातो जिस क़िस्म के इश्क़ में गिरफ़्तार थी, निहायत ही अदना क़िस्म का था—जब सईद उस क़िस्म के इश्क़ का तसव्वुर करता तो पुरानी इश्क़िया दास्तानों की बूढ़ी कुटनी पीले काग़ज़ों के बदबूदार अंबार में से उसकी आँखों के सामने लाठी टेकती हुई आ जाती और उसकी तरफ़ यूँ देखती जैसे कहना चाहती हो : 'मैं आसमान के तारे तोड़कर ला सकती हूँ ''बता तेरी नज़र किस लौंडिया पर है ''उसे मैं यूँ चुटकियों में तुझसे मिला दूँगी ''' उस बुढ़िया के तसव्वुर के साथ वह पाईबाग़[30] के मुताल्लिक़ सोचता, या ज़ाहिरा पीर का मज़ार उसकी आँखों के सामने आ जाता था जहाँ वह बुढ़िया उसकी महबूबा को किसी बहाने से ला सकती थी—इस ख़याल के आते ही उसकी मुहब्बत का सारा जज़्बा सिमट जाता और एक ऐसी क़ब्र की सूरत इख़्तियार कर लेता जिस पर सब्ज़ रंग का ग़िलाफ़ चढ़ा हुआ हो और उस पर बेशुमार हार बिखरे हुए हों—कभी-कभी उसे यह ख़याल भी आता कि अगर कुटनी नाकाम रही तो कुछ दिनों के बाद इस महल्ले से उसका जनाज़ा निकलेगा और दूसरे महल्ले से उसकी नौजवान महबूबा का ; फिर दोनों जनाज़े रास्ते में टकराएँगे और दो ताबूतों का एक ताबूत बन जाएगा ; या फिर इश्क़िया दास्तानों के अंजाम की तरह जब उसे और उसकी महबूबा को दफ़न किया जाएगा तो एक मो'जिज़ा[31] रूनुमा[32] होगा और दोनों क़ब्रें आपस में मिल जाएँगी—वह यह भी सोचता कि अगर वह मर गया और उसकी महबूबा किसी वजह से जान न दे सकी तो हर जुमेरात को उसकी क़ब्र पर नाज़ुक-नाज़ुक हाथ फूल चढ़ाया करेंगे और दीया भी जलाया करेंगे ; बाल खोलकर वह अपना सिर क़ब्र के साथ फोड़ा करेगी और चुग़ताई* एक और तसवीर बना देगा जिसके नीचे लिखा होगा : 'हाय उस ज़ूदपशेमाँ[33] का पशेमाँ होना'; या कोई शाइर एक और ग़ज़ल लिख देगा जिसे एक ज़माने तक तमाशबीन कोठों पर तबलों की थाप के साथ सुनते रहेंगे। उस ग़ज़ल के शेर इस क़िस्म के होंगे : 'मेरी लहद पे कोई पर्दापोश आता है, चिराग़े-गोरे ग़रीबाँ सबा बुझा देना'—ऐसे शेर जब कभी वह किसी ग़ज़ल में देखता तो इस नतीजे पर पहुँचता कि इश्क़ तो गोरकन[34] है जो हर वक़्त काँधे पर कुदाल रखे आशिक़ों के लिए क़ब्रें खोदने को तैयार रहता है—इस इश्क़ से वह उस इश्क़ का मुक़ाबला करता जिसका तसव्वुर उसके ज़ेहन में था। जब वह उनमें ज़मीनो-आसमान का फ़र्क़ पाता तो सोचता कि या तो उसका दिमाग़ ख़राब है, या फिर वह निज़ाम ही ख़राब है जिसमें वह साँस ले रहा है—वह अगर कोई दीवान खोलता तो उसे ऐसा महसूस होता जैसे वह किसी क़साई की दूकान में दाख़िल हो गया है। हर शेर उसे बेखाल का बकरा दिखाई देता जिसका गोश्त चर्बी समेत बू पैदा कर रहा हो : 'हर बात ज़बान पर एक ख़ास क़िस्म का ज़ाइक़ा पैदा करती है ''मैं जब इन दीवानों में शेर पढ़ता हूँ तो मेरी ज़बान पर वही ज़ाइक़ा

* *अब्दुल रहमान चुग़ताई; मशहूर मुसव्विर—चुग़ताई ने चंद एक अफ़साने भी लिखे हैं।*

पैदा हो जाता है जो मैं क़ुर्बानी का गोश्त खाते वक़्त महसूस किया करता हूँ ···' वह सोचता कि जिस शहर में आबादी का चौथा हिस्सा शाइर हो और ऐसे ही शेर कहता हो, वहाँ मुहब्बत हमेशा गोश्त के लोथड़ों के नीचे दबी रहेगी—सईद की मायूसी किसी-न-किसी वजह से एक-दो रोज़ के बाद ग़ाइब हो जाती और वह फिर नई ताज़गी के साथ अपनी मुहब्बत के ममले पर ग़ौरो-फ़िक्र करना शुरू कर देता।

नंबर आठ ज़ुबैदा उर्फ़ बेदी भरे-भरे हाथ-पैरोंवाली लड़की थी। वह दूर से देखने पर गुँधे हुए मैदे का एक ढेर दिखाई देती थी—गली के एक लड़के ने उसको एक बार आँख मार दी और बेचारे ने यूँ अपनी मुहब्बत की बिस्मिल्लाह की, लेकिन उसको लेने-के-देने पड़ गए—बेदी ने अपनी माँ को सारी रामकहानी सुनाई ; माँ ने अपने बड़े लड़के से पोशीदा तौर पर बातचीत की और उसको ग़ैरत दिलाई—नतीजा यह निकला कि आँख मारने के दूसरे रोज़ शाम को जब अब्दुलग़नी तिबाबत उर्फ़ हिकमत सीखकर घर वापस आया तो उसकी दोनों आँखें सूजी हुई थीं—कहते हैं कि ज़ुबैदा उर्फ़ बेदी चिक़ में से यह तमाशा देखकर बहुत ख़ुश हुई थी—सईद को अपनी आँखें बहुत पसंद थीं, इसलिए वह बेदी के बारे में एक लम्हे के लिए भी सोचना नहीं चाहता था—अब्दुलग़नी ने आँख के पलकारे से मुहब्बत का आग़ाज़ करना चाहा था और सईद को यह तरीक़ा बाज़ारी मालूम होता था—वह अगर बेदी को अपनी मुहब्बत का पैग़ाम देना चाहता तो अपनी ज़बान इस्तेमाल करता जो दूसरे रोज़ ही काट ली जाती—अमले-जर्राही[35] करने से पहले बेदी का भाई कभी न पूछता कि बात क्या है ; वह तो बस ग़ैरत के नाम पर छुरी चला देता ; उसको इस बात का ख़याल कभी न आता कि वह छः लड़कियों की इस्मत बर्बाद कर चुका है, जिनकी दास्तानें वह बड़े मज़े से अपने दोस्तों को सुनाया करता है।

नबर नौ जिसका नाम उसे मालूम नहीं था, पशमीने के सौदागरों के हाँ नौकर थी—एक बहुत बड़ा घर था जिसमें चार भाई रहते थे। यह नौ नंबर, जो कश्मीर की पैदावार थी, उन चारों भाइयों के लिए सर्दियों में लिहाफ़ का काम देती थी। गर्मियों में वह सबके-सब कश्मीर चले जाते थे और नंबर नौ अपनी किसी दूर की रिश्तेदार औरत के पास चली जाती थी—वह लड़की, जो औरत बन चुकी थी, दिन में दो-एक मर्तबा उसकी नज़रों के सामने से ज़रूर गुज़रती थी। उसको देखकर वह हमेशा यही ख़याल किया करता था कि उसने एक औरत नहीं, बल्कि चार औरतें इकट्ठी देखी हैं। उस लड़की के मुताल्लिक, जिसके ब्याह के बारे में अब चारों भाई फ़िक्र कर रहे थे, उसने कई बार ग़ौर किया। वह उसकी हिम्मत का क़ायल था कि वह घर का सारा काम-काज अकेली सँभालती थी। वह उन चारों सौदागर भाइयों की फ़र्दन-फ़र्दन ख़िद्मत भी करती थी—वह बज़ाहिर ख़ुश थी। उन चार सौदागर भाइयों को, जिनके साथ उसका जिस्म मुताल्लिक़ था, वह एक ही नज़र से देखती थी। उसकी ज़िंदगी, जैसा कि ज़ाहिर है, एक अजीबो-ग़रीब खेल था, जिसमें चार आदमी हिस्सा ले रहे थे। उनमें से हर एक को यह समझना पड़ता था कि बाक़ी तीन बेवक़ूफ़ हैं। यह भी मुमकिन है कि वह लड़की यह समझती हो कि सबके-सब अंधे हैं—लेकिन क्या वह ख़ुद अंधी नहीं थी—इस सवाल का जवाब सईद को नहीं मिलता था : 'अगर वह अंधी न होती तो

बयक वक़्त चार आदमियों से ताल्लुक़ात पैदा न करती… बहुत मुमकिन है, वह उन चारों को एक ही समझती हो क्योंकि मर्द और औरत का जिस्मानी ताल्लुक़ आमतौर पर एक-जैसा ही होता है…' वह अपनी ज़िंदगी के दिन बड़े मज़े से गुज़ार रही थी—'चारों सौदागर भाई उसे छुप-छुपकर कुछ-न-कुछ ज़रूर देते होंगे… क्योंकि जब मर्द किसी औरत के साथ कुछ अर्सा लुत्फ़ अंगेज़ तख़लिए[36] में गुज़ारता है तो उसके दिल में उसकी क़ीमत अदा करने की ख़्वाहिश ज़रूर पैदा होती है…' सईद उसको अक्सर बाज़ार में शहाबुद्दीन की दूकान पर खीर खाते, या भाई केसरसिंह मेवाफ़रोश की दूकान के पास फल खाते देखता था। उसे उन चीज़ों की ज़रूरत थी और फिर जिस आज़ादी से वह खीर और फल खाती थी, उससे पता चलता था कि वह उनका एक-एक ज़र्रा हज़्म करने का इरादा रखती है—एक बार जब शहाबुद्दीन की दूकान पर सईद कुल्फ़ी-फ़ालूदा खा रहा था और सोच रहा था कि वह इतनी सक़ील[37] शै कैसे हज़्म कर सकेगा, वह आई और चार आने की खीर में एक आने की रबड़ी डलवाकर दो मिनटों में सारी प्लेट चट कर गई। यह देखकर सईद को रश्क हुआ—जब वह चली गई तो शहाबुद्दीन के होंठों पर एक मैली-सी मुसकराहट पैदा हुई और उसने हर किसी को, जो भी उसकी बात सुन ले, मुख़ातिब करते हुए कहा : "साली मज़े कर रही है…" शहाबुद्दीन की बात सुनकर सईद ने लड़की की तरफ़ देखा जो कूल्हे मटकाती फलों की दूकान के पास पहुँच चुकी थी और शायद भाई केसरसिंह की दाढ़ी का मज़ाक़ उड़ा रही थी—वह हर वक़्त ख़ुश रहती थी—उसको ख़ुश देखकर सईद को बहुत दुख होता था। ख़ुदा मालूम क्यों सईद के दिल में यह अजीबो-ग़रीब ख़्वाहिश पैदा हो जाती थी कि वह लड़की ख़ुश न रहे—सन तीस के इख़्तिताम[38] तक वह उस लड़की के मुताल्लिक़ यही फ़ैसला करता रहा कि उससे मुहब्बत नहीं की जा सकती।

1. परिच्छेद, 2. आत्मसम्मान; 3. निषेध, वर्जित, 4. अनुसार, 5. साफ़, स्वच्छ, 6. गतिशील, 7. समानता, 8. अनुभवहीन, 9 हतप्रभ, 10. प्रेम, आकर्षण, 11. पहलू; 12 अच्छी, 13. बिलकुल खामोश हो जाना; 14. पालन-पोषण, 15 खराब, 16 घटिया, 17. आनंदो, 18 रंगीला; 19. प्रेम, 20. उत्तेजित; 21. लोकप्रिय; 22. प्रशासक; 23. निश्चय; 24. मुसकराती हुई; 25. इच्छुक, 26 सदाचारी; 27 धूल के कण; 28 सोने-चाँदी के तारों का; 29. प्रस्तावना, प्राक्कथन; 30. किले के पीछे वाला बाग; 31. चमत्कार; 32. प्रकट, 33. भूल करके पछतानेवाला; 34. कब्र खोदनेवाला, 35 शल्यक्रिया, 36 एकांत; 37. कृपाचक; 38. अंत।

मेरा साहब

''यह सन सैंतीस का ज़िक्र है·· मुस्लिम लीग रू-ब-शबाब थी। मैं ख़ुद शबाब की इब्तिदाई मंज़िलों में था, जब ख़्वाहमख़्वाह कुछ करने को जी चाहता है। इसके अलावा सेहतमंद था, ताक़तवर था और जी में हर वक़्त यही ख़्वाहिश तड़पती थी क़ि जो क़ुव्वत[1] सामने आए, उससे भिड़ जाऊँ। अगर कोई क़ुव्वत सामने न आए तो उसे ख़ुद पैदा करूँ और मद्दे-मुक़ाबिल बनाकर उससे गुथ जाऊँ यह वह वक़्त होता है, जब आदमी हर वक़्त कुछ करने के लिए बेताब रहता है कुछ करने से मेरा मतलब है, कोई बड़ा काम· कोई बहुत बड़ा कारनामा सरअंजाम[2] न हो तो सरज़द[3] ही हो जाए, मगर कुछ हो ज़रूर।

''इस मुख़्तसर तमहीद[4] के बाद अब मैं फिर उस ज़माने की तरफ़ लौटता हूँ, जब ग़ालिब जवान था मालूम नहीं, उसने अपनी जवानी के दिनों में किसी सियासी तहरीक में हिस्सा लिया था या नहीं, मगर ख़ाकसार मुस्लिम लीग का एक सरगर्म कारकून था। 'ग़ाज़ी आबाद कोर' मुझ-ऐसे कई नौजवानों की एक जमाअत थी, जिसमें मैं एक मुख़्लिस[5] मैंबर था अपने इख़्लास[6] का ज़िक्र मैंने इसलिए बड़े वुसूक़[7] से किया है कि उन दिनों मेरे पास सिवाय इसके और कुछ था ही नहीं।

''यह उसी ज़माने का ज़िक्र है कि मुहम्मद अली जिनाह देहली तशरीफ़ लाए और मुसलमानों ने उनका शानदार जुलूस निकाला जैसा कि ज़ाहिर है, ग़ाज़ी आबाद कोर ने उस जुलूस को पुर-रौनक़ और पुर-जोश बनाने में पूरा हिस्सा लिया। हमारी जमाअत के सालार[8] अनवर क़ुरैशी साहब थे, बड़े तनोमंद जवान, जो अब शाइरे-पाकिस्तान के लक़ब[9] से मशहूर हैं। हमारे कोर के जवानों के होंठों पर उन्हीं का तस्नीफ़ कर्दा क़ौमी तराना था। मालूम नहीं हम सुरताल मे थे या नहीं, लेकिन इतना याद है कि जो कुछ भी हमारे हलक़ से बाहर निकलता, उसको सुरताल की पाबंदियों में जकड़ने का होश किसी को भी नही था : फ़रियाद की कोई लय नहीं है, नाला पाबंदे[10]-नै नहीं है

''यह तारीख़ी जुलूस तारीख़ी शहर दिल्ली की तारीख़ी जामा मस्जिद से शुरू हुआ और पुरजोश नारे बिखेरता चाँदनी चौक, लाल कुआँ, हौज़ क़ाज़ी और चावड़ी बाज़ार से होता हुआ अपनी मंज़िल, यानी मुस्लिम लीग के ऑफ़िस पहुँचकर ख़त्म हो गया।

''इज्तिमाई[11] तौर पर इस तारीख़ी जुलूस में मुहम्मद अली जिनाह साहब को 'क़ायदे-आज़म' के ग़ैर फ़ानी[12] ख़िताब से नाराज़न[13] किया गया उनकी सवारी के लिए छः घोड़ों की फ़िटन का इंतज़ाम था। जुलूस में मुस्लिम लीग के तमाम सरकर्दा अराकीन

थे। मोटरों, मोटर साइकिलों, बाई-साइकिलों और ऊँटों का एक हुजूम था, मगर बहुत ही मुनज़्ज़िम[15]... इस नज़्म[16] को देखकर क़ायदे-आज़म, जो तबअन[17] बहुत ही नज़्म पसंद थे, बहुत मम्नरूर[18] नज़र आते थे।

"मैंने इस जुलूस में उनकी कई झलकियाँ देखीं... उनकी पहली झलकी देखकर मेरा रद्दे-अमल, मालूम नहीं, क्या था। अब सोचता हूँ और तजज़िया[19] करता हूँ तो सिर्फ़ इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि ख़ुलूस चूँकि बेरंग होता है, इसलिए वह रद्दे-अमल भी यक़ीनन बेरंग था... उस वक़्त अगर किसी भी आदमी की तरफ़ इशारा करके मुझसे कहा जाता कि देखो, वह तुम्हारा क़ायदे-आज़म है, तो मेरी अक़ीदत उसे क़ुबूल कर लेती और अपने सर आँखों पर जगह देती ...लेकिन जब मैंने जुलूस के मुख़्तलिफ़ मोड़ों और पेचों में उनको कई मर्तबा देखा तो मेरी तनोमंदी को धोखा-सा लगा... मेरा क़ायद और इस क़दर दुबला, इस क़दर नहीफ़[20] !

"ग़ालिब ने कहा था : वह आएँ घर में हमारे ख़ुदा की क़ुदरत है, कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं... वह हमारे घर आए थे—यह उनकी मेहरबानी और ख़ुदा की क़ुदरत थी... ख़ुदा की क़सम,, मैं कभी उनको देखता था, उनके नहीफ़ो-नज़ार[21] जिस्म को, उस मुश्ते-उस्तुख़्वाँ[22] को और कभी अपने हट्टे-कट्टे डील-डौल को—जी में आता कि या तो मैं सुकड़ जाऊँ या वह फैल जाएँ ...मैंने दिल-ही-दिल में उनके नातवाँ[23] दस्तो-बाज़ू[24] को नज़रे-बद से महफ़ूज़ रखने के लिए दुआएँ माँगीं... दुश्मनों पर उनके लगाए हुए ज़ख़्मों का चर्चा आम था।

"हालात पलटा खाते ही रहते हैं। मालूम नहीं, पलटों का नाम हालात है या हालात का नाम पलटे... बहरहाल कुछ ऐसी सूरत हुई कि दिमाग़ में आर्ट का कीड़ा, जो कुछ देर से सो रहा था, जागा और आहिस्ता-आहिस्ता रेंगने लगा। तबीयत में यह उकसाहट पैदा हुई कि बंबे चलकर उस मैदान में क़िस्मत आज़माई की जाए... ड्रामे की तरफ़ बचपन ही से माइल था। सोचा कि शायद वहाँ चलकर अपने जौहर दिखाने का मौक़ा मिल जाए... कहाँ ख़िद्मते-क़ौमो मिल्लत[25] का जज़्बा और कहाँ अदाकारी का ख़ब्त[26]... इंसान भी अजब मजमूआ[27]-ए-अज़्ददाद[28] है।

"बंबे पहुँचा... उन दिनों इंपीरियल फ़िल्म कंपनी अपने जोबन पर थी। वहाँ रसाई गो बहुत ही मुश्किल थी, मगर किसी-न-किसी हीले से दाख़िल हो ही गया। आठ आने रोज़ पर एक्स्ट्रा के तौर पर काम करता था और यह ख़्वाब देखता था कि एक रोज़ आसमाने-फ़िल्म का दरख़्शिंदा[29] सितारा बन जाऊँगा।

"अल्लाह के फ़ज़्ल से बातूनी बहुत हूँ। ख़ुशगुफ़्तार न सही तो कुछ ऐसा बदगुफ़्तार भी नहीं... उर्दू मादरी ज़बान है, जिससे इंपीरियल फ़िल्म कंपनी के तमाम सितारे नाआश्ना[30] थे... उर्दू ने मेरी मदद देहली के बजाय बंबे में की। वह यूँ कि वहाँ के क़रीब-क़रीब तमाम सितारे अपनी गर्दिशों का हाल मुझसे लिखवाया और पढ़वाया करते थे। उर्दू में कोई ख़त आता तो मैं उन्हें पढ़ के सुनाता। उसका मतलब बताता। उसका जवाब लिखता... मगर इस मुंशीगीरी मे और ख़ुतूतनवीसी से कोई ख़ातिर ख़्वाह फ़ाइदा न

हुआ। एक्स्ट्रा था, एक्स्ट्रा ही रहा।

''इस दौरान में इंपीरियल कंपनी के मालिक सेठ आरडेशर ईरानी के ख़ासुलख़ास मोटर ड्राइवर बुद्धन से मेरी दोस्ती हो गई और उसने इसका हक़ यूँ अदा किया कि फ़ुर्सत के औक़ात में मुझे मोटर चलाना सिखा दी। चूँकि यह औक़ात निहायत ही मुख़्तसर होते थे और बुद्धन को भी हर वक़्त यही धड़का लगा रहता था कि सेठ को उसकी चोरी का इल्म न हो जाए, इसलिए मैं अपनी तमाम ज़हानत के बावस्फ़ मोटर चलाने के फ़न पर पूरी तरह हावी न हो सका। हावी होना तो बहुत बड़ी बात है, बस यूँ समझिए कि मुझे बुद्धन की मदद के बग़ैर अलिफ़-जैसी सीधी सड़क पर सेठ आरडेशर की ब्यूक चलाना आ गई—उसके कल-पुर्ज़ों के मुताल्लिक़ मेरा इल्म सिफ़र था।

''अदाकारी की धुन सर पर बहुत बुरी तरह सवार थी, मगर यह सर का मामला था। दिल में मुस्लिम लीग और उसके रूहे-रवाँ क़ायदे-आज़म मुहम्मद अली जिनाह बदस्तूर बसे हुए थे इंपीरियल फ़िल्म कंपनी में, कैनेडी ब्रिज पर, भिंडी बाज़ार और मुहम्मद अली रोड में और प्ले हाऊस पर अक्सर मुसलमानों की अक़लियत[31] के साथ कांग्रेस के सुलूक का तज़्किरा[32] होता था।

''इंपीरियल में सब जानते थे कि मैं मुस्लिम लीगी हूँ और क़ायदे-आज़म मुहम्मद अली जिनाह का नाम लेवा, लेकिन यह वह ज़माना था, जब हिंदू किसी के मुँह से क़ायदे-आज़म का नाम सुनकर उसके जानलेवा नहीं हो जाते थे। क़यामे-पाकिस्तान का मुतालबा[33] अभी मंज़रे-आम[34] पर नहीं आया था मेरा ख़याल है, इंपीरियल फ़िल्म कंपनी के लोग जब मुझसे क़ायदे-आज़म का तारीफ़ी ज़िक्र सुनते थे तो यह समझते थे कि क़ायदे-आज़म भी कोई हीरो है, जिसका मैं परिस्तार[35] हूँ यही वजह है कि एक दिन उस ज़माने के सबसे बड़े फ़िल्मी हीरो डी बिलीमोरिया ने टाइम्स ऑफ़ इंडिया का परचा मेरी तरफ़ बढ़ाते हुए कहा : 'लो भई, यह तुम्हारे जिनाह साहब हैं।'

''मैं समझा, उनकी कोई तसवीर छपी है मैंने परचा बिलीमोरिया के हाथ से ले लिया। उलट-पलट करके देखा, मगर उनकी शबीह[36] नज़र न आई मैंने बिलीमोरिया से पूछा : 'क्यों भैया, कहाँ है उनका फ़ोटो ?'

''बिलीमोरिया की जान गिलबर्ट स्टाइल की बारीक-बारीक मूँछें मुसकराहट के बायस उसके होंठ पर कुछ फैल-सी गईं : 'फ़ोटो-वोटो नहीं है उनका इश्तिहार छपा है।'

''मैंने पूछा : 'इश्तिहार ? कैसा इश्तिहार ?'

''बिलीमोरिया ने पर्चा लिया और मुझे एक लंबा कालम दिखाकर कहा : 'मिस्टर जिनाह को एक मोटर मैकेनिक की ज़रूरत है, जो उनके गेराज का सारा क़ाम सँभाल सके।'

मैंने अख़बार में वह जगह देखी, जहाँ बिलीमोरिया ने उँगली रखी हुई थी और यूँ 'ओह' किया, जैसे मैंने एक ही नज़र में उस इश्तिहार का सारा मज़मून पढ़ लिया हो, हालाँकि वाक़ा यह है कि ख़ाकसार को अंग्रेज़ी उतनी ही आती थी, जितनी डी बिलीमोरिया को उर्दू।

''जैसा कि मैं अर्ज़ कर चुका हूँ, मेरी मोटर ड्राइवरी सिर्फ़ अलिफ़-ऐसी सीधी सड़क तक महदूद थी। मोटर की मैकेनिज़्म क्या होती है, इसके मुताल्लिक़, हराम है, जो मुझे कुछ इल्म हो। सैल्फ़ दबाने पर इंजन क्यों स्टार्ट होता है, उस वक़्त अगर मुझसे कोई यह सवाल करता तो मैं यक़ीनन यह जवाब देता कि यह क़ानूने-मोटर है। सैल्फ़ दबाने पर बाज़ औक़ात इंजन क्यों स्टार्ट नहीं होता, इस सवाल का भी जवाब यह होता कि यह भी क़ानूने-मोटर है, जिसमें इंसानी अक्ल को कोई दख़ल नहीं।

''आपको हैरत होगी कि मैंने बिलीमोरिया से जिनाह साहब के बँगले का पता वग़ैरह नोट कर लिया और दूसरे रोज़ सुबह उनके पास जाने का इरादा कर लिया अमल में मुझे मुलाज़्मत हासिल करने का ख़याल था न उसकी तवक़्क़े थी। बस यूँ ही उनको उनकी रिहाइशगाह में क़रीब से देखने का शौक़ था। चुनांचे अपने ख़ुलूस को डिप्लोमा के तौर पर साथ लिए मैं माऊंट प्लेज़ेंट रोड वाक़े मालाबार हिल पर उनकी ख़ुशनुमा कोठी पर पहुँच गया।

''बाहर पठान पहरेदार था, कई थानों की सफ़ेद शलवार, सर पर रेशमी लुंगी, बहुत ही साफ़-सुथरा और बारौब ग्रांडियल और ताक़तवर उसको देखकर मेरी तबीयत ख़ुश हो गई। दिल-ही-दिल में कई मर्तबा मैंने उसके और अपने डेंटर[37] की पैमाइश की और यह महसूस करके मुझे बड़ी अजीब-सी तस्कीन हुई कि फ़र्क़ बहुत मामूली है, यही कोई एक आध इंच का।

''मुझसे पहले और कई उम्मीदवार जमा थे। सबके-सब अपनी अस्नाद[38] के पुलंदे बग़ल में दाबे खड़े थे मैं भी उनमें शामिल हो गया। बड़े मज़े की बात है कि अस्नाद तो एक तरफ़ रहीं, मेरे पास ड्राइविंग का मामूली लाइसेंस तक नहीं था। उस वक़्त दिल सिर्फ़ इस ख़याल से धड़क रहा था कि बस अब चंद लम्हों में क़ायदे-आज़म का दीदार होनेवाला है।

''मैं अभी अपने दिल की धड़कन के मुताल्लिक़ सोच ही रहा था कि क़ायदे-आज़म पोर्च में नमूदार हुए सब अटेन्शन हो गए। मैं एक तरफ़ सिमट गया उनके साथ उनकी दराज़ क़द और दुबली-पतली हमशीरा थी, जिनकी मुतादि्दद[39] तसावीर[40] मैं अख़बारों और रिसालों में देख चुका था। एक तरफ़ हटकर उनके बाअदब सकत्तर मतलूब साहब थे।

''जिनाह साहब ने अपनी यकचश्मी ऐनक आँख पर जमाई और तमाम उम्मीदवारों को बड़े ग़ौर से देखा जब उनकी मुसल्लह आँख का रुख़ मेरी तरफ़ हुआ तो मैं और ज्यादा सिमट गया।

''फ़ौरन उनकी ख़ूब जानेवाली आवाज़ बुलंद हुई मुझे सिर्फ़ इतना सुनाई दिया : 'यू ... ?'

''इतनी अंग्रेज़ी मैं जानता था। उनका मतलब था, 'तुम', मगर वह 'तुम' कौन था, जिससे वह मुख़ातिब हुए थे ... मैं समझा कि मेरे साथवाला है, चुनांचे मैंने उसे कोहनी से टहोका दिया और कहा : 'बोलो ... तुम्हें बुला रहे हैं।'

''साथवाले ने लुकनत[41] भरे लहजे में पूछा : 'साहब, मैं ?'

''क़ायदे-आज़म की आवाज़ फिर बुलंद हुई : 'नो˙˙टुम।'

''उनकी बारीक मगर लोहे-जैसी सख़्त उँगली मेरी तरफ़ थी˙˙˙मेरा तन-बदन काँप उठा : 'जी, मैं ?'

'' 'येस !' यह थ्री नॉट थ्री की गोली तो मेरे दिलो-दिमाग़ के पार हो गई। मेरा हलक़, क़ायदे-आज़म के नारे बुलंद करनेवाला हलक़, बिलकुल सूख गया। मैं कुछ न कह सका˙˙ मगर जब उन्होंने अपना मोनोकल आँख से उतारकर 'आल राइट' किया तो मैंने महसूस किया कि शायद मैंने कुछ कहा था, जो उन्होंने सुन लिया था, या वह मेरी कैफ़ियत भाँप गए थे और मेरे नुत्क़[42] को मज़ीद अज़ीयत[43] से बचाने के लिए उन्होंने 'आल राइट' कह दिया था।

''पलटकर उन्होंने अपने हसीनो-जमील और सेहतमंद सेक्रेटरी की तरफ़ देखा आर उससे कुछ कहा। इसके बाद वह अपनी हमशीरा के साथ अंदर तशरीफ़ ले गए˙˙˙मैं अपने दिलो-दिमाग़ की गड़बड़ जल्दी-जल्दी समेटकर वहाँ से चलने ही वाला था कि मतलूब साहब ने मुझे पुकारा और कहा : 'साहब ने तुम्हें कल दस बजे यहाँ हाज़िर होने के लिए कहा है।'

''मैं मतलूब साहब से यह सवाल न कर सका कि साहब ने मुझे क्यों बुलाया है। मैं उनको यह भी न बता सका कि मैं बुलाए जाने के हरगिज़-हरगिज़ क़ाबिल नहीं हूँ, इसलिए कि मैं उस मुलाज़मत का बिलकुल अहल नहीं, जिसके लिए क़ायदे-आज़म ने इश्तिहार दिया था˙˙ मतलूब साहब भी अंदर चले गए और मैं घर लौट आया।

''दूसरे रोज़ सुबह दस बजे फिर दरे-दौलत हाज़िर हुआ˙˙ जब इत्तिला कराई तो क़ायदे-आज़म के ख़ुशपोश, हसीनो-जमील और सेहतमंद सेक्रेटरी मतलूब साहब तशरीफ़ लाए और उन्होंने मुझे यह हैरतअंगेज़ मुज़दा[44] सुनाया कि साहब ने मुझे पसंद किया है, और कि मैं फ़ौरन गैराज का चार्ज ले लूँ˙˙˙यह सुनकर मेरे जी में आई कि उन पर अपनी क़ाबिलियत का सारा पोल खोल दूँ और साफ़-साफ़ कह दूँ : 'हज़रत, क़ायदे-आज़म को इस ख़ाकसार के मुताल्लिक़ ग़लतफ़हमी हुई है˙˙˙मैं तो महज़ तफ़्रीहन यहाँ चला आया था˙˙ यह आप गैराज का बोझ इस नाअहल[45] के काँधों पर क्यों धर रहे हैं˙˙˙' मगर जाने क्यों, मैं कुछ न बोला˙˙˙इसका नतीजा यह हुआ कि आनन-फ़ानन गैराज का प्रधान बना दिया गया। चाबियाँ मेरे हवाले कर दी गईं।

''चार कारें थीं, मुख़्तलिफ़ मेक की˙˙˙और मुझे सिर्फ़ सेठ आरदेशर ईरानी की ब्यूक चलाना आती थी, और वह भी अलिफ़-जैसी सीधी सड़क पर˙˙मालाबार हिल तक पहुँचने में कई मोड़ थे, कई ख़म और मोटर में आज़ाद को सिर्फ़ अपनी अकेली जान नहीं ले जाना थी, उसे ख़ुदा मालूम किन-किन अहम कामों पर उस रहनुमा को लिए-लिए फिरना था, जिसकी ज़िंदगी के साथ लाखों मुसलमानों की जान वाबस्ता थी।

''मैंने सोचा, चाबियाँ वग़ैरह सब छोड़-छाड़ के भाग जाऊँ। भाग के सीधे घर पहुँचूँ, वहाँ से अपना असबाब उठाऊँ और टिकट कटा के दिल्ली का रुख़ करूँ˙˙मगर फिर

सोचता, यह दुरुस्त नहीं; बेहतर यही है कि बिला कमोकास्त[46] जिनाह साहब को सारे हक़ायक़[47] से बाख़बर कर दूँ और माफ़ी माँगकर इंसानों की तरह वापिस उस जगह चला जाऊँ जो कि मेरा असल मक़ाम था... मगर आप यक़ीन मानिए, मुझे पूरे छः महीने तक इसका मौक़ा न मिला..."

मैंने पूछा : "वह कैसे ?"

मुहम्मद हनीफ़ आज़ाद ने जवाब दिया : "आप सुन लीजिए... दूसरे रोज़ हुक्म हुआ कि आज़ाद मोटर लाए... वह जो ऐसे मौक़ों पर ख़ता हुआ करता है, ख़ता होते-होते रह गया... मैंने इरादा कर लिया था कि जूँही साहब सामने आएँगे, सलाम करके गैराज की चाबियाँ उनके हवाले कर दूँगा और उनके क़दमों में गिर पड़ूँगा, लेकिन ऐसा न हो सका... वह पोर्च में तशरीफ़ लाए तो इस बंदा-ए-नाबकार[48] के मुँह से उनके रोब के मारे एक लफ़्ज़ भी निकल न सका... इसके अलावा उनके साथ फ़ातिमा साहिबा थीं... औरत के सामने किसी के क़दमों में गिरना, मंटो साहब, कुछ बहुत वह था..."

मैंने आज़ाद की मोटी-मोटी आँखों में शर्म के लाल-लाल डोरे देखे और मुसकरा दिया : "ख़ैर... फिर क्या हुआ ?"

"हुआ यह मंटो साहब कि ख़ाकसार को मोटर स्टार्ट करनी ही पड़ी... नई पेकार्ड थी... अल्लाह का नाम लेकर अटकल पच्चू स्टार्ट तो कर दी और बड़ी सफ़ाई से कोठी के बाहर भी ले गया, पर जब मालाबार हिल से नीचे उतरते वक़्त लाल बत्तीवाले मोड़ के पास पहुँचा... जानते हैं ना लाल बत्तीवाला मोड़ ?"

मैंने इस्बात में सर हिलाया : "हाँ-हाँ !"

"बस साहब, वहाँ मुश्किल पैदा हो गई... उस्ताद बुद्धन ने कहा थाः 'ब्रेक दबाकर मामला ठीक कर लिया करो...'' अफ़रा-तफ़री के आलम में कुछ ऐसे अनाड़ीपन से ब्रेक दबाई कि गाड़ी एक धचके के साथ रुक गई... क़ायदे-आज़म के हाथ से उनका सिगार गिर पड़ा। फ़ातिमा जिनाह साहिबा उछलकर दो बालिश्त आगे आ गईं और लगीं मुझे गालियाँ देने... काटो तो लहू नहीं मेरे बदन में। हाथ काँपने लगे। दिमाग़ चकराने लगा... क़ायदे-आज़म ने सिगार उठाया और अंग्रेज़ी में कुछ कहा, जिसका ग़ालिबन यह मतलब था कि वापिस ले चलो... मैंने हुक्म की तामील की... वापिस कोठी पहुँचने के बाद उन्होंने दूसरी गाड़ी और दूसरा ड्राइवर तलब फ़रमाया और जहाँ जाना था, चले गए... इस वाक़े के बाद छः महीने तक मुझे उनकी ख़िद्मत का मौक़ा न मिला।"

मैंने मुसकराकर पूछा : "ऐसी ही ख़िद्मत का ?"

आज़ाद भी मुसकराया : "जी हाँ... बस यूँ समझिए कि साहब ने मुझे इसका मौक़ा न दिया... दूसरे ड्राइवर थे। वह उनकी वर्दी में रहते थे। मतलूब साहब रात को बता देते थे कि कौन ड्राइवर, कब और किस गाड़ी के लिए चाहिए... मैं अगर उनसे अपने मुताल्लिक़ कुछ दरयाफ़्त करता तो वह कोई ख़ातिर ख़्वाह जवाब न दे सकते। यह मुझे बाद में मालूम हुआ... साहब के दिल में क्या है, इसके मुताल्लिक़ कोई भी वुसूक़ से कुछ नहीं कह सकता था और न उनसे कोई किसी अम्र के बारे में इस्तिफ़सार[49] ही कर सकता था... वह सिर्फ़

मतलब की बात करते थे और मतलब की बात ही सुनते थे ''यही वजह है कि मैं उनसे इतना क़रीब होते हुए भी यह मालूम न कर सका कि अपने गैराज का क़ायद[50] बनाकर एक बेकार पुर्ज़े की तरह उन्होंने मुझे क्यों एक तरफ़ फेंक रखा है।''

मैंने आज़ाद से कहा : ''हो सकता है, वह तुम्हें क़तअन भूल ही गए हों।''

आज़ाद के हलक़ से वज़नी क़हक़हा बुलंद हुआ : ''नहीं जनाब, नहीं'' साहब भूले से भी कभी नहीं भूलते थे—उनको अच्छी तरह मालूम था कि आज़ाद छ: महीने से गैराज में पड़ा रोटियाँ तोड़ रहा है '' और मंटो साहब, जब आज़ाद रोटियाँ तोड़े तो वह मामूली रोटियाँ नहीं होतीं'''यह तनो-तोश[51] मुलाहिज़ा फ़रमा लीजिए।''

मैंने आज़ाद की तरफ़ देखा—सन सैंतीस-अड़तीस में जाने उसका क्या तनो-तोश था, मगर मेरे सामने एक काफ़ी मज़बूत और तनोमंद आदमी बैठा था, जिसको आप एक एक्टर की हैसियत से यक़ीनन जानते होंगे। तक़सीम से पहले वह फ़िल्मों में काम करता था, और आजकल यहाँ लाहौर में अपने दूसरे एक्टर भाइयों के साथ फ़िल्मी सनअत की ज़बूंहाली[52] का शिकार किसी-न-किसी हीले गुज़र औक़ात कर रहा है।

मुझे पिछले बरस एक दोस्त से मालूम हुआ था कि यह मोटी-मोटी आँखों, सियाह रंग और कसरती बदनवाला एक्टर मुहम्मद हनीफ़ आज़ाद एक मुद्दत तक क़ायदे-आज़म मुहम्मद अली जिनाह का मोटर ड्राइवर रह चुका है। चुनांचे उसी वक़्त से मेरी निगाह उस पर थी—जब कभी उससे मुलाक़ात होती, मैं उसके आक़ा का ज़िक्र छेड़ देता और उससे बातें सुन-सुनकर अपने हाफ़िज़े में जमा करता रहता।

कल जब मैंने यह मज़मून लिखने के लिए उससे कई बातें दुबारा सुनीं तो मुझे कायदे-आजम की ज़िंदगी के एक बहुत ही दिलचस्प पहलू की झलक नज़र आई मुहम्मद हनीफ आज़ाद के जेहन पर इस बात ने ख़ास असर किया था कि उसका आक़ा ताक़तपसंद था—जिस तरह अल्लामा इक़बाल को बुलंद क़ामत[53] चीज़ें पसंद थीं, उसी तरह क़ायदे-आज़म को तनोमंद चीज़ें मरग़ूब[54] थीं। यही वजह है कि अपने लिए मुलाज़िमों का इंतिख़ाब[55] करते वक्त वह जिस्मानी सेहत और ताक़त सबसे पहले देखते थे।

उस ज़माने में, जिसका ज़िक्र मुहम्मद हनीफ़ आज़ाद करता है, क़ायदे-आज़म का सेक्रेटरी मतलूब बड़ा वजीह आदमी था, जितने ड्राइवर थे, सबके-सब जिस्मानी सेहत का बेहतरीन नमूना थे। कोठी के पासबाँ[56] भी नुक़्ता-ए-नज़र से चुने गए थे ' इसका नफ़सियाती पसमंज़र इसके सिवा और क्या हो सकता है कि जिनाह मरहूम ख़ुद बहुत ही लाग़िर[57] और नहीफ़[58] थे, मगर तबीयत चूँकि बेहद मज़बूत और कसरती थी, इसलिए किसी ज़ईफ़ और नहीफ़ शै को ख़ुद से मनसूब होना पसंद नहीं करते थे।

वह चीज जो इंसान को मरग़ूब और प्यारी हो, उसके बनाव-सिंगार का वह ख़ास एहतिमाम[60] करता है। चुनांचे क़ायदे-आज़म को अपने सेहतमंद और ताक़तवर मुलाज़िमों की पोशिश का बहुत ख़याल रहता था—पठान चौकीदार को हुक्म था कि वह हमेशा अपना क़ौमी लिबास पहना करे। आज़ाद पंजाबी नहीं था, लेकिन कभी-कभी इरशाद होता था कि वह पगड़ी पहने। सर का यह लिबास बड़ा तरहदार है। चूँकि इसमे

क़दो-क़ामत में ख़ुशगवार इज़ाफ़ा होता है, इसलिए वह आज़ाद के सर पर पगड़ी बँधवाकर बहुत ख़ुश होते थे और इस ख़ुशी में उसको इनाम दिया करते थे।

अगर ग़ौर किया जाए तो जिस्म की लाग़िरी का यह एहसास ही उनकी मज़बूत और पुर वजाहत ज़िंदगी की सबसे बड़ी क़ुव्वत थी। उनके चलने-फिरने, उठने-बैठने, खाने-पीने और बोलने-सोचने में यह क़ुव्वत हर वक्त कारफ़रमा[60] रहती।

मुहम्मद हनीफ़ आज़ाद ने मुझे बताया : "क़ायदे-आज़म की ख़ुराक बहुत क़लील[61] थी ''वह इतना कम खाते थे कि मुझे बाज़ औक़ात ताज्जुब होता था कि वह जीते किस तरह हैं। अगर मुझे उस ख़ुराक पर रखा जाता तो यक़ीनन दूसरे ही रोज़ मेरी चर्बी पिघलने लगती ' हर रोज़ चार-पाँच मुर्ग़ियाँ बावर्चीख़ाने में ज़िबेह होती थी। उनमें से सिर्फ़ एक चूज़े की यख़्नी और वह भी बमुश्किल एक छोटी प्याली उनकी ख़ुराक का जुज़[62] बनती थी ''फ़्रूट हर रोज़ आता था और काफ़ी मिक़दार में आता, मगर वह सब मुलाज़िमों के पेट में जाता था'' हर रोज़ रात के खाने के बाद साहब काग़ज़ पर अशयाए-ख़ुर्दनी[63] की फ़ेहरिस्त पर निशान लगा देते थे और एक सौ का नोट मेरे हवाले कर देते थे। यह दूसरे रोज़ के तआम[64] के इख़्राजात[65] के लिए होता था।"

मैंने आज़ाद से पूछा : "हर रोज़ सौ रुपए ?"

"जी हाँ, पूरे सौ रुपए और क़ायदे-आजम कभी हिसाब तलब नहीं फ़रमाते थे। जो बाक़ी बचता, वह सब मुलाज़िमों में तक़सीम हो जाता। कभी तीस बच जाते, कभी चालीस और कभी-कभी साठ-सत्तर उनको यक़ीनन इस बात का इल्म था कि हम हर रोज़ बहुत-से रुपए गोल कर जाते हैं, मगर इसका ज़िक्र उन्होंने कभी न किया अलबत्ता मिस जिनाह बहुत तेज़ थीं। अक्सर बिगड़ जाती थीं कि हम सब चोर हैं और एक आने की चीज़ का एक रुपया लगाते हैं'' मगर साहब का सुलूक कुछ ऐसा था कि हम सब उनके माल को अपना माल समझने लगे थे। चुनांचे मिस जिनाह की झिड़कियाँ और घुड़कियाँ सुनकर हम अपने कान समेट लेते थे। साहब ऐसे मौक़ों पर अपनी हमशीरा से 'इट इज़ आल राइट इट इज़ आल राइट ' कहते और मामला रफ़ा-दफ़ा हो जाता एक दफ़ा साहब के 'इट इज़ आल राइट' कहने से मामला रफ़ा न हुआ और मुहतरमा मिस जिनाह ने बावर्ची को निकाल दिया। एक बावर्ची को नहीं, दोनों बावर्चियों को क़ायदे-आज़म बयक वक़्त बावर्चीख़ाने के लिए दो मुलाज़िम रखते थे। एक वह जो हिंदुस्तानी खाने पकाना जानता हो और दूसरा वह जो अंग्रेज़ी तर्ज़ के खाने पकाने की महारत रखता हो आमतौर पर हिंदुस्तानी बावर्ची बेकार पड़ा रहता था। बाज़ औक़ात महीनों के बाद उसकी बारी आती थी और उसको हुक्म मिलता था कि वह हिंदुस्तानी खाने तैयार करे, मगर क़ायदे-आज़म को उनसे दिली रग़बत[66] नहीं थी।"

आज़ाद ने बताया : "जब दोनों बावर्ची निकाल बाहर किए गए तो साहब ने कुछ न कहा। वह अपनी हमशीरा के मामलों में दख़ल नहीं दिया करते थे। चुनांचे कई दिन दोनों वक़्त का खाना ताज होटल में तनावुल[67] फ़रमाते रहे इस दौरान में हम लोगों ने ख़ूब ऐश किए। घर से मोटर लेकर नए बावर्चियों की तलाश में निकल जाते और घंटों इधर-उधर

घूम-घामकर वापिस आ जाते कि काम का कोई आदमी नहीं मिला आख़िर में मिस जिनाह के कहने पर पुराने बावर्ची वापस बुला लिए गए।"

जो शख़्स बहुत कमख़ोर हो, वह दूसरों को बहुत खाते देखकर या तो जलता-भुनता है या बहुत ख़ुश होता है क़ायदे-आज़म दूसरी क़बील के कमख़ोरों में थे। वह दूसरों को खिलाकर दिली मसर्रत महसूस करते थे। यही वजह है कि हर रोज सौ रुपए देकर वह हिसाब-किताब से बिलकुल ग़ाफ़िल हो जाते थे, मगर इसका यह मतलब नहीं कि वह इस्राफ़पसद थ।

मुहम्मद हनीफ़ आजाद एक दिलचस्प वाक़ा बयान करता है . "यह सन उनतालीस का ज़िक्र है शाम के वक़्त वर्ली की सैर हो रही थी। मैं उनकी सफ़ेद पेकार्ड आहिस्ता-आहिस्ता चला रहा था। समदर की मौजें हौले-हौले साहिल से टकरा रही थीं। मौसम में गुलाबी ख़ुनकी थी। साहब का मूड बहुत अच्छा था। मैंने मौका पाकर ईद का जिक्र छेड़ा। इससे जो मेरा मतलब था, वह ज़ाहिर है साहब फ़ौरन ताड़ गए। मैंने बैक व्यू मिरर में देखा। उनके पतले होंठ मुसकराए। न जुदा होनेवाला सिगार मुँह से निकालकर उन्होंने कहा : 'ओह वैल वैल अभी टुम एकदम मुसलमान हो गया है थोड़ा हिंदू बनो।' "

आज़ाद को चार रोज़ पहले क़ायदे-आजम मुसलमान बना चुके थे, यानी इनाम के तौर पर उसे दो सौ रुपए दे चुके थे। यही वजह है कि उन्होंने उसको थोड़ा-सा हिंदू बनने की तलक़ीन[69] की, मगर आज़ाद पर इसका कोई असर न हुआ।

इस ईद पर वह सैयद मुर्तज़ा जीलानी फ़िल्म प्रोड्यूसर के पास अपनी मुसलमानी मुस्तहकम[70] करने की ग़र्ज़ से आया था कि उससे मेरी मुलाक़ात हुई और मैंने यह मज़मून तैयार करने के लिए उससे मज़ीद मालूमात हासिल कीं।

क़ायदे-आज़म की घरेलू ज़िंदगी का सही नक़्शा मस्तूर[71] है और हमेशा मस्तूर रहेगा। आमतौर पर यही कहा जाता है लेकिन जहाँ तक मैं समझा हूँ, उनकी घरेलू ज़िंदगी उनकी सियासी ज़िंदगी में कुछ इस तरह मुद्‌ग़म[72] हो गई थी कि उसका वुजूद होने-न होने के बराबर रह गया था। बीवी थी, वह मुद्दत हुई उनसे जुदा हो चुकी थी। लड़की थी, उसने उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ एक पारसी लड़के से शादी कर ली थी।

मुहम्मद हनीफ़ आज़ाद ने मुझे बताया : "साहब को इसका सख़्त सद्‌मा पहुँचा था। उनकी ख़्वाहिश थी कि वह किसी मुसलमान से शादी करे, ख़्वाह वह किसी भी रंग व नस्ल का हो, लेकिन उनकी लड़की यह जवाज़ पेश करती थी कि जब साहब को अपनी शरीके-ज़िंदगी मुंतख़ब करने में आज़ादी हासिल थी तो वह यह आज़ादी उसे क्यों नहीं बख़्शते।"

क़ायदे-आज़म ने बंबे के एक बहुत बड़े पारसी की लड़की से शादी की थी। यह तो सबको मालूम है, लेकिन यह बात बहुत कम आदमियों को मालूम है कि पारसी इस रिश्ते से बहुत नाख़ुश थे। उनकी यह कोशिश और ख़्वाहिश थी कि वह जिनाह साहब से बदला लें—चुनांचे बाज़ दक़ीक़ारस[73] असहाब का यह कहना है कि क़ायदे-आज़म की लड़की का

पारसी के लड़के से शादी करना एक मुनज़्ज़म[74] साज़िश का नतीजा है।

मैंने जब इसका ज़िक्र आज़ाद से किया तो उसने कहा: "अल्लाह बेहतर जानता है··· मुझे सिर्फ़ इस क़दर मालूम है कि साहब की ज़िंदगी में उनकी बीवी की मौत के बाद यह दूसरा बड़ा सद्मा था··· जब उनको मालूम हुआ कि उनकी साहबज़ादी ने एक पारसी से शादी कर ली है तो वह बेहद मुतास्सिर हुए उनका चेहरा इस क़दर लतीफ़ था कि मामूली-से-मामूली वाक़ा भी उस पर उतार-चढ़ाव पैदा कर देता था, जो दूसरों को फ़ौरन नज़र आ जाता था। उनके माथे पर हल्की-सी शिकन एक ख़ौफनाक ख़त की सूरत इख़्तियार कर जाती थी उनके दिलो-दिमाग़ पर इस हादिसे से क्या गुज़री, इसके मुताल्लिक़ मरहूम की कुछ कह सकते थे। हमें सिर्फ़ ख़ारिजी[75] ज़रियों से जो कुछ मालूम हुआ, उसकी बिना पर कह सकते हैं कि वह बहुत मुज़्तरिब रहे। पंद्रह रोज़ तक वह किसी से न मिले। इस दौरान में उन्होंने सैकड़ों सिगार फूँक डाले होंगे और सैकड़ों मील अपने कमरे में इधर-उधर चक्कर लगाकर तय किए होंगे सोच-विचार के आलम में उनको इधर-उधर टहलने की आदत थी। रात के सन्नाटे में वह अक्सर पुख़्ता और बेदाग़ फ़र्श पर एक अर्से तक टहलते रहते थे नपे-तुले कदम, इधर-से-उधर एक फ़ासला, ख़ामोश फ़ज़ा। जब वह चलते तो उनके सफ़ेद और काले या सफ़ेद और ब्राऊन शूज़ एक अजीब क़िस्म की यक आहंग टकटक पैदा करते जैसे क्लॉक मुऐयन वक़्फ़ों के बाद अपनी ज़िंदगी की ख़बर दे रहा हो क़ायदे-आज़म को अपने जूतों से प्यार था, इसलिए कि वह उनके क़दमों में होते थे और हर वक़्त उनके इशारों पर चलते थे पंद्रह दिन मुसलसल जेहनी और रूहानी तौर पर मुज़्तरिब रहने के बाद एक रोज़ वह एकाएकी नमूदार हुए। उनके चेहरे पर अब उस सद्मे का कोई असर बाक़ी नहीं था। उनकी गर्दन, जिसमें फ़र्ते-ग़म[76] के बायस ख़फ़ीफ़-सा ख़म पैदा हो गया था, फिर उसी तरह सीधी और अकड़ी हुई थी। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वह उस सद्मे को बिलकुल भूल गए थे।"

जब आज़ाद ने क़ायदे-आज़म की ज़िंदगी के उस सद्मे का ज़िक्र दुबारा छेड़ा तो मैंने उससे पूछा: "वह उस सद्मे को नहीं भूले थे, यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

आज़ाद ने जवाब दिया: "मुलाज़िमों से क्या बात छुपी रहती है कभी-कभी वह बड़ा संदूक खुलवाने का हुक्म देते। जस्त के उस जहाज़ी संदूक़ में बेशुमार कपड़े थे उनकी मरहूम बीवी के और नाफ़रमाबरदार लड़की के, जब वह छोटी-सी बच्ची थी कपड़े बाहर निकाले जाते तो साहब बड़ी संगीन ख़ामोशी से उनको देखते रहते। एकदम उनके दुबले-पतले और शफ़ाफ़ चेहरे पर ग़मो-अंदोह[77] की लकीरों का एक जाल-सा बिखर जाता··· 'इट इज़ आल राइट··· इट इज़ आल राइट' कहकर वह अपनी आँखों से मोनोकल उतारते और उसे पोंछते हुए एक तरफ़ चल देते।"

मुहम्मद हनीफ़ आज़ाद के बयान के मुताबिक़ क़ायदे-आज़म की तीन बहनें थीं। "फ़ातिमा जिनाह, रहमत जिनाह··· तीसरी का नाम मुझे याद नहीं, जो डोंगरी में रहती थीं··· चौपाटी कार्नर, नज़्द चनाई मोटर वर्क्स पर रहमत जिनाह मुक़ीम थीं। उनके शौहर कहीं मुलाज़िम थे। आमदन क़लील थी। साहब हर महीने मुझे एक बंद लिफ़ाफ़ा देते,

जिसमें कुछ करेंसी नोट होते। इसके अलावा वह कभी-कभी मुझे एक पार्सल-सा भी देते, जिसमें ग़ालिबन कपड़े वग़ैरह होते। ये चीज़ें मुझे रहमत जिनाह के यहाँ पहुँचाना होती थीं। यहाँ मिस फ़ातिमा जिनाह और ख़ुद साहब भी कभी-कभी जाया करते थे… उनकी वह बहन, जिनका नाम मुझे याद नहीं और जो डोंगरी में रहती थीं, शादीशुदा थीं। उनके मुताल्लिक़ मुझे सिर्फ़ इतना मालूम है कि वह आसूदा[78] हाल थीं और किसी इमदाद की मोहताज नहीं थीं… साहब का एक भाई भी था और उसकी मदद वह बाक़ाइदा करते थे, मगर उसको घर में आने की इजाज़त नहीं थी।"

क़ायदे-आज़म के इस भाई को मैंने बंबे में देखा है—सेवाय बार में एक शाम को मैंने देखा कि क़ायदे-आज़म की शक्लो-सूरत का एक आदमी रम के आधे पैग का आर्डर दे रहा है। वैसा ही नाक-नक्शा, वैसे ही उलटे कंघी किए हुए बाल, क़रीब-क़रीब वैसी ही सफ़ेद लट—मैंने उसके बारे में किसी से इस्तिफ़सार किया तो मालूम हुआ कि वह मिस्टर मुहम्मद अली जिनाह का भाई अहमद अली जिनाह है—मैं बहुत देर उसको देखता रहा। रम का आधा पैग उसने बड़ी शान से आहिस्ता-आहिस्ता लबों के ज़रिए मे चूस-चूमकर ख़त्म किया। बिल जो एक रुपए से कम था, यूँ अदा किया जैसे एक बहुत बड़ी रकम हो। उसकी निशस्त से मालूम होता था कि वह बंबे की एक घटिया बार के बजाय ताजमहल होटल के शराबख़ाने में बैठा है।

गाँधी-जिनाह तारीख़ी मुलाक़ात से कुछ देर पहले बंबे में मुसलमानों का एक तारीख़ी इज्तिमा[79] हुआ था। मेरे एक दोस्त इस जलसे में मौजूद थे। उन्होंने मुझे बताया था कि प्लेटफ़ार्म पर क़ायदे-आज़म अपने मख़्सूस अंदाज़ में तक़रीर कर रहे थे और बहुत दूर. उनका भाई अहमद अली जिनाह आँखों पर मोनोकल लगाए कुछ इस अंदाज़ से खड़ा था जैसे वह अपने भाई के अल्फ़ाज़ दाँतों तले चबा रहा है।

आज़ाद ने बताया : "अंदरूने-ख़ाना खेलों में क़ायदे-आज़म को सिर्फ़ बिलियर्ड से दिलचस्पी थी… कभी-कभी जब उनको इस खेल से शुग़्ल फ़रमाने की ख़्वाहिश होती तो वह बिलियर्डरूम खुलवाने का हुक्म देते… सफ़ाई यूँ तो हर कमरे में हर रोज़ होती थी, मगर जब वह किसी ख़ास कमरे में जाने का इरादा फ़रमाते तो मुलाज़्मीन उनके दाख़िले से पहले अपना अच्छी तरह इत्मीनान कर लेते कि हर चीज़ साफ़-सुथरी और ठीक-ठाक है… बिलियर्डरूम में मुझे जाने की इजाज़त थी, इसलिए कि मुझे भी इस खेल से थोड़ा-बहुत शग़फ़[80] है… बारह गेंदें उनकी ख़िद्मत में पेश कर दी जातीं। उनमें से वह इंतिख़ाब करते और खेल शुरू हो जाता… मुहतरमा फ़ातिमा जिनाह पास होतीं। साहब सिगार सुलगाकर होंठों में दबा लेते और उस गेंद की पोज़ीशन को अच्छी तरह जाँचते, जिसके ठोकर लगाना होती थी। इस जाँच-पड़ताल में वह कई मिनट सर्फ़ करते। कभी एक ज़ाविए से देखते, कभी दूसरे ज़ाविए से। हाथ में क्यू को तौलते, अपनी पतली-पतली उँगलियों पर उसे सारंगी के गज़ की तरह फेरते, ज़ेरे-लब कुछ कहते, शस्त बाँधते और अगर कोई दूसरा मुनासिब व मोज़ूँ ज़ाविया उनके जेहन में आ जाता तो वह अपनी ज़रब रोक लेते। फिर हर तरफ़ से अपना पूरा इत्मीनान कर लेने के बाद जब वह क्यो गेंद के साथ टकराते और नतीजा उनके हिसाब के मुताबिक़ निकलता तो अपनी बहन की तरफ़ फ़ातहाना अंदाज़ में

देखकर मुसकरा देते।"

सियासत के खेल में भी कायदे-आज़म इसी तरह मोहतात[81] थे। वह एकदम कोई फ़ैसला नहीं करते थे। हर मसले को वह बिलियर्ड के मेज़ पर पड़ी हुई गेंद की तरह हर जाविए से बग़ौर देखते थे और सिर्फ़ उसी वक़्त अपने क्यों को हरकत में लाकर ज़रब लगाते थे, जब उनको उसके कारगर होने का पूरा वुसूक़ होता था। वह वार करने से पहले शिकार को अपनी निगाहों में अच्छी तरह तौल लेते थे, उसकी निशस्त के तमाम पहलुओं पर ग़ौर कर लेते थे, फिर उसकी जसामत[82] के मुताबिक़ हथियार मुंतख़ब करते थे। वह ऐसे निशानची नहीं थे कि पिस्तौल उठाया और दाग़ दिया, इस यक़ीन के साथ कि निशाना ख़ता नहीं जाएगा—निशानची की हर मुमकिन ख़ता शस्त बाँधने से पहले उनके पेशे-नजर रहती थी।

आज़ाद के बयान के मुताबिक़ क़ायदे-आज़म आम मुलाक़ातियों से परहेज़ करते थे : "दूर अज़ कार बातों से उन्हें सख़्त नफ़रत थी। सिर्फ़ मतलब की बात और वह भी इंतिहाई इख़्तिमार के साथ सुनने और करने की आदत थी। यही वजह है कि उनके ख़ास कमरे में, जहाँ बहुत कम लोगों को दाख़िले की इजाज़त थी, सिर्फ़ एक सोफ़ा था। इस सोफ़े के साथ एक छोटी-सी तिपाई थी। इसमें साहब अपने सिगार की राख फेंकते थे। सोफ़े के बिलमुक़ाबिल दो शोकेस थे। इनमें वह क़ुरआन मजीद रखे रहते थे जो उनके अक़ीदतमंदों ने उनको तोहफ़े के तौर पर दिए थे। उस कमरे में उनके ज़ाती काग़जात भी महफ़ूज़ थे। आमतौर पर वह अपना ज़्यादा वक़्त इसी कमरे में गुज़ारते थे। उस कमरे में कोई मेज़ नहीं थी मतलूब या कोई और शख़्स जब भी उस कमरे में बुलाया जाता तो उसे दरवाज़े में खड़ा रहना पड़ता। वहीं वह साहब के अहकाम सुनता और उल्टे पाँव चला जाता...सोफ़े के ख़ाली हिस्से पर उनके ज़ेरे-मुताला काग़ज़ात बिखरे रहते। कोई ख़त लिखवाना होता तो मतलूब को या स्टेनो को बुलवाते और ख़त या बयान की इबारत बोल देते उनके लहजे में एक क़िस्म की करख़्तगी[83] थी। मैं अंग्रेज़ी ज़बान के मिज़ाज से वाक़िफ़ नहीं हूँ, लेकिन जब वह बोलते तो ऐसा महसूस होता कि वह ज़ोर न देनेवाले अल्फ़ाज़ पर भी ज़ोर दे रहे हैं।"

आज़ाद के मुख़्तलिफ़ बयानातों से यही मालूम होता है कि क़ायदे-आज़म की जिस्मानी कमज़ोरी का ग़ैर शऊरी या तहतुश्शऊरी[84] एहसास ही उन करख़्त मज़ाहिर[85] का बायस था। उनकी ज़िंदगी हबाब बरआब[86] थी, मगर वह एक बहुत बड़ा भँवर बन के रहते थे—बाज़ असहाब का तो यह कहना है कि वह इतने दिन सिर्फ़ इसी क़ुव्वत के बल पर जिए, जिस्मानी कमज़ोरी के इस एहसास की क़ुव्वत पर।

मुहम्मद हनीफ़ आज़ाद के बयान के मुताबिक़ बहादुर यारजंग मरहूम क़ायदे-आज़म के बेहतरीन दोस्तों में से थे : "सिर्फ़ उन्हीं से उनके मरासिम[87] बहुत बेतकल्लुफ़ाना थे। वह जब भी उनके यहाँ क़याम करते तो दोनों शख़्सियतें ठेट दोस्ताना अंदाज में क़ौमी और सियासी मसाइल पर ग़ौर करतीं। उस वक़्त क़ायदे-आज़म अपनी आमरियत[88] कुछ अर्से के लिए अपनी शख़्सियत से जुदा कर देते...मैंने सिर्फ़ यही एक शख़्स देखा, जिससे साहब

हमजोली की तरह बातें करते थे। ऐसा महसूस होता था, जैसे वह उनके बचपन के साथी हैं जब वह आपस में बातें करते तो कई मर्तबा क़ैदोबंद[89] से आज़ाद क़हक़हों की आवाज़ सुनाई देती बहादुर यार जंग के अलावा मुस्लिम लीग से दूसरे सरबर आवर्दा अराकीन[90], मिसाल के तौर पर राजा महमूदाबाद, आई.आई. चंद्रीगर, मौलाना ज़ाहिद हुसैन, नवाबज़ादा लियाक़त अली ख़ाँ, नवाब इस्माईल और अली इमाम साहब अक्सर तशरीफ़ लाते थे, लेकिन साहब उनसे बिलकुल दफ़्तरी अंदाज़ में पेश आते वह बेतकल्लुफ़ी कहाँ, जो बहादुर यार जंग के लिए मख़्सूस[91] थी।"

मैंने आज़ाद से पूछा : "ख़ान लियाक़त अली खाँ तो अक्सर आते होंगे?"

आज़ाद ने जवाब दिया : "जी हाँ साहब उनसे इस तरह पेश आते थे जैसे वह उनके सबसे होनहार शागिर्द हों। और ख़ान साहब भी बड़े अदब और बड़ी सआदतमंदी से उनका हर हुक्म सुनते और बजा लाते थे जब उनकी तलबी होती तो वह मुझसे कभी-कभी पूछ लिया करते : 'कहो आज़ाद, साहब का मूड कैसा है ' साहब का जैसा मूड होता, मैं बता दिया करता जब साहब के मूड में कोई ख़राबी वाक़े हो जाती तो कोठी के तमाम दरो-दीवार को फ़ौरन पता चल जाता था।"

क़ायदे-आजम अपने मुलाज़्मीन के किरदारो-अत्वार[92] का बहुत ख़याल रखते थे। जिस तरह उनको तन के मैल से नफ़रत थी, उसी तरह वह मन के मैल से मुतनफ़्फ़िर[93] थे मतलूब उनको बहुत पसंद था, मगर जब उनको मालूम हुआ कि वह एक रज़ाकार लड़की से मुहब्बत की पेंगें बढ़ा रहा है तो उनको बहुत कोफ़्त हुई। वह इस क़िस्म की कोफ़्त ज़्यादा देर तक बर्दाश्त नहीं करते थे—मतलूब की तलबी हुई और उसे फ़ौरन मुलाज़्मत से अलहदा कर दिया गया, मगर उसको रुख़्सत करने के बाद वह उससे इस तरह पेश आए, जिस तरह दोस्तों से आते हैं।

आज़ाद बयान करता है : "एक बार मैं रात के दो बजे सैरो-तफ़्रीह से फ़ारिग़ होकर कोठी आया। वह दिन ऐसे थे, जब रगों में जवानी के ख़ून को खौलाने में एक अजीब क़िस्म की लज़्ज़त महसूस हुआ करती है मेरा ख़याल था कि साहब को मेरे देर से आने का इल्म तक न होगा, मगर उनको किसी-न-किसी तरह पता चल गया। दूसरे रोज़ ही मुझे तलब फ़रमाया और अंग्रेज़ी में कहा : 'तुम अपना कैरेक्टर ख़राब कर रहे हो ' फिर टूटी-फूटी उर्दू में इरशाद हुआ : 'वैल, अब टुम्हारा शाडी बनाएगा ' चुनांचे चार माह बाद जब वह बंबई से देहली इजलास में शिरकत के लिए तशरीफ़ ले गए तो उनकी हिदायत के मुताबिक़ मेरी शादी हो गई। और मेरी ख़ुशक़िस्मती है कि महज़ उनकी वजह से मेरा रिश्ता सादात[94] ख़ानदान में हुआ, वर्ना मैं तो शेख़ था लड़कीवालों ने मुझे इसलिए क़ुबूल किया कि 'आज़ाद क़ायदे-आज़म का ग़ुलाम है।' "

मैंने आज़ाद से दफ़्अतन एक सवाल किया : "क्या तुमने कभी क़ायदे-आज़म के मुँह से 'आई एम सौरी' सुना था?"

आज़ाद ने अपनी मोटी तनोमंद गर्दन ज़ोर से नफ़ी में हिलाई : "नहीं कभी नहीं " फिर वह मुसकराया : "अगर इत्तिफ़ाक़ से कभी 'आई एम सौरी' उनके मुँह से निकल जाता

तो मुझे यक़ीन है कि डिक्शनरी में से वह यह लफ़्ज़ हमेशा-हमेशा के लिए मिटा देते।"

मेरा ख़याल है, आज़ाद के इस बेसाख़्ता जुमले में क़ायदे-आज़म मुहम्मद अली जिनाह का पूरा किरदार आ जाता है।

मुहम्मद हनीफ़ आज़ाद ज़िंदा है, उस पाकिस्तान में जो उसके क़ायदे-आज़म ने उसे अता किया है और जो अब उसके होनहार शागिर्द लियाक़त अली ख़ाँ की क़यादत[95] में दुनिया के नक़्शे पर ज़िंदा रहने की जद्दो-जहद कर रहा है—उस आज़ाद ख़ित्ता-ए-ज़मीन[96] पर आज़ाद पंजाब आर्ट पिक्चर्ज़ के दरवाज़े के बाहर पानवाले की दूकान के पास टूटी हुई खाट पर बैठा अपने आक़ा का मुंतज़िर रहता है और उस अच्छे वक़्त के लिए दस्त ब दुआ रहता है, जब वक़्त पर उसकी तनख़्वाह मिल जाया करे। अब वह क़ायदे-आज़म की तलक़ीन के मुताबिक़ हिंदू बनने के लिए भी तैयार है, बशर्ते कि उसको इसका मौक़ा दिया जाए।

वह बेहद मुतफ़क्किर था, जब मैंने उससे क़ायदे-आज़म की ज़िंदगी के बारे मे उसके तासुरात[97] के मुताल्लिक़ इस्तिफ़सार किया—उसके पास पान के पैसे भी नहीं थे।

मैंने जब उसके तफ़क्कुरात[98] इधर-उधर की बातों से किसी क़दर दूर किए तो उसने एक आह भरकर कहा : "साहब इंतिक़ाल फ़रमा गए हैं ...काश ! उनके इस सफ़र में मैं भी शरीक होता... उनकी सफ़ेद ओपन पेकार्ड होती, उसका व्हील मेरे हाथों में होता और मैं आहिस्ता-आहिस्ता उनको मंज़िले-मक़सूद तक ले जाता ...उनकी नाज़ुक तबीयत धचकों को बर्दाश्त नहीं कर सकती थी... मैंने सुना है, वल्लाहो आलम दुरुस्त है या ग़लत, जब उनका जहाज़ कराची एयरोड्रम पर पहुँचा तो उनको गवर्नमेंट हाऊस तक पहुँचाने के लिए जो एंबूलैंस थी, उसका इंजन दुरुस्त हालत में नहीं था। वह कुछ दूर चलकर रुक गई थी... उस वक़्त मेरे साहब को किस क़दर कोफ़्त हुई होगी !"

आज़ाद की मोटी-मोटी आँखों में आँसू थे।

---

1. ताक़त; 2. पूर्ति; 3. घटना; 4. भूमिका; 5. निस्वार्थी, 6. निस्वार्थता; 7. विश्वास; 8 नायक, अध्यक्ष, 9. उपाधि; 10. रोने के लिए किसी वाद्य की ज़रूरत नहीं; 11. सामूहिक; 12. अमर; 13. नारे लगाना; 14. नेता व सदस्य; 15. अनुशासित; 16. अनुशासन; 17. स्वभाव से; 18. प्रसन्न; 19. विश्लेषण; 20. कमज़ोर; 21. दुर्बलता; 22. मुट्ठी भर हड्डियों; 23. दुर्बल; 24. हाथ व बाँह; 25. देश-सेवा; 26. पागलपन; 27. पुंज, पुतला; 28. पारस्परिक विरोधों; 29. चमकता; 30, अनजान; 31. अल्पसंख्या; 32. वर्णन, चर्चा; 33. माँग; 34. सार्वजनिक; 35. उपासक, भक्त; 36. झलक; 37. क़द-काठी; 38. प्रमाण-पत्रों; 39. बहुत-सी; 40. तसवीरें; 41. हकलाहट; 42. वाक्शक्ति; 43. परेशानी; 44. ख़ुशख़बरी; 45. नालाइक; 46. ज्यों की त्यों; 47. सच्चाइयाँ; 48. नाकारा इंसान; 49. पूछताछ; 50. क़ैदी; 51. मोटा-ताज़ापन; 52. बर्बादी; 53. क़दवाली; 54. पसंद; 55. चुनाव, चयन; 56. रक्षक, देखभाल करनेवाले; 57. कमज़ोर; 58. हल्का, कमज़ोर; 59. व्यवस्था; 60. कार्यरत; 61. बहुत कम, अल्प; 62. हिस्सा; 63. खाद्य पदार्थ; 64. भोजन, खाद्य पदार्थ; 65. ख़र्चे; 66. प्रेम; 67. भोजन करने, भक्षण; 68. ख़र्चीले; 69. निर्देश; 70. पक्का, मज़बूत; 71. छुपा हुआ, रहस्य;

72. मिला हुआ, डूबा हुआ; 73. बारीकी से देखनेवाले, कुशाग्र बुद्धि; 74. सुनियोजित; 75 बाह्य; 76 दुख की अधिकता, 77 चिंताएँ, 78 खाता-पीता; 79. सम्मेलन; 80. लगाव, शौक; 81. सतर्क; 82 आकार; 83. कठोरता, 84. चेतना; 85. प्रदर्शन, 86 पानी के बुलबुले की तरह; 87 संबंध, 88. तानाशाही; 89. नियंत्रण, 90. मुख्य सदस्य, 91. विशिष्ट, 92. तौर-तरीके, 93 नफरत करनेवाला, 94. मुस्लिमों की एक उच्च जाति; 95. नेतृत्व, 96. जमीन के भाग पर; 97 खयायात, विचारधारा, 98. चिंताएँ।

शहीद साज़

मैं गुजरात का काठियावाड़ का रहनेवाला हूँ। ज़ात का बनिया हूँ। पिछले बरस जब तक़सीमे-हिंदुस्तान पर टंटा हुआ तो मैं बिलकुल बेकार था। माफ़ कीजिएगा, मैंने लफ़्ज़ 'टंटा' का इस्तेमाल किया। इसमें कोई हर्ज नहीं, इसलिए कि उर्दू ज़बान में बाहर के अल्फ़ाज़ आने ही चाहिएँ, चाहे वह गुजराती ही के क्यों न हों।

जी हाँ, मैं बिलकुल बेकार था। बस कोकीन का थोड़ा-सा कारोबार चल रहा था, जिससे कुछ आमदनी की सूरत हो ही जाती थी। जब बँटवारा हुआ और इधर के आदमी उधर और उधर के आदमी इधर हज़ारों की तादाद में आने-जाने लगे तो मैंने सोचा : 'चलो पाकिस्तान चलें कोकीन का न सही, कोई और कारोबार शुरू कर देंगे ' चुनांचे वहाँ से चल पड़ा और रास्ते में मुख़्तलिफ़ धंधे करता पाकिस्तान पहुँच गया।

मैं तो चला ही इस नीयत से था कि कोई मोटा कारोबार करूँगा। चुनांचे पाकिस्तान पहुँचते ही मैंने हालात को अच्छी तरह जाँचा और अलाटमेंटों का सिलसिला शुरू कर दिया। मसका-पालिश मुझे आता ही था। चिकनी-चुपड़ी बातें कीं, एक-दो आदमियों से याराना गाँठा और एक छोटा-सा मकान अलाट करा लिया। इससे काफ़ी मुनाफ़ा हुआ तो मैं मुख़्तलिफ़ शहरों में फिरकर मकान और दूकानें अलाट कराने का धंधा करने लगा।

काम कोई भी हो, इंसान को मेहनत करना पड़ती है। मुझे भी चुनाँचे अलाटमेंटों के सिलसिले में काफ़ी तगोदो[1] करना पड़ी। किसी के मसका लगाया, किसी की मुट्ठी गर्म की। किसी को खाने की दावत दी, किसी को नाच-रंग की। ग़र्ज़ेके बेशुमार बखेड़े थे दिन भर ख़ाक छानता, बड़ी-बड़ी कोठियों के फेरे करता और शहर का चप्पा-चप्पा देखकर अच्छा-सा मकान तलाश करता, जिसके अलाट कराने से ज़्यादा मुनाफ़ा हो।

इंसान की मेहनत कभी ख़ाली नहीं जाती। चुनांचे एक बरस के अंदर-अंदर मैंने लाखों रुपए पैदा कर लिए अब ख़ुदा का दिया सबकुछ था। रहने को बेहतरीन कोठी, बैंक में बेअंदाज़ा माल-पानी माफ़ कीजिएगा, मैं काठियावाड़ गुजरात का रोज़मर्रा इस्तेमाल कर गया, मगर कोई वांदा नहीं। उर्दू ज़बान में बाहर के अल्फ़ाज़ भी शामिल होने चाहिएँ जी हाँ, अल्लाह का दिया सबकुछ था। रहने को बेहतरीन कोठी, नौकर-चाकर, पेकार्ड मोटर, बैंक में ढाई लाख रुपए, कारख़ाने और दूकानें अलग यह सबकुछ तो था, लेकिन मेरे दिल का चैन जाने कहाँ उड़ गया। यूँ तो कोकीन का धंधा करते हुए भी दिल पर कभी-कभी बोझ

महसूस होता था, लेकिन अब तो जैसे दिल रहा ही न था। या फिर यूँ कहिए कि बोझ इतना आन पड़ा कि दिल उसके नीचे दब गया। पर यह बोझ किस बात का था?

आदमी ज़हीन[2] हूँ। दिमाग़ में कोई सवाल पैदा हो जाए तो मैं उसका जवाब ढूँढ़ ही निकालता हूँ... ठंडे दिल से (हालाँकि दिल का कुछ पता ही न था) मैंने ग़ौर करना शुरू किया कि इस गड़बड़ घोटाले की वजह क्या है?

औरत...? हो सकती है। मेरी अपनी तो कोई थी नहीं। जो थी, वह काठियावाड़ गुजरात ही में अल्लाह को प्यारी हो गई थी, लेकिन दूसरों की औरतें मौजूद थीं। मिसाल के तौर पर अपने माली ही की थी। अपना-अपना टेस्ट है... सच पूछिए तो औरत जवान होनी चाहिए और यह ज़रूरी नहीं कि पढ़ी-लिखी हो, डांस करना जानती हो... अप्पन को तो सारी जवान औरतें चलती हैं। यह काठियावाड़ गुजरात का मुहावरा है, जिसका उर्दू में नेमुलबदल[3] मौजूद नहीं है।

औरत का तो सवाल ही उठ गया और दौलत का पैदा ही नहीं हो सकता, इसलिए कि बंदा ज़्यादा लालची नहीं। जो कुछ है, उसी पर क़नाअत[4] है, लेकिन यह फिर दिलवाली बात क्यों पैदा हो गई थी।

आदमी ज़हीन हूँ। कोई मसला सामने आ जाए तो उसकी तह तक पहुँचने की कोशिश करता हूँ... कारख़ाने चल रहे थे, दूकानें भी चल रही थीं और रुपया आपसे आप पैदा हो रहा था... मैंने अलग-थलग होकर सोचना शुरू किया और बहुत देर के बाद इस नतीजे पर पहुँचा कि दिल की गड़बड़ सिर्फ़ इसलिए है कि मैंने कोई नेक काम नहीं किया।

काठियावाड़ गुजरात में तो मैंने बीसियों नेक काम किए थे। मिसाल के तौर पर जब मेरा दोस्त पांडो मर गया था तो मैंने उसकी रांड को अपने घर डाल लिया थाँ और दो बरस तक उसको धंधा करने से रोके रखा था। विनायक की लकड़ी की टाँग टूट गई थी तो उसे नई ख़रीद दी थी और यूँ तक़रीबन चालीस रुपए उस पर उठ गए थे। जमनाबाई को गर्मी हो गई थी और साली को, माफ़ कीजिएगा, कुछ पता ही नहीं था। मैं उसे डॉक्टर के पास ले गया था और छः महीने बराबर उसका इलाज कराता रहा था... लेकिन पाकिस्तान आकर मैंने कोई नेक काम नहीं किया था और दिल की गड़बड़ की वजह यही थी, वर्ना और सब ठीक था।

मैंने सोचा, क्या करूँ...? ख़ैरात देने का ख़याल आया तो एक रोज़ शहर में घूमा और देखा कि क़रीब-क़रीब हर शख़्स भिखारी है। कोई भूखा है, कोई नंगा... किस-किसका पेट भरूँ, किस-किसका अंग ढाँकूँ... फिर सोचा, एक लंगरख़ाना खोल दूँ, लेकिन एक लंगरख़ाने से क्या होता है और फिर अनाज कहाँ से लाता। ब्लैक मार्केट से ख़रीदने का ख़याल पैदा हुआ तो यह सवाल भी साथ ही पैदा हो गया कि एक तरफ़ गुनाह करके दूसरी तरफ़ कारे-सवाब[5] का मतलब ही क्या है।

घंटों बैठ-बैठकर मैंने लोगों के दुख-दर्द सुने। सच पूछिए तो हर शख़्स दुखी था, वह भी जो दूकानों के थड़ों पर सोते हैं और वह भी जो ऊँची-ऊँची हवेलियों में रहते हैं। पैदल चलनेवाले को यह दुख था कि उसके पास काम का कोई जूता नहीं। मोटर में बैठनेवाले को

यह दुख था कि उसके पास कार का नया मॉडल नहीं। हर शख़्स की शिकायत अपनी-अपनी जगह दुरुस्त थी, हर शख़्स की हाजत अपनी-अपनी जगह माकूल थी।

मैंने ग़ालिब की एक ग़ज़ल, अल्ला बख़्शे, शोलापुर की अमीनाबाई चतलेकर से सुनी थी। एक शेर याद रह गया है : किसकी हाजत रवा करे कोई ·· माफ़ कीजिएगा, यह शेर का दूसरा मिसरा है। हो सकता है, पहला ही हो ·· जी हाँ, मैं किस-किसकी हाजत रवा करता, जब सौ में से सौ ही हाजतमंद थे। मैंने फिर यह भी सोचा कि ख़ैरात देना कोई अच्छा काम नहीं। मुमकिन है, आप मुझसे इत्तिफ़ाक़ न करें, लेकिन मैंने मुहाजरीन[6] के कैंपों में जा-जाकर जब हालात का अच्छी तरह जायज़ा लिया तो मुझे मालूम हुआ कि ख़ैरात ने बहुत से मुहाजरीन को बिलकुल ही निकम्मा बना दिया है। दिन भर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हैं। ताश खेल रहे हैं। जुगार हो रही है ·· माफ़ कीजिएगा, 'जुगार' का मतलब है 'जुआ', यानी 'क़िमारबाज़ी' ·· गालियाँ बक रहे हैं और फ़ोकट, यानी मुफ़्त की रोटियाँ तोड़ रहे हैं ·· ऐसे लोग भला पाकिस्तान को मज़बूत बनाने में क्या मदद दे सकते हैं। चुनांचे मैं इसी नतीजे पर पहुँचा कि भीख देना हरगिज़-हरगिज़ नेकी का काम नहीं ·· फिर मैंने सोचा, नेकी के काम के लिए और कौन-सा रस्ता है।

कैंपों में धड़ाधड़ आदमी मर रहे थे। कभी हैज़ा फूटता था, कभी प्लेग। हस्पतालों में तिल धरने को जगह नहीं थी। मुझे बड़ा तरस आया। बस यूँ जानिए, क़रीब था कि एक हस्पताल बनवा देता, मगर सोचने पर इरादा तर्क कर दिया ·· पूरी स्कीम तैयार कर चुका था। इमारत के लिए टेंडर तलब करता। दाख़िले की फ़ीसों का रुपया जमा करता। अपनी ही एक कंपनी खड़ी करता और टेंडर उसके नाम निकालता। इमारत पर एक लाख रुपया सर्फ़ करने की जगह सत्तर हज़ार ख़र्च करता और पूरे तीस हज़ार बचा लेता ·· मगर यह सारी स्कीम धरी-की-धरी रह गई, जब मैंने सोचा कि अगर मरनेवालों को बचा लिया तो यह जो ज़ाइद आबादी है, वह कैसे कम होगी।

ग़ौर किया जाए तो यह सारा लफ़ड़ा ही फ़ालतू आबादी का है। 'लफ़ड़ा' का मतलब है 'झगड़ा', वह झगड़ा, जिसमें फ़ज़ीहत भी हो। इससे भी मैं इस लफ़्ज़ 'लफ़ड़ा' की पूरी मानवियत बयान नहीं कर सका।

जी हाँ, ग़ौर किया जाए तो यह सारा लफ़ड़ा ही इस फ़ालतू आबादी का बायस है। अब लोग बढ़ते जाएँगे तो इसका यह मतलब नहीं कि ज़मीनें भी साथ-साथ बढ़ती जाएँगी, आसमान भी साथ-साथ फैलता जाएगा, बारिशें ज़्यादा होंगी और अनाज ज़्यादा पैदा होगा। इसलिए मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि हस्पताल बनाना हरगिज़-हरगिज़ नेक काम नहीं।

फिर सोचा, मस्जिद बनवा दूँ, लेकिन अल्ला बख़्शे, शोलापुर की अमीनाबाई चितलेकर का गाया हुआ एक शेर याद आ गया: नाम मंजूर है तू फैज के असबाब बना ·· वह 'मंज़ूर' को 'मंजूर' और 'फ़ैज़' को 'फैज' कहा करती थी ·· नाम मंज़ूर है तू फ़ैज़ के असबाब बना, पुल बना, चाह बना, मस्जिदो-तालाब बना।

किस कमबख़्त को नामो-नमूद की ख़्वाहिश है। वह जो नाम उछालने के लिए पुल

बनाते हैं, नेकी का काम करते हैं···'ख़ाक !' मैंने कहा । नहीं यह मस्जिद बनवाने का ख़याल बिलकुल ग़लत है । बहुत-सी अलग-अलग मस्जिदों का होना भी क़ौम के हक़ में हरगिज़ मुफ़ीद नहीं हो सकता, इसलिए कि अवाम बँट जाते हैं ।

थक-हारकर मैं हज की तैयारियाँ करने लगा कि अल्ला मियाँ ने मुझे ख़ुद ही एक रास्ता बता दिया··· शहर में एक जलसा हुआ । जब जलसा ख़त्म हुआ तो लोगों में बदनज़्मी फैल गई । इतनी भगदड़ मची कि तीस आदमी हलाक हो गए···इस हादिसे की ख़बर दूसरे रोज़ अख़बारों में छपी तो मुझे मालूम हुआ कि वह हलाक नहीं, बल्कि शहीद हुए थे ।

मैंने सोचना शुरू किया । सोचने के अलावा मैं कई मौलवियों से मिला । मालूम हुआ कि वह लोग, जो अचानक हादिसों का शिकार होते हैं, उन्हें शहादत का रुतबा मिलता है, यानी वह रुतबा, जिससे बड़ा कोई और रुतबा ही नहीं···मैंने सोचा कि अगर लोग मरने के बजाय शहीद हुआ करें तो कितना अच्छा है । वह, जो आम मौत मरते हैं, ज़ाहिर है कि उनकी मौत अकारत जाती है । अगर वह शहीद हुआ करें तो कोई बात बने ।

मैंने इस बारीक बात पर और ग़ौर करना शुरू किया ।

चारों तरफ़, जिधर देखा, ख़स्ता हाल इंसान थे । चेहरे ज़र्द, फ़िकरो-तरद्दुद[7] और ग़मे-रोज़गार के बोझ तले पिसे हुए । धँसी हुई आँखें, बेजान चाल, कपड़े तार-तार । रेलगाड़ी के कंडम माल की तरह या तो किसी टूटे-फूटे झोंपड़े में पड़े हैं, या बाज़ारों में बेमालिक मवेशियों की तरह मुँह उठाए बेमतलब घूम रहे हैं । क्यों जी रहे हैं, किसके लिए जी रहे हैं और कैसे जी रहे हैं, इसका कुछ पता ही नहीं । कोई वबा[8] फैली, हज़ारों मर गए । और कुछ नहीं तो भूख और प्यास ही से घुल-घुल मर गए । सर्दियों में अकड़ गए, गर्मियों में सूख गए···किसी की मौत पर कभी किसी ने दो आँसू बहा दिए, मगर अकसरियत की मौत ख़ुश्क ही रही ।

ज़िंदगी समझ में न आई, ठीक है । उससे हिज़ न उठाया, यह भी ठीक है···वह किसका शेर है । अल्ला बख़्शे, शोलापुर की अमीनाबाई चितलेकर क्या दर्द भरी आवाज़ में गाया करती थी : मर के भी चैन न पाया तो किधर जाएँगे···मेरा मतलब है, अगर मरने के बाद भी ज़िंदगी न सुधरी तो लानत है मुसरी पर ।

मैंने सोचा, क्यों न यह बेचारे, यह क़िस्मत के मारे, दर-दर के ठुकराए हुए इंसान, जो इस दुनिया में हर अच्छी चीज़ के लिए तरसते रहे हैं, उस दुनिया में ऐसा रुतबा हासिल करें कि वह, जो यहाँ उनकी तरफ़ निगाह उठाना भी पसंद नहीं करते, वहाँ उनको देखें और रश्क करें···इसकी एक ही सूरत थी कि यह लोग आम मौत न मरें, बल्कि शहीद हों ।

अब सवाल यह था कि यह लोग शहीद होने के लिए राज़ी होंगे । मैंने सोचा, क्यों नहीं । वह कौन मुसलमान है, जिसमें ज़ौक़े-शहादत नहीं । मुसलमानों की देखादेखी तो हिंदुओं और सिखों में भी यह रुतबा पैदा कर दिया गया है···लेकिन मुझे सख़्त नाउम्मीदी हुई । जब मैंने एक मरियल से आदमी से पूछा : "क्या तुम शहीद होना चाहते हो ?" तो उसने जवाब दिया : "नहीं ।"

समझ में न आया कि वह शख़्स जी कर क्या करेगा । मैंने उसे बहुत समझाया : "देखो

बड़े मियाँ, ज़्यादा-से-ज़्यादा तुम डेढ़ महीना और जिओगे। चलने की तुम में सकत नहीं। खाँसते-खाँसते ग़ोते में जाते हो तो ऐसा लगता है कि बस दम निकल गया। फूटी कौड़ी तक तुम्हारे पास नहीं। ज़िंदगी भर तुमने सुख नहीं देखा। मुस्तक़बिल[9] का तो सवाल ही पैदा नहीं होता, फिर और जी कर क्या करोगे? फ़ौज में तुम भर्ती हो नहीं सकते, इसलिए महाज़[10] पर अपने वतन की ख़ातिर लड़ते-लड़ते जान देने का ख़याल भी अब्स[11] है। तो क्या यह बेहतर नहीं कि तुम कोशिश करके यहीं बाज़ार में या डेरे में, जहाँ तुम रात को सोते हो, अपनी शहादत का बंदोबस्त कर लो।"

उसने पूछा : "यह कैसे हो सकता है?"

मैंने जवाब दिया : "यह सामने केले का छिलका पड़ा है··· फ़र्ज़ कर लिया जाए कि तुम इस पर से फिसल जाते हो ज़ाहिर है कि तुम मर जाओगे और शहादत का रुतबा पाओगे।"

यह बात उसकी समझ में न आई—कहने लगा : "मैं क्यों आँखों देखे केले के छिलके पर पाँव धरने लगा क्या मुझे अपनी जान अज़ीज़ नहीं?"

अल्लाह अल्लाह, क्या जान थी। हड्डियों का ढाँचा और झुर्रियों की गठड़ी!

मुझे बहुत अफ़सोस हुआ, और उस वक़्त और भी ज़्यादा हुआ, जब मैंने सुना कि वह कमबख़्त, जो बड़ी आसानी से शहादत का रुतबा इख़्तियार कर सकता था, ख़ैराती हस्पताल में लोहे की चारपाई पर खाँसता-खँकारता मर गया।

एक बुढ़िया थी। मुँह में दाँत न पेट में आँत। आख़िरी साँसें ले रही थी। सारी उम्र ग़रीबी की फ़िलसी और रंजो-ग़म में गुज़री थी मुझे बहुत तरस आया। मैं उसे उठाकर रेल के पाटे पर ले गया। माफ़ कीजिएगा, हमारे यहाँ 'पटड़ी' को 'पाटा' कहते हैं। लेकिन जनाब, जूँही उस बुढ़िया ने ट्रेन की आवाज़ सुनी, वह होश में आ गई और कूक भरे खिलौने की तरह उठकर भाग गई।

मेरा दिल टूट गया, लेकिन फिर भी मैंने हिम्मत न हारी बनिए का बेटा अपनी धुन का पक्का होता है नेकी का जो साफ़ और सीधा रास्ता मुझे नज़र आया था, मैंने उसको आँख से ओझल न होने दिया।

मुग़लों के वक़्तों का एक बहुत बड़ा अहाता ख़ाली पड़ा था। उसमें एक सौ इकावन छोटे-छोटे कमरे थे, बहुत ही ख़स्ता हालत में। मेरी तजुर्बेकार आँखों ने अंदाज़ा लगा लिया कि पहली ही बड़ी बारिश में सब की छतें ढह जाएँगी। चुनांचे मैंने उस अहाते को साढ़े दस हज़ार रुपए में ख़रीद लिया और उसमें एक हज़ार मफ़लूकुलहाल[12] आदमी बसा दिए। दो महीने का किराया वुसूल किया, सिर्फ़ दो रुपए माहवार के हिसाब से। तीसरे महीने, जैसा कि मेरा अंदाज़ा था, पहली ही बड़ी बारिश में सब कमरों की छतें नीचे आ रहीं और सात सौ आदमी, जिनमें बच्चे-बूढ़े सभी शामिल थे, शहीद हो गए।

वह जो मेरे दिल पर बोझ-सा था, किसी क़दर हल्का हो गया। आबादी में से सात सौ आदमी कम भी हो गए और उन्हें शहादत का रुतबा भी मिल गया।

तब से मैं यही काम कर रहा हूँ··· हर रोज़, हस्बे-तौफ़ीक़, दो-तीन आदमियों को

जामे-शहादत पिला देता हूँ··· जैसा कि मैं अर्ज़ कर चुका हूँ, काम कोई भी हो, इंसान को मेहनत करनी ही पड़ती है··· अल्ला बख़्शे, शोलापुर की अमीनाबाई चितलेकर एक शेर गाया करती थी, लेकिन माफ़ कीजिएगा, वह शेर यहाँ ठीक नहीं बैठता। कुछ भी हो, कहना यह है कि मुझे काफ़ी मेहनत करना पड़ती है··· मिसाल के तौर पर एक आदमी को, जिसका वुजूद छकड़े के पाँचवें पहिए की तरह बेमानी और बेकार था, जामे-शहादत पिलाने के लिए मुझे पूरे दस दिन जगह-जगह केले के छिलके गिराने पड़े, लेकिन मौत की तरह, जहाँ तक मैं समझता हूँ, शहादत का भी एक दिन मुक़र्रर है। दसवें रोज़ जाकर वह पत्थरीले फ़र्श पर केले के छिलके पर से फिसला और शहीद हुआ।

आजकल मैं एक बहुत बड़ी इमारत बनवा रहा हूँ। ठेका मेरी ही कंपनी के पास है। दो लाख का है। इसमें से छिहत्तर हज़ार तो साफ़ अपनी जेब में डाल लूँगा। बीमा भी करा लिया है। मेरा अंदाज़ा है कि जब तीसरी मंज़िल खड़ी की जाएगी तो सारी बिल्डिंग अड़ा-अड़ा-धम गिर पड़ेगी, क्योंकि मसाला ही मैंने ऐसा लगवाया है। उस वक़्त तीन सौ मज़दूर काम पर लगे होंगे। ख़ुदा के घर से मुझे पूरी-पूरी उम्मीद है कि यह सबके-सब शहीद हो जाएँगे, और अगर कोई बच गया तो इसका यह मतलब होगा कि वह परले दर्जे का गुनहगार है, जिसकी शहादत अल्लाह तबारक तआला को मंज़ूर नहीं।

---

1. दौड़-धूप; 2. कुशाग्र बुद्धि; 3. पर्यायवाची; 4. संतोष; 5. पुण्य के काम; 6. शरणार्थियों, 7. चिंता व परेशानी; 8. बीमारी; 9. भविष्य; 10. मोर्चे; 11. बेकार; 12. ग़रीब।

शेर आया, शेर आया, दौड़ना

ऊँचे टीले पर गडरिए का लड़का खड़ा, दूर जंगलों की तरफ़ मुँह किए चिल्ला रहा था : "शेर आया, शेर आया, दौड़ना!"

बहुत देर तक वह अपना गला फाड़ता रहा। उसकी जवान बुलंद आवाज़ बहुत देर तक फ़ज़ाओं में गूँजती रही—जब चिल्ला-चिल्लाकर उसका हलक़ सूख गया तो बस्ती से दो-तीन बूढ़े लाठियाँ टेकते हुए आए और गडरिए के लड़के को कान से पकड़कर ले गए।

पंचायत बुलाई गई—बस्ती के सारे अक़्लमंद जमा हुए और गडरिए के लड़के का मुक़दमा शुरू हुआ।

फ़र्द जुर्म यही थी कि उसने ग़लत ख़बर दी और बस्ती के अमन में ख़लल डाला।

लड़के ने कहा : "मेरे बुज़ुर्गो, तुम ग़लत समझते हो शेर आया नहीं था, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि आ नहीं सकता।"

जवाब मिला : "वह नहीं आ सकता।"

लड़के ने पूछा : "क्यों?"

जवाब मिला : "महकमा-ए-जंगलात के अफ़सर ने हमें चिट्ठी भेजी थी कि शेर बूढ़ा हो चुका है।"

लड़के ने कहा : "लेकिन तुम्हें यह मालूम नहीं कि उसने, थोड़े ही रोज़ हुए, कायाकल्प कराई है।"

जवाब मिला : "यह अफ़वाह है हमने महकमा-ए-जंगलात से पूछा था और हमें यह जवाब मिला था कि कायाकल्प कराने के बजाय शेर ने तो अपने सारे दाँत निकलवा दिए हैं, क्योंकि वह अपनी ज़िंदगी के बक़ाया दिन अहिंसा में गुज़ारना चाहता है।"

लड़के ने बड़े जोश के साथ कहा : "मेरे बुज़ुर्गो, क्या यह जवाब झूठा नहीं हो सकता?"

सबने बयक ज़बान होकर कहा : "हमें महकमा-ए-जंगलात के अफ़सर पर पूरा भरोसा है, इसलिए कि वह सच बोलने का हलफ़ उठा चुका है।"

लड़के ने पूछा :" क्या यह हलफ़ झूठा नहीं हो सकता?"

जवाब मिला : "हरगिज़ नहीं··· तुम साज़िशी हो, फ़िफ़्थ कालमिस्ट हो, कम्युनिस्ट हो, ग़द्दार हो, तरक़्क़ीपसंद हो··· सआदत हसन मंटो हो।"

लड़का मुसकराया : "ख़ुदा का शुक्र है कि मैं वह शेर नहीं, जो आनेवाला है... मैं महकमा-ए-जंगलात का सच बोलनेवाला अफ़सर भी नहीं... मैं...'

पंचायत के एक बूढ़े आदमी ने लड़के की बात काटकर कहा : "तुम उसी गडरिए के लड़के की औलाद हो, जिसकी कहानी सालहासाल से स्कूलों की इब्तदाई जमाअतों[1] में पढ़ाई जा रही है... तुम्हारा हश्र भी वही होगा, जो उसका हुआ था... शेर आएगा तो तुम्हारी ही तिक्का-बोटी उड़ाएगा।"

गडरिए का लड़का मुसकराया : "मैं तो उससे लड़ूँगा। मुझे तो हर घड़ी उसके आने का खटका लगा रहता है... तुम क्यों नहीं समझते हो कि 'शेर आया, शेर आया' वाली कहानी, जो तुम अपने बच्चों को पढ़ा रहे हो, आज की कहानी नहीं... आज की कहानी में तो शेर आया, शेर आया का मतलब यह है कि 'ख़बरदार रहो, होशियार रहो'... बहुत मुमकिन है, शेर के बजाय कोई गीदड़ ही इधर चला आए... और इस हैवान को भी रोकना चाहिए।"

सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े : "कितने डरपोक हो तुम... गीदड़ से डरते हो।"

गडरिए के लड़के ने कहा : "मैं शेर और गीदड़, दोनों से नहीं डरता, लेकिन उनकी हैवानियत से अलबत्ता ज़रूर ख़ाइफ़[2] रहता हूँ और उस हैवानियत का मुक़ाबला करने के लिए ख़ुद को हमेशा तैयार रखता हूँ... मेरे बुज़ुर्गो, स्कूलों से वह किताब हटा दो, जिसमें 'शेर आया, शेर आया,' वाली पुरानी कहानी छपी है... उसकी जगह यह नई कहानी पढ़ाओ।"

एक बुड्ढे ने खाँसते-खँकारते हुए कहा : "यह लौंडा हमें गुमराह करना चाहता है यह हमें राहे-मुस्तक़ीम[3] से हटाना चाहता है।"

लड़के ने मुसकराकर कहा : "ज़िंदगी ख़ते-मुस्तक़ीम[4] नहीं है मेरे बुज़ुर्गो!"

दूसरे बूढ़े ने फ़र्ते-जज़्बात[5] से लरज़ते हुए कहा : "यह मुल्हिद[6] है... यह बेदीन है... फ़ितना परदाज़ों[7] का ऐजेंट है... इसको फ़ौरन ज़िंदाँ[8] में डाल दो।"

गडरिए के लड़के को ज़िंदाँ में डाल दिया गया।

उसी रात बस्ती में शेर दाख़िल हुआ।

भगदड़ मच गई—कुछ बस्ती छोड़कर भाग गए, बाक़ी शेर ने शिकार कर लिए।

मूँछों के साथ लगा हुआ ख़ून चूमता जब शेर ज़िंदाँ के पास से गुज़रा तो उसने मज़बूत आहनी सलाख़ों के पीछे गडरिए के लड़के को देखा और दाँत पीसकर रह गया।

गडरिए का लड़का मुसकराया : "दोस्त, यह मेरे बुज़ुर्गों की ग़लती है, वरना तुम मेरे लहू का ज़ाइक़ा भी चख लेते... !"

---

1. प्रारंभिक कथाओं; 2. आतंकित; 3. सही राह; 4. सीधी लकीर; 5. भावावेश; 6. धर्म से विमुख; 7. दंगा करानेवालों; 8. कारागार।

बी ज़मानी बेगम

"ज़मीन शक़[1] हो रही है, आसमान काँप रहा है, हर तरफ़ धुआँ है, आग के शोलों में दुनिया उबल रही है, ज़लज़ले आ रहे हैं यह क्या हो रहा है?"

"तुम्हें मालूम नहीं?"

"नहीं तो!"

"लो सुनो दुनिया भर को मालूम है।"

"क्या?"

"वही ज़मानी बेगम···वही मुई चड्डो "

"हाँ हाँ, क्या हुआ उसे?"

"वही जो होता आया है लेकिन इस उम्र में··? शर्म नहीं आई बदबख़्त को।"

"यह बदबख़्त ज़मानी बेगम है कौन?"

"हाएँ·· वही सिकंदर की होती-सोती··मुई टखयाई चंगेज़ के पास रही, हलाकू की दाश्ता[2] बनी, कुछ दिन उस लँगड़े तैमूर के साथ मुँह काला करती रही···वहाँ से निकली तो नैपोलियन की बग़ल में जा घुसी···अब यह मुवा हिटलर बाक़ी रह गया था!"

"तो अब क्या हिटलर के घर है?"

"बुआ, घर-घाट कैसा···निबाह हो सकता है कभी ऐसी औरत का!"

"तलाक़ हो गई क्या?"

"तुम कैसी बातें करती हो बुवा··! तलाक़ तो तब हो, जो सहरे-जलवों की ब्याही हो···और फिर ऐसे मर्दों का भी क्या एतिबार है···दो दिन मज़े किए और चलो छुट्टी हुई।"

"तो अब क्या हो रहा है···यह फ़ज़ीहता किस बात का?"

"फ़ज़ीहता क्या है, पूरे दिनों से है···बच्चा पैदा होनेवाला है।"

"तो फिर हो क्यों नहीं चुकता?"

"हाँ सच तो है···कोई पहलौठी का तो है नहीं।"

डॉक्टर आते रहे, लेकिन बी ज़मानी के बच्चा पैदा न हुआ—दर्द व करब[3] की लहरों में इज़ाफ़ा हो गया, ज़लज़ले और ज़्यादा ज़ोर से आने लगे, शोलों की ज़बानें और ज़्यादा तेज़ हो गईं।

डॉक्टरों ने कान्फ्रेंस की, हिकमत की सारी किताबें छानी गईं—तय हुआ कि हामला को तेहरान ले जाया जाए, वहाँ रूस के माहिर डॉक्टर को बुलाया जाए और उससे मशवरा किया जाए।

तेहरान में ख़ास तौर पर जल्दी-जल्दी एक मैटरनिटी होम तैयार किया गया—बी ज़मानी बेगम दर्द से तड़पती रही और दुनिया के तीन बड़े डॉक्टर मशवरा करते रहे।

एक बोला : "साहबान, इसमें कोई शक नहीं कि होनेवाला बच्चा हमारा नहीं है, लेकिन इंसानियत के नाम पर हमें मरीज़ा को इस मुश्किल से निजात दिलाना ही पड़ेगी।"

दूसरा बोला : "हम तीन बड़े डॉक्टर तीन मुख़्तलिफ़ क़िस्म के तरीक़ा-ए-इलाज के माहिर हैं··· सबसे पहले ज़रूरत इस बात की है कि हम एक तरीक़ा-ए-इलाज पर मुत्तफ़िक़[4] हों। अगर ऐसा हो गया तो बी ज़मानी बेगम के बच्चा पैदा होना कोई मुश्किल नहीं।"

तीसरा बोला : "बिलकुल दुरुस्त है··· आइए, हम फ़ौरन यह नेक काम शुरू कर दें।"

तीनों तरीक़े मिलाकर एक नया तरीक़ा बनाया गया, जिस पर तीनों बड़े डॉक्टर मुत्तफ़िक़ हो गए।

दुनिया का चेहरा ख़ुशी से तमतमा उठा—मगर बी ज़मानी के बच्चा पैदा न हुआ।

"यह क्या हो रहा है···बच्चा पैदा क्यों नहीं हुआ अभी तक?"

"बच्चा तो पैदा हो रहा था, मगर उसे रोक दिया गया है।"

"क्यों?"

"डॉक्टर सोच रहे हैं कि उसे गोद कौन लेगा।"

"हूँ···तो फ़ैसला क्या हुआ?"

"तुम कैसी बातें करती हो बुवा··· ऐसे मामलों का इतनी जल्दी फ़ैसला कैसे हो सकता है··· ख़ैर छोड़ो इस क़िस्से को, कुछ-न-कुछ हो ही जाएगा···जिसके हाँ औलाद नहीं है, वह ग़रीब उसे गोद ले लेगा।"

औलाद हर एक के थी। किसी के हाँ चार बच्चे थे, किसी के हाँ पाँच और किसी के हाँ सात। अब फ़ैसला कैसे हो।

एक और कान्फ्रेंस हुई, डम बारटन औक्स में।

एक और मैटरनिटी होम अफ़रातफ़री[5] में बनाया गया। तीनों बड़े डॉक्टर वहाँ जमा हुए। हर एक ने सोचा, हर एक ने मामले की अहमियत समझने की कोशिश की।

बी ज़मानी बेगम बिस्तर पर पड़ी दर्द से कराहती रही।

एक बोला : "साहबान, हम साहबे-औलाद हैं···इस बच्चे के वुजूद के हम ज़िम्मेदार नहीं, लेकिन इंसानियत का तक़ाज़ा है कि हम इसकी पैदाइश में हर मुमकिन तरीक़े से मदद करें···आख़िर इसमें होनेवाले बच्चे का क्या क़ुसूर है।"

दूसरा बोला : "हम डॉक्टर हैं। हमारा मज़हब दवा है···हम चाहें तो इस होनेवाले नाख़लफ़[6] बच्चे को, जिससे हमारा कोई रिश्ता नहीं, एक फ़रमांबरदार, इताअत शुआर,[7]

आज़ादीपसंद और इंसानियत दोस्त नौजवान बना सकते हैं।"

तीसरा बोला : "बिलकुल दुरुस्त है इस बच्चे की पैदाइश से दुनिया का एक बहुत बड़ा बोझ दूर हो जाएगा हम डॉक्टर हैं। अपने फ़र्ज़ से हमें ग़ाफ़िल नहीं रहना चाहिए।"

आख़िर तय हो गया, एक और दस्तावेज़ पर अँगूठे भी लगा दिए गए कि होनेवाले बच्चे को तीनों बड़े डॉक्टर गोद ले लेंगे और तीनों मिलकर उसकी परवरिश करेंगे।

लेकिन बी ज़मानी बेगम की तकलीफ़ फिर भी रफ़ा न हुई। वह पड़ी दर्द से कराहती रही।

"आख़िर यह मुसीबत क्या है ?"

"कुछ समझ में नहीं आता ?"

"क़िस्सा यह है कि बच्चे को गोद लेने का तो फैसला हो गया है, लेकिन ईस बी ज़मानी का भी तो कुछ बंदोबस्त होना चाहिए।

"मैं तो कहती हूँ, सात झाड़ू और हुक़्क़े का पानी "

"लानत भेजें मुई हर्राफ़ा[8] पर "

"नहीं बुवा, वह सोच रहे हैं कि यह कमबख़्त कहीं फिर "

"ओह "

एक और कान्फ्रेंस हुई।

तीनों बड़े डॉक्टर आख़िरी बार पोस्डम में जमा हुए।

जल्दी-जल्दी एक मैटरनिटी होम तैयार किया गया—बी जमानी बेगम पेचो-ताब खाती रही और उधर कान्फ्रेंस होती रही।

एक बोला : "साहबान, दुनिया की फ़लाह[9] और बेहबूदी[10] के लिए आज इस बात का क़तई तौर पर फ़ैसला हो जाना चाहिए कि बी ज़मानी बेगम का यह बच्चा उसका आख़िरी बच्चा हो।"

दूसरा बोला : "दुनिया के थन इस औरत के लातादाद[11] हरामी बच्चों को दूध पिला-पिलाकर सूख गए हैं अब हमें इसको बाँझ करना ही पड़ेगा।"

तीसरा बोला : "बिलकुल दुरुस्त है होनेवाले बच्चे की सेहत और तदुरुस्ती का खयाल रखते हुए भी हमें ऐसा ही करना चाहिए।"

तय हो गया कि बच्चा फ़ौरन पैदा किया जाए और बी ज़मानी बेगम को हमेशा के लिए बाँझ कर दिया जाए।

अमले-जर्राही[12] शुरू हुआ—मैटरनिटी होम के बाहर दुनिया की सारी क़ौमें जमा हो गईं। बहुत देर तक सन्नाटा छाया रहा।

इसके बाद मैटरनिटी होम का दरवाजा फट से खुला और एक सफ़ेदपोश नर्स बाहर निकली—उसने अपनी बारीक आवाज़ में ऐलान किया : "मुबारक हो बी ज़मानी बेगम के बच्चा पैदा हो गया है ज़च्चा और बच्चा दोनों बेहोश हैं।"

दुनिया की सारी क़ौमें फ़िक्रो-तरद्दुद में ग़र्क़ हो गईं।

एक बूढ़ा, लंगोटी पहने, खाँसता-खँकारता नर्स की तरफ़ बढ़ा।

नर्स ने पूछा : "तुम कौन हो ?"

बूढ़े ने अपने ख़ुश्क होंठों पर ज़बान फेरी और लरज़ाँ आवाज़ में कहा : "मेरा नाम हिंदुस्तान है।"

"ओह···क्या चाहते हो तुम ?"

"मैं सिर्फ़ यह पूछने आया हूँ कि लड़का हुआ है या लड़की ?"

"दुनिया की सारी क़ौमें बेइख़्तियार खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

---

1. फटना, विदीर्ण; 2. रखैल; 3. पीड़ा; 4. एक मत; 5. हड़बड़ी; 6. कपूत; 7. आज्ञाकारी; 8. चरित्रहीन; 9. मुक्ति; 10. भलाई; 11. असह्य; 12. शल्य चिकित्सा, आप्रेशन।

देख कबीरा रोया

नगर-नगर ढिंढोरा पीटा गया कि जो आदमी भीख माँगेगा, उसको गिरफ़्तार कर लिया जाएगा।

गिरफ़्तारियाँ शुरू हुईं।

लोग ख़ुशियाँ मनाने लगे कि एक बहुत पुरानी लानत दूर हो गई।

कबीर ने यह देखा तो उसकी आँखों में आँसू आ गए।

लोगों ने पूछा : "ऐ जुलाहे, तू क्यों रोता है ?"

कबीर ने रोकर कहा : "कपड़ा दो चीज़ों से बनता है—ताने और पेटे से गिरफ़्तारियों का ताना तो शुरू हो गया, पर पेट भरने का पेटा कहाँ है?"

एक एम. ए. एल. एल. बी. को दो सौ खड्डियाँ अलाट हो गईं।

कबीर ने यह देखा तो उसकी आँखों में आँसू आ गए।

एम.ए.एल.एल.बी. ने पूछा : "ऐ जुलाहे के बच्चे, तू क्यों रोता है ? क्या इसलिए कि मैंने तेरा हक़ ग़स्ब[1] कर लिया है ?"

कबीर ने रोते हुए जवाब दिया : "तुम्हारा क़ानून तुम्हें यह नुक्ता समझाता है कि खड्डियाँ पड़ी रहने दो और धागे का जो कोटा मिले, उसे बेच दो, आख़िर मुफ़्त की खटखट से क्या फ़ाइदा लेकिन यह खटखट ही जुलाहे की जान है।"

छपी हुई किताब के फ़रमे थे, जिनके छोटे-बड़े लिफ़ाफ़े बनाए जा रहे थे।

कबीर का उधर से गुज़र हुआ—उसने दो-तीन लिफ़ाफ़े उठाए और उन पर छपी हुई तहरीर पढ़कर उसकी आँखों में आँसू आ गए।

लिफ़ाफ़े बनानेवाले ने हैरत से पूछा : "मियाँ कबीर, तुम क्यों रोने लगे ?"

कबीर ने जवाब दिया : "इन काग़ज़ों पर भगत सूरदास की कविता छपी हुई है लिफ़ाफ़े बनाकर इसकी बेइज़्ज़ती न करो।"

लिफ़ाफ़े बनानेवाले ने हैरत से कहा : "जिसका नाम सूरदास है, वह भगत कभी नहीं हो सकता।"

कबीर ने ज़ारो-क़तार[2] रोना शुरू कर दिया।

एक ऊँची इमारत पर लक्ष्मी का बहुत ख़ूबसूरत बुत नस्ब[3] था।

चंद लोगों ने जब उस इमारत को अपना दफ़्तर बनाया तो उस बुत को टाट के टुकड़ों से ढाँप दिया।

कबीर ने यह देखा तो उसकी आँखों में आँसू उमड़ आए।

दफ़्तर के आदमियों ने उसे ढारस दी और कहा : "हमारे मज़हब में यह बुत जाइज़ नहीं।"

कबीर ने टाट के टुकड़ों की तरफ़ अपनी नमनाक आँखों से देखते हुए कहा : "ख़ूबसूरत चीज़ को बदसूरत बना देना भी किसी मज़हब में जाइज़ नहीं।"

दफ़्तर के आदमी हँसने लगे—कबीर धाड़ें मार-मारकर रोने लगा।

सफ़आरा[4] फ़ौजों के सामने जरनैल ने तक़रीर करते हुए कहा : "अनाज कम है, कोई परवाह नहीं फ़स्लें तबाह हो गई हैं, कोई फ़िक्र नहीं हमारे सिपाही दुश्मन से भूखे ही लड़ेंगे।"

दो लाख फ़ौजियों ने 'ज़िंदाबाद, ज़िंदाबाद' के नारे लगाने शुरू कर दिए।

कबीर चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा।

जरनैल को बहुत ग़ुस्सा आया—वह पुकार उठा . "ऐ शख़्स, बता सकता है, तू क्यों रोता है?"

कबीर ने रोनी आवाज़ में कहा : "ऐ मेरे बहादुर जरनैल, भूख से कौन लड़ेगा?"

दो लाख फ़ौजियों ने 'कबीर-मुर्दाबाद' के नारे लगाने शुरू कर दिए।

"भाइयो, दाढ़ी रखो, मूँछें कतरो और शरई पाजामा पहनो बहनो, एक चोटी करो, सुर्ख़ी सफ़ेदी न लगाओ, बुर्क़ा पहनो" बाज़ार में एक मौलवी चिल्ला रहा था।

कबीर ने यह सब देखा तो उसकी आँखें नमनाक हो गईं।

चिल्लानेवाले मौलवी ने और ज़्यादा चिल्लाकर पूछा : "कबीर, तू क्यों रोने लगा?"

कबीर ने अपने आँसू ज़ब्त करते हुए कहा : "तेरा भाई है न तेरी बहन और यह जो तेरी दाढ़ी है, इसमें तूने वस्मा[5] क्यों लगा रखा है क्या तुझे सफ़ेदी अच्छी नहीं लगती।"

मौलवी ने कबीर को गालियाँ देनी शुरू कर दीं—कबीर की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

एक जगह बहस हो रही थी।

"अदब 'बराए-अदब' है।"

"बकवास करते हो अदब 'बराए-ज़िंदगी' है।"

"वह ज़माना लद गया अदब तो प्रोपेगेंडे का दूसरा नाम है।"

"तुम्हारी ऐसी-की-तैसी"

"तुम्हारे स्टालिन की ऐसी-की-तैसी"

"तुम्हारे रजअतपसंद[6] और फलाँ-फलाँ बीमारियों के मारे हुए फ़्लाग्रबेयर और

बादेलेयर की ऐसी-की-तैसी…"

कबीर रोने लगा।

बहस करनेवाले बहस छोड़कर उसकी तरफ़ मुतवज्जेह हुए।

एक ने कबीर से पूछा : "तुम्हारे तहतुश्शऊर[7] में ज़रूर कोई चीज़ है, जिसे ठेस पहुँची है।"

दूसरे ने कहा : "तुम्हारे आँसू बोर्ज़वाई[8] सद्मे का नतीजा हैं।"

कबीर और ज़्यादा रोने लगा।

बहस करनेवालों ने तंग आकर बयक ज़बान सवाल किया : "मियाँ, यह तो बताओ कि तुम रोते क्यों हो ?"

कबीर ने कहा : "मैं इसलिए रोया था कि आपकी समझ में आ जाए, अदब 'बराए-अदब' है, या अदब 'बराए-ज़िंदगी' है।"

बहस करनेवाले हँसने लगे।

एक ने कहा : "यह परोलतारी[9] मसख़रा है।"

दूसरे ने कहा : "नहीं, यह बोर्ज़वाई बहरूपिया है।"

कबीर की आँखो में फिर आँसू आ गए।

हुक्म नाफ़िज़[10] हो गया कि शहर की तमाम कसबियाँ एक महीने के अंदर-अंदर शादी कर लें और शरीफ़ाना ज़िंदगी बसर करें।

कबीर एक चकले से गुज़रा तो कसबियों के उड़े हुए चेहरे देखकर उसने रोना शुरू कर दिया।

एक मौलवी ने उससे पूछा : "मौलाना, आप रो क्यों रहे हैं ?"

कबीर ने रोते हुए जवाब दिया : "अख़्लाक़ के मुअल्लिम[11] इन कसबियों के शौहरों के लिए क्या बंदोबस्त करेंगे ?"

मौलवी तो कबीर की बात न समझा और हँसने लगा और कबीर की आँखें और ज़्यादा अश्कबार हो गईं।

दस-बारह हज़ार के मजमे में एक आदमी तक़रीर कर रहा था : "भाइयो, बाज़याफ़्ता[12] औरतों का मसला हमारा सबसे बड़ा मसला है। इसका हल हमें सबसे पहले सोचना है अगर हम ग़ाफ़िल रहे तो यह औरतें क़हबाख़ानों में चली जाएँगी और फ़ाहशा[13] बन जाएँगी सुन रहे हो, फ़ाहशा बन जाएँगी तुम्हारा फ़र्ज़ है कि तुम इनको इस ख़ौफ़नाक मुस्तक़बिल[14] से बचाओ और अपने घरों में इनके लिए जगह पैदा करो अपनी, अपने भाई या अपने बेटे की शादी करने से पहले तुम्हें इन औरतों को हरगिज़-हरगिज़ फ़रामोश नहीं करना चाहिए "

कबीर फूट-फूट के रोने लगा।

तक़रीर करनेवाला रुक गया—कबीर की तरफ़ इशारा करके उसने बुलंद आवाज़ में

हाज़रीन से कहा : "देखो, इस शख़्स के दिल पर कितना असर हुआ है।"

कबीर ने गुलूगीर आवाज़ में कहा : "लफ़्ज़ों के बादशाह, तुम्हारी तक़रीर ने मेरे दिल पर कुछ असर नहीं किया है ⋯ मैंने जब सोचा कि तुम किसी मालदार औरत से शादी करने की ख़ातिर अभी तक कुँआरे बैठे हो तो मेरी आँखों में आँसू आ गए।"

एक दूकान पर यह बोर्ड लगा था : जिनाह बूट हाऊस।

कबीर ने उसे देखा तो ज़ारो-क़तार रोने लगा।

लोगों ने देखा कि एक आदमी खड़ा है, उसकी आँखें बोर्ड पर जमी हैं और वह रोए जा रहा है तो उन्होंने तालियाँ बजाना शुरू कर दीं : "पागल है ⋯ पागल है ⋯"

मुल्क का सबसे बड़ा क़ाइद चल बसा तो चारों तरफ़ मातम की सफ़ें बिछ गईं।

अक्सर लोग बाज़ुओं पर सियाह बिल्ले बाँधकर फिरने लगे।

कबीर ने यह देखा तो उसकी आँखों में आँसू आ गए।

सियाह बिल्लेवालों ने उससे पूछा : "क्या दुख पहुँचा जो तुम रोने लगे?"

कबीर ने जवाब दिया : "यह काले रंग की चिंदियाँ अगर जमा कर ली जाएँ तो सैकड़ों की सतरपोशी[15] कर सकती हैं।"

सियाह बिल्लेवालों ने कबीर को पीटना शुरू कर दिया : "तुम कम्युनिस्ट हो, फ़िफ़्थ कालमिस्ट हो, पाकिस्तान के ग़द्दार हो।"

कबीर हँस पड़ा : "लेकिन दोस्तो, मेरे बाज़ू पर तो किसी रंग का बिल्ला नहीं।"

---

1. अवैध क़ब्ज़ा; 2. फुट-फुटकर, 3. आँकना, 4. युद्ध के लिए आई हुई, 5. खिजाब, 6. प्रतिक्रियावादी, 7. चेतना; 8. धनी; 9. मज़दूर परस्त; 10. लागू होना, जारी होना; 11. विद्वान; 12. दुर्भाग्य में मिली हुई; 13. वेश्या; 14. भविष्य; 15. तन ढकना।

माहीगीर

[विक्टर ह्यूगो की एक नज़्म के तासुरात]

समंदर रो रहा था।

मुक़ैयद[1] लहरें पथरीले साहिल के साथ टकरा-टकराकर आहोज़ारी[2] कर रही थीं। दूर, पानी की रकमों[3] सतह पर चंद किश्तियाँ अपने धुँधले और कमज़ोर बादबानों के सहारे बेपनाह सर्दी से ठिठरी हुई काँप रही थीं। आसमान की नीली क़बा[4] में चाँद खिलखिलाकर हँस रहा था। सितारों का खेत अपने पूरे जोबन में लहलहा रहा था।

फ़ज़ा समंदर के नमकीन पानी की तेज़ बू में बसी हुई थी।

साहिल से कुछ फ़ासले पर चंद शिकस्ता झोंपड़ियाँ ख़ामोश ज़बान में एक-दूसरे से अपनी ख़स्ताहाली का तज़्किरा कर रही थीं—यह माहीगीरों के सर छुपाने की जगहें थीं।

एक झोंपड़ी का दरवाज़ा खुला था, जिसमें से चाँद की आवारा शुआएँ ज़मीन पर रेंग-रेंगकर उसकी काजल-ऐसी फ़ज़ा को नीम रोशन कर रही थीं—इस अंधी रोशनी में दीवार पर माहीगीर का जाल नज़र आ रहा था और एक चोबी तख़्ते पर चंद थालियाँ झिलमिला रही थीं।

झोंपड़ी के एक कोने में एक टूटी हुई चारपाई तारीक चादर में मलबूस[5] अँधेरे में सर निकाले हुए थी। उसके पहलू में फटे हुए टाट पर पाँच बच्चे महवे-ख़्वाब[6] थे। नन्ही रूहों का एक घोंसला जो ख़्वाबों से थरथरा रहा था।

पास ही उनकी माँ न मालूम किन ख़यालात में मुस्तग़रक़[7] घुटनों के बल बैठी गुनगुना रही थी।

यकायक वह लहरों का शोर सुनकर चौंकी।

बूढ़ा समंदर किसी आनेवाले ख़तरे से आगाह, सियाह चट्टानों और तुंद हवाओं और निस्फ़[8] शब की तारीकी को मुख़ातिब करके गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहा था।

वह उठी और बच्चों के बिलकुल पास जाकर उसने एक की पेशानी पर अपने सर्द लबों से बोसा दिया और फिर वहीं टाट के एक कोने में बैठकर दुआ माँगने लगी—लहरों के शोर में उसके अल्फ़ाज़ उभर रहे थे : "ऐ ख़ुदा ऐ बेकसों और ग़रीबों के ख़ुदा, इन बच्चों का वाहिद सहारा रात का तारीक कफ़न ओढ़े समंदर की लहरों के साथ लड़ रहा है वह मौत

के अमीक़ गढ़े में पाँव लटकाए हुए है · · इन बच्चों की ख़ातिर उसे हर रोज़ इस तूफ़ानी देव के साथ कुश्ती लड़ना पड़ती है · · ऐ ख़ुदा, तू उसकी जान हिफ़ाज़त में रखियो · · · आह, अगर यह बच्चे जवान होते और अपने बाप की मदद कर सकते · · · !"

ख़ुदा मालूम उसे क्या ख़याल आया कि वह सिर से पैरों तक काँप गई। फिर वह थरथराती हुई आवाज़ में कहने लगी : "आह, बड़ा होने पर इनका भी यही शग़ल होगा · · · फिर मुझे छः जानों का ख़दशा[9] लाहिक़ रहेगा · · आह, कुछ समझ में नहीं आता · · · यह ग़ुर्बत · · · यह ग़ुर्बत · · · !" यह कहते हुए वह अपनी ग़ुर्बत और तंगदामानी[10] के ख़यालात में ग़र्क़ हो गई।

दफ़अतन वह उस अँधेरे ख़्वाब से बेदार हुई और उसके दिमाग़ में होटलों की देव क़ामत इमारतें और उमरा के राहत-कदों की तसवीरें खिंच गईं। उन इमारतों की दिलफ़रेब राहतों और उमरा की तअय्युशपरस्तियों[11] का ख़याल आते ही उसके दिल पर एक धुंध-सी छा गई—कलेजे पर किसी ग़ैर मरई हाथ की गिरफ़्त महसूस करके वह जल्दी से उठी और उसने दरवाज़े में से तारीकी में आवारा नज़रों से देखना शुरू कर दिया।

उसकी यह हरकत ख़यालात की आमद को न रोक सकी—वह सख़्त हैरान थी कि लोग अमीर और ग़रीब क्यों होते हैं, जबकि हर इंसान एक ही तरह माँ के पेट से पैदा होता है। इस सवाल के हल के लिए उसने अपने दिमाग़ पर बहुत ज़ोर दिया, मगर उसे कोई ख़ातिरख़्वाह जवाब न मिल सका।

एक और बात वह समझ नहीं पा रही थी—और वह यह कि उसका ख़ाविंद तो अपनी जान पर खेलकर समंदर की गोद से मछलियाँ छीनकर लाता है और मछलियों की मार्किट का मालिक बग़ैर मेहनत किए हर रोज़ सैकड़ों रुपए पैदा कर लेता है। · · उसे यह बात ख़ासतौर पर अजीब-सी मालूम हुई कि मेहनत तो करें माहीगीर और नफ़ा हो मार्केट के मालिक को। रात भर उसका ख़ाविंद अपना ख़ून-पसीना एक करे और सुबह के वक़्त उसकी आधी कमाई मार्केट के मालिक की बड़ी तोंद में चली जाए।

इन तमाम सवालों का कुछ जवाब न पाकर वह हँस पड़ी और बुलंद आवाज़ में कहने लगी : "मुझ कम अक़्ल को भला यह सब क्या मालूम · · · ख़ुदा सबकुछ जानता है, मगर · · "

वह कुछ और कहने ही वाली थी कि रुक गई और काँप उठी—फिर वह बोली : "ऐ ख़ुदा, मैं गुनहगार हूँ · · · तू जो करता है, बेहतर करता है · · कुछ और ख़याल करना कुफ़्र है · · ·" यह कहती हुई वह ख़ामोशी से अपने बच्चों के पास आकर बैठ गई और उनके मासूम चेहरों की तरफ़ देखकर उसने बेइख़्तियार रोना शुरू कर दिया।

बाहर आसमान पर काले बादल मुहीब[12] डायनों की सूरत में अपने सियाह बाल परेशाँ किए चक्कर काट रहे थे। कभी-कभी बादल का कोई टुकड़ा चाँद के दरख़्शा[13] रुख़सार पर अपनी सियाही मल देता तो फ़ज़ा पर क़ब्र की तारीकी छा जाती और समंदर की सीमीं लहरें गहरे रंग की चादर ओढ़ लेतीं। तब किश्तियों के मस्तूलों पर टिमटिमाती हुई रोशनियाँ इस अचानक तब्दीली को देखकर आँखें झपकना शुरू कर देतीं।

माहीगीर की बीवी ने अपने मैले आँचल से आँसू ख़ुश्क किए और दरवाज़े के पास खड़ी

होकर देखने लगी कि दिन तुलू हुआ है या नहीं—उसका ख़ाविंद तुलू की पहली किरण के साथ ही घर वापिस आ जाया करता था—अभी सुबह का एक साँस भी बेदार न हुआ था। समंदर की तारीक सतह पर रोशनी की एक धारी भी नज़र न आ रही थी। बारिश काजल की तरह तमाम फ़ज़ा पर बरसने लगी थी।

वह बहुत देर तक दरवाज़े के पास खड़ी, अपने ख़ाविंद के ख़याल में मुस्तग़रक़ रही, जो बारिश में समंदर की तुंद मौजों के मुक़ाबले में लकड़ी के एक मामूली तख़्ते और कमज़ोर बादबान से मुसल्लह था।

वह अभी अपने ख़ाविंद के लिए दुआ माँग ही रही थी कि यकायक उसकी निगाहें अँधेरे में सामने खड़ी शिकस्ता[14] झोंपड़ी की तरफ़ उठ गईं, जो तारों से महरूम[15] आसमान की तरफ़ हाथ फैलाए लरज़ रही थी।

उस झोंपड़ी में रोशनी का नाम तक नहीं था और उसका कमज़ोर दरवाज़ा किसी नामालूम ख़ौफ़ की वजह से काँप रहा था और तिनकों की छत हवा के दबाव तले दोहरी हो रही थी।

''आह, ख़ुदा मालूम बेचारी बेवा का क्या हाल है उसे कई रोज़ से बुख़ार भी तो आ रहा है'' वह ज़ेर-लब गुनगुनाई, और यह ख़याल आते ही कि कहीं वह भी अपने ख़ाविंद से महरूम न हो जाए, वह काँप उठी।

सामने की शिकस्ता झोंपड़ी एक बेवा की थी, जो अपने दो कमसिन बच्चों समेत रोटी के क़हत[16] में मौत की घड़ियाँ काट रही थी। मुसीबत की मचलती हुई धूप में उस पर साया करनेवाला कोई न था—रहा-सहा सहारा दो नन्हे बच्चे थे जो अभी मुश्किल से चल-फिर सकते थे।

उसके दिल में हमदर्दी का जज़्बा उमड़ आया—बारिश से बचाव के लिए उसने सिर पर टाट का एक टुकड़ा रखा और हाथ में एक अंधी लालटेन थामकर वह उस झोंपड़ी के पास पहुँची। उसने धड़कते हुए दिल मे दरवाज़े पर दस्तक दी—लहरों का शोर और तेज़ हवा की चीख़ो-पुकार उसकी दस्तक का जवाब थे।

वह काँपी और उसने ख़याल किया कि शायद उसकी अच्छी हमसाया गहरी नींद सो रही है।

उसने एक बार फिर दरवाज़ा खटखटाया और आवाज़ दी, मगर जवाब फिर ख़ामोशी था। कोई सदा, कोई जवाब झोंपड़ी के बोसीदा[17] लबों से नमूदार न हुआ।

उसने काँपते हुए दरवाज़े पर दबाव डाला—जैसे बेजान दरवाज़े ने लिम्स[18] की लहर महसूस की, वह मुतहर्रिक हुआ और खुल गया।

वह झोंपड़ी के अंदर दाख़िल हुई और जैसे वह ख़ामोश क़ब्र उसकी अंधी लालटेन से रोशन हो गई, जिसमें लहरों के शोर के सिवा मुकम्मल सुकूत[19] तारी था, जिसकी पतली दोहरी होती हुई छत से बारिश के क़तरे बड़े-बड़े आँसुओं की सूरत में गिरते हुए सियाह ज़मीन को तर कर रहे थे—फ़ज़ा में एक मुहीब ख़ौफ़ साँस ले रहा था।

वह ख़ौफ़नाक समाँ, जो झोंपड़ी में सिमटा हुआ था, देखकर वह सर ता पा इर्तिआश[20]

बनकर रह गई। उसकी आँखों में गर्म-गर्म आँसू छलके और फिर बेइख़्तियार उछलकर बारिश के टपके हुए क़तरों के साथ हमआग़ोश हो गए—उसने एक सर्द आह भरी और दर्दनाक आवाज़ में कहने लगी : "आह, तो उन बोसों का जो जिस्म को राहत बख़्शते हैं···और माँ की मुहब्बत, गीत, तबस्सुम, हँसी और नाच का एक ही अंजाम है···क़ब्र···आह मेरे ख़ुदा!"

उसके सामने फूस के बिस्तर पर बेवा की सर्द लाश अकड़ी हुई थी। लाश के पहलू में दो बच्चे महवे-ख़्वाब थे—उसने महसूस किया, लाश के सीने में एक आह कुछ कहने को रुकी हुई है और पथराई हुई आँखें झोंपड़ी की ख़स्ता छत को चीरकर तारीक[21] आसमान की तरफ़ टकटकी लगाए देख रही हैं, जैसे उसे कोई पैग़ाम देना हो।

वह उस वहशतख़ेज़ मंज़र को देखकर चिल्ला उठी—थोड़ी देर वह दीवानावार इधर-उधर घूमी।

यकायक उसकी नमनाक आँखों में एक चमक पैदा हुई और उसने लपककर लाश के पहलू से कमसिन बच्चे उठाकर अपनी चादर में लपेट लिए और उस दारुलख़तर[22] से लड़खड़ाती हुई अपनी झोंपड़ी में चली आई।

उसके चेहरे का रंग बदल गया था—उसने लरज़ाँ हाथों से बच्चों को मैले बिस्तर पर लिटा दिया और उन पर फटी हुई चादर डाल दी।

थोड़ी देर वह मुर्दा बेवा के पहलू से उठाए हुए बच्चों को देखती रही और फिर गुमसुम-सी अपने बच्चों के पास ज़मीन पर बैठ गई।

मुतलातिम समंदर उफ़ुक़ पर सफ़ेद हो रहा था। सूरज की धुँधली शुआएँ तारीकी का तआक़ुब कर रही थीं—वह गुमसुम बैठी अपनी ज़िंदगी के शिकस्ता तार छेड़ रही थी। उसके ग़ैर मर्बूत[23] अल्फ़ाज़ के साथ कनसुरी लहरें अपनी मग़मूम तानें छेड़ रही थीं।

"आह यह मैंने क्या किया··· यह मुझसे क्या हो गया··· सात हम और अब दो यह··· अब अगर वह मुझे मारे तो मुझे कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए··· मैं भी अजीब हूँ। मैं जिससे मुहब्बत करती हूँ, उसी से ख़ाइफ़ हूँ···क्या इन्हें वापिस छोड़ आऊँ···नहीं···मैं उससे मुहब्बत करती हूँ। शायद वह मुझे माफ़ कर दे।"

वह इस क़िस्म के ख़यालात में ग़ल्ताँ व पेचाँ[24] बैठी हुई थी कि हवा के ज़ोर से दरवाज़ा हिला—उसका कलेजा धक-से रह गया। वह उठी और किसी को न पाकर वहीं मुतफ़िकर-सी[25] बैठ गई।

"अभी नहीं···बेचारा···उसे इन बच्चों के लिए कितनी तकलीफ़ उठाना पड़ती है··· अकेले आदमी को सात पेट पालने पड़ते हैं और अब··· मगर यह शोर कैसा है?"

वह चीख़ती हुई आवाज़ हवा की थी जो झोंपड़ी के साथ रगड़कर गुज़र रही थी।

"उसके क़दमों की चाप···आह, नहीं, यह तो हवा है···"

वह फिर अपने अंदरूनी ग़म में डूब गई—अब उसके कानों में हवाओं और लहरों का शोर मफ़्क़ूद[26] हो गया—सीने में ख़यालात के तसादुम[27] का क्या कम शोर था।

आबी जानवर साहिल के आसपास चिल्ला रहे थे। पानी में पड़े हुए संगरेज़े[28]

एक-दूसरे से टकराकर खनखना रहे थे। किश्तियों के चप्पुओं की आवाज़ सुबह की ख़ामोश फ़ज़ा को मुर्तइश[29] कर रही थी।

वह किश्ती की आमद से बेख़बर अपने ख़यालात में खोई हुई थी।

दफ़अतन दरवाज़ा एक शोर के साथ खुला—सुबह की धुँधली शुआएँ झोंपड़ी में तैरती हुई दाख़िल हुईं और साथ ही माहीगीर कांधों पर एक बड़ा-सा जाल डाले दहलीज़ पर नमूदार हुआ।

उसके कपड़े रात की बारिश और समंदर के नमकीन पानी से शराबोर हो रहे थे। आँखें शब बेदारी की वजह से अंदर को धँसी हुई थीं। जिस्म सर्दी और ग़ैर मामूली मशक़्क़त से अकड़ा हुआ था।

"बच्चों के अब्बा, तुम हो···" माहीगीर की बीवी चौंक उठी। फिर उसने आशिक़ाना बेताबी से अपने ख़ाविंद को छाती से लगा लिया।

"हाँ, मैं हूँ प्यारी!" यह कहते हुए माहीगीर के कुशादा[30], मगर मग़मूम चेहरे पर मसर्रत की एक धुँधली-सी रोशनी छा गई—वह मुसकराया—बीवी की मुहब्बत ने उसके दिल से रात की कुलफ़त[31] का ख़याल महव कर दिया।

"मौसम कैसा था?" बीवी ने मुहब्बत-भरे लहजे में दरयाफ़्त किया।

"तुंद!"

"मछलियाँ हाथ आईं?"

"बहुत कम···आज रात तो समंदर क़ज़ाक़ों[32] के गिरोह के मानिंद था।" यह सुनकर उसकी बीवी के चेहरे पर मुर्दनी छा गई—माहीगीर ने उसे मग़मूम देखा और मुसकराकर बोला: "तू मेरे पहलू में है, बस मेरा दिल ख़ुश है।"

"हवा तो बहुत तेज़ होगी?"

"बहुत तेज़···मालूम हो रहा था कि दुनिया के तमाम शैतान मिलकर अपने मनहूस पर फड़फड़ा रहे हैं···जाल कट गया, रस्सियाँ कट गईं और किश्ती का मुँह भी टूटते-टूटते बचा···" फिर अपनी बात का रुख़ बदलते हुए उसने पूछा: "मगर तुम शब-भर क्या करती रही हो प्यारी?"

वह रात की बात का ख़याल करके काँपी—उसने लरज़ाँ आवाज़ में जवाब दिया: "आह, कुछ भी तो नहीं···सीती-पिरोती रही, तुम्हारी राह तकती रही··· लहरें बिजली की तरह कड़क रही थीं और मुझे सख़्त डर लग रहा था।"

"डर···! हम लोगों को डर किस बात का···"

"और हाँ, हमारी हमसाया बेवा मर गई है।" उसने अपने ख़ाविंद की बात काटते हुए कहा।

माहीगीर ने दर्दनाक ख़बर सुनी, मगर उसे कुछ ताज्जुब न हुआ, शायद इसलिए कि वह हर घड़ी उस औरत की मौत की ख़बर सुनने का मुतवक्क़े[33] था—उसने आह भरी और सिर्फ़ इतना कहा: "तो बेचारी सिधार गई!"

"हाँ···और दो कमसिन बच्चे छोड़ गई है जो लाश के पहलू में लेटे हुए हैं।"

बीवी की बात सुनकर माहीगीर का जिस्म ज़ोर से काँपा और उसकी सूरत संजीदा व मुतफ़िकर हो गई—एक कोने में अपनी ऊनी टोपी, जो पानी से भीग रही थी, फेंककर उसने अपना सिर खुजलाया और कुछ देर ख़ामोश रहने के बाद अपने आपसे बोला : "पाँच बच्चे थे, अब सात हो गए... पहले ही इस तुंद मौसम में दो वक़्त का खाना नसीब नहीं होता, अब... मगर ख़ैर... इसमें किसी का कोई क़ुसूर नहीं... किस क़िस्म के हवादिस[34] बहुत गहरे मानी रखते हैं..."

वह कुछ अर्से तक़ उसी तरह अपना सिर घुटनों में दबाए सोचता रहा—उसकी समझ में न आ रहा था कि ख़ुदा ने उन बच्चों से, जो उसकी मुट्ठी के बराबर भी नहीं हैं, उनकी माँ क्यों छीन ली है; उन बच्चों से जो न काम कर सकते हैं और न किसी चीज़ की ख़्वाहिश कर सकते हैं।

उसका दिमाग़ उन सवालों का कोई हल न पेश कर सका—वह बड़बड़ाता हुआ उठा : "शायद ऐसी बातों को एक पढ़ा-लिखा ही समझ सकता है..." और फिर वह अपनी बीवी से मुख़ातिब होकर बोला : "प्यारी, जाओ और उन्हें यहाँ ले आओ... अगर वह अपनी माँ की लाश के पास बेदार[35] हुए तो वह किसी क़दर वहशतज़दा हो जाएँगे... जाओ, उन्हें अभी ले आओ।" यह कहकर वह अपने दिल में सोचने लगा कि वह उन बच्चों को अपनी औलाद की तरह पालेगा; वह बड़े होकर उसके घुटनों पर चढ़ना सीख जाएँगे, ख़ुदा उन बच्चों को इस झोंपड़ी में देखकर बहुत ख़ुश होगा और उन्हें, सबको ज़्यादा खाने को अता करेगा : "प्यारी, तुम्हें फ़िक्र नहीं करनी चाहिए... मैं और ज़्यादा मेहनत से काम करूँगा..."

अपनी बीवी को चारपाई की तरफ़ बढ़ते हुए देखकर माहीगीर बुलंद आवाज़ में कहने लगा : "तुम सोच क्या रही हो?"

उसकी बीवी ने चारपाई के पास पहुँचकर चादर को उलट दिया : "यह तो रहे बच्चे!"

दो बच्चे सुबह की तरह मुसकरा रहे थे।

यकुम फ़रवरी, 1935

---

1. प्रतिबंधित; 2. रोना-पीटना, विलाप; 3. नाचती हुई; 4. लंबा-चौड़ा गाउन; 5. लिपटी हुई; 6 गहन निद्रा; 7. तल्लीन, मग्न; 8. आधी; 9. भय; 10. निर्धन स्थिति; 11. ऐशो-आराम; 12. भयानक; 13. चमकीले; 14. जर्जर; 15. वंचित; 16. अभाव; 17. कमज़ोर; 18. स्पर्श; 19. ख़ामोशी, सन्नाटा; 20. कँपकँपाहट; 21. अंधकारमय; 22. भयानक स्थान; 23. रुक-रुककर बोले गए; 24. उधेड़बुन; 25. चिंतित; 26. समाप्त; 27. मुठभेड़; 28. पत्थरों के टुकड़े; 29. स्पंदित; 30. चौड़े चकले, 31. कष्ट; 32. लुटेरों; 33. आशान्वित; 34. घटनाएँ; 35. जागे।

जिंदगी

बिल्लौरी चूड़ियों ने खनखनाहट से पूछा : "मैं ख़ूबसूरत हूँ कि तू ?"

ऊद का धुआँ आग के बिस्तर से परेशान होकर उठा। हवा में साँप की तरह उसने बल खाकर कहा : "तू मेरे सीने का राज़ है या मैं ?"

फ़रिश्ते आसमान की हल्की-फुल्की फ़ज़ाओं में पर तौलकर रह गए। अब्रे-बहार[1] ने ख़ज़ाँ[2] की मुट्ठी खोली और बुलंद दरख़्तों से सरगोशियाँ शुरू कर दीं। तुलू-ए-आफ़ताब[3] की आड़ी-तिरछी किरनों के शोर से अँधियारा घबरा के उठा और भाग गया।

गागर ने छलकते हुए पानी से कहा : "तू इतना बेसब्र क्यों है ?"

घूँघट के नीचे एक कुँवारे चेहरे पर न जाने कितने रंग आए और चले गए।

सौसन के फूलों में शहद की भूरी मक्खियाँ पड़ी ऊँघती रहीं। आस शबनम की बूँदों की मानिंद उसके दिल पर टपक रही थी। दरवाज़े ने हौले-से आह भरी और दहलीज़ के साथ बग़लगीर हो गया। थरथराते हुए होंठों पर एक कँपकँपी मुंजमिद[4] होते-होते रह गई।

यह नस्र[5] की शाइरी का एक निहायत ही लतीफ़ नमूना है। चंद सुतूरों में ज़िंदगी का तमाम रस निचोड़कर भर दिया गया है। पहली सतूर में तसव्वुफ़[6] का रंग है। बिल्लौरी चूड़ियों का अपनी खनखनाहट से पूछना : 'मैं ख़ूबसूरत हूँ कि तू ?' कितना अछूता ख़याल है और तसव्वुफ़ के चेहरे पर से यह नक़ाब को किस दिलकश अंदाज़ से उठाता है। शाइर का सीना क़ुदरत की रंगीनियों से मामूर[7] है। वह फ़रिश्तों तक पहुँचता है, मगर फ़ौरन ही ज़मीन पर अब्रे-बहार और बुलंद दरख़्तों की सरगोशियाँ सुनने के लिए दौड़ आता है। नेचरियत[8] का ऐसा अच्छा नमूना हिंदुस्तान की शाइरी में मिलना मुहाल है। औज़ान[9] की क़ैद से आज़ाद यह मन्शूर[10] नज़्म देहातों में चलनेवाली हवा की मानिंद हल्की-फुल्की और मुअत्तर[11] है। इसमें ज़िंदगी है और इस ज़िंदगी के अंदर हरकत है, एक लतीफ़ हरकत। एक प्यारा इर्तिआश[12] है, ऐसा इर्तिआश जो कुँआरी लड़कियों के जिस्म पर तारी हुआ करता है।

अल्फ़ाज़ की निशस्त बरख़्वास्त बहुत अच्छी है। मोज़ूनियत भी निहायत उम्दा है। ऐसा मालूम होता है कि इस नज़्म मन्शूर के मुसन्निफ़ ने दुल्हन की साड़ी में तारे बड़ी एहतियात से टाँके हैं। हर एक लफ़्ज़ चमकता है, लेकिन यह चमक ख़ैराकुन[13] नहीं।

आँखों को खलती नहीं, बड़ी प्यारी मालूम होती है।

इस नज़्म पर इसी तरह और बहुत कुछ लिखा जा सकता है। हर एक लफ़्ज़ के कई-कई मानी निकाले जा सकते हैं, मगर हक़ीक़त यह है कि यह नज़्म मन्शूर महज़ दिमाग़ी ऐयाशी है। लिखते वक़्त इसके मुसन्निफ़ के पेशे-नज़र सिर्फ़ यह बात थी कि लफ़्ज़ ख़ूबसूरत हों और उनकी तरतीब भी सुंदर हो, मगर मतलब कुछ न हो। चुनांचे नज़्म पढ़ने के बाद मज़ा तो आ जाएगा, मगर मतलब हरगिज़-हरगिज़ समझ में नहीं आएगा, क्योंकि यह इस ग़र्ज़ से लिखी ही नहीं गई।

यह नज़्म मैंने लिखी है और इस पर मैंने सिर्फ़ दो मिनट सर्फ़ किए हैं।

हिंदुस्तानी अदब में अब ऐसी नज़्मों का फ़ैशन आम हो गया है। योरोप का लिटरेचर[14] चूँकि बहुत वज़नी हो चुका था, इसलिए लोगों ने इस क़िस्म की हल्की-फुल्की मन्शूर शाइरी की तरफ़ तवज्जोह दी, और योरोप का क़ारी जो कि बोझल अफ़्कार[15] से तंग आ चुका था, ऐसी नज़्मों का दिलदादा हो गया। हिंदुस्तान चूँकि तक़लीद[16] का शुरू से आदी है, इसलिए उसके अदब ने इस नई क़िस्म की शाइरी को क़ुबूल कर लिया।

चुनांचे आज हम परदा-ए-सीमीं[17] पर न्यू थिएटर्ज़ की फ़िल्म 'ज़िंदगी' देखते हैं, जो इसी क़िस्म के अदबे-लतीफ़[18] का एक टुकड़ा है।

मैंने यह फ़िल्म देखी—जब मैं हॉल से बाहर आया तो मैं सोच रहा था कि मैंने क्या देखा है—हिंदुस्तान के जलीलुलकद्र[19] मुकालमानवीस पंडित इंद्र के क़ौल के मुताबिक़ इस फ़िल्म में साइकोलोजी है, यानी कोई ऐसी चीज़ जो फ़हम से बालातर हो, एक निहायत ही लतीफ़ शै जो कि ईथर[20] में तैरती हो।

ख़्वाजा अहमद अब्बास साहब और जमील अंसारी साहब कहते हैं : '' 'ज़िंदगी' बहुत अच्छी फ़िल्म है।'' इसलिए मैं भी कहता हूँ कि यह फ़िल्म बहुत अच्छी है—मगर मैं ज़िंदगी देखने गया था, ज़िंदगी। मेरा ख़्याल है, अब्बास साहब और जमील अंसारी साहब इसका मतलब बख़ूबी समझते होंगे।

हॉल में जब अँधेरा हुआ और 'ज़िंदगी' शुरू हुई तो मुझे उसकी रफ़्तार देखकर ऐसा महसूस हुआ कि शराबख़ाने में वेटर ने तेज व तुंद शराब के बजाय ग़लती से मेरे हाथ में शिकंजवीं का गिलास थमा दिया है। अब मैं न उसे वापस कर सकता हूँ और न फेंक सकता हूँ। चूँकि यह हमारी ज़िंदगी के आदाब के मनाफ़ी[21] है, चुनांचे दो घंटे तक मैं इस खट-मिठे शर्बत को आहिस्ता-आहिस्ता पीता रहा—खट-मिठा शर्बत, अगर उसमें काफ़ी बर्फ़ डाली गई हो, बदज़ाइक़ा नहीं होता।

'ज़िंदगी' अच्छी फ़िल्म है, इसलिए कि इसमें ज़िंदगी के सिवा सबकुछ है। इसमें खोटी दुवन्नी है जो सिर्फ़ बरवा ही चला सकता है। इसमें गीत हैं जो सिर्फ़ सहगल ही गा सकता है। इसमें मुकालमे[22] हैं जो सिर्फ़ जमना ही अदा कर सकती है। इसमें मदहोशी है जो पहाड़ी सान्याल की होशमंदी पर ग़ालिब नहीं आ सकती। इसमें फ़लसफ़ा है जो जमील अंसारी साहब की समझ में आता है। इसमें मोमबत्ती बुझने का टच है जो फ़नी नुक़्ता निगाह से बहुत ही बुलंद है और जो ख़्वाजा अहमद अब्बास साहब को बहुत पसंद आता है।

और इन सबके ऊपर इसमें टैलीपैथी[23] है जो मियाँ कारदार को बहुत पसंद आती है और जो फ़िल्म में बाक्स ऑफ़िस वैल्यू पैदा करती है।

'ज़िंदगी' अच्छी फ़िल्म है, इसलिए कि यह डायरेक्टर बरवा ने तैयार की है और न्यू थिएटर्ज़ ने पेश की है और इसमें सहगल और जमना हैं।

बंबई से पेशावर तक कई रेलगाड़ियाँ चलती हैं। इनमें कुछ तेज़ रफ़्तार हैं और कुछ सुस्त रफ़्तार—अगर आप सुस्त रफ़्तार गाड़ी में बंबई से पेशावर पहुँचना चाहते हैं, ख़्वाह दस-पंद्रह दिन सर्फ़ हो जाएँ तो आपको 'ज़िंदगी' बहुत पसंद आएगी। यह एक ऐसा ठहरा हुआ पानी है जिसमें कभी-कभी दरख़्त का कोई पत्ता गिरने से भँवर पैदा होते हैं। यह एक ऐसी सड़क है जिसमें कोई मोड़ नहीं आता और जो सीधी चली गई है, मौत के दहाने तक। ऐसा मालूम होता है कि 'ज़िंदगी' का मुसन्निफ़ अपनी आँखों पर पट्टी बाँधकर अपनी खेंची हुई सीधी लकीर पर हौले-हौले चल रहा है और आख़िर में धड़ाम से एक गहरी खाई में गिर पड़ता है।

'ज़िंदगी'

ज़िंदगी की शिकायत है मौत से। ऐसा मालूम होता है कि ज़िंदगी घुटने टेककर मौत के दामन से आँसू पोंछ रही है। 'ज़िंदगी' एक ऐसी ज़िंदगी है जो कभी ज़िंदगी थी, ऐसे इंसानों की जो मैक्सिम गोर्की के लफ़्ज़ों में कभी इंसान थे—यह फ़िल्म ज़िंदगी की अरथी है जो हम बरवा के नातवाँ[24] काँधों पर देखते हैं। और यह तो आपको मालूम ही है कि मुर्दा चीज़ों का वजन बहुत ज़्यादा हो जाया करता है। फ़िल्म के कई हिस्सों में आप महसूस करेंगे कि बरवा इस बोझ को उठाते-उठाते थक गया है। उसका दम फूल गया है और वह सुस्ताने के लिए एक सायेदार दरख़्त के नीचे बैठ गया है।

मुझे हरकत से प्यार है। हर तेज़ रौ चीज़ को देखकर मेरे अंदर हरकत पैदा हो जाती है। दौड़ती हुई मोटरें, दनदनाती हुई गाड़ियाँ, तेज़ी से घूमते हुए पंगोड़े, यह सब मुझे प्यारे हैं। मैं समझता हूँ कि यह सब मेरी नब्ज़े-हयात[25] के साथ हमआहंग[26] हैं। यही वजह है कि 'ज़िंदगी' देखकर मेरे दिल में कोई उकसाहट पैदा नहीं हुई। मेरी ज़िंदगी के घोड़े को ऐड़ न लगी। मुझे कुछ न हुआ—मैं हॉल में जैसा गया था, वैसे-का-वैसा बाहर आ गया—मैं ज़िंदगी देखने गया था, मुझे मौत नज़र आई। मैं मानता हूँ कि ज़िंदगी का अंजाम मौत है, लेकिन मौत में भी तो ज़िंदगी है। मौत मुर्दा तो नहीं होती। वह मौत जो ज़िंदगी को अपने खुरदुरे हाथों में मसल देती है, जो रगे-हयात[27] को दबाकर उसका फड़कना बंद कर देती है, कैसे बेजान हो सकती है। मेरे ख़याल के मुताबिक़ मौत ज़िंदगी से कहीं ज़्यादा ताक़तवर है, ज़िंदगी से कहीं ज़्यादा ज़िंदगी से भरपूर है—मगर जो मौत मुझे 'ज़िंदगी' में नज़र आई, बेजान थी। ज़र्द, बिलकुल ज़र्द।

फ़िल्म का अफ़साना एक बेकार ग्रेजुएट नौजवान और एक सितमरसीदा[28] औरत, जिसका शौहर शराबी और बदकार है, के किरदारों पर उस्तुवार[29] किया गया है। मालूम होता है कि अफ़सानानिगार ने एक दलदल पर इमारत खड़ी की है जो हर ईंट के दबाव से नीचे दबी जाती है—अफ़साने की हीरोइन दुखी है, इसलिए कि उसकी शादी एक ऐसे मर्द से

कर दी गई है जो शराबी है। वह अपनी स्त्री के हुक़ूक़ को पायमाल[30] करता है, अपनी धर्मपत्नी को मारता है और फिर उसको ठुकराकर घर से निकाल देता है—हीरोइन घर से बाहर निकल आती है और यह अफ़साने की मेराज[31] क़रार दी गई है—मेरी समझ में नहीं आता कि हीरोइन ने कौन-सा बहादुरी का काम किया। जिस औरत की ज़िंदगी अजीरन[32] थी, जिसको धक्के देकर घर से बाहर निकाल दिया गया, उसने अपने पति का घरबार छोड़ने की बहादुरी कैसे की? वह तो एक बेकार शै समझकर बाहर फेंक दी गई थी। ख़ुद बाहर निकलने की उसने हिम्मत नहीं की।

और फिर जब वह पति का घर छोड़कर बाहर निकलती है और रतनलाल आवारागर्द से मिलती है तो क्यों छुपी बैठी रहती है और रतनलाल क्यों पत्ता खड़कने पर भड़क उठता है—रतनलाल बेकार क्यों है? हम उसके हलक़ से इतने सुरीले गाने सुनते हैं। वह उनकी बदौलत कमा क्यों नहीं सकता? अगर 'ज़िंदगी' इस ज़माने की कहानी है तो वह न्यू थिएटर्ज़ ही में बड़ी आसानी के साथ नौकरी हासिल कर सकता था। अच्छे गानेवालों की हर फ़िल्म कंपनी को ज़रूरत है, फिर वह बेकार क्यों है—सारी फ़िल्म देखकर मुझे ऐसा महसूस हुआ कि वह बेकार रहना चाहता है, या उसे ज़बर्दस्ती अफ़सानानिगार ने बेकार रखा है। यही वजह है कि 'ज़िंदगी' का कैनवस अफ़सानानिगार ने बहुत ही महदूद[33] कर दिया है—ज़िंदगी एक तंगनाए नहीं, चौड़ा समंदर है जिसमें बड़े-बड़े जहाज़ भी चलते हैं और छोटी-छोटी किश्तियाँ भी। मगर इस फ़िल्म मे तो रतनलाल और हीरोइन अपनी किश्तियों को उलटकर उसके पेंदों में सुराख़ बनाते रहते हैं।

जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, 'ज़िंदगी' रतनलाल और हीरोइन की एक शिकायत है समाज मे कि वह दोनों एक-दूसरे से गले न मिल सके। उन्हें एक-दूसरे का वस्ल नसीब न हो सका—मैं पूछता हूँ, क्या यह वस्ल ही ज़िंदगी का वाहिद नस्बुलऐन[34] है? क्या जिन्सी इश्क़ ही ज़िंदगी का महवर[35] है? क्या इसी महवर के इर्द-गिर्द ज़िंदगी घूमती है?

हीरोइन शादीशुदा है। चूँकि हिंदू मज़हब में तलाक़ नहीं है, इसलिए वह अपने बेकार आशिक़ से शादी नहीं कर सकती, और बेकार आशिक़ बाकार इसलिए नहीं बन सकता कि वह हीरोइन से शादी नहीं कर सकता—बस यह 'ज़िंदगी' का प्लाट है।

मैं तस्लीम करता हूँ कि मुहब्बत बहुत ताक़तवर चीज़ है। यह बेकारों को नौकरी भी दिलवा सकती है, उनके सीने में ज़िंदा रहने और कुछ कर गुज़रने की उकसाहट भी पैदा कर सकती है, मगर सवाल पैदा होता है कि हीरोइन और हीरो की मुहब्बत कौन-सी नौइयत[36] की है—जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, उनका प्रेम महज़ जिन्सी है, और सच पूछिए तो फ़ीज़-मानिना[37] औरत और मर्द का प्रेम होता ही जिन्सी है। अगर इन दोनों का प्रेम जिन्सी दायरे से बाहर होता तो मुझे यक़ीन है, रतनलाल कुछ करता। गाने के अलावा वह तनाज़ो-लिलबक़ा[38] में हिस्सा लेने के लिए हाथ-पाँव मारता, इसलिए कि मुहब्बत फ़ालिज की कोई बीमारी नहीं है।

और फिर हीरोइन ने क्या किया?

वह पढ़ी-लिखी होशमंद औरत है। अपने दिल को अच्छी तरह समझती है। अपनी

मुश्किलात से वाक़िफ़ है। उसमें जुर्रात भी है। वह अपने बाप के घर जाने के बजाय एक नामहरम[39] मर्द के साथ एक ही कमरे में रात बसर करती है। बाज़ारों और गलियों में उसके साथ घूमती-फिरती है—वह अपने हुक़ूक़ के लिए लड़ सकती है और जैसा कि उसकी ख्वाहिश है, नौकरी तलाश कर सकती है। और जुर्रात करके अपने आशिक़ को भी अपना सकती है, लेकिन वह कुछ नहीं करती। वह डरती है—क्यों? इसका जवाब बरवा साहब ने आख़िर में दिया है।

और रतनलाल कारदारी अंदाज़ में बस समाज को गालियाँ देता रहता है।

समाज को गालियाँ ज़रूर दी जाएँ। अगर हो सके तो उसको फटे हुए जूतों का हार भी पहना दिया जाए। मुझे बड़ी ख़ुशी होगी, मगर सवाल यह है कि समाज है क्या? क्या हीरोइन और हीरो इस समाज ही का एक हिस्सा नहीं?

समाज को अगर एक अड़ियल ख़च्चर समझ लिया जाए तो अफ़साने का हीरो रतनलाल उसकी दुम है जो मक्खियाँ हटाने की कोशिश में हिलती रहती है। कहते हैं, 'ज़िंदगी' एक बहुत बड़ी समाजी फिल्म है। इसमें कोई शक नहीं, इसलिए कि इसमें समाज का ज़िक्र आता है। और इसमें समाज के इस क़ानून को भी तोड़ने की कोशिश की गई है कि हर शादीशुदा औरत, जिसकी शादी गलत मर्द से कर दी गई हो, किसी दूसरे मर्द से रोमान लड़ा सकती है—मैं इसके हक़ में हूँ, मगर मैं एक बाक़ाइदा जंग देखना चाहता हूँ। कोई चीज़ तोड़ दी जाए, या उसको तोड़ने की तमन्ना दिल में पैदा हो तो मैं आँखों में आँसू और हलक़ में आहें देखने का क़ायल नहीं—बस हथौड़ा लिया जाए और बढ़कर उसे तोड़ दिया जाए। चलो छुट्टी हुई!

हीरोइन जब चाहे, इस क़ानून को तोड़ सकती है, इसलिए कि उसके पास दौलत का काफ़ी वज़नी हथौड़ा है। मालूम नहीं, वह किस मौक़े की तलाश में है—यहाँ एक बात और कहना पड़ती है कि ज़िंदगी में मवाक़े पैदा किए जाते हैं, ख़ुद-ब-ख़ुद पैदा नहीं होते।

यही वजह है कि मैं 'ज़िंदगी' को ज़िंदगी बख़्श नहीं समझता। मेरे ख़याल में यह फ़िल्म एक जिन्सी थकान है जो बरवा या अफ़सानानिगार पर तारी है—अब यह सोचना है कि इस क़िस्म की थकावट तारी होना ज़िंदगी है? इसका जवाब शायद जमील अंसारी साहब दे सकें।

एक बात और खटकती है और वह यह कि हीरोइन घर से बाहर निकाल दिए जाने पर अपने बाप के घर जाने की बजाय हीरो के साथ चिपक जाती है, और जब सनीमाई इत्तिफ़ाक़ से उसकी मुलाक़ात अपनी बहन से होती है और वह अपने क़रीबुलमर्ग[40] बाप से मिलती है तो वह बिस्तरे-मर्ग[41] पर उसकी जुर्रात की दाद देता है। "मैं बहुत ख़ुश हुआ हूँ बेटी कि तूने अपने बदकिरदार पति का घर छोड़ देने की हिम्मत की।" चुनांचे इस हिम्मत और जुर्रात के इनाम में वह अपनी सारी जायदाद उसके हवाले कर देता है—वह यह नहीं पूछता: 'तुम इतने दिन कहाँ रहीं?'

अफ़साने में एक और टुकड़ा बहुत ही अजीबो-ग़रीब है। यह बताने के लिए कि रतनलाल के दिलो-दिमाग़ में हीरोइन का ख़याल समाया हुआ है, बरवा साहब ने एक

निहायत ही भौंडा टच दिया है—रतनलाल बाज़ार में जा रहा है कि एक दोस्त से उसकी मुठभेड़ हो जाती है। दोस्त कहता है : "अमाँ इतने रोज़ तुम कहाँ रहे··· चलो मेरे साथ चलो·· आज हमने दावत दी है, तुम ज़रा जादू के खेल दिखाना ··" जादू के खेल नहीं दिखाए जाते, क्योंकि उनसे डायरेक्टर का मतलब पूरा नहीं हो सकता था। चुनांचे हीरो आवाज़ों का नक़्क़ाल बनता है और हीरोइन से बातचीत करता है—मेरे ख़याल में यह टच बरवा साहब जैसे डायरेक्टर के शायाने-शान[42] नहीं है। तकनीकी नुक़्ता-निगाह से भी यह ग़ाइत[43] दर्जा ख़ाम है और इसको देखकर ऐसा महसूस होता है कि डायरेक्टर कहानी सुनाते-सुनाते तमाशाइयों के कान में यह कहना शुरू कर देता है : "नाज़िरीन, यह याद रखिएगा कि हमारे हीरो के दिमाग में इस वक़्त हीरोइन बसी हुई है··· हीरोइन, समझ लिया, हीरोइन।"

मुख़्तसर अल्फ़ाज़ में 'ज़िंदगी' के मुताल्लिक़ सिर्फ़ यह कहा जा सकता है कि यह एक आह है जो वाह में लपेटकर पेश की गई है। इसका पैकिंग अच्छा है—मिस्टर बरवा योरोप से नुमाइशकारी का यह तरीक़ा शायद हाल ही में सीखकर आए हैं, और 'ज़िंदगी' की दुम में नमदा बाँधने का काम भी बरवा साहब ने बड़े सलीक़े से किया है, जिसकी दाद दिए बगैर मैं यह मज़मून ख़त्म नहीं कर सकता।

हिंदुस्तानियों की ओहामपरस्ती[44] को बरवा साहब ने बड़े सलीक़े से पेश किया है, जिसके मुताल्लिक़ बाज़ नक़्क़ादों का ख़याल है कि यह एक बहुत बड़ा तन्ज़[45] है। मिसाल के तौर पर वह मंदिरवाला सीन मुझे बेहद पसंद है—सहगल ने गाने बहुत अच्छे गाए हैं, एक अपनी मर्ज़ी से; बाक़ी जमना की मर्ज़ी से। जब कभी जमना ने कहा : "मुझे वह गीत तो सुनाओ" तो सहगल ने इनकार नहीं किया। फ़ौरन ही बेचारे ने गाना शुरू कर दिया। ऐसे हीरो ख़ासतौर पर हीरोइन को बहुत पसंद होते हैं जो कभी इनकार न करें।

'ज़िंदगी' में एक कैरेक्टर बहुत दिलचस्प है, शराबी का, जो पहाड़ी साहब ने अदा किया है। अफ़साने में इसका काम सिर्फ़ शराब पीना या किसी से अपना दिल बहलाना है—पहाड़ी को शराबी के लिबास में देखकर इस 'ख़ुश्की' के ज़माने में कई शराबियों को बहुत ग़ुस्सा आया होगा, इसलिए कि वह सही शराबी नहीं है।

फ़िल्म में शराबी और आवारागर्द की तारीफ़ बरवा साहब ने अछूते अंदाज़ में की है जो आर्ट कहलाई जा सकती है।

जी चाहता है कि बरवा साहब की तरह इस रिव्यू[46] को भी एक फ़िल्म बना दूँ, मगर मेरी जेब में कोई न्यू थिएटर्ज़ नहीं है। और अगर न्यू थिएटर्ज़ न होगा तो ऐसी फ़िल्म क्योंकर बनाई जा सकती है।

पस लफ़्ज़।

इस रिव्यू के बाद मैं फिर जेल की सुतूरें लिख रहा हूँ:

मैं एक बार फिर कहता हूँ कि 'जिंदगी' में जिंदगी नहीं है। इसमें मौत है और वह भी

बेजान मौत। 'ज़िंदगी' देखने के बाद अब मैं जब कभी उसका तसव्वुर करता हूँ तो मेरी आँखों के सामने रबड़ का रंगीन गुब्बारा आ जाता है, जिसकी हवा आहिस्ता-आहिस्ता निकल रही हो। 'ज़िंदगी' हवा भरा गुब्बारा नहीं। वह एक ऐसा गुब्बारा है जिसमें बहुत ज़्यादा हवा भरके उसे आहिस्ता-आहिस्ता ख़ाली कर दिया गया हो और आख़िर में एक छीछड़ा-सा बनकर रह गया हो।

कहा जाता है कि अफ़साने में समाज के ख़िलाफ बग़ावत है और एक कमज़ोर औरत अपने नाज़ुक हाथों से समाज के बंधन तोड़ती है—'ज़िंदगी' मैंने इन दोनों आँखों से देखी है। मुझे यह बग़ावत और जुर्रात कहीं भी नज़र नहीं आई, बल्कि मुझे तो बुज़दिली-ही-बुज़दिली दिखाई दी है—फ़िल्म के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक जुर्रात का नामो-निशान तक नहीं।

अफ़साने का आग़ाज़ श्रीमान रतनलाल हीरो के मकान से होता है जिसका किराया अदा नहीं किया गया है। मालिक मकान की आवाज़ सुनकर हीरो भाग उठता है—इसके बाद फ़िल्म में जो मंज़र भी आता है, उसमें आप हीरो और हीरोइन दोनों को ग़ैरों और दुश्मनों से भागते-छुपते ही पाएँगे।

मैं 'ज़िंदगी' के अफ़सानानिगार से पूछना चाहता हूँ कि उन्हें डर किस बात का था? उनके दुश्मन कौन थे? उनका तआकुब[47] करने की किसी को ज़रूरत ही क्या थी? वह इतने अहम नहीं थे कि लोग उनकी तरफ़ मुतवज्जेह होते। फिर वह छुपते क्यों थे? वह इर्तिआशे-ख़फ़ी[48] क्या था जो हर वक़्त उन पर तारी रहता था? ज़रा-सी आहट पर उनका दिल सीने से उछलकर बाहर आ जाता था, इसकी वजह क्या थी?

शायद यह कैफ़ियत उस जुर्रात ने पैदा कर दी थी जो वह दोनों अपने अंदर पैदा करना चाहते थे—मैं पूछता हूँ कि यह जुर्रात किसलिए पैदा की जा रही थी—इस सवाल का जवाब अगर अब्बास साहब या जमील साहब से पूछा जाए तो वह वैसा ही जवाब देंगे जैसा कि 'ज़िंदगी' अपने मौज़ू से मुताल्लिक़ा सवालों का जवाब देती है।

मुझसे पूछिए, मैं आपको बताता हूँ कि वह क्यों हाँ और ना के दरमियान थे। क्यों वह एकदम बुज़दिल और जुर्रातमंद थे। क्यों हर वक़्त उनका ज़मीर शशोपंज[49] की हालत में रहता था। क्यों वह वह नहीं थे जोकि होना चाहिए थे।

मर्द और औरत के दरमियान सिवाय वस्ल के और चीज़ ही क्या है—हीरोइन अपने शराबी ख़ाविंद से बेज़ार थी। फिर उसने उसे धक्के मारकर घर से बाहर भी निकाल दिया था। वह मुहब्बत करना चाहती थी। मुहब्बत करने की जिस्मानी ताक़त उसके दिलो-दिमाग़ में इतनी शिद्दत[50] इख़्तियार कर गई थी कि उसने उस पहले मर्द से इश्क़ करना शुरू कर दिया जो घर से बाहर निकाले जाने पर उसे मिला—परदे पर हम इश्क़ का इज़हार हीरोइन की तरफ़ से देखते हैं और यह होना चाहिए था, इसलिए कि वह भूखी थी और उसकी भूख यकसर जिन्सी थी। उसने रतनलाल को अपने मुक़फ़्फ़ले-इश्क़[51] की चाबियाँ देते वक़्त यह नहीं सोचा कि वह कौन है और क्या है। वह बस एक मर्द चाहती थी। वह रतनलाल के साथ कई दिनों तक घूमती फिरी। एक रात वह उसके घर भी

सोई—इतनी जुर्रत उसने की, लेकिन रतनलाल को आज़ादाना तौर पर अपना बना लेने की जुर्रत उसमें नहीं थी।

मेरी समझ में नहीं आता कि फ़िल्म में रोना किस बात का रोया गया है? जब उसको इतनी जुर्रात थी तो क्या बाक़ी चीज़ों की तकमील के लिए वह मज़ीद जुर्रात नहीं कर सकती थी? और फिर समाज को क्यों बुरा-भला कहा गया है—जब हीरोइन रात को रतनलाल के घर में सोने का इरादा कर रही थी तो समाज ने खाट तो नहीं उलट दी थी। जब वह हीरो के साथ खुले बंदों बाज़ारों में चलती-फिरती थी तो समाज ने उसकी राह में काँटे तो नहीं बिछा दिए थे—ख़्वाजा अहमद अब्बास साहब कुछ भी कहें, मगर यह ज़ाहिर है कि वह दोनों जिन्सी ताल्लुक़ात पैदा करने के लिए मुज़्तरिब थे और चाहते थे कि उनके ताल्लुक़ात पर समाज का एतिराज़ न हो।

इस अफ़साने में यह जिन्सी सवाल सिर्फ़ दो अफ़राद[52] से मुताल्लिक़ है। वह जो चाहे करते, उनके आमाल[53] का समाज की चौड़ी छाती पर क्या बोझ पड़ सकता था। क्या शराबी शौहरों की धुत्कारी हुई बीवियाँ ग़ैर मर्दों की आग़ोश में नहीं चली जातीं? उनके ऐसा करने से ज़िंदगी की रफ़्तार में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। समाज के चेहरे का रंग उनके इस फ़ैल से नहीं बदलता। दुनिया में कोई भूचाल नहीं आता। कोई क़यामत बरपा नहीं होती—फिर एक ऐसे मोज़ू पर फ़िल्म तैयार करना क्या मानी रखता है, जिसका अमूमी[54] ज़िंदगी से कोई ताल्लुक़ नहीं। 'ज़िंदगी' ख़ास अफ़राद के जिन्सी मिलाप की नाकामी का अफ़साना है। इसे बाक़ी सब लोगों से क्या सरोकार हो सकता है।

ज़िंदगी गंदे ख़ून के निकास का नाम नहीं है। ज़िंदगी का मफ़हूम[55] मसला-ए-इज़्दवाज[56] तक महदूद नहीं है। ज़िंदगी मर्द और औरत के मिलाप का नाम नहीं है—ज़िंदगी नाम है हरकत का। ज़िंदगी नाम है कशमकश का। ज़िंदगी नाम है बेबाकी का। ज़िंदगी नाम है ज़िंदा रहने का। ज़िंदगी नाम है ज़िंदा रहने के मुतालबे[57] का।

एक बेकार, महज़ बेकार सुस्त आदमी, जिसकी रग-रग और नख-नख में काहिली सरायत[58] कर गई थी; एक ग्रेजुएट जो इतना अच्छा गाता था कि हज़ारों रुपए माहवार कमा सकता था और जो जादू के खेल जानता था, बेकार था। जो जुए में एक खोटी दुवन्नी जीतकर बाज़ारों में घूमता रहता था—ऐसा शख़्स क्या अलिफ़-लैला के मर्दे-तस्मा पा की तरह ज़िंदगी की गर्दन पर सवार नहीं था।

मुझे अफ़सोस है कि आख़िर में अफ़सानानिगार के हाथों हीरोइन की मौत वाक़े हुई—क्या ही अच्छा होता, अगर हीरो-ऐसे नाकारा और फ़िज़ूल शख़्स के बोझ से ज़िंदगी को हल्का कर दिया जाता। सितम बालाए-सितम[59], यह शख़्स इश्क़ भी करता है और समाज को एक ही साँस में दो-दो सौ गालियाँ भी देता है—अगर मैं समाज होता तो उसके मुँह पर ऐसा 'ज़िंदगी' भरा चाँटा मारता कि फिर उसको बेकार रहने की कभी जुर्रात न होती।

एक बात और समझ में नहीं आती—हीरोइन का बाप इस बात से ख़ुश होकर कि उसने बहुत बड़ी जुर्रात की है, अपनी सारी जायदाद उसके हवाले कर देता है तो वह ग़ैरत देना

शुरू कर देती है। मुमकिन है, इस ख़ैरात का हीरोइन के साथ कोई नफ़सियाती रिश्ता हो, मगर मेरी समझ से यह बालातर है। ख़ैरात में रुपया सर्फ़ करके वह किस क़िस्म की प्यास बुझाना चाहती है? क्या वह अपनी आक़बत[60] सँवारना चाहती है? क्या वह स्वर्ग में अपने लिए कोई अच्छा-सा बँगला रिज़र्व कराना चाहती है—आख़िर हातिमताई को शर्मिंदा करने की ज़रूरत उसे क्यों लाहिक़ होती है?

ख़्वाजा अहमद अब्बास साहब कहते हैं: ''जो 'ज़िंदगी' देखने जाए, वह अपने साथ दो रूमाल लेकर जाए…''

बिलकुल दुरुस्त है। एक अपने आँसू पोंछने के लिए और दूसरा बरवा के।

1 बरसात के बादल; 2. पतझड़, 3 सूर्योदय, 4. जमते; 5 गद्यात्मक, 6. भक्ति, 7. भरा हुआ, 8 प्रकृति; 9. भार, बोझ, 10. अस्त-व्यस्त; 11. सुगंधित; 12. कँपकँपी, 13. आँखों को चौंधियानेवाली, 14 साहित्य, 15 रचनाएँ; 16. अनुकरण; 17. सफ़ेद पर्दे; 18 मनोरंजक साहित्य, 19 सुप्रसिद्ध, 20 अंतरिक्ष, 21 विपरीत; 22. संवाद, 23. दूसरों की भावनाओं को जानने की मानसिक क्रिया, 24 कमजोर, 25. जीवन की गति; 26 मिला हुआ; 27 जीवन की रग (प्राण); 28. पीड़ित, 29 सुदृढ़, 30. पद-ध्वस्त; 31 चरमोत्कर्ष; 32. कष्टमय; 33 सीमित, 34 उद्देश्य; 35 केंद्र, धुरी; 36 प्रकार, किस्म, 37 वर्तमान, 38 जीवन-संघर्ष; 39 ग़ैर, पराया; 40. मरणासन्न, 41 मृत्यु-शय्या; 42 शान के ख़िलाफ़, 43. बहुत; 44. धार्मिकता (बहुदेववाद); 45. व्यंग्य; 46. समालोचना; 47. पीछा करना, 48 छुपी हुई थरथराहट; 49. असमंजस; 50. तेजी, तीव्रता; 51. इश्क के ताले; 52. व्यक्तियों, 53 कर्म, 54. जनसाधारण की; 55. उद्देश्य; 56. वैवाहिक समस्या; 57. आवश्यकता, 58. प्रविष्ट, समा जाना; 59. ज़ुल्म के ऊपर भी ज़ुल्म, 60. परलोक।

तरक़्क़ीयाफ़्ता क़ब्रिस्तान

अंग्रेज़ी तहज़ीबो-तमद्दुन[1] की ख़ूबियाँ कहाँ तक गिनवाई जाएँ। इसने हम ग़ैर मुहज़्ज़ब[2] हिंदुस्तानियों को क्या कुछ अता नहीं किया—हमारी गँवार औरतों को अपने निस्वानी ख़ुतूत की नुमाइश के नित नए तरीक़े बताए; जिस्मानी ख़ूबियों का मुज़ाहिरा करने के लिए बग़ैर आस्तीनों के ब्लाउज़ पहनने सिखाए; मिस्सी काजल छीनकर उनके सिंगारदानों में लिपस्टिक, रूज, पाउडर और अफ़ज़ाइशे-हुस्न[3] की और चीज़ें भर दीं—पहले हमारे यहाँ मोचने सिर्फ़ नाक या मूँछों के बाल चुनने के काम आते थे, मगर तहज़ीबे-फ़िरंग ने हमारी औरतों को इनसे अपनी भवों के बाल चुनना सिखाया।

यह तहज़ीब ही की बरकत है कि अब जो औरत चाहे, लाइसेंस लेकर खुले बंदों अपने जिस्म की तिजारत कर सकती है। तरक़्क़ीयाफ़्ता मर्दों और औरतों के लिए सिविल मैरिज का क़ानून मौजूद है: जब चाहे शादी कर लीजिए और जब चाहे तलाक़ हासिल कर लीजिए; हींग लगती है न फिटकरी, मगर रंग चोखा आता है। नाचघर मौजूद हैं जहाँ आप औरतों के साथ सीने से सीना मिलाकर कई क़िस्मों के नाचों में शरीक हो सकते हैं। क्लबघर मौजूद हैं जहाँ आप बडे मुहज़्ज़ब तरीक़े से अपनी सारी दौलत जुए में हार सकते हैं; मजाल है कि आप कभी क़ानूनी गिरफ़्त में आएँ—शराबख़ाने मौजूद हैं जहाँ आप ग़म ग़लत कर सकते हैं।

अंग्रेज़ी तहज़ीबो-तमद्दुन ने हमारे वतन को बहुत तरक़्क़ीयाफ़्ता बना दिया है—अब हमारी औरतें पतलूनें पहनकर बाज़ारों में चलती-फिरती हैं; कुछ ऐसी भी हैं जो करीब-क़रीब कुछ भी नहीं पहनतीं लेकिन फिर भी आज़ादाना घूमती-फिरती हैं—हमारा मुल्क बहुत तरक़्क़ीयाफ़्ता हो गया है, क्योंकि अब यहाँ 'नंगा क्लब' खोलने की भी तजवीज़ हो रही है।

वह लोग सिरफिरे हैं जो अपने मोहसिन[4] अंग्रेज़ों से कहते हैं: 'हिंदुस्तान छोड़कर चले जाओ।' अगर अंग्रेज़ हिंदुस्तान छोड़कर चले गए तो हमारे यहाँ 'नंगा क्लब' कौन जारी करेगा? हम औरतों के साथ सीने से सीना मिलाकर कैसे नाच सकेंगे? हमारे चकले क्या वीरान नहीं हो जाएँगे? हमें एक-दूसरे से लड़ना कौन सिखाएगा? अगर हमारे यह मोहसिन चले गए तो मुस्लिम लीगें और हिंदू महासभाएँ कैसे क़ायम होंगी? मान्चेस्टर से जो कपड़े अब हमारी कपास से तैयार होकर आते हैं, फिर कौन तैयार करेगा? यह अच्छे-अच्छे लजीज़ बिस्कुट जो हम खाते हैं, फिर हमें कौन देगा?

जो तरक़्क़ी हमें और हमारे हिंदुस्तान को अंग्रेज़ों के अहद[5] में नसीब हुई है, और किसी के अहद में नसीब नहीं हुई— अगर हम आज़ाद हो भी जाएँ तो हमें हुकूमत करने की वह चालें नहीं आ सकतीं जो हमारे इन हाकिमों को आती हैं, इन हाकिमों को जिनके अहद में न सिर्फ़ हमारे होटलों, क्लबों, रक़्सख़ानों और सनीमाओं की, बल्कि हमारे क़ब्रिस्तानों की भी काफ़ी तरक़्क़ी हुई है।

ग़ैर तरक़्क़ीयाफ़्ता क़ब्रिस्तानों में मुर्दे उठाकर गाड़ दिए जाते हैं, जैसे वह कोई क़द्रो-क़ीमत ही न रखते हों—लेकिन तरक़्क़ीयाफ़्ता क़ब्रिस्तानों में ऐसा नहीं होता।

मुझे इस तरक़्क़ी का एहसास उस वक़्त हुआ, जब बंबई में मेरी वालिदा का इंतिक़ाल हुआ—मैं छोटे-छोटे निस्बतन ग़ैर मुहज़्ज़ब शहरों में रहने का आदी था। मुझे मालूम नहीं था कि बड़े शहरों में मुर्दों पर भी हुकूमत की तरफ़ से पाबंदियाँ आइद हैं।

वालिदा की लाश दूसरे कमरे में पड़ी थी और मैं ग़म का मारा सिर न्योढ़ाए एक सोफ़े पर बैठा सोच रहा था कि इतने में एक साहब ने, जो अर्से से बंबई में रहते थे, मुझसे कहा : "भई, अब तुम्हें कुछ कफ़न-दफ़न की फ़िक्र करनी चाहिए।"

मैंने कहा : "यह तो आप ही करेंगे, क्योंकि मैं यहाँ नौवारिद[6] हूँ।"

उन्होंने जवाब दिया : "मैं सबकुछ कर दूँगा, मगर पहले तुम्हें किसी के हाथ इत्तिला भिजवा देनी चाहिए कि तुम्हारी वालिदा का इंतिक़ाल हो गया है।"

"किसको ?"

"यहाँ पास ही म्युनिसिपैलिटी का दफ़्तर है, उसको इत्तिला देनी बहुत ज़रूरी है क्योंकि जब तक वहाँ से सर्टीफ़िकेट नहीं मिलेगा, क़ब्रिस्तान में दफ़नाने की इजाज़त नहीं मिलेगी।"

उस दफ़्तर को इत्तिला भेज दी गई।

वहाँ से एक आदमी आया और उसने तरह-तरह के सवाल करने शुरू कर दिए : "क्या बीमारी थी… ? मरहूमा कितने अर्से से बीमार थी… ? किस डॉक्टर का इलाज हो रहा था… ?"

हक़ीक़त यह थी कि मेरी अदममौजूदगी में हार्ट फ़ेल हो जाने की वजह से मेरी वालिदा का इंतिक़ाल हुआ था। ज़ाहिर है, वह किसी की ज़ेरे-इलाज नहीं थीं, और न ही मुद्दत से बीमार थीं—मैंने उस आदमी से जो सच्ची बात थी, कह दी।

उस आदमी का इत्मीनान न हुआ और वह कहने लगा : "आपको डॉक्टरी सर्टीफ़िकेट दिखाना पड़ेगा कि मौत वाक़ई हार्ट फ़ेल हो जाने की वजह से हुई है।"

मैं सटपटा गया—मैं डॉक्टरी सर्टीफ़िकेट कहाँ से हासिल करता—कुछ सख़्त कलमे मेरे मुँह से निकल गए।

मेरे वह दोस्त, जो एक अर्से से बंबई में क़यामपज़ीर थे, उठे और उस आदमी को एक तरफ़ ले गए—वह कुछ देर उससे बातें करते रहे, फिर आए और मेरी तरफ़ इशारा करके कहने लगे : "यह तो बिलकुल बेवक़ूफ़ है… इसको यहाँ की बातों का कुछ इल्म नहीं।"

फिर उन्होंने मेरी जेब से दो रुपए निकालकर उस आदमी को दिए।

वह एकदम ठीक हो गया और कहने लगा : "अब आप ऐसा कीजिए कि दवाओं की चंद ख़ाली बोतलें मुझे दे दीजिए ताकि बीमारी का कुछ तो सुबूत हो जाए... पुराने नुस्ख़े वग़ैरह पड़े हुए हों तो वह भी मुझे दे दीजिए।"

उसने इसी क़िस्म की कुछ और बातें भी कीं जिनको सुनकर मुझे थोड़ी देर के लिए ऐसा महसूस हुआ कि मैं अपनी वालिदा का क़ातिल हूँ और वह आदमी जो मेरे सामने बैठा है, मुझ पर तरस खाकर उस राज़ को अपने तक ही रखना चाहता है और मुझे ऐसी तरकीबें बता रहा है कि क़त्ल के निशानात मिट जाएँ—उस वक़्त मेरे जी में आई थी कि धक्के देकर उसको बाहर निकाल दूँ और घर में जितनी ख़ाली बोतलें पड़ी हैं, उन सबको एक-एक करके उसके बेमग़ज़ सिर पर फोड़ता चला जाऊँ—इस तहज़ीबो-तमद्दुन का भला हो कि मैं ख़ामोश रहा—मैंने अंदर से कुछ बोतलें निकलवाकर उसके हवाले कर दीं।

दो रुपए रिश्वत के तौर पर अदा करने के बाद म्युनिसिपैलिटी का सर्टीफ़िकेट हासिल कर लिया गया था—अब क़ब्रिस्तान का दरवाज़ा हम पर खुला था।

लोहे के बहुत बड़े दरवाज़े के पास एक छोटा-सा कमरा था, जैसा कि सनीमा के दरवाज़े के पास बुकिंग ऑफ़िस होता है, उसकी खिड़की में से एक आदमी ने झाँककर अंदर जाते हुए जनाज़े को देखा। वह कुछ कहने ही को था कि मेरे दोस्त ने वह पर्ची, जो म्युनिसिपैलिटी के दफ़्तर से मिली थी, उसके हवाले कर दी—क़ब्रिस्तान के मैनेजर को इत्मीनान हो गया कि जनाज़ा बग़ैर टिकट के अंदर दाख़िल नहीं हुआ।

बड़ा ख़ूबसूरत क़ब्रिस्तान था—एक जगह दरख़्तों का झुंड था जिसके साये तले कई पुख़्ता क़ब्रें लेटी हुई थीं। इन क़ब्रों के आसपास मोतिया, चंबेली और गुलाब की झाड़ियाँ उग रही थीं।

पूछने पर मालूम हुआ कि यह क़ब्रिस्तान का सबसे ऊँचा दर्जा है जहाँ हाई क्लास आदमी अपने अज़ीज़ों को दफ़न करते हैं। एक क़ब्र के दाम मुब्लिग़[7] तीन सौ रुपए अदा करने पडते हैं। यह रक़म देने के बाद क़ब्रिस्तान की इस ठंडी और हवादार जगह में आप अपनी या अपने किसी अजीज़ की पुख़्ता क़ब्र बनवा सकते हैं। उसकी देखभाल करना हो तो आपको छः रुपए सालाना और देना पड़ेंगे। यह रक़म लेकर मैनेजर साहब इस बात का ख़याल रखेंगे कि क़ब्र ठीक हालत में रहे।

वह लोग जो तीन सौ रुपए अदा करने की इस्तिताअत[8] नहीं रखते, उनकी क़ब्रें तीन या चार साल के बाद खोद-खादकर मिटा दी जाती हैं और उनकी जगह दूसरे मुर्दे गाड़ दिए जाते हैं। उन क़ब्रों को मोतिया, चंबेली और गुलाब की ख़ुशबू नसीब नहीं होती। वहाँ दफ़नाते वक़्त मिट्टी के साथ एक ख़ास क़िस्म का मसाला मिला दिया जाता है ताकि लाश और उसकी हड्डियाँ जल्द गल-सड़ जाएँ।

चूँकि एक ही शक्ल-सूरत की क़ब्रें क़तार अंदर क़तार चली गई हैं, इसलिए हर क़ब्र

पर नंबर लगा दिया गया है ताकि पहचानने में आसानी हो—यह नंबर चार आने में मिलता है।

आजकल अच्छे सनीमाओं में भी ऐसा ही किया जाता है। नंबर लगे टिकट दिए जाते हैं ताकि हॉल में गड़बड़ न हो और आदमी उस नंबर की सीट पर बैठे जिस नंबर का उसके पास टिकट है।

जब मुर्दा दफ़न किया जाता है तो क़ब्रिस्तान का मोहतमिम[9] एक ख़ास नंबर, जो लोहे की तख़्ती पर लिखा होता है, क़ब्र के पहलू में गाड़ देता है। यह नंबर उस वक़्त तक गड़ा रहता है, जब तक क़ब्र किसी दूसरे मुर्दे के लिए ख़ाली नहीं की जाती।

नंबर मिलने से कितनी आसानी हो जाती है, यानी आप अपनी नोटबुक में दीगर तफ़सीलात के साथ अपने अज़ीज़ों की क़ब्रों का नंबर भी दर्ज कर सकते हैं :

जूते का नंबर : पाँच

जुराब का नंबर : साढ़े नौ

टेलीफ़ोन का नंबर : 44457

बीमे की पालिसी का नंबर : 225689

वालिदा की क़ब्र का नंबर : 4817

अगर ज़माना ज़्यादा तरक्की कर गया तो पैदा होते ही आपको अपनी क़ब्र का नंबर मिल जाया करेगा।

क़ब्रिस्तान में दाख़िल होते ही एक ख़ूबसूरत मस्जिद दिखाई दी, जिसके बाहर एक बहुत बड़े बोर्ड पर यह इबारत लिखी हुई थी :

ज़रूरी इत्तिला

अगर कोई शख़्स अपने वारिस का कच्चा ओटा बनाना चाहे तो वह गोरखोदू[10] बना देंगे। और कोई नहीं बना सकता। बड़ी क़ब्र बनाने के दो रुपए चार आने जिसमें सवा रुपया गोरखोदू की मज़दूरी और एक रुपया क़ब्रिस्तान का हक़। छोटी क़ब्र का सवा रुपया जिसमें गोरखोदू की मज़दूरी बारह आने और क़ब्रिस्तान का हक़ आठ आने। अगर न देंगे तो उनका ओटा निकाल दिया जाएगा। क़ब्रिस्तान में किसी को रहने की इजाज़त नहीं। हाँ मय्यत के साथ आवें और अपना तोशा[11] लेकर बाहर चले जावें। ख़्वाह मर्द हो या औरत, अगर कोई मय्यत बाहर से बग़ैर ग़ुस्ल के आवे और उसके साथ ग़ुस्ल देनेवाला भी हो तो उससे क़ब्रिस्तान का हक़ चार आने लिया जाएगा। जिस मय्यत को ग़ुस्ल रात को दिया जाएगा, उससे दो आना रोशनी का लिया जाएगा। कोई शख़्स क़ब्रिस्तान में दंगा-फ़साद न करे, अगर करेगा तो उसको पुलिस के हवाले कर दिया जाएगा। क़ब्र के वारिस अपने ओटे पर पानी डालने और दरख़्त लगाने का काम गोरखोदों के सुपुर्द कर दें तो उनको चार आना माहवार देना होगा। जो साहब न देंगे, उनकी क़ब्र पर गोरखोदू न पानी

डालेंगे और न दरख़्त उगाएँगे।

—मैनेजिंग ट्रस्टी

सनीमाओं के इश्तिहार और क़ब्रिस्तान के इस ऐलान में एक गूना मुमासलत है, क्योंकि वहाँ भी लिखा होता है: 'शराब पीकर आनेवालों और दंगा-फ़साद करनेवालों को हवाले पुलिस कर दिया जाएगा।

बहुत मुमकिन है कि ज़माने की तरक़्क़ी के साथ बोर्ड पर लिखी इबारत में तर्मीमें होती जाएँ और कभी ऐसे अल्फ़ाज़ का भी इज़ाफ़ा हो जाए:

भूचाल आने या बमबारी की सूरत में मुंतज़िम[12] क़ब्रों के दाम वापिस नहीं करेगा। जो साहब अपने अज़ीज़ो-अक़ारिब[13] की क़ब्र पर एयर रेड शैल्टर बनवाना चाहें, उन्हें ढाई सौ रुपया ज़ाइद अदा करना पड़ेगा, लेकिन इस सूरत में भी क़ब्र की हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी मुंतज़िम पर आइद न होगी। क़ब्र को एयर कंडीशंड बनाने के लिए छोटे-छोटे प्लांट दस्तेयाब[14] हो सकते हैं। हर माह जितनी बिजली ख़र्च होगी, उसका बिल क़ब्र के वारिस को अदा करना होगा।

एक बोर्ड और दिखाई दिया जिस पर ग़ुस्ल वग़ैरह के निर्ख़[15] मुंदरिजा थे—मुलाहिज़ा हो:

नमाज़ जनाज़ा और तलकीन पढ़ाई	: छः आने
ग़ुस्ल बड़ी मय्यत	: एक रुपया चार आने
ग़ुस्ल छोटी मय्यत	: चौदह आने
मय्यत के लिए पानी गर्म करने की लकड़ी	: चार आने
पानी भरने और गर्म करने की मज़दूरी	: दो आने
बड़ी मय्यत के बर्गे, फ़ी बर्गा	: ढाई आने
छोटी मय्यत के बर्गे, फ़ी बर्गा	: पौने दो आने

(नोट: बर्गा लकड़ी के उस तख़्ते को कहते हैं जो क़ब्र के गढ़े में मय्यत के ऊपर रखे जाते हैं ताकि मिट्टी नीचे न दब जाए।)

किसी अच्छे सैलून में जाइए तो वहाँ भी गाहकों की सहूलत के लिए इस क़िस्म के बोर्ड पर आपको मुख़्तलिफ़ चीज़ों के निर्ख़ नज़र आएँगे:

मर्दों की बाल कटवाई	: आठ आने
बच्चों की	: चार आने
औरतों की	: एक रुपया
बच्चियों की	: आठ आने
दाढ़ी मुँडवाई	: दो आने
बाल कटवाई और दाढ़ी मुँडवाई	: नौ आने
शैंपो	: दो आने

बाल कटवाई, दाढ़ी मुँडवाई और
शैंपो : दस आने

अगर बाल कटवाए जाएँ और साथ-ही-साथ दाढ़ी भी मुँडवाई जाए तो एक-दो आने की रिआयत हो जाती है—बहुत मुमकिन है, आगे चलकर क़ब्रिस्तानवाले भी कुछ रिआयत अपने गाहकों को दे दिया करें और कुछ इस क़िस्म का ऐलान कर दिया जाए : 'जो साहब साल में दो बड़ी क़ब्रें खुदवाएँगे, उनको एक छोटी क़ब्र मुफ़्त खोदकर दी जाएगी।' या 'जो हज़रत बयक वक़्त दो क़ब्रें खुदवाएँगे उनको गुलाब की दो क़लमें मुफ़्त दी जाएँगी', या 'जो असहाब कफ़न-दफ़न का सब सामान हमारे हाँ से ख़रीदेंगे, उनको क़ब्र का नंबर एक ख़ूबसूरत बल्ले पर तिल्ले से कढ़ा हुआ मुफ़्त मिलेगा।'

यह भी बहुत मुमकिन है कि आनेवाले ज़माने में जब कि हमारे क़ब्रिस्तान और ज़्यादा तरक़्क़ीयाफ़्ता हो जाएँगे, क़ब्रों की एडवांस बुकिंग हुआ करेगी, यानी हम लोग अपने मुअम्मर[16] अज़ीज़ों के लिए दो-दो, तीन-तीन बरस पहले ही किसी अच्छे और फ़ैशनेबिल क़ब्रिस्तान में सीट बुक करा लिया करेंगे ताकि ऐन वक़्त पर तरद्दुद का सामना न करना पड़े—उस वक़्त मुर्दों को कफ़नाने और दफ़नाने का इंतज़ाम भी जदीद तरीक़ों पर होगा, चुनांचे बहुत मुमकिन है, गोरकनों की तरफ़ से अख़बारों में इस क़िस्म के इश्तिहार छपा करें :

ईसा जी मूसा जी एंड संस
कफ़न-दफ़न के माहिरीन

मय्यतों को जदीद आलात[17] की मदद से बग़ैर हाथ लगाएँ ग़ुस्ल दिया जाता है और बग़ैर हाथ लगाए कफ़न पहनाया जाता है।

क़ब्रिस्तानों की तरफ़ से भी ऐसे ही इश्तिहार शाया हों तो कोई ताज्जुब न होगा :

शहर का सबसे जदीद क़ब्रिस्तान
जहाँ मुर्दे उसी तरह क़ब्रों में सोते हैं, जिस तरह
आप अपने पुर तकल्लुफ़ बिस्तरों में सोते हैं।

बंबई शहर में इस वक़्त ऐसी कई अंजुमनें मौजूद हैं जो मय्यतों के कफ़न-दफ़न का इंतज़ाम करती हैं। आपको तकलीफ़ करने की कोई ज़रूरत नहीं। इन अंजुमनों में से किसी एक को इत्तिला भेज दीजिए। मय्यत को ग़ुस्ल दे-दिलाकर, कफ़न वग़ैरह पहनाकर इस अंजुमन के आदमी आपके घर से जनाज़े को उठाकर क़ब्रिस्तान ले जाएँगे और वहाँ दफ़न कर देंगे। किसी को कानोंकान ख़बर न होगी। जब सारा काम आपके इत्मीनान के मुताबिक़ हो जाएगा तो यह अंजुमन आपको अपना बिल पेश कर देगी।

आप बहुत मसरूफ़ आदमी हैं—इत्तिफ़ाक़ से आपके नौकर को मौत आ दबोचती है।

आपको उसकी मौत का बहुत अफ़सोस है, मगर आपको साहिले-समंदर पर अपने चंद ऐसे दोस्तों के हमराह पिकनिक पर जाना है जिनसे आपके कारोबारी मरासिम[18] हैं ; इसलिए आप फ़ौरन किसी अंजुमन के मोहतमिम को बुलाएँगे और फ़ीस वग़ैरह तय करके नौकर के कफ़न-दफ़न का इंतज़ाम कर देंगे। जनाज़े के साथ पेशेवर कंधा देनेवाले होंगे जो आपके मकान से लेकर क़ब्रिस्तान तक बुलंद आवाज़ में क़ुरआन शरीफ़ की आयत पढ़ते जाएँगे ; क़ब्रिस्तान में नमाज़े-जनाजा पढ़ी जाएगी, जिसकी उजरत[19] बिल में शामिल होगी और बड़ी क़ब्र में, जिसकी क़ीमत दो रुपए चार आने होती है, आपका वफ़ादार नौकर दफ़न कर दिया जाएगा—साहिले-समंदर पर आप बड़े इत्मीनान से अपने दोस्तों के साथ हँसते-खेलते रहेंगे और क़ब्रिस्तान में भी हँसते-खेलते आपके नौकर की क़ब्र तैयार हो जाएगी। और अगर आपने इनाम देने का वादा किया होगा तो कब्र पर अंजुमन के आदमी फूलों की एक चादर भी चढ़ा देंगे।

चंद रोज़ हुए, मुझे उसी क़ब्रिस्तान में जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ—नोटिस बोर्ड पर एक एलाने-आम लिखा था :

> मुवर्रिख़ा![20] आठ जून, 1942 से बवजह गरानी क़ब्र की खुदाई की मज़दूरी में इज़ाफ़ा कर दिया गया है। बड़ी क़ब्र की खुदाई एक रुपया छः आने और छोटी क़ब्र की खुदाई चौदह आने।

जग ने क़ब्रें भी महँगी कर दी है।

---

1. सस्कृति, 2. सभ्य, 3. सौंदर्य प्रसाधन, 4. उपकारी; 5. काल में, समय में; 6. नया आया हुआ, नवागतुक, 7. नकद, कुल, 8 सामर्थ्य; 9 प्रबधक, 10 कब्र खोदनेवाले, 11. सफर में खाने-पीने का सामान ; 12 प्रबधक, 13 मित्र एव सबधी; 14 उपलब्ध; 15. भाव, दर; 16. वयोवृद्ध, 17. आधुनिक उपकरणों; 18 सबध; 19. मजदूरी; 20. दिनांक।

दो गढ़े

मुझे आप अफ़सानानिगार की हैसियत से जानते हैं और अदालतें एक फ़हशनिगार की हैसियत से। हुकूमत मुझे कभी कम्युनिस्ट कहती है और कभी मुल्क का बहुत बड़ा अदीब : कभी मेरे लिए रोज़ी के दरवाज़े बंद किए जाते हैं, कभी खोले जाते हैं। कभी मुझे ग़ैरज़रूरी इंसान क़रार देकर 'मकान बाहर' का हुक्म दिया जाता है और कभी मौज में आकर 'मकान अंदर' कह दिया जाता है—मैं पहले भी सोचता था और अब भी सोचता हूँ कि मैं क्या हूँ और इस मुल्क में, जिसे दुनिया की सबसे बड़ी इस्लामी सल्तनत कहा जाता है, मेरा क्या मक़ाम है, मेरा क्या मस्रिफ़[1] है।

आप इसे अफ़साना कह लीजिए, मगर मेरे लिए यह एक तल्ख़ हक़ीक़त है कि मैं अभी तक ख़ुद अपने लिए अपने मुल्क में, जिसे पाकिस्तान कहते हैं और जो मुझे बहुत अज़ीज़ है, अपना सही मक़ाम तलाश नहीं कर सका—यही वजह है कि मेरी रूह बेचैन रहती है। यही वजह है कि मैं कभी पागलख़ाने में और कभी हस्पताल में होता हूँ।

मैं कुछ भी हूँ, बहरहाल मुझे इतना यक़ीन है कि मैं इंसान हूँ—इसका सबूत यह है कि मुझमें बुराइयाँ भी हैं और अच्छाईयाँ भी। मैं सच बोलता हूँ; लेकिन बाज औक़ात झूठ भी बोलता हूँ। नमाज़ नहीं पढ़ता, लेकिन सजदे मैंने कई दफ़ा किए हैं—किसी ज़ख्मी कुत्ते को देख लूँ तो घंटों मेरी तबीयत ख़राब रहती है, लेकिन मुझे अभी तक इतनी तौफ़ीक़[2] नहीं हुई कि मैं उसे उठाकर अपने घर ले जाऊँ और उसका इलाज मुआलिजा[3] करूँ। किसी दोस्त को माली मुश्किलात में गिरफ़्तार देखता हूँ तो मेरे दिल को बहुत दुख होता है, लेकिन मैंने अक्सर ऐसे मौक़ों पर उस दोस्त की माली इमदाद नहीं की, इसलिए कि मुझे शराब ख़रीदना होती थी। मुझे किसी अपाहिज लड़की से मिलने का इत्तिफ़ाक़ हो तो मेरे दिलो-दिमाग़ में तूफ़ान बरपा हो जाता है; मैं अपाहिज बनकर उसकी जगह इख़्तियार करके घंटों सोचता हूँ, उसकी ज़िंदगी के अलमिए के मुताल्लिक ग़ौरो-फ़िक्र करता हूँ; फिर मअन तहैया[4] करता कि मैं उससे शादी कर लूँगा, मगर यह तहैया फ़ौरन ग़ाइब हो जाता है, जब मैं इसका ज़िक्र अपनी बीवी से करता हूँ।

मैं अफ़सानानिगार हूँ। मेरे तख़ैयुलात[5] की परवाज़ बहुत ऊँची है, लेकिन अफ़सोस है कि ऊँचा उड़कर मैं फिर ऐसा गिरता हूँ कि पाताल की गहराइयों तक पहुँच जाता हूँ और वहाँ औंधे मुँह पड़ा सोचता हूँ कि जब गिरना ही था तो उड़ने का तकल्लुफ़ क्यों

किया—लेकिन शायद छोटे-छोटे हादिसे, जो हम छोटे बदों की लग़ज़िश[6] के बायस ज़हूरपज़ीर[7] होते हैं, मुझे बेहद मुतास्सिर करते हैं। मैं केले या ख़रबूज़े के छिलके कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता जो सड़क पर पड़े होते हैं। मुझे उन लोगों की कमअक्ली पर रोना आता है, जिनसे यह बेपरवाई सरज़द हुई है।

मुझे फिर रोना आता है, जब मैं देखता हूँ कि लोग अपने घर के चूहे पकड़ते हैं और दूसरे महल्ले में छोड़ आते हैं। अपने घर का कूड़ा-करकट निकालते हैं और झाड़ू से अपने हमसाए के दरवाज़े के साथ लगा देते हैं।

कहते हैं, यह हिमाकतें तालीम की कमी की वजह से हैं—जब मुत्तफ़िक़ा[8] तौर पर यह बात तस्लीम कर ली गई है तो फिर यह क्या हिमाक़त है कि तालीम आम नहीं की जाती। क्या इसका यह मतलब तो नहीं कि वह लोग, जिनके हाथ में तालीम देने का काम है, ख़ुद तालीम-याफ़्ता नहीं।

मैं झुँझला-झुँझला जाता हूँ, जब मैं सोचता हूँ कि हमारे हुक्काम परले दर्जे के ग़ाफ़िल हैं—एक शख़्स वज़ीर बनता है तो उसके घर की तरफ़ जो सड़क जाती है, उस पर हर रोज़ छिड़काव शुरू हो जाता है। उसकी सफाई का ख़याल हर दारोग़ा को रखना पड़ता है, लेकिन वह मुकामात, जहाँ सफ़ाई और छिड़काव की अशद ज़रूरत है, उनकी तरफ कोई आँख उठाकर नहीं देखता।

एक वज़ीर का हलक़ गर्दो-ग़ुबार के बायस ख़राब हो जाए या दूसरे वज़ीर को मच्छर काट ले, इससे क्या होता है—वह सैकड़ो और हज़ारों बच्चे, जो गंदी मोरियों की तअफ़्फ़ुन आमेज फ़ज़ाँ मे रहते हैं, वह इन वजीरों से कहीं ज़्यादा अहम है, क्योंकि यही वह मख़्लूक है जो जंग के मैदानों में अपने सीने पर गोलियाँ खाती है और फ़तह व शिकस्त का फ़ैसला करती है।

यह बातें इतनी वाजेह और साफ़ हैं कि हर शख़्स जानता है, हत्ता कि हमारे हुक्काम भी। फिर भी समझ में नहीं आता कि अफ़रातो-तफ़रीत[11] क्यों हर जगह मुसल्लत[12] नज़र आती है। मैं तो बाज़ औक़ात ऐसा महसूस करता हूँ कि हुकूमत और रिआया का रिश्ता रूठे हुए ख़ाविंद और बीवी का रिश्ता है। बज़ाहिर है, लेकिन दरहक़ीक़त कुछ भी नहीं—मुझे बहैसियत अफ़सानानिगार यह रिश्ता बहुत दिलचस्प मालूम होता है। अगर आप भी थोड़ी देर के लिए ग़ौर करें तो बेशुमार दिलचस्पियाँ आपको इसमें मिल जाएँगी। बीवी अपनी मनमानी करती है, शौहर अपनी मनमानी। दोनों हुक़ूक़े-ज़ौजियत[13] अदा नहीं करते, लेकिन इसके बावुजूद ज़न व शौहर है। आपस में निकम्मी बातों पर झगड़े होते हैं। शरीक देखते हैं और हँसते हैं, मगर उनका रिश्ता जूँ-का-तूँ बोदा रहता है।

हुकूमत और रिआया के बाहमी इख़्तिलात से—जबरी जबरी इख़्तिलात कहना सही होगा—बच्चे पैदा होते हैं, लेकिन बड़े सेफ़्टी एक्ट और आर्डीनेंस क़िस्म के, जिनकी शक्लो-शबाहत[14] हुकूमत से मिलती है न रिआया से। मैं इनके मुताल्लिक़ कुछ कहना नहीं चाहता, सिवाय इसके कि यह मेरी समझ से बालातर हैं।

मेरी समझ से बहुत चीज़ें बालातर है—मै अमरीका की ज़रपरस्ताना मुलकगीरी की हवस समझ सकता हूँ। मुझे रूस के हथौड़े और उसकी दराँती के निशान का

अमल मफ़हूम[15] समझ में आता है, लेकिन यहाँ मेरे मुल्क में जो कुछ हो रहा है, मेरे फ़हमोअद्राक[16] से बालातर है। हो सकता है कि जो कुछ आज मेरी नज़रों के सामने हो रहा है, बहुत ऊँचा हो। लेकिन यह भी हो सकता है कि बहुत नीचा हो। बहरहाल मुझे इस बात का हमेशा अफ़सोस रहेगा कि मुझे समझनेवाला कोई नहीं मिला।

अमरीका से जो फ़ौजी इमदाद लेने का मुआहदा[17] हो रहा है, उसको एक अफ़साना निगार क्या समझेगा। तुर्की से पाकिस्तान का जो मुआहदा हुआ है, उस पर एक कहानी लिखनेवाला क्या तब्सिरा कर सकता है। वह यह भी नहीं पूछ सकता कि लियाक़त अली ख़ाँ के क़त्ल की तफ्तीश का क्या हश्र हुआ। उसमें यह सवाल करने की भी जुर्रत नहीं हो सकती कि लियाकत अली ख़ाँ के कातिल के कातिलों को क्या सज़ा मिली कि आख़िर वह भी इंसान था जो मौत के घाट उतार दिया गया—लेकिन वह यह तो पूछ सकता है कि वह दो गढ़े, जो तारघर के इस तरफ़ चौक में, मैक्लोड रोड की तरफ़ जानेवाली सडक के आग़ाज़ पर खुदे हुए थे, उनका क्या मतलब था।

वह गढ़े शायद अब पुर कर दिए गए हैं, लेकिन वह ट्रक अभी तक वहाँ खड़ा है, जो उनका शिकार हुआ था। मालूम नहीं, वह कब तक वहाँ शकिस्ता हालत में खड़ा रहेगा और मेरी तरह सवाल करता रहेगा कि वह दो गढ़े, जो उसकी शकिस्तो-रीख़्त[19] का बायस हुए, उनका मतलब क्या था।

अगर वह गढ़े सिर्फ़ इसलिए खोदे गए थे कि रात की नाकाफ़ी रोशनी में ताँगे उनमें गिरें, घोडे मरें या लूले-लंगड़े हों—साइकिल सवार अपनी हड्डी-पसली तुड़वाएँ—कोई मोटर साइकिल पर फ़िल्मी गीत की धुन अलापता हुआ आए और ऐसी पटख़नी खाए कि उसे सुरैया ही नज़र आए—तो मुझे कोई एतिराज़ नहीं कि पब्लिक को ऐसे तफ़रीह के मवाक़े-बहम पहुँचाने का काम कभी-कभी कारपोरेशन को करना ही चाहिए—मुझे यह झुंझलाहट होती है कि अगर मैं यह कहूँगा, मुझे कोई एतिराज़ नहीं है तो हुकूमत मुझे धर लेगी और यह इल्ज़ाम लगाएगी : "तुम्हें क्यों एतिराज़ नहीं है, जबकि हमें है।"

सच पूछिए तो आजकल एतिराज़ करने का जमाना ही नहीं—सिगरेट ब्लैक में मिल रहे हैं। आप एतिराज़ करें तो इससे कुछ हासिल वुसूल नहीं होगा। छोटे दूकानदार आपसे यह रोना रोएँगे कि "साहब, जिनको कोटा मिलता है, हम उनसे ख़रीदते हैं दस आने की डिबिया ग्यारह आने में मिलती है···हम अगर दो पैसे या एक आना मुनाफ़ा लेते हैं तो बताइए, क्या जुर्म करते हैं?"

आटे-दाल का भाव देखिए तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जाता है। दम मारने की मजाल नहीं, लेकिन फिर भी आदमी सोचता है कि आख़िर सिगरेटों की ब्लैक क्यों हो रही है? वह, जिसेसोल एजेंट कहा जाता है, उससे यह सवाल क्यों नहीं किया जाता कि आख़िर सिगरेट उसी के ज़रिए आते हैं। क्या उसे कंपनी को ज़्यादा दाम देने पड़ते हैं? क्या कंपनी किसी वजह से ज़रूरत से कम सिगरेट मुहैया कर रही है? बहरहाल यह हुकूमत का फ़र्ज़ है कि वह दरयाफ़्त करे कि सोल एजेंट या कंपनी को क्या तकलीफ़ है ताकि इसके इज़ाले[20] के

लिए कोई तरकीब सोची जा सके—मगर मुसीबत यह है कि हुकूमत ख़ुद बहुत-सी तकलीफ़ों का शिकार है।

यूँ तो हमारे इर्द-गिर्द बेशुमार गढ़े हैं, जिनको पुर करने के लिए उम्रे-ख़िज़्र[21] दरकार है, लेकिन मैं उन दो गढ़ों की बात कर रहा था, जो तारघर के इस तरफ़ चौक में, मैकलोड रोड की तरफ़ जानेवाली सड़क के आग़ाज़ पर खोदे गए थे या ख़ुद-ब-ख़ुद ख़ुद गए थे और जिन्हें रात की नीम तारीकी में कारपोरेशन लोगों की निगाहों से छिपाए रखती थी।

पाकिस्तान में अपना सही मक़ाम मैं अभी तक मालूम नहीं कर सका, लेकिन बज़अम-ख़ुद[22] यह समझता हूँ कि मेरी शख़्सियत बहुत बड़ी है और कि उर्दू अदब में मेरा नाम बहुत बड़ी अहमियत रखता है— यह ख़ुशफ़हमी न हो तो ज़िंदगी और भी अजीरन हो जाए—इसीलिए चंद रोज़ पहले मुझे उन गढ़ों की अहमियत मालूम हुई, जो बज़ाहिर ग़ैर ज़रूरी मालूम होते थे, लेकिन दरहक़ीक़त बहुत ज़रूरी थे।

ग़ैरज़रूरी इसलिए थे कि उनके बग़ैर भी लोग ज़ख़्मी हो सकते थे। वह न होते जब भी यहाँ शकिस्तो-रीख़्त का सिलसिला जारी रहता—ज़रूरी इसलिए थे कि उनकी मौजूदगी से यह ज़ाहिर होता था, कारपोरेशन के बगैर काम चल सकता है।

अर्सा हुआ, मुझे महकमा-ए-आबकारी[23] की तरफ़ से यह नोटिस मौसूल[24] हुआ था कि तुम ग़ैरज़रूरी आदमी हो, इसलिए वह मकान जो तुम्हें अलाट किया गया है, ख़ाली कर दो—मेरा ख़याल है कि वह नोटिस बिलकुल ग़ैरज़रूरी था, इसलिए कि जब तक सड़कों पर ग़ैर महफ़ूज़ गढ़े मौजूद हैं, ग़ैरज़रूरी इंसानों को इन्ख़िलाअ[25] का हुक्म देने का सवाल बहुत मज़हकाख़ेज़[26] है।

चंद रोज़ हुए, मैंने टी हाऊस से निकलकर ताँगा लिया। तारघर के पास पहुँचा तो मुझे ख़याल आया कि मैकलोड रोड की तरफ़ से बीडन रोड चलना चाहिए कि रास्ते में फलों की दूकान आती है, जहाँ से मैं अमूमन अपनी बच्चियों के लिए मालटे वग़ैरा लिया करता हूँ।

ताँगे ने जब तारघर के इस तरफ़ मैकलोड रोड का रुख़ किया तो रात के धुँधलके में दफ़अतन मुझे दो बड़े भयानक गढ़े नज़र आए। मुझे हैरत है कि वह मुझे कैसे दिखाई दिए, इसलिए कि मुझे अंधराता का मर्ज़ है और मुझे रात के अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं देता—मैं एकदम चिल्लाया। कोचवान ने मेरी चीख़ सुनकर बागें खींच लीं। घोड़ा कुछ इस तरह रुका कि ताँगा दो गज़ पीछे चला गया।

अगर घोड़े का क़दम एक फुट और आगे बढ़ जाता तो मालूम नहीं क्या हो जाता—ताँगेवाले ने मुझे हज़ार-हज़ार दुआएँ दीं कि उसका घोड़ा अपाहिज होने से बच गया, इसलिए कि सौ क़दम आगे एक शकिस्ता ताँगा पड़ा था, जिसका घोड़ा ज़ख़्मी हालत में कराह रहा था।

मैं सोच रहा था कि पाकिस्तान का सबसे बड़ा अफ़सानानिगार बच गया—उस वक़्त मुझे क़ौम के नुक़सान का ख़याल था। यह एहसास मुत्लक़[27] नहीं था कि मेरी बीवी है, तीन बच्चियाँ हैं। मुझे उस वक़्त सिर्फ़ यह ख़याल था कि मैं क़ौम का सरमाया हूँ जो तबाह व बर्बाद होने से बच गया है, हालाँकि यह हक़ीक़त है कि मेरी मौत एक ग़ैरज़रूरी इंसान की

मौत होती। चंद अज़ीज़ों और दोस्तों की आँखें ज़रूर नमनाक होतीं, मगर इस मुल्क की एक आँख भी आँसू से भर न आती, जिसका सरमाया मैं ख़ुद को समझता हूँ।

मैं इस मामले में बहुत बड़ा चुग़द हूँ, लेकिन इस ख़याल से थोड़ी-सी ढारस होती है कि चुग़द होना ही इंसानियत की निशानी है। वल्लाहो आलम बिस्सवाब।

यह मेरी हिमाक़त थी कि मैंने उन दो गढ़ों को सिर्फ़ अपनी ज़ाते-अक़दस[28] से मंसूब किया, वरना उनमें हर इंसान की लाश समा सकती थी, ख़्वाह उसका नाम सआदत हसन मंटो होता या कुछ और।

यूँ तो बहुत-सी बातें समझ में नहीं आतीं, लेकिन यह बात तो बहुत ज़्यादा समझ में नहीं आती कि तारघर के इस तरफ़ जहाँ दो गढ़े खोदे गए थे या ख़ुद-ब-ख़ुद खुद गए थे, वहाँ कोई ऐसा निशान क्यों नस्ब[29] नहीं किया गया था, जो लोगों को बताता : "देखो अगर तुम्हें ज़ख़्मी होना या मरना है तो बसद शौक़ आओ—जुमला सामान मौजूद है। अगर मामला इसके बरअक्स है तो यहाँ से दूर रहो अगर ख़ुदा को तुम्हारी मौत मंज़ूर है तो वह तुम्हें सीधी और साफ़ सड़क पर भी इज़राइल[30] के सुपुर्द कर देगा।"

सुना है, दूसरे मुल्कों में यह रिवाज है कि अगर सड़क पर कोई इस क़िस्म की सितमज़रीफ़ी[31] वाक़े हो नो हुक्काम उस मख़्दूश[32] जगह के इर्द-गिर्द रस्सा तान देते हैं या कोई ऐसा निशान लगा देते हैं, जिससे लोग ख़बरदार रहें। रात को सुर्ख़ लालटेन रख दी जाती है ताकि आने-जानेवाले ख़तरे से आगाह रहें।

यह तो हो नहीं सकता कि हमारी कारपोरेशन ऐसी मामूली-सी बात न जानती हो—अगर उसने तारघर के इस तरफ़ के उन दो अमीक़[33] गढ़ों को मख़्दूश क़रार नहीं दिया है तो इसमें ज़रूर कोई मसलहत होगी। वह शख़्स जो महज एक अफ़सानानिगार है, वह इसे क्योंकर समझ सकता है। लेकिन उसे अपनी हेचदानी[34] का ऐतिराफ़[35] करते हुए इतना पूछने का हक़ तो ज़रूर है कि वह मसलहत क्या है? और कुछ नहीं तो उसे एक और अफसाना लिखने का मवाद हासिल हो सके।

तारघर के इस तरफ़ जहाँ आज से कुछ दिन पहले दो गढ़े खोदे गए थे या ख़ुद-ब-ख़ुद खुद गए थे, एक शकिस्ता ट्रक तीन पहियों और बहुत-सी ईंटों के सहारे खड़ा है। मालूम नहीं, वह मुझसे कुछ कहना चाहता है या कारपोरेशन से—मैं तो उसकी बेज़बानी किसी हद तक समझ सकता हूँ, लेकिन कारपोरेशन जो बहुत बड़ी ड्रामानिगार है और अपने वक़्त की आग़ा हश्र[36] है, उसकी बेज़बानी समझ लेगी? मैं इसके मुताल्लिक़ कुछ नहीं कह सकता।

मेरी राय है कि हमारी सूबाई हुकूमत को फ़ौरन एक तहक़ीक़ाती कमीशन उन दो मुबय्यना[37] गढ़ों के ऊपर बिठा देना चाहिए। जब तक यह कमीशन अपनी रिपोर्ट के कागज़ों से उनको पुर करेगा, कई और गढ़े खोद दिए जाएँगे या ख़ुद-ब-ख़ुद खुद जाएँगे ताकि ऐसे ही दूसरे कमीशनों के लिए जगह पैदा हो सके।

तारघर के इस तरफ़ के दो गढ़े : ज़िंदाबाद।

और इस तरफ़ के वह घोड़े और इंसान, मुर्दाबाद, जो उनमें गिरकर मर न सके।

1. उपयोग; 2. सौभाग्य; 3. चिकित्मा, 4. निश्चय, 5. कल्पना; 6. भूल; 7. घटित; 8. सर्व सम्मति से, 9. बदबूदार; 10 मनुष्य, सृष्टि; 11. न्यूनाधिक, कमोबेश; 12. विवश किया हुआ; 13. दापत्य के कर्तव्य; 14. आकार-प्रकार; 15. अर्श; 16. समझ, बुद्धि: 17. अनुबध, 18. आरभ; 19. टूट-फूट; 20. निवारण, 21. लबी उम्र; 22. अपने-आप; 23. आवास विभाग; 24 प्राप्त; 25. मकान खाली करने का; 26. हास्यास्पद; 27. बिलकुल, कतई; 28. पवित्रात्मा; 29. अंकित, 30. यमराज, मौत का फरिश्ता; 31. हँसी की ओट में अत्याचार करना; 32. खतरनाक, 33. गहरे; 34. मूर्खता; 35. स्वीकारोक्ति, 36. प्रसिद्ध नाटककार का नाम; 37. कथित।

बिन बुलाए मेहमान

ग़ालिब कहता है :

मैं बुलाता तो हूँ उनको मगर ऐ जज़्बा-ए-दिल
उन पे बन जाए कुछ ऐसी कि बिन आए न बने

यानी अगर उसे बिन बुलाए मेहमानों से कद होती तो यह शेर हमें उसके दीवान में हरगिज न मिलता।

ग़ालिब कहता है, मैं बुलाता तो हूँ उनको, मगर मेरा जी तो यह चाहता है कि कोई ऐसी बात हो जाए कि वह बिन बुलाए चले आएँ, और सच तो यह है कि बुलाकर किसी के आ जाने में वह मज़ा कहाँ है, जो बिन बुलाए आ जाने में है, लेकिन समझ में नहीं आता कि क्यों लोगों को बिन बुलाए मेहमानों से ख़ुदा वास्ते का बैर है।

आप कहेंगे कि साहब, ग़ालिब ने तो माशूक़ों के मुताल्लिक़ कहा था कि उनका बिन बुलाए आ जाना आशिक़ों के लिए एक बहुत ही बड़ी बात है, लेकिन आपने तो ज़बर्दस्ती यह शेर मेहमानों के साथ चपेक दिया

अच्छा साहब, यूँ ही सही, लेकिन नफ़सियात[1] की रोशनी तो मौजूद है। चलिए उसी में बिन बुलाए मेहमानों को देख लेते हैं।

यह नफ़सियात का ज़माना है। हर चीज़ आजकल इसी तराज़ू में तोली और इसी कसौटी पर परखी जाती है। लेकिन बिन बुलाए मेहमान का नफ़सियाती तज्ज़िया[2] करने से पहले इस बात का ख़याल रखना बहुत ज़रूरी है कि आया हर मेहमान को बुलाना ज़रूरी है, यानी क्या वही आदमी क़ाबिले-बर्दाश्त मेहमान होता है, जिसको मदऊ[3] किया जाए; ख़त लिखकर, दावती कार्ड भेजकर, तार देकर या टेलीफ़ोन करके अपने घर बुलाया जाए। इसका जवाब मनतक़[4] की रू से यही होगा कि ऐसे बुलाए हुए मेहमान, ज़रूरी नहीं, सौ फ़ीसदी क़ाबिले-बर्दाश्त साबित हों। इसी तरह हम इस नतीजे पर भी आसानी के साथ पहुँच जाएँगे कि बिन बुलाए मेहमान ज़रूरी नहीं, सौ फ़ीसदी नाक़ाबिले-बर्दाश्त साबित हों···वाज़ेह यह हुआ कि हर बिन बुलाए मेहमान पर नाक़ाबिले-बर्दाश्त और नाक़ाबिले-क़ुबूल का लेबिल लगा देना बहुत बड़ी ज़्यादती है।

और यह भी ज़्यादती है—यानी आप सारी उम्र नहीं बुलाएँगे तो क्या इसका यह मतलब

होगा कि आपके हाँ कोई आए ही नहीं; इसी इंतिज़ार में आदमी सूखता रहे कि आप कब बुलाते हैं, और बफ़र्ज़े महाल[5] मेहरबान होके आपने एक दफ़ा बुला लिया, तो इसके बाद आस लगाए बैठे हैं कि देखिए, आप फिर कब मेहरबान होके बुलाते हैं—ना साहब, बुलाना-वुलाना कोई ज़रूरी नहीं। जब भी किसी का जी चाहे, चला आए। दोस्तों में ऐसी भी क्या ग़ैरियत।

अरबों की मेहमाननवाज़ी मशहूर है, लेकिन हमने कभी यह नहीं सुना कि उन्होंने ऊँट रवाना करके मेहमानों को बुलाया हो। असल में वह मेहमाननवाज़ी ही क्या, जो बुलाकर किसी आदमी पर आइद की जाए। हम तो अरबों के मुताल्लिक़ यही सुनते आए हैं कि उनके मेहमान अक्सर बिन बुलाए ही होते थे—वह दिन को या रात को किसी भी वक़्त आ निकलते और दरवाजे खुले पाते—हातिमताई कभी पैदा न होता अगर वहाँ मेहमानों को बुलाकर उनका मेज़बान बनने का दस्तूर होता।

अंग्रेज़ों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी बड़ी नपी-तुली है। मिनटों और सैकिंडों का हिसाब किया जाता है। बिन बुलाए किसी के यहाँ जाना उनके नज़दीक बहुत बड़ी बदतमीज़ी है। यही वजह है कि हातिमताई के क़दो-क़ामत[6] की एक भी शख़्सियत उनकी तारीख़ में नज़र नहीं आती—लेकिन यहाँ हातिमताई के कदो-क़ामत की शख़्सियतें पैदा करने का सवाल नहीं। हमें तो सिर्फ़ यह देखना है कि बिन बुलाए मेहमान को सोसाइटी क्यों ऐसी बुरी नज़रों से देखती है और मुआशरे[7] में उसकी हैसियत क्यों एक ख़ारिशज़दा कुत्ते से भी बदतर है।

मान न मान, मैं तेरा मेहमान—यह बिलकुल और चीज़ है, लेकिन बिन बुलाए मेहमान हरगिज-हरगिज़ मलऊनो-मतऊन[8] नहीं होना चाहिए। बल्कि मेज़बानों को उलटा उनका शुक्रगुज़ार होना चाहिए कि वह उनमें ख़ुद एतिमादी[9] पैदा करने के मूजिब[10] होते हैं और ख़ुद एतिमादी, जैसा कि आप जानते हैं, इंसान के किरदार में बहुत ही ज़रूरी है।

ज़रा ग़ौर फ़रमाइए—अगर आप किसी बिन बुलाए मेहमान को बर्दाश्त नहीं कर सकते, जो ज्यादा-से-ज़्यादा चार-पाँच रोज़ आपके पास ठहरकर अपनी राह लेगा, तो आप एक ऐसे बड़े नागहानी[11] हादिसे को क्योंकर बर्दाश्त कर सकेंगे, जिसका रद्दे-अमल बरसों जारी रहता है। मुल्क की सियासत में किसी अचानक तब्दीली को आपका ज़ेहन कैसे बर्दाश्त करेगा और आप क्योंकर उस तब्दीली के साथ ख़ुद को समो सकेंगे—अगर आप बिन बुलाए मेहमान को बर्दाश्त नहीं कर सकते तो माफ़ कीजिए, मौत के फ़रिश्ते का क्या कीजिएगा, जो हमेशा बिन बुलाए आता है?

दुनिया कुछ भी कहे, लेकिन यह अम्र वाक़ा है कि हर बिन बुलाए मेहमान की आमद न बुलानेवाले मेज़बान में ख़ुद एतिमादी पैदा करती है—दावत का ऐलान करके और ख़ुर्दो-नोश[12] का जुमला सामान तैयार करके एक, दस या बीस आदमियों को मेहमान बना लेना कोई बड़ी बात नहीं। बड़ी बात तो उस वक़्त होगी, जब आपके फ़रिश्तों को भी ख़बर न होगी और तीन-चार दोस्त बयक वक़्त या यके बाद दीगरे आपके घर आ धमकेंगे और आपको अफ़रातफ़री में उनके खाने-पीने और रहने-सहने का इंतिज़ाम करना पड़ेगा।

साहबे-ख़ाना या मेज़बान के सलीक़े का अंदाज़ा ऐलान करके दी हुई दावतों और

बुलाकर बनाए हुए मेहमानों की ख़ातिर-मदारत से बतरीक़े-अहसन कभी नहीं हो सकता—आपके, आपकी बेगम साहिबा के, आपके नौकरों के हुस्ने-इंतिज़ाम, ख़ुश सलीक़गी और रख-रखाव का सही अंदाज़ा सिर्फ़ उसी वक़्त होगा, जब आप इम्तिहान के लिए तैयार न होंगे।

इंस्पेक्टर जब बताकर स्कूलों का दौरा करते हैं कि वह फ़लाँ दिन, फ़लाँ स्कूल का मुआइना करेंगे तो उस दिन उस स्कूल का ग़लीज़तरीन कोना भी साफ़ होता है। सही मुआइना तो असल में उस वक़्त होगा जब इंस्पेक्टर सरप्राइज़ विज़िट[13] पर आ निकलेगा।

इंस्पेक्टर तो महज़ अपने फ़राइज़ से सबुकदोश[14] होने के लिए मुआइने पर आते हैं, लेकिन बिन बुलाए मेहमान ग़ैर शऊरी तौर पर मेज़बानों को अपने फ़राइज़ से सबुकदोश होने का मौक़ा बहम[15] पहुँचाते हैं—सोसाइटी उन्हें मलऊनो-मतऊन गरदानती है, लेकिन हक़ीक़त इसके बिलकुल बरअक्स है, इसलिए कि उनका वुजूद सोसाइटी के हक़ में बेहद मुफ़ीद है।

यहाँ तक कह चुकने के बाद मैं आपको बताना चाहता हूँ और बेझिझक बताना चाहता हूँ कि मैं बुलाने पर किसी के यहाँ आज तक नहीं गया। मुझे अच्छी तरह मालूम है, मेरे अक्सरो-बेशतर[16] मेज़बान मुझसे नालाँ हैं कि मैं बिन बुलाए आ धमकता हूँ, लेकिन इसके बावुजूद मैंने अपनी आदत नहीं बदली, इसलिए कि मुझे इसमें कोई क़बाहत[17] नज़र नहीं आती।

मैं शाइर मिज़ाज हूँ। ठस वाक़िआत और सपाट चीज़ों से मुझे कोई दिलचस्पी नहीं। शादी-ब्याह और सालगिरह वग़ैरह की दावतें मेरे लिए बिलकुल बेकैफ़[18] हैं। वह खेल-तमाशे भी मेरी नज़रों में कोई वक़अत नहीं रखते, जिनको देखने के लिए आदमी को वक़्त का पाबंद होना पड़े। मुझे उस बिस्तर पर कभी नींद नहीं आती जो मेरे लिए ख़ासतौर पर तैयार किया गया हो। वह मेहमाननवाज़ी मुझे खटकती है, जिसमें पहले की तैयारी की हल्की-सी झलक भी हो।

वह लोग जो मुझे या मेरे मिज़ाज के आदमियों को हिक़ारत की नज़रों से देखते हैं, उनके मुताल्लिक़ मुझे अफ़सोस से कहना पड़ेगा कि वह शेरियत से यकसर ख़ाली हैं। ड्रामे को समझने और उससे हिज़ उठाने की सलाहियत उनमें ज़र्रा भर नहीं। हादिसात का मुक़ाबला करने की ताब, माफ़ कीजिए, उनमें सिरे से होती ही नहीं।

ऊँची सोसाइटी की एक ख़ातून थीं, जिनके मुताल्लिक़ ऊँची सोसाइटी ही में यह मशहूर था कि वह परले दर्जे की मेहमाननवाज़ हैं। मतलब यह था कि वह हर हफ़्ते बिला नाग़ा एक पार्टी दिया करती थीं, जिसमें शहर की तमाम ऊँची शख़्सियतों को मदऊ किया जाता था—मैं उनके यहाँ जब भी गया, बिन बुलाए गया। वह मुझे बहुत ऊँचे दर्जे का बदतमीज़ समझती थीं। मैं समझता था कि वह बहुत ही ऊँचे दर्जे की ख़ातून हैं, लेकिन उनके दिल का निचला हिस्सा, जहाँ दर्द मिन्नते-कशे-दवा[19] नहीं होता, जहाँ तीरे तमाम कश पर तीरे-नीम कश को तरजीह दी जाती है, सिरे से मौजूद ही नहीं था—नतीजा यह हुआ कि एक रात वह एक बिन बुलाई चुहिया को देखकर बेहोश हो गईं और यह सदमा

उन्हें ता दमे-आख़िर रहा कि उनके घर में, जहाँ एक मच्छर निकाल देने पर वह दस हज़ार रुपए हार देने के लिए तैयार थीं, एक चुहिया निकल आई।

मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि ऐसे लोगों में हादिसात[20] का मुक़ाबला करने की ताब बिलकुल नहीं होती। उस ख़ातून की जगह, जिनका ज़िक्र मैंने अभी-अभी किया है, अगर कोई ऐसी औरत होती जिसके दिल के निचले हिस्से में अगर 'ख़्वाही हयात अंदर ख़तरज़ी' का जज़्बा मोजज़न[21] होता तो मैं समझता हूँ, उस रात महफ़िल दरहम-बरहम[22] होने के बजाय और जम जाती और ऐसे लतीफ़े होते जो सबको ता दमे-आख़िर फ़रहाँ व शादाँ[23] रखते।

आप यक़ीन नहीं करेंगे, मगर आप कभी ऐसे मेज़बान को, जिसे बिन बुलाए मेहमानों से चिड़ हो, शेक्सपियर के ड्रामे पढ़ने के लिए दीजिए, उस पर ज़र्रा बराबर असर नहीं होगा, जबकि वही ड्रामे दूसरे पढ़-पढ़कर सिर धुनेंगे—इसी तरह फ़ुनूने-लतीफ़ा[24] से भी ऐसे शख़्स लुत्फ़ अंदोज़[25] नहीं हो सकते, क्योंकि उनमें शौ लतीफ़ की कमी होती है। अगर यह कमी न होती तो वह उन तमाम लताफ़तों[26] को समझ लेते, जो बिन बुलाए मेहमानों की आमद के साथ उनके घर में दाख़िल होती हैं।

आपकी अपनी बीवी के साथ ज़बर्दस्त चख़ हुई है। वह मुसिर[27] थी कि मैके जाएगी और ज़रूर जाएगी। आप इसके ख़िलाफ़ थे। नौबत यहाँ तक पहुँच चुकी थी कि आपने पूरा डिनर सेट गुस्से में टुकड़े-टुकड़े कर डाला था और आपकी बीवी अपनी नई साड़ी चंदी-चंदी करके बैठी रो रही थी। आप तीन बार तलाक़ कहनेवाले थे कि दरवाज़े पर दस्तक हुई या जोर से घंटी बजी। आपने उठकर दरवाज़ा खोला और देखा कि मैं अपनी बीवी-बच्चों समेत खड़ा हूँ—आप चिल्लाए: "अरे तुम कहाँ?" आपने फिर मेरी बीवी की तरफ़ देखा और अपने चेहरे पर से कदूरत[28] के तमाम आसार दूर करने की कोशिश करते हुए उसको आदाब अर्ज किया—थोड़ी देर ठिठके, फिर जोर से मेरे कंधे पर हाथ मारा और तक़रीबन चिल्लाकर कहा: "चलो भई अंदर बाहर सर्दी में क्या खड़े हो।"

चलिए साहब, हम अंदर दाख़िल हो गए—मैंने इधर-उधर देखा और पूछा: "बेगम साहिबा कहाँ हैं सो रही हैं?"

आपने खट से झूठ बोला: "नहीं, अंदर हैं ज़रा तबीयत ख़राब है।"

मेरी बीवी ने झट बुर्क़ा उतारते हुए तश्वीश[29] भरे लहजे में कहा: "हाए, क्या हुआ दुश्मनों को"

आपकी बेगम साहिबा ने अंदर कमरे में यह बातें सुनीं तो जल्दी-जल्दी नुची हुई साड़ी की धिंदियाँ बक्स में डालीं और आँसू पोंछती हुई बाहर निकल आईं और झट से मेरी बीवी को गले लगाकर कुछ इस ख़ूबसूरती से अपने बचे हुए आँसू निकाले कि उस ग़रीब को भी रोना पड़ा।

रात बहुत देर तक बातें होती रहीं। मैंने टूटे हुए डिनर सेट के मुताल्लिक़ पूछा तो आपको एक निहायत ही दर्दनाक दास्तान घड़ के सुनाना पड़ी कि नौकर ने लाख मना करने पर भी सारे बर्तन एक ही तश्त[30] में उठाए और अंधाधुंध मेज़ के साथ टकराकर सबके-सब फ़र्श पर गिरा दिए। ग़रीब नौकर को मैं भी आपके साथ गालियाँ देता रहा, हालाँकि मैं साफ़

देख रहा था कि सेट-शिकनी[31] आप ही का काम है, क्योंकि फ़र्श पर गिरकर प्लेटों के टुकड़े अलमारी तक कैसे पहुँच सकते हैं।

फिर सोने के वक़्त आपकी बेगम साहिबा ने ग़लती से अपना बक्स खोला और मेरी बीवी धुनी हुई साड़ी देखकर चिल्लाई : "हाए बहन, यह क्या ?" तो आपकी बेगम साहिबा को एक फ़र्ज़ी कहानी सुनाना पड़ी : "इन कमबख़्त चूहों ने तो नाक में दम कर रखा है ··पिछले महीने मेरा साटन का सूट ग़ारत हुआ और आज यह नई साड़ी · गोलियाँ डालीं, तोसों पर ज़हर लगा के रखा, मगर इनसे निजात ही नहीं होती ··" मेरी बीवी को अच्छी तरह मालूम था कि साड़ी ग़ारत करनेवाली ख़ुद आपकी बेगम है, क्योंकि चूहे फाड़ते नहीं, बोटियाँ नोचते हैं, लेकिन वह बेचारी आपको चूहे मारने की तरकीबें समझाती रही।

हम दस दिन आपके यहाँ रहे। आपको बहुत कोफ़्त हुई, इसलिए कि हम बिना बुलाए मेहमान थे। कई दफ़ा हमने आप मियाँ-बीवी को आपस में हमारे मुताल्लिक़ खुसर-पुसर करते सुना कि यह कमबख़्त टलते क्यों नहीं—अफ़सोस है कि आपने हमारी बरवक़्त आमद के फ़वाइद[32] पर ग़ौर न किया।

मैं ऐसी हज़ारों मिसालें पेश कर सकता हूँ।

एक साहब के यहाँ हम दस रोज़ ठहरे—उनकी बीवी, उनकी दो सालियाँ, उनके तीन बच्चे, सब बला के चटोरे थे। बिल्डिंग के पास से कोई भी ख़्वांचेवाला गुज़रे, ठहरा लिया जाता था और सैकड़ों रुपए माहवार यूँ बर्बाद कर दिए जाते थे। साहबे-ख़ाना को शिकायत थी कि खाना कोई नहीं खाता, लेकिन अल्लम-ग़ल्लम चीज़ें दिन भर खाई जाती हैं—हम सिर्फ़ दस रोज़ उनके यहाँ ठहरे। आप यक़ीन मानिए, चौथे रोज़ उन सबका चटोरापन ग़ाइब हो गया और वह बाक़ाइदा घर का पका हुआ खाना खाने लगे—लेकिन मुझे अफ़सोस से कहना पड़ता है कि हमारी आमद के इस इफ़ादी पहलू[33] को बिलकुल नज़रअंदाज़ कर दिया गया और हम पर बिन बुलाए मेहमान का लेबिल चस्पा कर दिया गया।

बिन बुलाए मेहमान के मुताल्लिक़ मेरा रवैया बहुत ही अच्छा है—जो आता है, बड़े शौक़ से आए, जब जी चाहे, आए। एक रोज़ रहे, दस रोज़ रहे, दस महीने रहे, मजाल है जो मेरे माथे पर हल्की-सी शिकन भी आ जाए—ज़्यादा आ जाएँगे तो मैं उनसे कहूँगा : "देखिए जनाब, हमारे पास दो पलंग हैं। इन्हें आप अपनी अक़्ल के मुताबिक़ इस्तेमाल कर सकते हैं ·· हमारी फ़िक्र न कीजिए। सोफ़ा है, उस पर मैं सो जाऊँगा, गद्दा है, उस पर मेरी बीवी आराम से सो सकती है। बच्चे हैं, उनका इंतिज़ाम भी हो जाएगा ·" वह कहेंगे कि नहीं-नहीं, इस क़दर तकल्लुफ़ की क्या ज़रूरत है तो मैं कहूँगा : "बेहतर ·· आप सोफ़े और गद्दा सँभाल लीजिए, लेकिन देखिए, यह रेडियो मैं अपने कमरे में लिए जाता हूँ, इसलिए कि रात को अगर आपमें से कोई बजाएगा तो मुमकिन है, बाक़ियों को नागवार मालूम हो ··· और हाँ, जिस चीज़ की ज़रूरत हो, आप बाहर से ख़ुद ला सकते हैं ·· सिगरेटवाले की दूकान गली के नुक्कड़ पर है, दूध का शौक़ है तो दस क़दम और आगे चले जाइएगा। बड़ा अच्छा हलवाई है ··"

जब तक जेब इजाज़त देगी, मैं अपने मेहमानों की ख़ातिर-तवाज़े करता रहूँगा, लेकिन

जब वह जवाब दे जाएगी तो मैं उनसे एक रोज़ अचानक कहूँगा : "लीजिए जनाब, आज से तसवीर का दूसरा रुख़ शुरू होगा ‥ हम आपके मेहमान, आप हमारे मेज़बान…" और अगर मामला बहुत ही नाज़ुक सूरत इख़्तियार कर गया तो हम अपने मेहमानों को वहीं अपने घर में छोड़कर किसी दूसरे के यहाँ बिन बुलाए चले जाएँगे। अल्लाह-अल्लाह ख़ैरसल्लाह।

आख़िर में उन लोगों से, जो कि बिन बुलाए मेहमानों से ख़ुदा वास्ते का बैर रखते हैं, मेरी दरख़्वास्त है कि वह और कुछ नहीं तो महज़ तफ़रीह के तौर पर ही महीने में एक बार किसी बिन बुलाए मेहमान को अपने हाँ ज़रूर बुलवाया करें।

1 मनोविज्ञान; 2. विश्लेषण; 3. आमन्त्रित; 4. तर्क, 5 विवश होकर; 6. क़द-काठी; 7 समाज; 8. जिस पर लानत-मलामत की गई हो; 9. विश्वासपात्र; 10. कारण; 11. अचानक; 12. खाने-पीने; 13. बगैर किसी पूर्व सूचना के अचानक किया जानेवाला दौरा; 14. जिम्मेदारी से अलग; 15. एक साथ; 16. अधिकाशत; 17. कठिनाई; 18. बेमज़ा; 19. दवाई का एहसान लेनेवाला; 20. दुर्घटनाओ; 21. लबालब भरा हुआ; 22. अस्त-व्यस्त; 23. ख़ुशी व हर्ष; 24. ललित कला; 25. हर्षित; 26 आनदों, 27. दृढ़; 28. मनोभाव; 29 चिता; 30. ट्रे; 31. सैट तोड़ना; 32. लाभ; 33. लाभदायक पक्ष।

दीवारों पर लिखना

कल एक दीवार पर यह हुक्म लिखा नज़र आया : 'इस दीवार पर लिखना मना है।'

मैंने सोचा, जब दीवार के मालिक को अपनी दीवार पर किसी क़िस्म की तहरीर पसंद नहीं थी तो यह हुक्म ही क्यों लिखवाया। ग़ालिबन इस नफ़सियाती ग़लती का नतीजा था कि वह सारी दीवार बेशुमार छोटे और मोटे, बदख़त और ख़ुशख़त हरूफ़ से भरी हुई थी।

शहर की क़रीब-क़रीब हर दीवार बग़ैर किसी नफ़सियाती तहरीक के लिखने-लिखाने का निशाना बनती है, जिससे यह नतीजा बरआमद होता है कि दीवारों पर लिखना इंसान की फ़ितरत में दाख़िल है। जिस तरह हम खाते हैं, पीते हैं, उसी तरह दीवारों पर लिखते भी हैं।

मेरी बच्ची है डेढ़ बरस की। उसने मुझे काग़ज़ों पर लिखते देखा है। जब उसके हाथ में पहली बार पेंसिल आई तो उसने काग़ज़ के बजाय मेरे कमरे की दीवारें ही काली कीं—वह इस शुग़्ल में मसरूफ़ थी और मैं देख रहा था कि वह दीवारों पर सियाह लकीरें खींचकर एक अजीब क़िस्म की तस्कीन महसूस कर रही है।

शुरू-शुरू में इंसान अपनी तस्कीनो-तफ़्रीह के लिए लिखता है, लेकिन बाद में अपना पेट पालने के लिए लिखता है। इब्तिदा[1] में तो उसकी तहरीर सिर्फ़ दीवारें काली करती हैं, लेकिन आगे चलकर उसकी तहरीर दीवारें बनाती भी हैं और ढाती भी हैं। कोई चुग़ताई बन जाता है, कोई इक़बाल—और बाज़ दीवारों पर लिख-लिखकर ऐसी मुसव्विरी और शाइरी करते हैं कि इंसान देखकर नक़्श ब दीवार हो जाता है।

किताबी अदब है, अख़बारी अदब है, रसाइली[2] अदब है—इसी तरह दीवारी अदब भी है।

काग़ज़ पर सिर्फ़ कलेजा निकाल के रखा जा सकता है, लेकिन दीवार पर आप कलेजा, गुर्दे, दिल, फेफड़े सभी निकाल के रख सकते हैं—स्कूलों, कॉलेजों और मंडवों के बाथरूमों में जाइए। उनकी दीवारों पर आपको जुमला आज़ाए-इंसानी[3] की तसवीरें नज़र आ जाएँगी।

दीवारों पर तो ख़ैर इंसान लिखता ही है, लेकिन बैतुलख़ला[4] की दीवारों पर ज़रूर लिखता है—मस्जिद में चले जाइए। उसके ग़ुस्लख़ाने की दीवारों पर भी आपको तरक़्क़ीपसंद अदब और तरक़्क़ीपसंद मुसव्विरी बिखरी नज़र आ जाएगी। यही नहीं, आप

इन दीवारी तहरीरों से ज़रूरी मालूमात भी हासिल कर सकते हैं। मस्जिद के मोज़्ज़न साहब किस तबीयत के मालिक हैं। इमाम साहब को कौन-कौन-से खाने मरग़ूब[5] हैं। स्कूल का कौन-कौन-सा उस्ताद मीर तक़ी मीर का क़तब[6] करता है। कॉलेज में प्रिंसिपल साहब मक़बूल हैं या नहीं। इसी तरह की और सैकड़ों बातें आपको एक ही निशस्त में इन दीवारों के मुताले से मालूम हो सकती हैं।

एक कहानी के सिलसिले में बंबई की एक फ़िल्म कंपनी से मेरा मुआहदा[7] हो रहा था। एग्रीमेंट पर सिर्फ़ दस्तख़त करने बाक़ी थे कि मुझे बाथरूम जाना पड़ा—सामने की दीवार पर ज़र्द चाक से यह लिखा हुआ नज़र आया : 'और तो सब ठीक है, लेकिन यह लोग पगार क्यों नहीं देते।' मैंने एग्रीमेंट पर दस्तख़त न किए—उस कंपनी में और सब ठीक था, ज़ाहिरी टीप टॉप बिलकुल दुरुस्त थी, लेकिन वहाँ काम करनेवालों को छः महीने से तनख़्वाह नहीं दी गई थी।

दीवार पर लिखना ऐसा ही है, जैसे सरे-बाज़ार आवाज़ बुलंद करके कोई ऐलान कर दिया जाए—लेकिन बैतुलख़ला की दीवारों पर वह उलूम[8] भी लिखे जाते हैं, जिनके मुताले के लिए सुकून, तन्हाई और इत्मीनाने-क़ल्ब[9] दरकार होता है—मुख़्तसर निशस्त ही में आप इन छोटी-छोटी लाइब्रेरियों से रोज़मर्रा की जिंदगी के सैकड़ों असरार[10] मालूम कर सकते हैं। भारी-भरकम किताबों की वर्क़ गर्दानी[11] की जरूरत नहीं। ज़रा गर्दन उठाई और हैवलिक एलिस की चारों जिल्दों का निचोड़ देख लिया।

ग़ालिब का एक शेर है :

पकड़े जाते हैं फ़रिश्तों के लिखे पर नाहक़
आदमी कोई हमारा दमे-तहरीर भी था

चूँकि ऐसी दीवारों पर लिखते वक़्त दमे-तहरीर फ़रिश्ते नहीं हो सकते, इसलिए पकड़ने-पकड़ाने का सवाल ही पैदा नहीं होता। यही वजह है कि दीवारी अदब और मुसव्विरी की यह शाख़ हुकूमत के एहतिसाब[12] और उसके ख़ौफ़ से बिलकुल पाक रही है। इंसान इन दीवारों पर ताज़ीरात की तमाम दफ़आत से महफ़ूज होकर अपने ख़यालात और एहसासात की तर्जुमानी करता है, तमाम मुलम्माकारियों[13] से मुबर्रा[14] है।

इसी चारदीवारी के एक कोने में, अर्सा हुआ, यह फ़िक्रख़ेज़ तहरीर देखी गई थी : 'तुम्हारे हाथ भी कैसे-कैसे काम करते हैं।' दीवारी मुसव्विरी की इस ख़ास सन्फ़[15] में आज के नक़्क़ाद[16] मोस्ट मॉडर्न और सर्रियलिस्टिक[17] मुसव्विरी की नुमायाँ झलक देख सकते हैं।

दीवारों पर लिखने और नक़्श व निगार बनाने के लिए ख़ास रोशनाई या रंगों की ज़रूरत नहीं। कोयला, खरिया मिट्टी, नीम पुख़्ता ईंट का टुकड़ा, दूध पत्थरी, गीरी, चूना, कत्था, तारकोल, इनमें से जो भी इंसपीरेशन[18] के वक़्त मौजूद हो, आप इस्तेमाल कर सकते हैं। क़लम और ब्रुश नहीं तो उँगली से भी काम लिया जा सकता है और अगर कोई

भी चीज़ मयस्सर नहीं तो नाख़ूनों ही से कुरेद-कुरेदकर आप अपना शौक़ पूरा कर सकते हैं।

फ़ारसी मुहावरा है : 'दीवार हम गोश दारद'[19]—लेकिन जब दीवारों पर लिखा जाता है तो उनके कानों की तरफ़ कोई ध्यान नहीं देता, बल्कि मैं तो समझता हूँ कि लिखनेवाले असल में दीवार के कानों ही में सरगोशियाँ करते हैं, ताकि कानों की यह कच्ची दीवारें जो कुछ सुनें, दूसरों तक पहुँचा दें।

अर्सा हुआ, लाहौर से पेशावर तक सफ़र करते हुए फ्रंटियर मेल के एक डिब्बे की चोबी दीवार पर मैंने यह तहरीर देखी थी : 'बिजली के तारों पर अबाबीलों के जोड़े बैठे हैं, लेकिन मेरा पहलू ख़ाली है… मुझसे कोई मुहब्बत नहीं करता।' डेढ़ महीने के बाद इत्तिफ़ाक़ से लाहौर से वापिस आते हुए मुझे उसी डिब्बे में जगह मिली। इस इबारत के नीचे निस्वानी[20] ख़त में यह अल्फ़ाज़ लिखे थे : 'बदनसीब है वह इंसान, जिसका दिल मुहब्बत से ख़ाली है' क्या अजब यह दोनों दिल, जो मुहब्बत से ख़ाली थे, एक रोज़ वक़्त के तारों पर मिल बैठे हों।

होटलों में आपने अक्सर दीवारों पर यह शेर देखा होगा :

दरो-दीवार पर हसरत की नज़र करते हैं
ख़ुश रहो अहले-वतन हम तो सफ़र करते हैं।

अगर आप ग़रीबुलवतन[21] हैं तो यह तहरीर देखकर यक़ीनन आपका दिल महज़ून[22] हो जाएगा।

दीवारों से बाज़ असहाब डायरी का काम भी लेते हैं। टेलीफ़ोन के बराबर की दीवार पर आपने कई नंबर और नाम याददाश्त के तौर पर लिखे हुए देखे होंगे—होस्टलों के कमरों की दीवारों पर ऐसी तहरीरें आम दिखाई देती हैं : '6.9.45 को दूध शुरू किया गया—धोबी को कपड़े दिए गए : 11.9.45।'

बंबई के एक होटल में, जहाँ आमतौर पर जहाज़ों के ख़लासी ठहरते थे, मैंने बादबानों, मस्तूलों और झंडों की तसवीरों के साथ-साथ जेल की तहरीरें देखीं, जो अपना मतलब ख़ुद वाज़े[23] करती हैं :

फ़ांस फ़ांस… फ़ांस : मादमूज़ील नयनी…
हाय!
सीरत के हम गुलाम हैं सूरत हुई तो क्या
पाँचों वक़्त नमाज़ पढ़ा करो।
ओ जाने वाले बालमवा, लौट के आ, लौट के आ।
बक़लम ख़ुद जान मुहम्मद 2.9.47।

बक़लम ख़ुद लिखने का शौक़ बहुत ज़्यादा है, शायद इसलिए कि इससे वक़्ती तौर पर इंसान की ख़ुदी की तसल्ली हो जाती है। जिस तरह हिमालय की चोटियाँ मुसख़्ख़र[24] करने पर सैयाह अपने झंडे गाड़ आते हैं, इसी तरह कोई नई जगह देखने पर हम छोटे-छोटे इंसान

अपना नाम लिख आते हैं—अगर आपको कुतुब साहब की लाट की आख़िरी मंज़िल तक पहुँचने का इत्तिफ़ाक़ हुआ हो तो आपने देखा होगा कि वहाँ ताँबे के कड़े और पत्थरों पर हज़ारों बक़लम ख़ुद कुंदा हैं— अमरीकी, रूसी और अंग्रेज़ी सिपाहियों ने जब रायख़ ताग की इमारत पर क़ब्ज़ा किया तो उसकी दीवारों पर अपना नाम लिखने में फ़ातहाना मसर्रत[25] महसूस की।

दीवारों पर क़िस्मत भी आज़माई जाती है। चुनांचे आपने होटलों, घरों और स्कूलों की दीवारों पर चार लकीरों में घिरे हुए चलीपा[26] के निशान और दायरे अक्सर देखे होंगे—हिसाब के सवाल भी हल किए जाते हैं, सियासत की गुत्थियाँ भी सुलझाई जाती हैं और अपने दिल की भड़ास भी निकाली जाती है।

मुझे मशहूर एक्टर अशोक कुमार के बाथरूम में जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ था। उसकी एक दीवार पर बेशुमार घोड़ों के नाम, उनके वज़न और हैंडीकैप वग़ैरह लिखे थे। अशोक कुमार ने मुझसे कहा था कि वह रेस में जाने से पहले उसी दीवार पर से अपने लिए टिप निकाला करता है।

क़लोपतरा को अभी मीठा बरस लगा था, जब इस्कंदरिया में यह रिवाज आम था कि आशिक अपनी पसंदीदा औरत का नाम दीवार पर लिख देते थे और अपना नाम पढ़कर औरत सोलह सिंगार किए अपने आशिक़ के इंतज़ार में वहाँ खड़ी रहती थी।

इंसान के दीवारों पर लिखने और नक़्क़ाशी करने के इसी फ़ितरी शौक़ ही की बदौलत अजंता और एलोरा के फ्रेस्को[27] नज़र आते हैं—इसकी मैगज[28] देखना हो तो रोमा के अज़ीमुश्शान कलीसाओं[29] की दीवारों के न मिटनेवाले नक़्श मौजूद हैं। सच पूछिए तो योरोप के फ़न मुसव्विरी का निस्फ़ बेहतर आपको वहाँ दीवारों ही पर मिलेगा—मुग़लों की बे-मिस्ल ख़त्ताती[30], नक़्क़ाशी और मुसव्विरी के नमूने भी दीवारें ही पेश करेंगी।

इश्तिहारबाज़ी में भी दीवारें पेश-पेश हैं—लाहौर शहर की शायद ही कोई ऐसी दीवार हो, जिस पर आपको इश्तिहार लिखा हुआ नज़र न आए। बाल सफ़ा पाउडर से लेकर बाल उगाने के तेल तक जितनी दवाएँ हैं, आप उनका इश्तिहार दीवारों पर मुलाहिज़ा[31] फ़रमा सकते हैं। पतरस साहब ने भी अपने मशहूर मज़मून 'लाहौर का जुग़राफ़िया' में दीवारों की सतह पर लिखे हुए इश्तिहारों के फ़वायद[32] बयान किए हैं।

उन दाइमी इश्तिहारों की बदौलत अब ख़दशा नहीं रहा कि कोई शख़्स अपना या अपने किसी दोस्त का मकान सिर्फ़ इसलिए भूल जाए कि घर से निकलते वक़्त वहाँ चारपाइयों का इश्तिहार लगा हुआ था और घर लौटते वक़्त वहाँ अहले-लाहौर को ताज़ा और सस्ते जूतों का मुज़्द:[33] सुनाया जा रहा था—अब वुसूक़[34] से कहा जा सकता है कि जहाँ बहुर्फ़ेजली[35] 'मुहम्मद अली दंदानसाज़'[36] लिखा है, वह अख़बार 'इन्क़िलाब' का दफ़्तर है और जहाँ 'बिजली, पानी, भाप का बड़ा हस्पताल' लिखा है, वहाँ डॉक्टर इक़बाल रहते हैं। 'ख़ालिस घी की मिठाई' इम्तियाज़ अली ताज का मकान है और 'कृष्णा ब्यूटी क्रीम' शालीमार बाग़ को, और 'खांसी का मुजर्रब[37] नुस्ख़ा' जहाँगीर के मक़बरे को जाता है।

बंबई में कारपोरेशन ने एक बहुत लंबी दीवार, जो क्वीन्ज़ रोड पर वाक़े है और बर्क़ी

रेल की पटड़ी के मुतवाज़ी[38] दूर तक चली गई है, इन दीवारी इश्तिहारों के लिए मख़्सूस कर दी है। इस दीवार के पीछे पारसियों, ईसाइयों और मुसलमानों का क़ब्रिस्तान और हिंदुओं का शमशान है। मालूम नहीं, मज़हबी नुक्ता-ए-नज़र से बंबई कारपोरेशन की हरकत दुरुस्त है या नादुरुस्त कि यह दीवार, जिस पर एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक फ़िल्मों के बड़े-बड़े इश्तिहार पेंट किए गए हैं, एक अजीबो-ग़रीब तज़ाद[39] पेश करती है—अक़ब में हज़ारों इंसान दफ़न हैं, लेकिन पेशानी पर परी चेहरा नसीम बानो की यह बड़ी तसवीर नज़र आती है। ज़रा आगे बढ़िए तो मोटे-मोटे हुरूफ़ में 'हँसो हँसो ऐ दुनियावालों' का इश्तिहार दिखाई देता है। दीवार के पीछे जलती हुई चिता से धुआँ उठ रहा है, लेकिन सामने न्यू थिएटर्ज़ की फ़िल्म 'ज़िंदगी' का शोख़ रंग इश्तिहार चमक रहा है।

पिछले दिनों 'इलेस्ट्रेटेड वीकली ऑफ़ इंडिया' में इसी दीवार की मुतादि्दद रंगीन तसवीरें एक मज़मून के साथ शाया हुई थीं, जिसमें इश्तिहारों की इस जदीद सन्फ़[40] को बहुत सराहा गया था—लेकिन बचपन में जब हम 'चैचो चैच गलेरियाँ, दो तेरियाँ दो मेरियाँ' का दिलचस्प खेल खेलते थे और दीवारों पर कोयले से अनगिनत लकीरें खींचते थे तो बुज़ुर्गों ने हमेशा हमारे इस फ़अल की मज़म्मत[41] की थी।

उधर रूस में इन दीवारी तहरीरों ने इन्क़िलाब में पेश-अज़-पेश हिस्सा लिया—प्रेस पर हुकूमत का बहुत बड़ा एहतिसाब[42] था, इसलिए दीवारों ही के ज़रिए से अख़बारों और पंफ़लेटों का काम लिया गया। इस ज़रिए ने इन्क़लाब के बाद शक्ल बदली और यह मज़दूरों का 'दीवारी अख़बार' या 'वाल पेपर' बन गया।

जब तक दीवारें सलामत हैं, उन पर इंसान लिखता और नक़्शो-निगार[43] बनाता ही रहेगा—पिछले दिनों उसने एक और क़दम तरक़्क़ी की तरफ़ बढ़ाया और फ़ज़ाओं पर लिखना शुरू कर दिया। 'पियर्ज़' सोप बनानेवालों ने एक हवाबाज़ की ख़िदमात हासिल कीं, जिसने जहाज़ की दुम से गाढ़ा धुआँ छोड़ते हुए कुछ इस तरह क़लाबाज़ियाँ खाईं कि फ़ज़ा में उस साबुन का धुआँधार नाम कुछ अर्से के लिए मुअल्लक़ हो गया।

बंबई में जब इस फ़ज़ाई इश्तिहारबाज़ी का मुज़ाहिरा[44] हुआ तो कारपोरेशन ने पियर्ज़ सोप बनानेवालों से फ़ज़ा इस्तेमाल करने का किराया तलब किया। मामला अदालत तक पहुँचा—फ़ैसला कारपोरेशन के हक़ में हुआ कि शहर की दीवारों की तरह फ़ज़ा भी उसके हलका-ए-इनज़ाम में शामिल है।

1. आरंभ, 2. पत्रिकाओं का; 3. मनुष्य के शरीर के सभी अंगों, 4 शौचालय, 5 पसंद, 6 आलोचना, निंदा; 7 अनुबंध; 8. विद्याएँ; 9 मन की शांति, निश्चिंतता; 10 रहस्य, 11. किताबों के पृष्ठ पलटने, 12. नियंत्रण; 13. चापलूसियों; 14. मुक्त, 15 शैली; 16 आलोचक, 17 अति यथार्थवादी; 18. अंत:-प्रेरणा, 19. दीवारों के भी कान होते हैं; 20 स्त्रैण, जनाना, 21 यात्री, 22 दुखी; 23 स्पष्ट, 24. विजय; 25. ख़ुशी; 26. क्रास, सलीब का निशान, 27 भित्तिचित्र; 28. गगनचुंबी, 29 सुविख्यात गिरजाघर, 30. चित्रकला; 31. देखना, 32. लाभ, 33. ख़ुशखबरी; 34. पूर्ण विश्वास; 35 मोटे अक्षरों में; 36. दांत बनानवाले; 37. आजमाया हुआ; 38 समानांतर, 39 विरोधाभास, 40. नई किस्म, आधुनिक शैली, 41. निंदा; 42. नियंत्रण, अंकुश, 43 तसवीरें; 44. प्रदर्शन।

आदाद[1] के साथ अदब और ज़िंदगी की छेड़

मुसलमानो ने तेरह सौ साल हुकूमत की, मगर अब बेचारे तीन में हैं न तेरह में—लेकिन चौदह का अदद बड़ा मुबारक है। अगर किसी के चौदह तबक़[2] रोशन होते हैं तो पूरे चौदह होते हैं, सवा तेरह न पौने चौदह।

चौदहवीं का चाँद है, जिसके मुताल्लिक़ शाइरों ने क्या कुछ नहीं कहा— माशूक़ जब आशिक़ से मिलता है तो आशिक़ की मुहब्बत के आसमान पर चौदहवीं का चाँद तुलू होता है, इस मसलहत[3] के साथ कि दूसरी रात से ढलना शुरू हो जाएगा—और चौदह का सिन क्या-क्या क़यामत नहीं ढाता। मीठा बरस जवानों की ज़िंदगी में कूट-कूट के शीरनियाँ[4] भर देता है।

राजा रामचंद्र जी ने चौदह ही बरस का बनवास काटा। तेरह बरस या साढ़े तेरह बरस जंगलों में रह के आए होते तो वह बात कभी न बनती जो पूरे चौदह बरस काटने पर बनी। उनके अहद[5] का वह 'सुनहरा ज़माना' वक़्त की कोख ही में सोया रहता या ग़ैर तबई[6] मौत मर जाता।

और वह चौदह बरस काले पानी की सज़ा—ख़ुदा बचाए, बहुत अच्छा हुआ जो यह काला पानी भारत बन गया—लेकिन यह समझ में नहीं आता कि इस सज़ा की मीआद हमारे क़ानूनी ख़ुदाओं ने दस-ग्यारह बरस क्यों न रखी। कोई ख़ास मसलहत होगी।

तीन और तेरह के अदद आमतौर पर मनहूस ख़याल किए जाते हैं—पंजाब में तीसरे आदमी की शिरकत[7] पर कहा जाता है: 'तीसरा रलिया ते झगा गलया' यानी तीसरे का साझा बुरा—तीन काने हैं चौसर के, नामुरादी और नाकामी के निशान।

तीन तेरह करें तो इसका मतलब है कि आप तितर-बितर कर रहे हैं—बस जब किसी मुश्तइल[8] हुजूम को मुंतशिर[9] करना हो तो डायस पर चढ़कर बुलंद आवाज़ में यह नारा लगा दीजिए। सब तितर-बितर हो जाएँगे।

मरने पर आप क़ब्र में जाएँगे तो वहाँ भी तीन का अदद आपको नहीं छोड़ेगा—तीन दिन क़ब्र में आप पर ज़रूर भारी होंगे, लेकिन तीन हर्फ़ भेजिए इस तीन पर।

लेकिन अभी यह सिलसिला कहाँ ख़त्म हुआ—अगर आप तीन-पाँच करेंगे तो इसका

यह मतलब होगा कि आप या तो किसी से तकरार कर रहे हैं या किसी का माल उड़ाए लिए जा रहे हैं।

अगर आप दावत में तीन आदमी बुलाते हैं और तेरह आ जाते हैं तो आप अपनी घरवाली से कहेंगे : 'तीन बुलाए तेरह आए, दे दाल में पानी···' लेकिन अगर ग्यारह-बारह आ जाते हैं तो फिर आप दाल में पानी नहीं डाल सकेंगे क्योंकि यह उसूल है कि मुहावरा कभी तब्दील नहीं हो सकता, ख़्वाह आपका हुलिया तब्दील हो जाए।

अब आप तेरह का एक लतीफ़ा सुनिए—यह अदद माशाल्लाह बड़ा हज़रत है।

एक साहब घर से सफ़र पर निकले। तेरह तारीख़ थी। तेरह नंबर के प्लेटफ़ार्म पर उनकी गाड़ी खड़ी थी। तेरह नंबर के डब्बे में उन्हें तेरह नंबर की सीट मिली। मंज़िले-मक़सूद पर होटल जाने के लिए उन्होंने टैक्सी ली तो उसका नंबर भी तेरह था। होटल में उनके कमरे का नंबर भी तेरह था—तेरह का अदद उनके साथ बुरी तरह चिपक गया था।

दूसरे रोज़ वह रेसकोर्स में बहुत देर से पहुँचे। तेरहवीं रेस शुरू होनेवाली थी। आपने सोचा कि शगून अच्छा है और तेरह नंबर के घोड़े पर ढेर सारा रुपया लगा दिया—और तेरह नंबर की रेस में तेरह नंबर का घोड़ा तेरहवें नंबर पर आया।

तेरह को छोड़िए, तीन का अदद बावुजूद इसके कि मन्हूस ख़याल किया जाता है, हमारी ज़िंदगी का एक अहम जुज़[10] है—हिंदुओं में त्रिशूल; ईसाइयों में ख़ुदा, बेटे और रूहुलक़ुदस की मुक़द्दस तस्लीस; मुसलमानों में ख़ुदा, उसका रसूल और क़ुरआन पाक।

अब अदद चार को लीजिए—किसी के अगर लगते हैं तो चार चाँद ही लगते हैं। चाँद तो एक ही है, मालूम नहीं, बाक़ी तीन किन आसमानों से नोचकर लगाए जाते हैं—और चार दिन की चाँदनी है, जिसके आगे कुछ नहीं, सिर्फ़ अँधेरी रात है, जिसमें आप ठोकरें खाते फिरिए।

किसी का डंका बजना है तो तीन दांग नहीं, चार दांग बजता है, ख़्वाह किसी भी दांग तक उसकी आवाज़ न पहुँचे।

आदमी होशियार होता है तो चारों गाँठ होशियार होता है, ख़्वाह उसके पास एक छोटी-सी गाँठ भी होशियार होने के लिए न हो—और किसी को मार पड़ती है तो चार चोट की मार पड़ती है, यानी चार चोटें लगाईं और यह जा, वह जा।

ज़िंदगी होती है चार दिन की। पाँचवें दिन यह ख़त्म हो जाती है—अखाड़े में अगर कोई पहलवान गिरता है तो सवा तीन या साढ़े तीन शाने नहीं गिरता—उसे मुहावरे के मुताबिक़ पूरे चारों शाने चित गिरना पड़ता है, ताकि उसको मुकम्मल ज़िल्लत[11] हासिल हो।

अगर मर्द अपनी औरत को घर में क़ैद रखना चाहे तो उस घर की चारदीवारी ज़रूर होनी चाहिए। पाँच या छः होंगी तो मामला बिगड़ जाएगा और तीन होंगी तो एक रास्ता भागने के लिए खुला रहेगा।

रसूले-अकरम[12] के असहाबा अर्बा[13] लीजिए : चार यार, पाँचवाँ कोई भी नहीं—इससे अदद चार की अज़्मत[14] बहुत ज़्यादा वाज़ेह हो जाती है।

तीन पहियों की मोटर या गाड़ी हो सकती है, लेकिन आप तीन पायों की चारपाई पर कभी सो नहीं सकते—और अगर आप बेमुरव्वत हैं तो आपको चार चश्म कहा जाएगा, ख़्वाह आपकी सिर्फ़ तीन आँखें हों, इसलिए कि मुहावरा वैसे-का-वैसा रहेगा।

और जब आप राही-ए-मुल्के-अदम[15] होंगे तो मुहावरादाँ अहबाब कहेंगे : 'आख़िर बेचारे चार के कंधे पर चढ़ गए।'

अब चालीस का अदद लीजिए। यह भी अपनी जगह काफ़ी अहम है—अगर आप निरे खरे बेवक़ूफ़ हैं, यानी बड़े हाई क्लास ईडियट हैं तो आपका वज़न चालीस सेर होना चाहिए, क्योंकि मुहावरा है 'चालीस सेर ऊत' सो अगर आप इस क़िस्म के साहबे-कमाल हैं तो आपको अपना वज़न मुहावरे के मुताबिक़ करना पड़ेगा।

बच्चा पैदा होता है तो माँ उनतालीस दिन के बाद नहीं, पूरे चालीस दिन के बाद नहाती है। मेरा ख़याल है, यह मुहावरा नहीं, रिवाज है और रिवाज की भी पाबंदी करनी पड़ती है। बड़ी बूढ़ियों से सुना है कि अगर एक दिन भी ऊपर-नीचे हो जाए तो आफ़त आ जाती है। इसलिए औरतें ऐसा नहीं होने देतीं। पूरे चालीस दिन चारपाई के साथ लगी रहती हैं।

और जब कोई मरता है तो उसका सोग भी चालीस दिन मनाया जाता है। चालीसवें दिन उसका चालीसवाँ होता है, यानी फ़ातहा पढ़ी जाती है। इसके बाद अगर मरनेवाले के अज़ीज़ उसको भूलना चाहें तो बड़े शौक़ से भूल सकते हैं, क्योंकि इतने दिन के सोग से मरहूमो-मग़फ़ूर[16] की, सुना है, पूरी तशफ़्फ़ी[17] हो जाती है।

चिल्ला कमाना हो तो आपको चालीस दिन ही कमाना होगा। अगर आपने इस मीआद से एक दिन कम या ज़्यादा अमल किया तो आपके हक़ में क़तअन ग़ैर मुफ़ीद होगा। मुमकिन है, चिल्ला उलटकर आप पर सवार हो जाए।

और आपको याद ही होगा कि अलीबाबा के साथ कितने चोर थे—पूरे चालीस, एक कम न एक ज़्यादा—किसी अलीबाबा से कहिए कि वह चालीस से कम चोरों की जमाअत बनाए, मजाल है जो 'खुल जा सिमसिम' काम करे—चुनांचे मैं अपने सियासी अलीबाबाओं को यही मश्वरा दूँगा कि वह अपने साथ चालीस सियासी चोर और गठकतरों की खेप रखा करें। इंशाल्लाह हर दरवाज़ा उनके 'खुल जा सिमसिम' कहने पर खुल जाया करेगा।

खाना खाने के बाद चहलक़दमी अतबाए-क़दीम[18] का हुक्म है—आप खाना खाने के बाद घर से बाहर निकलें तो अपने क़दम गिनना शुरू कर दें, जहाँ चालीस क़दम ख़त्म हों, वहीं चारपाई बिछाएँ और सो जाएँ—अगर आप घर वापस आकर सोना चाहें तो घर से बाहर निकलने के बाद बीस क़दम आगे चलिए और फिर बीस क़दम पीछे चलिए, मगर देखिए, हिसाब में कोई ग़लती न हो, क्योंकि मेदे में ख़लल पैदा हो जाने का अंदेशा है।

अंग्रेज़ चहलक़दमी नहीं करते, शायद मुख़्तलिफ़ आबो-हवा के बायस, लेकिन वह खाना खाने के बाद फ़ोर्टी विंक्स लगाते हैं, यानी चालीस मर्तबा पलकें झपकने के अर्से तक क़ैलूला[19] करते हैं। वह ख़ुद पलकें नहीं झपकते, उनकी जगह कोई और झपकता है। वह ख़ुद सोए रहते हैं और जब फ़ोर्टी विंक्स पूरी हो जाती हैं, उनको जगा दिया जाता है।

और वह शमा, उजाला जिससे किया चालीस बरस तक ग़ारों में, उसके मुताल्लिक़ कौन नहीं जानता।

अब छोटे-मोटे अदद हैं—मिसाल के तौर पर उन्नीस-बीस का फ़र्क़। यानी कोई फ़र्क़ नहीं, लेकिन बैंकवाले इसे नहीं मानते। वह कहते हैं कि एक पाई का फ़र्क़ भी पहाड जितना फ़र्क़ होता है। उन्हें कौन समझाए कि मुहावरे के मुताबिक़ यह कोई फर्क़ नहीं, और फिर वह आने-पाइयों के चक्कर में इस क़दर ग़र्क़ रहते हैं कि उन्हें समझने-समझाने की फ़ुर्सत ही नहीं मिलती।

जो आदमी इक्कीस का हो, इसका मतलब है कि वह ग़ालिब है। उसका पल्ला भारी है, ख़्वाह दूसरा चाहे दस हज़ार ही का क्यों न हो।

अगर आप बत्तीस दाँतों से किसी के लिए बद्दुआ माँगें तो वह ख़ुदा के हुज़ूर क़ुबूल होगी—अगर आपके एक-दो दाँत झड़े हुए हैं तो बद्दुआ देने का ख़याल दिमाग़ से निकाल दीजिएगा।

बत्तीस धार का दूध है शीरे-मादर[20]। अगर एक धार इधर-उधर हो गई तो एक-न-एक दिन आपको छटी का दूध ज़रूर याद आ जाएगा।

अगर आप बदज़बान हैं तो आपकी ज़बान मुहावरे के मुताबिक़ या तो दस हाथ की होनी चाहिए या दस गज़ की। बहरहाल जो साहब यह सिफ्त रखते हैं, वह अपनी जबान की पैमाइश ज़रूर करा लें।

दस के अदद ने, ख़ुदा मालूम, क्या गुनाह किया था कि हुकूमत ने गरीब को सहा गुंडों और बदमाशों के साथ मन्सूब[21] कर दिया—दस नंबरिए काफी मशहूर हैं, मगर अब कि हुकूमत उनके इन्सिदाद[22] की तरफ़ माइल हो रही है, शायद इस गरीब अदद की सुनी जाए।

नौ गज़े की क़ब्र क़रीब-क़रीब हर शहर में मौजूद है—मालूम नहीं, यह कौन साहब थे जो इतना बड़ा क़द सँभाले बयक वक़्त हर शहर में क़याम फ़रमाते रहे, और जब आपने इंतिक़ाल फ़रमाया तो पूरे नौ गज़ क़द के साथ तमाम शहरों में एक ही वक्त फ़रमाया।

अच्छा, अगर आप राधा से नाचने के लिए कहें तो आपके पास पूरे नौ मन तेल मौजूद होना चाहिए—एक छटाँक भी कम हुआ तो वह नाचने से इनकार कर देगी और आपको दोस्त अहबाब के सामने ख़िफ़्फ़त उठानी पड़ेगी।

नौ नक़द न तेरह उधार दुरुस्त है—आप कहिए कि मियाँ, नौ और तेरह का क़िस्सा ख़त्म करो और मुझे चौदह उधार दे दो मैं तुम्हें इसी हिसाब से सतरह दे दूँगा—मगर ऐसे बेवक़ूफ़ कम मिलते हैं।

एक का अदद था, वह ख़ुदावंद तआला जल्ले-जलालहू[23] व हक़्क़े-शानहू ने यह दुनिया बनाते ही अपने नाम हमेशा-हमेशा के लिए अलाट करा लिया था।

1. अक्ल, 2. लोक, 3 संदेश, परामर्श, 4 विश्राम; 5. युग, 6. अस्वाभाविक; 7. साझेदारी, 8. उत्तेजित, 9 तितर-बितर, 10 हिस्सा; 11 नसीहत, 12. हजरत मुहम्मद साहब; 13. वार 14. महत्त्व; 15. परलोकवासी, 16. मरने के बाद मोक्ष प्राप्ति; 17. तसल्ली; 18. विद्वान हकीमों का 19. आराम; 20 माँ का दूध; 21 संलग्न, 22 रोकथाम।

सवेरे जो कल आँख मेरी खली

अजब थी बहार और अजब सैर थी।

जी ने कहा कि घर से निकल, टहलता-टहलता ज़रा बाग़ चल।

बाग़ पहुँचने से पहले, ज़ाहिर है, मैंने कुछ बाजार और कुछ गलियाँ तय की होंगी और मेरी आँखों ने कुछ देखा भी होगा—पाकिस्तान तो पहले ही का देखाभाला था, पर जब से 'ज़िंदाबाद' हुआ, वह कल सवेरे देखा।

बिजली के खंबे पर देखा, परनाले पर देखा, शःनशीन[1] पर देखा, छज्जे पर देखा, चौबारे पर देखा—गर्ज़ेकि हर जगह देखा और जहाँ न देखा, वहाँ देखने की हसरत लिए घर लौटा।

पाकिस्तान : ज़िंदाबाद— यह लकड़ियों का टाल है।

पाकिस्तान : ज़िंदाबाद— फ़टाफ़ट मुहाजिर हेयर कटिंग सैलून।

पाकिस्तान : ज़िंदाबाद— यहाँ ताले मरम्मत किए जाते हैं।

पाकिस्तान : ज़िंदाबाद— गरमागरम चाय।

पाकिस्तान : ज़िंदाबाद— बीमार कपड़ों का हस्पताल।

पाकिस्तान : ज़िंदाबाद— अलहमदुलिल्लाह कि यह दूकान सैयद अनवार हुसैन मुहाजिर जालंधरी के नाम अलाट हो गई है।

एक मकान के बाहर यह भी लिखा हुआ देखा : 'पाकिस्तान : जिंदाबाद—यह घर एक पारसी भाई का है ' यानी हज़रत, कहीं इसे भी न अलाट करा लीजिएगा।

सुबह का वक़्त था। अजब बहार थी और अजब सैर थी।

क़रीब-क़रीब सारी दूकानें बंद थीं।

एक हलवाई की दूकान खुली थी—मैंने कहा, चलो लस्सी पीते हैं।

दूकान की तरफ़ बढ़ा तो क्या देखता हूँ, बिजली का पंखा चल तो रहा है, लेकिन उसका मुँह दूसरी तरफ़ है।

मैंने हलवाई से कहा : "यह उलटे रुख़ पंखा चलाने का क्या मतलब है ?"

उसने घूरकर मुझे देखा और कहा : "देखते नहीं हो "

मैंने ग़ौर से देखा—पंखे का रुख़ क़ायदे-आज़म मुहम्मद अली जिनाह की रंगीन तसवीर की तरफ़ था, जो दीवार के साथ आवेज़ाँ[2] थी—मैंने ज़ोर का नारा लगाया : 'पाकिस्तान :

ज़िंदाबाद' और लस्सी पिए बग़ैर आगे चल दिया।

बंद दूकान के थड़े पर एक आदमी बैठा पूरियाँ तल रहा था।

मैं सोचने लगा : 'अभी परसों मैंने इस दूकान से चप्पल ख़रीदे थे... यह पूरीवाला किधर से आ गया ?' फिर ख़याल आया, शायद वह कोई दूसरी दूकान हो—लेकिन बोर्ड वही था और सामने वही फ़सादात में झुलसा हुआ मकान था, जिसकी बरसाती में बिजली का पंखा लटक रहा था और जिसको देखकर मैंने सोचा था कि आग फैलाने में उसने भी काफ़ी मदद दी होगी।

पूरीवाले ने मुझे मुख़ातिब किया और कहा : "क्या सोच रहे हैं आप बाबू जी... गरमागरम पूरियाँ हैं !"

मैंने कहा : "भई, मैं ये सोच रहा हूँ कि जहाँ तुम बैठे हो, वहाँ जूतों की एक दूकान हुआ करती थी।"

पूरीवाला अपने माथे का पसीना पोंछकर मुसकराया : "जूतों की दूकान अब भी है, लेकिन वह नौ बजे शुरू होती है... और मेरी सुबह छः बजे शुरू होती है और साढ़े आठ बजे ख़त्म हो जाती है।"

मैं आगे बढ़ गया।

क्या देखता हूँ, एक आदमी सड़क पर काँच के टुकड़े बिखेर रहा है—पहले मैंने ख़याल किया कि भला आदमी है। इस बात का एहसास रखता है कि लोगों को तकलीफ़ देंगे, इसलिए सड़क पर से चुन रहा है, लेकिन जब मैंने देखा कि चुनने के बजाय वह बड़ी तरतीब से उन्हें इधर-उधर गिरा रहा है तो मैं कुछ दूर खड़ा हो गया।

झोली खाली करके वह सड़क के किनारे बिछे हुए टाट पर बैठ गया। पास ही एक दरख़्त था और उस पर एक बोर्ड लगा था : 'यहाँ साइकिलों के पंक्चर लगाए जाते हैं और उनकी मरम्मत की जाती है।'

मैंने क़दम तेज़ कर दिए।

दूकानों के साइनबोर्डों में एक ख़ुशगवार तब्दीली नज़र आई—पहले क़रीब-क़रीब सब अंग्रेज़ी में होते थे, अब कुछ दूकानों पर नाम और तहरीर, दोनों उर्दू लिबास में नज़र आए—किसी ने ठीक कहा है, जैसा देस वैसा भेस।

तहरीर ख़ुशख़त थी और नाम भी जाज़िबे-नज़र[3] थे। मिसाल के तौर पर 'आराइश'। ज़ाहिर है कि दूकान में आराइश से मुताल्लिक़ा सामान होगा—एक होटल खुला था। उसकी पेशानी पर अर्बी रस्मुलख़त[4] में 'माहज़र'[5] लिखा था—आगे चलकर एक दूकान थी, जिसका नाम 'पापोशियाना'[6] था, जूतों का आशियाना—एक दूकान की पेशानी पर यह बोर्ड आवेज़ाँ था : 'ज़महरीर'[7]। ज़रूर क़ुल्फ़ियों की दूकान थी।

मैंने ख़ुश होकर 'पाकिस्तान : ज़िंदाबाद' कहा और चलता रहा।

चलते-चलते साइकिल के चार पहियों पर एक अजीब वज़े की हाथगाड़ी देखी—पूछा : "यह क्या है ?" जवाब मिला : "होटल !" चलता-फिरता होटल था। चपातियाँ पकाने के लिए अँगीठी और तवा मौजूद, चार सालन पहले से ही तैयार, शामी कबाब तलने के लिए

फ़्राई पैन हाज़िर, पानी के दो घड़े, बर्फ़, लैमोनेड, दही का कूंडा, लीमू निचोड़ने का खटका, गिलास, प्लेटें, गर्ज़ेकि हर चीज़ मौजूद थी।

कुछ दूर आगे बढ़ा तो देखा, एक आदमी छोटे-से एक लड़के को धड़ाधड़ पीट रहा है। मैंने वजह पूछी तो मालूम हुआ कि लड़का उसका नौकर है और उसने एक रुपए का नोट गुमा दिया है।

मैंने उस ज़ालिम को झिड़का और कहा: "क्या हुआ, बच्चा ही तो है ··· कागज़ का छोटा-सा पुर्ज़ा ही तो होता है एक रुपए का नोट। कहीं गिर पड़ा होगा ·· ख़बरदार जो तुमने इस पर हाथ उठाया।"

मेरी बात सुनकर वह आदमी मुझसे उलझ गया और कहने लगा: "तुम्हारे नज़दीक एक रुपए का नोट कागज़ का छोटा-सा पुर्ज़ा है ·· जानते हो, कितनी मेहनत के बाद यह कागज़ का छोटा-सा पुर्ज़ा मिलता है आजकल ··" यह कहकर वह फिर उस बच्चे को पीटने लगा।

मुझे बहुत तरस आया। मैंने जेब से एक रुपया निकाला और उस आदमी को देकर बच्चे की जान छुड़ाई।

मैंने चंद क़दमों ही का फ़ासला तय किया होगा कि एक आदमी ने मेरे काँधे पर हाथ रखा और मुसकराकर कहा: "रुपया दे दिया आपने उस ख़बीस को?"

मैंने जवाब दिया: "जी हाँ ·· बहुत बुरी तरह पीट रहा था बेचारे बच्चे को।"

"वह बेचारा बच्चा उसका अपना लड़का है।"

"क्या कहा?"

"बाप और बेटे, दोनों का यही कारोबार है ·· दोनों दो-चार रुपए रोज़ाना इसी ढोंग से पैदा कर लेते हैं।"

मैं चकरा गया: 'वह ढोंग था, लेकिन ·· मार तो सच्ची थी ··' मैंने कहा: "ठीक है ··" और क़दम बढ़ा दिए।

एकदम शोर-सा बरपा हो गया—क्या देखता हूँ, लड़के हाथों में कागज़ों के बंडल लिए चिल्ला रहे हैं और अंधाधुंध भाग रहे हैं। भाँत-भाँत की बोलियाँ सुनने में आईं। अख़बार बिक रहे थे। ताज़ा-ताज़ा और गर्मागरम ख़बरें:

'देहली में जूता चल गया।'

'लखनऊ में फ़लाँ लीडर की कोठी पर कुत्तों ने हमला कर दिया।'

'पाकिस्तान के एक नजूमी की पेशींगोई[8]: कश्मीर दो हफ़्तों में आज़ाद हो जाएगा।'

दर्जनों अख़बार थे: आज का ताज़ा 'नवाये सुबह', आज का ताज़ा 'अबुलवक़्त', आज का ताज़ा 'सुनहरा पाकिस्तान', वग़ैरह-वग़ैरह।

अख़बारफ़रोश लड़कों का सैलाब गुज़र गया तो एक औरत नज़र आई। उम्र यही कोई पचास के लगभग। संजीदा और मतीन सूरत। एक हाथ में थैला था, दूसरे में अख़बारों का बंडल।

मैंने पूछा: "क्या आप अख़बार बेचती हैं?"

मुख़्तसर जवाब मिला : "जी हाँ।"

मैंने दो अख़बार ख़रीदे और दिल में उस अख़बारफ़रोश ख़ातून का एहतिराम लिए आगे बढ़ गया।

थोड़ी ही देर में कुत्तों का एक ग़ोल-का-ग़ोल नमूदार हुआ। वह सब भौंक रहे थे, एक-दूसरे को भंभोड़ रहे थे, प्यार कर रहे थे और काट भी रहे थे—मैं डरकर एक तरफ़ हट गया क्योंकि, पंद्रह रोज़ हुए, एक कुत्ते ने मुझे काट खाया था और मुझे दस सी.सी. के पूरे चौदह टीके अपने पेट में भुंकवाने पड़े थे।

मैंने सोचा : 'क्या यह सब कुत्ते पनाहगीर हैं या वह हैं, जो यहाँ से जानेवाले अपने पीछे छोड़ गए हैं · वह कोई भी हों, उनका ख़याल तो रखना चाहिए·· जो पनाहगीर हैं, उनको फिर से आबाद किया जाए और जो बे आक़ा हो गए हैं, उनको उनकी नस्ल के एतिबार से उन लोगों के नाम अलाट कर दिया जाए, जिनके कुत्ते उस पार रह गए हैं··जिनका कोई वाली-वारिस नहीं, उनके लिए लकड़ी की टाँगें मुहैया की जाएँ ताकि वह उनसे ही अपना शुग्ल पूरा करते रहें '

कुत्तों का ग़ोल चला गया तो मेरी जान-में-जान आई—मैंने क़दम बढ़ाने शुरू किए।

मैंने एक अख़बार खोला और उसे देखना शुरू किया—सरे-वर्क़ पर एक फ़िल्म एक्ट्रेस की तसवीर थी, तीन रंगों में। एक्ट्रेस का जिस्म नीम उरियाँ था। नीचे यह इबारत दर्ज थी : 'फिल्मों में बेहयाई का मुज़ाहिरा कैसे किया जाता है, इसका कुछ अंदाज़ा ऊपर की तसवीर से हो सकता है।'

मैंने दिल-ही-दिल में 'पाकिस्तान : ज़िंदाबाद' का नारा लगाया और अख़बार को फुटपाथ पर फेंक दिया।

दूसरा अख़बार खोला तो एक छोटे-से इश्तिहार पर नज़र पड़ी—मज़मून यह था :

> 'मैंने कल अपनी साइकिल लायड्ज़ बैंक के बाहर रखी थी। काम से फ़ारिग़ होकर जब लौटा तो क्या देखता हूँ कि साईकिल पर कोई पुरानी गद्दी कसी हुई है और नई गद्दी ग़ाइब है। मैं ग़रीब मुहाजिर हूँ। जिस साहब ने मेरी गद्दी ली हो, बराहे-करम मुझे वापस कर दें।'

मैं ख़ूब हँसा और अख़बार तह करके अपनी जेब में रख लिया।

चद गज़ों के फ़ासले पर एक जली हुई दूकान दिखाई दी। उसके अंदर एक आदमी बर्फ़ की दो मोटी-मोटी सिलें रखे बैठा था। मैंने दिल में कहा : 'इस दूकान को आख़िरकार किसी तरह से ठंडक पहुँच ही गई।'

फिर मैंने तीन-चार साइकिलें देखीं, थोड़े-थोड़े वक़्फ़े के बाद। इन्हें मर्द चला रहे थे और हर साइकिल के पीछे कैरियर पर एक-एक बुर्क़ापोश औरत बैठी थी। पाँच-छः मिनट के बाद एक और उसी क़िस्म की साइकिल नज़र आई, लेकिन उस पर एक बुर्क़ापोश औरत आगे फ़्रेम के डंडे पर बैठी थी—दफ़अतन ख़रबूज़े के छिलके पर से साइकिल फिसली—सवार ने ब्रेक दबाए लेकिन फिसलने और ब्रेक लगने के दोहरे अमल से साइकिल उलटकर गिर पड़ी।

मैं दौड़ा मदद के लिए—मर्द तो औरत के बुर्के में लिपट गया था और औरत बेचारी साइकिल के नीचे दबी हुई थी—मैंने साइकिल उठाई और औरत को सहारा देकर उठाया।

मर्द ने बुर्के में से मुँह निकालकर मेरी तरफ़ देखा और कहा: "आप तशरीफ़ ले जाइए...हमें आपकी मदद की ज़रूरत नहीं..." यह कहकर वह उठा, औरत के सिर पर औंधा-सीधा बुर्क़ा अटकाया और उसको डंडे पर बिठा यह जा, वह जा।

मैंने दिल में दुआ की कि आगे सड़क पर ख़रबूज़े का कोई और छिलका न पड़ा हो।

थोड़ी ही दूर जाने के बाद मैंने दीवार पर एक इश्तिहार देखा, जिसका उनवान बहुत ही मानीख़ेज़ था[9]: 'मुसलमान औरत और परदा।'

मैं बहुत आगे निकल गया—जगह जानी-पहचानी थी, मगर वह बुत कहीं नहीं था जो मैं देखा करता था।

मैंने एक आदमी से, जो घास के तख़्ते पर इस्तिराहत[10] फ़रमा रहा था, पूछा: "क्यों साहब, यहाँ एक बुत हुआ करता था, वह कहाँ गया?"

इस्तिराहत फ़रमानेवाले ने आँखें खोलीं और कहा: "चला गया।"

"चला गया...आपका मतलब है, अपने आप चला गया?"

वह मुसकराया: "नहीं...वह उसे ले गए।"

मैंने पूछा: "कौन?"

जवाब मिला: "जिनका था।"

मैंने दिल में कहा: 'लो अब बुत भी हिजरत[11] करने लगे...एक दिन वह भी आएगा, जब लोग अपने-अपने मुर्दे भी क़ब्रों से उखाड़कर ले जाएँगे।'

यही सोचता हुआ क़दम उठाने ही वाला था कि एक साहब ने, जो मेरी ही तरह टहल रहे थे, मुझसे कहा: "बुत कहीं गया नहीं...यहीं है और महफ़ूज़[12] है।"

मैंने पूछा: "कहाँ?"

उन्होंने जवाब दिया: "अजायबघर में।"

मैंने दिल में दुआ माँगी: 'ऐ ख़ुदा, वह दिन न लाइयो कि हम सब अजायबघर में रखे जाने के क़ाबिल हो जाएँ।'

ज़रा आगे एक देहलवी मुहाजिर अपने साहबज़ादे के साथ सैर फ़रमा रहे थे।

साहबज़ादे ने उनसे कहा: "अब्बाजान, आज हम छोले खाएँगे।"

अब्बाजान के कान सुर्ख़ हो गए: "क्या कहा?"

बरख़ुर्दार ने जवाब दिया: "हम आज छोले खाएँगे।"

अब्बाजान के कान और सुर्ख़ हो गए: "छोले क्या हुआ, चने कहो।"

बरख़ुर्दार ने बड़ी मासूमियत से कहा: "नहीं अब्बाजान, चने दिल्ली में होते हैं...यहाँ सब छोले ही खाते हैं।"

अब्बाजान के कान अपनी असली हालत पर आ गए।

मैं टहलता-टहलता लारेंस बाग़ पहुँच गया—वही बाग़ था पुराना, लेकिन वह चहल-पहल नहीं थी। सन्फ़े-नाज़ुक[13] तो क़रीब-क़रीब मफ़क़ूद[14] थी—फूल खिले हुए

थे। कलियाँ चटक रही थीं। हल्की-फुल्की फ़ज़ा में खुशबुएँ तैर रही थीं—मैंने सोचा : 'औरतों को क्या हुआ है जो घर में क़ैद हैं···ऐसा ख़ूबसूरत बाग़, इतना सुहाना मौसम···इससे लुत्फ़अंदोज़[15] क्यों नहीं होतीं···' लेकिन मुझे फ़ौरन ही अपने सवाल का जवाब मिल गया, जब मेरे कानों में एक निहायत ही भौंडे और सूक़ियाना गाने की आवाज़ आई—और जब मैंने लारेंस बाग़ की रविशों[16] पर फटी-फटी निगाहोंवाले गोश्त के बेहंगम लोथड़ों को महवे-ख़राम[17] देखा तो मुझे दुख हुआ और इस दुख में इज़ाफ़ा हो गया, जब मैंने सोचा कि फूल बेकार खिल रहे हैं, कलियाँ बेमतलब चटक रही हैं—यह जो उनकी तरफ़ देखे बग़ैर चले जा रहे हैं, यह जो उनके तअत्तुर[18] से बिलकुल बेख़बर हैं, क्या इनकी जगह इस बाग़ के बजाय ज़ेहनी शफ़ाख़ाना नहीं ? कोई मदरसा नहीं जहाँ इनके दिमाग़ों की बंद खिड़कियाँ खोली जाएँ, इनकी रूहों के ज़ंगआलूद ताले तोड़े जाएँ—अगर कोई ऐसा नहीं कर सकता, मेरा मतलब है, अगर इंसान का ज़ेहन आजिज़ है इन इंसानों के ज़ेहन की इस्लाह करने में तो क्या वह इन्हें चिड़ियाघर में नहीं रख सकता, जो इसी बाग़ में क़ायम है।

मेरी तबीयत मुकद्दर[19] हो गई।

बाग़ से बाहर निकल रहा था कि एक साहब ने पूछा : "क्यों साहब, यही बाग़े-जिनाह है ?"

मैंने जवाब दिया : "जी नहीं यह लारेंस बाग़ है।"

वह साहब मुसकराए : "आप चिड़ियाघर से तशरीफ़ ला रहे हैं ?"

"जी हाँ।"

वह साहब हँस पड़े : "क़िबला, जब से पाकिस्तान क़ायम हुआ है, इसका नाम बाग़े-जिनाह हो गया है।"

मैंने उनसे कहा : "पाकिस्तान : ज़िंदाबाद।"

वह और ज़्यादा हँसते हुए लारेंस बाग़ में चले गए—और मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मैं दोज़ख़ से बाहर निकला हूँ।

हक़ा के बा अक़ूबते-दोज़ख़े बराबर अस्त
रफ़्तन ब पाए मरदई हमसाया दर बहिश्त

---

1. बैठने की चौकी; 2. लगी हुई; 3. सुंदर; 4. लिपि; 5. व्यंजनो की सूची; 6. जूताघर; 7. बहुत ही ज्यादा ठंडी; 8. भविष्यवाणी; 9. अर्थपूर्ण; 10. आराम; 11. प्रवास, दूसरे देश में जा बसना; 12. सुरक्षित; 13. महिलाएँ; 14. ग़ायब; 15. आनंदित; 16. पगडंडियों; 17. धीरे-धीरे टहलने में व्यस्त; 18. सुगंध; 19. बोझिल।

अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है

अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है साहबान,

एक वह ज़माना-ए-जहालत[1] था कि जगह-जगह कचहरियाँ थीं, हाई कोर्टें थीं, थाने थे, चौकियाँ थीं, जेलख़ाने थे क़ैदियों से भरे हुए… क्लब थे जिनमें जुआ चलता था, शराब उड़ती थी… नाचघर थे, सनीमा थे, आर्ट गैलरियाँ थीं और क्या-क्या ख़ुराफ़ात न थी… अब तो अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है साहबान, कोई शाइर देखने में आता है न मौसीक़ार…

लाहौल वला, यह मौसीक़ी भी एक लानतों की लानत थी… यानी आख़िर गाना भी क्या इंसानों का काम है… ? तंबूरा लेकर बैठे हैं और गला फाड़ रहे हैं… साहब, क्या गा रहे हैं… ? दरबारी काँगड़ा, मालकौस, मियाँ की टोड़ी, अडाना और जाने क्या-क्या बकवास… कोई उनसे पूछे कि जनाब, आख़िर इन राग-रागनियों से इंसानियत को क्या फ़ाइदा पहुँचता है ? आप कोई ऐसा काम कीजिए जिससे आपकी आक़बत[2] सँवरे, आपको कुछ सवाब पहुँचे, क़ब्र का अज़ाब[3] कम हो।

अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है साहबान, मौसीक़ी के अलावा और जितनी लानतें थीं, उनका अब नामो-निशान तक ज़िंदगी में नहीं और ख़ुदा ने चाहा तो आहिस्ता-आहिस्ता यह ज़िंदगी की लानत भी दूर हो जाएगी…

मैंने शाइर का ज़िक्र किया था… अजीबो-ग़रीब चीज़ थी यह भी… ख़ुदा का ख़याल न उसके रसूल की फ़िक्र, बस माशूक़ों के पीछे लगे हुए हैं… कोई रेहाना के गीत गा रहा है, कोई सलमा के… लाहौल वला, ज़ुल्फ़ों की तारीफ़ हो रही है, कभी गालों की। वस्ल के ख़्वाब देखे जा रहे हैं… कितने गंदे ख़यालात के थे यह लोग… हाय औरत, वाए औरत… लेकिन अब अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है साहबान, अव्वल तो औरतें ही कम हो गई हैं और जो हैं, पड़ी घर की चारदीवारी में महफ़ूज़ हैं… जब से यह ख़ित्ता-ए-ज़मीन शाइरों के वुजूद से पाक हुआ है, फ़ज़ा बिलकुल साफ़ और शफ़ाफ़ हो गई है।

मैंने आपको बताया नहीं, शाइरी के आख़िरी दौर में कुछ शाइर ऐसे भी पैदा हो गए थे, जो माशूक़ों के बजाय मज़दूरों पर शेर कहते थे। ज़ुल्फ़ों और आरिज़ों[4] की जगह हथौड़ों और दरातियों की तारीफ़ करते थे… अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है साहबान कि उन मरदुओं से निजात मिली। कमबख़्त इन्क़िलाब चाहते थे… सुना आपने, तख़्ता उलटना चाहते थे हुकूमत का, निज़ामे-सहाशरत[5] का, सरमायादारी का और नऊज़ुबिल्लाह[6] मुल्लाओं का।

अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है कि इन शैतानों से हम इंसानों को निजात मिली··· अवाम बहुत गुमराह हो गए थे। अपने हुक़ूक़ का नाजाइज़ मुतालबा करने लगे थे। झंडे हाथ में लेकर लादीनी हुकूमत क़ायम करना चाहते थे··· ख़ुदा का शुक्र है कि अब उनमें से एक भी हमारे दरमियान मौजूद नहीं, और लाख-लाख शुक्र है परवरदिगार का, अब हम पर मुल्लाओं की हुकूमत है और हर जुमेरात हम हलवे से उनकी ज़ियाफ़त[7] करते हैं।

आपको यह सुनकर हैरत होगी कि उस ज़माने में हलवे का नामो-निशान तक उड़ गया था··· मस्जिदों में हुजरों के अंदर बेचारे मुल्ला, ख़ुदा उन्हें करवट-करवट जन्नत नसीब करे, पड़े हलवे को तरसते थे। उनकी लंबी-लंबी नूरानी दाढ़ियों का एक-एक बाल शैतानी उस्तरों की मौत की दुआएँ माँगता था। अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है कि यह दुआएँ क़ुबूल हुईं··· अब आप इस कोने से उस कोने तक चले जाइए, सारी दूकानें छान मारिए, एक उस्तरा भी आपको नहीं मिलेगा। अलबत्ता हलवा, जो कि हमारे रहनुमा मुल्लाओं की मज़हबी ख़ुराक है, आपको अब हर जगह और हर मिक़दार में दस्तेयाब हो सकता है।

अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है, अब कोई ठुमरी-दादरा नहीं गाता। फ़िल्मी धुनें भी मर-खप चुकी हैं। मौसीक़ी का ऐसा जनाज़ा निकला है और इस तौर पर उसे ज़मीन में दफ़न किया गया है कि अब कोई मसीहा भी उसे दुबारा ज़िंदा नहीं कर सकता··· कितनी बड़ी लानत थी यह मौसीक़ी··· लोग कहते थे, यह आर्ट है··· कैसा आर्ट, कहाँ का आर्ट··· यह भी कोई आर्ट है कि आपने कोई गाना सुना और दुनिया के दुख-दर्द थोड़ी देर के लिए भूल गए। कोई गीत सुना और दिल आपका बल्लियों उछलने लगा और आप हुस्नो-इश्क़ की दुनिया में जा पहुँचे··· लाहौलवला। आर्ट कभी ऐसा गुमराहकुन[8] नहीं हो सकता··· 'घूँघट के पट खोल रे', 'पायल बाजी छनन-छनन', 'बाबुल नैहर मोरा छूटो जाए', 'रतियाँ कहाँ गवाँई रे'··· कोई शराफ़त है इन बोलों में··· अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है कि अब ऐसी ख़ुराफ़ात मौजूद नहीं। अलहमदुलिल्लाह क़व्वाली है। सुनिए और सिर धुनिए। हाल खेलिए, हू हक़ के नारे लगाइए और सवाब हासिल कीजिए।

मुसव्विरी भी कुछ कम लानत नहीं थी। तसवीरें बनती थीं बरहना[9], नीम बरहना। मुसव्विर अपनी पूरी क़ुव्वते-तसव्वुर[10] हुस्न की तख़लीक़[11] में सर्फ़ कर देते थे, लेकिन यह कुफ़्र था··· तख़लीक़ सिर्फ़ ख़ुदा का काम है, उसके बंदों का नहीं। और फिर हुस्न की तख़लीक़? यह तो गुनाहे-कबीरा था··· अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है कि हमारे दरमियान आज एक भी मुसव्विर मौजूद नहीं। जो थे, उनकी उँगलियाँ क़लम कर दी गई हैं ताकि वह अपनी शैतानी हरकतों से बाज़ रहें··· अब यह आलम है कि इस सर-ज़मीन पर आपको एक सीधी लकीर भी कहीं देखने में नहीं मिलेगी··· एक आदमी भी ऐसा मौजूद नहीं जो गुरूबे-आफ़ताब[12] के मंज़र को देखकर उसे काग़ज़ या कपड़े पर मुंतक़िल[13] करने का ख़याल अपने दिलो-दिमाग़ में लाए··· सच पूछिए तो अब वह ख़ौफ़नाक हिस ही मिट चुकी है जिसे तलबे-हुस्न कहते हैं, तख़लीक़े-हुस्न की बात तो अलग रही।

नंगी औरतों की तसवीरें बनाई जाती थीं, नंगी औरतों के मुजस्समे[14] तराशे जाते थे। इसी पर मौक़ूफ़[15] नहीं, उनको बड़े प्यार से अजायबख़ानों में सजाया जाता था। उनके

बनानेवालों को इनामो-इकराम दिए जाते थे···जी हाँ, इनामो-इकराम···वज़ीफ़े दिए जाते थे। अल्क़ाब[16] इनायत किए जाते थे कि वाह मुसव्विर साहब, आपने नंगी औरत की तसवीर क्या ख़ूब खींची है। यह पिस्तान···लाहौलवला, मैंने किस चीज़ का नाम ले लिया···माफ़ कीजिए, मैं अभी हाज़िर हुआ···ज़रा कुल्ली कर आऊँ···

कुल्ली कर आया हूँ, लेकिन मुँह का ज़ाइका अभी तक ख़राब है···माफ़ कर दीजिएगा मुझे। सहवन[17] मेरे मुँह से एक ग़लीज़ चीज़ का नाम निकल गया, लेकिन आप तो इसका मतलब नहीं समझे होंगे, क्योंकि जितने गंदे और ख़राब लफ़्ज़ थे, सबके-सब लुग़ात में से निकाल दिए गए हैं।

मैं क्या अर्ज़ कर रहा था···? जी हाँ, अल्लाह का फ़ज़्ल है कि अब ऐसा कोई अजायबख़ाना मौजूद नहीं, जहाँ नंगी तसवीरें या सिर्फ़ तसवीरें जिन्हें आर्ट का नमूना कहा जाता था, देखने में आएँ—ऐसे जितने अजायबख़ाने थे, उनको फ़ौरन ही ढा दिया गया और मलबा दरियाओं में डाल दिया गया ताकि नामो-निशान तक बाक़ी न रहे।

उरयानी[18] की वबा[19] सिर्फ़ तसवीरों और मुजस्समों तक ही महदूद नहीं थी, शेरों और अफ़सानों में भी फैली हुई थी। वह ग़ज़ल और वह अफ़साना बहुत कामयाब मुतसव्वर[20] किया जाता था, जिसमें औरत और मर्द के जिस्मानी रिश्ते पर बहस की गई हो··· किस क़दर मरीज़ाना ज़ेहनियत के थे वह लोग···रूहानियत के बारे में कभी कुछ सोचते ही नहीं थे···ज़मीन की बातें करते थे—ऊपर सात आसमान पड़े हैं, इसका इल्म ही नहीं था उनको···जिस्म की भूख का सोचते थे। रूह की भूख क्या होती है, उनके फ़लक को भी इसका पता नहीं था···अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है कि जिस्म की भूख अब बिलकुल मिट चुकी है, और अल्लाह का फ़ज़्ल शामिले-हाल रहा तो सिर्फ़ रूह-ही-रूह रह जाएगी और हम फ़ानी इंसानों का जिस्म सिरे से ग़ायब ही हो जाएगा···ख़स कम जहाँ पाक!

कोई ज़माना था कि सैकड़ों परचे अदब के नाम पर शाया होते थे। उनमें लोगों का अख़लाक़ बिगाड़नेवाली हज़ारों तहरीरें आए दिन छपती थीं। समझ में नहीं आता, अदब क्या बला थी···अदब आदाब सिखाने की कोई चीज़ होती तो ठीक था। जो कहानियाँ, अफ़साने, मज़मून, नज़्में, ग़ज़लें अदब का नाम लेकर छापी जाती थीं, उनमें न तो छोटों को बड़ों का लिहाज़ करने की तालीम दी जाती थी और न मग़्रिब ज़दा[21] लोगों को ढेला लगाने की तरकीब ही बताई जाती थी। यह तो ख़ैर एक बहुत बड़ा और पाकीज़ा फ़न है कि आते-आते ही आता है, लेकिन इतना भी न था कि अवाम को दाढ़ी रखने, लबें कतरवाने ही की तरफ़ माइल किया जाता।

अदब उन नाअहल[22] हाथों में बस यह रह गया था। औरत और मर्द के जिंसी मसाइल···लाहौलवला क़ुव्वत···इंसान की नफ़सियात···नऊज़ुबिल्लाह···यानी हम फ़ानी इंसानों की ग़ैर फ़ानी रूह तक पहुँचने की कोशिश की जाती थी···हुस्नो-इश्क़ की दास्तानें, ख़ूबसूरत मनाज़िर[23] की तारीफ़ें, बड़े ही ख़ुशनुमा अल्फ़ाज़ में। कोई शामे-अवध की मदह सराई[24] कर रहा है, कोई सुबहे-बनारस की। क़ौसेक़ुज़ह[25] के रंगों को काग़ज़ पर उतारा जा

रहा है। फूलों, बुलबुलों, कोयलों और चिड़ियों पर हज़ारों सफ़हे काले किए जा रहे हैं ···लेकिन साहबान, सवाल तो यह है···तारीफ़ उस ख़ुदा की जिसने जहाँ बनाया···

अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है कि अब कोई फूल रहा है न बुलबुल···फूलों का नास मारा गया तो बुलबुलें ख़ुद-ब-ख़ुद दफ़ान हो गईं···इसी तरह और बहुत-सी वाहियात चीज़ें आहिस्ता-आहिस्ता इस सरज़मीन से, जहाँ उनके सींग समाए, चली गई हैं।

मैं अदब के मुताल्लिक़ अर्ज़ कर रहा था ··हाँ साहब, मैंने आपको बताया ही नहीं कि आख़िर में अदब की एक बिलकुल ही नई क़िस्म पैदा हो गई थी। उस वक़्त लोग कहते थे कि यह हक़ीक़ी अदब है, यानी जो कुछ हम देखते हैं, बयान कर देते हैं···ग़ज़ब ख़ुदा का···ग़ौर फ़रमाइए। अगर आपको इस वक़्त, ख़ुदानख़्वास्ता, छींक आ जाए तो मुझे क्या हक़ पहुँचता है कि मैं इस अफ़सोसनाक वाक़े को क़लमबंद करूँ और फिर अदब के नाम से इसे दूसरों के सामने पेश करूँ छींक के नफ़सियाती पहलू क्या हो सकते हैं···फ़रमाइए, क्या हो सकते हैं हर चीज़ उमी ज़ाते-पाक की तरफ़ से आती है और उसी की तरफ़ वापस चली जाती है।

अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है कि उम नाम-निहाद अदब और उन बरख़ुद ग़लत अदीबों का अब नामो निशान नही रहा। कोई रिसाला छपता है, न जरीदा[26], न सहीफ़ा[27]··· नऊज़ुबिल्लाह ··उस ज़माने में लोगों को इतनी जुर्रात थी कि अपने ज़लील परचों को सहीफ़े कहते थे और ख़ुद को सहाफ़ी ·अब तो साहब कोई अख़बार भी नज़र नहीं आता···हाकिम लोग अलबत्ता कभी-कभार जब ज़रूरत पड़े तो हमारी मालूमात के लिए चद सुतूरें शाया कर देते हैं अल्लाह-अल्लाह ख़ैर सल्लाह।

अब सिर्फ़ एक अख़बार हुकूमत की तरफ़ से छपता है और आप जानते हैं, साल में एक आध बार, जबकि अशद[28] ज़रूरत महसूस होती है···ख़बरें होती ही कहाँ हैं···अब ऐसी कोई बात होने ही नहीं दी जाती जो लोग सुनें और आपस में चःमैगोइयाँ[29] करें!···

वह ज़माना था, लोग बेकार होटलों और घरों में यह लंबे-लंबे अख़बार लिए घंटों बहस कर रहे हैं कौन-सी पार्टी बरसरे-इक़्तिदार[30] होनी चाहिए। किस लीडर को वोट देने चाहिए। शहर की सफ़ाई का इंतिज़ाम क्यों ठीक नहीं। आर्ट स्कूल खुलने चाहिएँ। औरतों के मसावी हुक़ूक़[31] का मुतालबा दुरुस्त है या ना दुरुस्त···और ख़ुदा मालूम क्या-क्या ख़ुराफ़ात ··

अल्लाह का फ़ज़्ल है कि हमारी दुनिया ऐसे हंगामों से पाक है···लोग खाते हैं, पीते हैं, अल्लाह को याद करते हैं और सो जाते हैं···किसी की बुराई में न किसी की अच्छाई में।

साहबान, मैं साइंस का ज़िक्र करना तो भूल ही गया···यह अदब की भी ख़ाला थी · ख़ुदा महफ़ूज़ रखे इस बला से···नऊज़ुबिल्लाह इस फ़ानी दुनिया को जन्नत बनाने की फ़िक्र में थे वह लोग, जो ख़ुद को साइंसदाँ कहते थे···मलऊन कहीं के···ख़ुदा के मुक़ाबले में तख़लीक़ के दावे बाँधते थे : "हम मस्नूई[32] सूरज बनाएँगे जो रात को तमाम दुनिया रोशन किया करेगा···हम जब चाहेंगे, बादलों से बारिश दोह लिया करेंगे···"

ज़रा ग़ौर फ़रमाइए···नमरूद की ख़ुदाई थी. जी और क्या···? सरतान[33] जैसी लाइलाज

और मुह्लिक[34] बीमारी का इलाज ढूँढ़ा जा रहा है, यानी मलकुलमौत[35] के साथ पंजा लड़ाने की सई फ़रमाई जा रही है··· एक साहब हैं कि दूरबीन लिए बैठे हैं और दावा कर रहे हैं कि वह चाँद तक पहुँच जाएँगे···एक सरफिरे बोतलों और मर्तबानों में बच्चे पैदा कर रहे हैं···

ख़ुदा का ख़ौफ़ ही नहीं रहा था पाजियों को···अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है कि वह सब शैतान हमारे दरमियान से उठ गए··· अब चारों तरफ़ सुकून है··· कोई हंगामा नहीं, कोई वारदात नहीं। कोई शाइर नहीं, कोई मुसव्विर नहीं, कोई साइंसदाँ नहीं··· ज़िंदगी यूँ गुज़र रही है, जैसे गुज़र ही नहीं रही···क़ल्ब के लिए यह कितनी इत्मीनानदेह चीज़ है···लोग पैदा होते हैं, मर जाते हैं और किसी को कानों-कान ख़बर नहीं होती···ज़िंदगी से लेकर मौत तक एक बेआवाज़, साफ़-शफ़ाफ़ धारा बहा चला जा रहा है···कोई भँवर है न बुलबुला···लोग दोनों किनारों के साथ-साथ ठंडी-ठंडी रेत पर लंबी ताने सो रहे हैं···और क्यों साहबान, क्या जी नहीं चाहता कि इसी तरह सोए रहें, हत्ता कि जन्नत में दूध की नहरों के किनारे हमारी आँखें खुलें···ऊपर देखें तो अंगूर के ख़ोशे झुककर हमारे मुँह में आ जाएँ और हम फिर सो जाएँ···

यह···यह अख़बार कहाँ से आ गया···ओह, हम सो गए थे···सरकारी डाकिया फेंक गया होगा··· बड़ी देर के बाद आया है यह परचा··· देखें, क्या लिखा है··· वह ज़माना बुरा था साहबान, लेकिन एक बात थी··· अख़बारों की लिखाई-छपाई बहुत ही ख़ूबसूरत होती थी···लेकिन ख़ूबसूरती का क्या है···मआज़ल्लाह[36]···यह क्या?

ठहरिए ठहरिए···कहीं मेरी नज़रें तो धोखा नहीं दे रहीं?

जी नहीं, साफ़ पढ़ा जा रहा है:

'हुकूमत शशोपंज में:-मम्लुकत[37] में एक आदमी गिरफ़्तार किया गया है।'

गिरफ़्तार···? गिरफ़्तार किया गया है···?

इल्ज़ाम यह है कि वह गली-गली और कूचे-कूचे शोर मचाता फिरता था: 'मैं इस मम्लुकत में नहीं रहना चाहता जहाँ ख़ुदा तो है पर शैतान नहीं है···'

नऊज़ुबिल्लाह

"नामानिगार ख़ुसूसी का बयान है कि जब मुल्ज़िम को हुक्कामे-बाला के हुज़ूर पेश किया गया तो उसने चिल्लाना शुरू कर दिया: 'यहाँ जल्दी-जल्दी शैतान बुलाओ, वर्ना मैं पागल हो जाऊँगा···' नामानिगार ख़ुसूसी यह भी बयान करता है कि मुल्ज़िम ने अपनी सफ़ाई में यह इन्किशाफ़[38] किया कि उसके क़ब्ज़े में हज़रत अल्लामा इक़बाल नूरुल्लाह[39] मरक़दा[40] का एक शेर मौजूद है—शेर फ़ारसी ज़बान का है, जिसे हम यहाँ दर्ज करते हैं

मज़ी अंदर जहाँ ने कोर ज़ौक़े
कि यज़दाँ दारदो शैताँ नदारद

लेकिन यह शेर अल्लामा इक़बाल मरहूम के मत्बूआ[41] कलाम में कहीं भी मौजूद नहीं है, हालाँकि वह हुकूमत की निगरानी में छापा जाता रहा है..."

बिलकुल दुरुस्त है ... मुल्ज़िम सरीहन[42] चालबाज़ी कर रहा है ... आगे क्या लिखा है, जी मैं पढ़ता हूँ : "इल्ज़ाम की नौइयत बहुत संगीन है। हुकूमत सख़्त शशोपंज में मुब्तला है कि मुल्ज़िम पर मुक़दमा कैसे चलाया जाए, क्योंकि कोई अदालत ही मौजूद नहीं। मुक़दमे की समाअत[43] हो तो सज़ा मिलने की सूरत में उसे कहाँ रखा जाए, क्योंकि मम्लुकत में एक भी जेल मौजूद नहीं—लेकिन सुना है कि हुकूमत फ़ौरन ही एक हवालात, एक अदालत और जेल तामीर करा रही है।"

अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है साहबान कि हुकूमत ने मामले की अहमियत और नज़ाकत को समझ लिया है।

1. असभ्यता का युग, 2. परलोक, 3 तकलीफ; 4. कपोलो; 5. कयामत का प्रबंध; 6. अल्लाह; 7. स्थानांतर; 8. पथभ्रष्टक; 9. नग्न, 10 कल्पनाशक्ति; 11. रचना, सृजन, 12. सूर्यास्त; 13. चित्रित; 14. प्रतिमाएँ; 15. स्थगित, विराम, 16 वह नाम जो व्यक्ति की किसी विशेषता के कारण हो; 17. अनजाने में; 18 नग्नता; 19. बीमारी; 20 समझा जाना, 21. पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण करनेवाले; 22. अयोग्य; 23. दृश्यो; 24. प्रशंसा; 25. इंद्रधनुष, 26. समाचार-पत्र; 27. पुस्तक; 28. अत्यधिक; 29. विचार-विमर्श, 30. सत्तारूढ़; 31. समानाधिकार; 32. कृत्रिम, 33. कैंसर; 34. जानलेवा, घातक; 35. मौत का फ़रिश्ता, यमराज; 36. अल्लाह माफ करे; 37. राष्ट्र, देश; 38 रहस्योद्घाटन; 39. अल्लाह उनकी क़ब्र रोशनी से भरे; 40. स्वर्गवासी; 41. प्रकाशित; 42. स्पष्ट; 43. सुनवाई।

चचा साम के नाम

पहला ख़त

31, लक्ष्मी मैन्शंज, हॉल रोड, लाहौर।
मुवर्रिख़ा 16 दिसंबर, 1951

चचाजान, अस्सलाम अलैकुम !

यह ख़त आपके पाकिस्तानी भतीजे की तरफ़ से है, जिसे आप नहीं जानते—जिसे आपकी सात आज़ादियों की मम्लुकत[1] में शायद कोई भी नहीं जानता।

मेरा मुल्क हिंदुस्तान से कटकर क्यों बना, कैसे आज़ाद हुआ, यह तो आपको अच्छी तरह मालूम है। यही वजह है कि मैं ख़त लिखने की जसारत[2] कर रहा हूँ, क्योंकि जिस तरह मेरा मुल्क कटकर आज़ाद हुआ, उसी तरह मैं कटकर आज़ाद हुआ और चचाजान, यह बात तो आप जैसे हमादान आलिम[3] से छुपी हुई नहीं होनी चाहिए कि जिस परिंदे को पर काटकर आज़ाद किया जाएगा, उसकी आज़ादी कैसी होगी !

ख़ैर इस किस्से को छोड़िए।

मेरा नाम सआदत हसन मंटो है और मैं एक ऐसी जगह पैदा हुआ था, जो अब हिंदुस्तान में है—मेरी माँ वहाँ दफ़न है, मेरा बाप वहाँ दफ़न है, मेरा पहला बच्चा भी उस ज़मीन में सो रहा है जो अब मेरा वतन नहीं—मेरा वतन अब पाकिस्तान है, जो मैंने अंग्रेज़ों के ग़ुलाम होने की हैसियत से पाँच-छः मर्तबा देखा था।

मैं पहले सारे हिंदुस्तान का एक बड़ा अफ़सानानिगार था, अब पाकिस्तान का एक बड़ा अफ़सानानिगार हूँ। मेरे अफसानों के कई मजमूए शाया हो चुके हैं। लोग मुझे इज़्ज़त की निगाहों से देखते हैं—सालिम हिंदुस्तान में मुझ पर तीन मुक़दमे चले थे और यहाँ पाकिस्तान में एक, लेकिन इसे अभी बने कै बरस हुए हैं।

अंग्रेज़ो की हुकूमत भी मुझे फ़हशनिगार समझती थी और मेरी अपनी हुकूमत का भी मेरे मुताल्लिक़ यही ख़याल है। अंग्रेज़ों की हुकूमत ने मुझे अपील करने पर छोड़ दिया था, लेकिन मेरी अपनी हुकूमत मुझे छोडती नज़र नहीं आती—अदालते-मातहत ने मुझे तीन माह क़ैद बामशक़्क़त और तीन सौ रुपए जुर्माने की सज़ा दी थी। सेशन में अपील करने पर मैं बरी हो गया, मगर मेरी हुकूमत समझती है कि उसके साथ नाइन्साफ़ी हुई है। चुनांचे अब उसने हाई कोर्ट में अपील की है कि वह सेशन के फ़ैसले पर नज़रे-सानी करे और मुझे

क़गर वाकई मज़ा दे—देखिए, अदालते-आलिया क्या फ़ैसला देती है।

मेरा मुल्क आपका मुल्क नहीं। इसका मुझे अफ़सोस है—अगर अदालते-आलिया मुझे सज़ा दे दे तो मेरे मुल्क में ऐसा कोई परचा नहीं जो मेरी तसवीर छाप सके, मेरे तमाम मुक़दमों की रूदाद[4] छाप सके।

मेरा मुल्क बहुत ग़रीब है। उसके पास आर्ट पेपर नहीं है, उसके पास अच्छे छापेख़ाने नहीं हैं—उसकी ग़ुर्बत का सबसे बड़ा सुबूत मैं हूँ। आपको यक़ीन नहीं आएगा चचाजान कि बाईस किताबों का मुसन्निफ़ होने के बाद भी मेरे पास रहने के लिए अपना मकान नही। और यह सुनकर तो आप हैरत में ग़र्क़ हो जाएँगे कि मेरे पास सवारी के लिए पैकार्ड है न डौज—कोई सैकिंडहैंड मोटर-कार भी नहीं।

मुझे कहीं जाना हो तो साइकिल किराए पर लेता हूँ। अख़बार में अगर मेरा कोई मज़मून छप जाए और सात रुपए फ़ी कालम के हिसाब से मुझे बीस-पच्चीस रुपए मिल जाएँ तो मैं ताँगे में बैठता हूँ और अपने यहाँ की कशीद कर्दा[5] शराब भी पीता हूँ। यह ऐसी शराब है कि अगर आपके मुल्क में कशीद की जाए तो आप उस डिस्टलरी को एटम बम से उड़ा दें, क्योंकि एक बरस के अंदर-अंदर ही यह ख़ानाख़राब इंसान को नेस्तोनाबूद कर देती है।

मैं कहाँ-से-कहाँ पहुँच गया—असल में मुझे भाईजान अर्सकाइन काल्डवैल को आपके ज़रिए से सलाम भेजना था। उनको तो ख़ैर आप जानते ही होंगे। उनके एक नाविल 'गॉड्ज लिटिल एकर' पर आप मुक़दमा चला चुके हैं—जुर्म वही था जो अक्सर यहाँ मेरा होता है, यानी 'फ़हाशी'।

यक़ीन जानिए, चचाजान, मुझे बड़ी हैरत हुई थी, जब मैंने सुना था कि उनके नाविल पर सात आज़ादियों के मुल्क में फ़हाशी के इल्ज़ाम से मुक़दमा चला है—आपके यहाँ तो हर चीज़ नंगी है। आप तो हर चीज़ का छिलका उतारकर अल्मारियों में सजाकर रखते हैं, वह फल हो या औरत, मशीन हो या जानवर, किताब हो या कैलेंडर। आप तो नग के बादशाह हैं—मेरा ख़याल था, आपकी मम्लुकत में तहारत[6] का नाम फ़हाशी होगा मगर चचाजान, आपने यह क्या ग़ज़ब किया कि भाईजान अर्सकाइन काल्डवैल पर मुक़दमा चला दिया।

मैं इस सदमे से मुतास्सिर होकर अपने मुल्क की कशीद कर्दा शराब ज़्यादा मिकदार में पीकर यक़ीनन मर गया होता, अगर मैंने फ़ौरन ही मुक़दमे का फ़ैसला न पढ़ लिया होता। यह मेरे मुल्क की बदक़िस्मती तो हुई कि एक इंसान ख़स-कम-जहाँ-पाक होने से रह गया, लेकिन फिर मैं आपको यह ख़त कैसे लिखता। वैसे मैं बड़ा सआदतमंद हूँ। मुझे अपने मुल्क से प्यार है। मैं इन्शाअल्लाह थोड़े ही दिनों में मर जाऊँगा। अगर ख़ुद नहीं मरूँगा तो ख़ुद-ब-ख़ुद मर जाऊँगा, क्योंकि जहाँ आटा रुपए का पौने तीन सेर मिलता हो, वहाँ बड़ा ही बेग़ैरत इंसान होगा जो ज़िंदगी के रवायती चार दिन ग़ुज़ार सके।

हाँ तो मैंने मुक़दमे का फ़ैसला पढ़ा और मैंने ख़ाना साज़ शराब ज़्यादा मिकदार में पीकर ख़ुदकुशी का इरादा तर्क कर दिया—भई चचाजान, कुछ भी हो, आपके हाँ हर चीज़ मुलम्मा चढ़ी है लेकिन वह जज, जिसने भाईजान अर्सकाइन काल्डवैल को फ़हाशी के जुर्म से बरी

किया, उसके दिमाग़ पर यक़ीनन मुलम्मा का झोल नहीं था। अगर वह जज—अफ़सोस है कि मैं उनका नाम नहीं जानता—ज़िंदा हैं तो उनको मेरा अक़ीदतमंदाना[8] सलाम ज़रूर पहुँचा दीजिए।

उनके फ़ैसले की यह आख़िरी सुतूर उनके दिमाग़ की वुसअत[9] का पता देती हैं: "मैं ज़ाती तौर पर महसूस करता हूँ कि ऐसी किताबों को सख़्ती से दबा देने पर पढ़नेवालों में ख़्वाहमख़्वाह तजस्सुस[10] और इस्तेजाब[11] पैदा होता है जो उन्हें शहवतपसंदी[12] की टोह लगाने की तरफ़ माइल कर देता है, हालाँकि असल किताब का यह मंशा नहीं है। मुझे पूरा यक़ीन है कि इस किताब में मुसन्निफ ने सिर्फ़ वही चीज मुंतख़ब की है जिसे वह अमरीकी ज़िंदगी के किसी मख़्सूस[13] तबके के मुताल्लिक सच्चा खयाल करता है। मेरी राय में सच्चाई को अदब के लिए हमेशा जाइज करार देना चाहिए।"

मैंने अदालते-मातहत से यही कहा था लेकिन उसने मुझे तीन माह क़ैदे-बामशक्कत और तीन सौ रुपए की सज़ा दी—उसकी राय यह थी कि सच्चाई को अदब से हमेशा दूर रखना चाहिए—अपनी-अपनी राय है।

मै तीन माह कैदे-बामशक्कत काटने के लिए हमेशा तैयार हूँ लेकिन यह तीन सौ रुपए का जुर्माना मुझसे अदा न हो सकेगा—चचाजान, आप नहीं जानते, मैं बहुत ग़रीब हूँ। मशक्कत का तो मै आदी हूँ, लेकिन रुपयों का आदी नहीं। मेरी उम्र उंतालीस बरस के करीब है और यह सारा जमाना मशक्कत ही मे गुजरा है। आप जरा गौर तो फरमाइए कि इतना बड़ा मुसन्निफ होने पर भी मेरे पास कोई पैकार्ड नहीं।

मैं गरीब हूँ, इसलिए कि मेरा मुल्क गरीब है। मुझे तो फिर दो वक्त की रोटी किसी-न-किसी हीले मिल जाती है, मगर मेरे कुछ भाई ऐसे भी है जिन्हे यह भी नसीब नहीं होती।

मेरा मुल्क ग़रीब है, जाहिल है—क्यों, यह तो आपको बख़ूबी मालूम है—यह आपके और आपके भाईजान बुल के मुशतरिका[14] साज का ऐसा तार है जिसे मैं छेड़ना नहीं चाहता, इसलिए कि आपकी समाअत पर गराँ गुजरेगा—मै यह ख़त एक बरख़ुर्दार की हैसियत से लिख रहा हूँ, इसलिए मुझे अव्वल ता आखिर बख़ुरर्दार ही रहना चाहिए।

आप ज़रूर पूछेंगे: "तुम्हारा मुल्क गरीब क्योंकर है, जबकि हमारे मुल्क से इतनी पैकार्डें, इतनी ब्यूकें, मैक्स फ़ैक्टर का इतना सामान वहाँ जाता है "

यह सब ठीक है चचाजान, मगर मैं आपके इस सवाल का जवाब नहीं दूँगा। आप अपने सवाल का जवाब ख़ुद अपने दिल से पूछ सकते है, अगर आपने अपने क़ाबिल सर्जनों से कहकर उसे अपने पहलू से निकलवा न डाला हो।

मेरे मुल्क की वह आबादी, जो पैकार्डों और ब्यूकों पर सवार होती है, मेरा मुल्क नहीं—मेरा मुल्क वह है, जिसमें मुझ ऐसे और मुझसे बदतर मुफ़्लिस बसते हैं।

यह बड़ी तल्ख़ बातें हैं—हमारे यहाँ शक्कर कम है, वर्ना मैं इन पर चढ़ाकर आपकी ख़िद्मत में पेश करता—इसको भी छोडिए।

बात दरअसल यह है कि मैंने हाल ही में आपके मुल्क के एक अदीब ऐवलिन वॉग

(Evelyn Waugh) की तस्नीफ़[15] (The Loved Once) पढ़ी है। मैं इससे इतना मुतास्सिर हुआ कि आपको यह ख़त लिखने बैठ गया — आपके मुल्क की इन्फ़रादियत[16] का मैं यूँ भी मौतरिफ़[17] था, मगर यह किताब पढ़कर तो मेरे मुँह से बेइख़्तियार निकला :

जो बात की, ख़ुदा की क़सम, लाजवाब की
वाहवा, वाहवा, वाहवा, वाहवा

चचाजान, वल्लाह मज़ा आ गया। कैसे ज़िंदा लोग आपके मुल्क में बसते है!

एवलिन वॉग (Evelyn Waugh) हमें बताता है कि आपके कैलिफ़ोर्निया में मुर्दों, यानी बिछड़े हुए अज़ीज़ों पर भी मुलम्माकारी की जा सकती है और इसके लिए बड़े-बड़े इदारे मौजूद हैं—मरनेवाले अजीज की शक्ल मक्रूह हो तो इनमें से किसी में भेज दीजिए—फार्म मौजूद है। उसमें अपनी ख़्वाहिशात दर्ज कर दीजिए। काम हस्बे-मशा होगा। यानी मुर्दे को आप जितना ख़ूबसूरत बनवाना चाहे, दाम देकर बनवा सकते हैं। अच्छे-से-अच्छा माहिर मौजूद है जो मुर्दे के जबड़े का ऑपरेशन करके उस पर मीठी-से-मीठी मुसकराहट सब्त[18] कर सकता है। आँखों में रोशनी पैदा की जा सकती है, माथे पर हस्बे-जरूरत नूर पैदा किया जा सकता है। और यह सब काम ऐसी चाबुकदस्ती से होता है कि कब्र में मुन्कर-नकीर[19] भी धोखा खा जाएँ।

भई ख़ुदा की कसम चचाजान, आपके मुल्क का कोई जवाब पैदा नही हो सकता।

जिंदों पर ऑपरेशन सुना था—प्लास्टिक सर्जरी से जिंदा आदमियों की शक्ल सँवारी जा सकती है, इसके मुताल्लिक़ भी यहाँ कुछ चर्चे हुए थे, मगर यह नहीं सुना था कि आप मुर्दों तक की शक्ल सँवार देते हैं।

यहाँ आपके मुल्क का एक सैयाह आया था। चंद अहबाब ने मुझसे उनका तआरुफ़ कराया। उस वक़्त मैं भाई ऐवलिन वॉग (Evelyn Waugh) की किताब पढ़ चुका था—मैंने उनसे उनके मुल्क की तारीफ़ की और ये शेर पढ़ा :

एक हम हैं कि लिया अपनी ही सूरत को बिगाड़
एक वह हैं जिन्हें तसवीर बना आती है

सैयाह साहब मेरा मतलब न समझे, मगर हकीक़त यह है चचाजान कि हमने अपनी सूरत को बिगाड़ रखा है। इतना मस्ख़[20] कर रखा है कि अब वह पहचानी भी नहीं जाती, अपने आपसे भी नहीं—और एक आप हैं कि अपने मक्रूह[21] सूरत मुर्दों तक की शक्ल सँवार देते हैं। हक़ तो यह है कि इस दुनिया के तख़्ते पर एक सिर्फ़ आपकी क़ौम ही को ज़िंदा रहने का हक़ हासिल है बख़ुदा बाक़ी सब झक मार रहे हैं।

हमारी ज़बान उर्दू का एक शाइर ग़ालिब हुआ है। उसने आज से क़रीब-क़रीब एक सदी पहले कहा था :

हुए मर के हम जो रुसवा, हुए क्यों न ग़र्के-दरिया
न कभी जनाज़ा उठता, न कहीं मज़ार होता।

ग़रीब को ज़िंदगी में अपनी रुसवाई का डर नहीं था, क्योंकि वह अव्वल ता आख़िर रुसवाए-ज़माना रहा। उसको इस बात का ख़ौफ़ था कि बाद अज़ मर्ग रुसवाई होगी। आदमी वज़ेदार था। उसे ख़ौफ़ नहीं, यक़ीन था, इसलिए उसने गर्क़े-दरिया होने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की कि जनाज़ा उठे न मज़ार बने।

काश! वह आपके मुल्क में पैदा हुआ होता। आप उसका बड़ी शानो-शौकत से जनाज़ा उठाते और उसका मजार स्काई स्क्रैपर[22] की सूरत बनाते, और अगर उसकी ख़्वाहिश पर अमल करते तो शीशे का हौज़ तैयार करते जिसमें उसकी लाश रहती दुनिया तक ग़र्क़ रहती और चिड़ियाघर में लोग उसे जा-जाकर देखते।

भाई ऐवलिन वॉग (Evelyn Waugh) बताता है कि वहाँ मुर्दा इंसानों ही के लिए नहीं, मुर्दा हैवानों की नोक-पलक[23] दुरुस्त करनेवाले इदारे भी मौजूद हैं। हादिसे में अगर किसी कुत्ते की दुम कट जाती है तो दूसरी लगा दी जाती है। मरहूम की शक्लो-सूरत में उसकी ज़िंदगी में जितने ऐब थे, उसकी मौत के बाद चाबुकदस्त हाथ दुरुस्त कर देते हैं और उसे शानो-शौकत के साथ कफ़ना-दफ़ना दिया जाता है। उसकी तुर्बत[24] पर फूल चढ़ाने का इंतज़ाम भी कर दिया जाता है—और हर साल, जिस रोज़ किसी का पालतू मरा हो, उस इदारे की तरफ़ से एक कार्ड भेज दिया जाता है जिस पर कुछ इस क़िस्म की इबारत[25] होती है: 'जन्नत में आपका टौमी या जिम्मी आपकी याद में अपनी दुम या कान हिला रहा है।'

हमसे तो आपके मुल्क के कुत्ते ही अच्छे—यहाँ आज मरे, कल दूसरा दिन—यहाँ किसी का कोई अजीज मरता है तो उस गरीब पर एक आफ़त टूट पड़ती है और वह दिल-ही-दिल में चिल्ला उठता है: 'कमबख़्त यह क्यों मरा मुझे ही मौत आ गई होती '

सच तो यह है चचाजान, हमें मरने का सलीक़ा आता है न जीने का।

आपके मुल्क में एक साहब ने तो कमाल ही कर दिया—उनको यक़ीन नहीं था कि उनकी मौत के बाद उनका जनाज़ा सलीके और करीने से उठेगा, चुनांचे उन्होंने अपनी ज़िंदगी ही में अपने कफ़न-दफ़न की बहार देख ली। यह उनका हक था। वह बड़ी शाइस्तगी[26], नफ़ासत और अमारत[27] की जिंदगी बसर करते थे। हर चीज उनकी मंशा के मुताबिक़ होती थी। हो सकता है, उनका जनाजा उठाने में किसी से कोई कोताही हो जाती। बहुत अच्छा किया जो उन्होंने जिंदगी ही में अपनी मौत की आराइश[28] व ज़ेबाइश[29] देख ली—मरने के बाद होता रहे जो होना है।

ताज़ा 'लाइफ़'—मुवर्रिख़ा 5 नवंबर, 1951: इंटरनेशनल एडिशन—देखा। वल्लाह, आप लोगों की जिंदगी का एक और ज़िंदगी आमोज़[30] पहलू आँखों के सामने रोशन हुआ। दो पूरे सफ़हों पर तसवीरों के साथ आपके मुल्क के मशहूरो-मारूफ़ गैंगस्टर के जनाज़े की पूरी रूदाद मरक़ूम थी। दल्ली मोरीटी, ख़ुदा उसे करवट-करवट जन्नत नसीब करे, की शबीह[31] देखी। उसका वह आलीशान घर देखा जो उसने हाल ही में पचपन हज़ार डालर

में फ़रोख़्त किया था। उसकी वह पाँच एकड़ की एस्टेट भी देखी जहाँ वह दुनिया के हंगामों से अलग होकर आराम और चैन की ज़िंदगी बसर करना चाहता था। मरहूम का वह फ़ोटो भी देखा जिसमें वह बिस्तर पर हमेशा के लिए आँखें बंद किए लेटा है। उसका पाँच हज़ार डालर का ताबूत और उसके जनाज़े का जुलूस, जो फूलों से लदी-फँदी ग्यारह बड़ी-बड़ी मलोज़ीनों और पिचहत्तर कारों पर मुश्तमिल[32] है, देखकर, अल्लाह वाहिद शाहिद[33] है, आँखों में आँसू आ गए।

ख़ाकमे-बदहन[34], अगर आप इंतिक़ाल फ़रमा जाएँ तो ख़ुदा आपको दल्ली मोरीटी से ज़्यादा इज़्ज़त और शान इनायत फ़रमाए—यह पाकिस्तान के एक ग़रीब मुसन्निफ़ की दिली दुआ है, जिसके पास सवारी के लिए एक टूटी-फूटी साइकिल भी नहीं। वह आपसे एक ऐसी इस्तिदआ[35] भी करता है कि क्यों न आप अपने मुल्क के दूरअंदेश आदमी की तरह अपनी ज़िंदगी ही में अपना जनाज़ा उठता देख लें—बंदा बशर है, हो सकता है, किसी से भूल-चूक हो जाए। हो सकता है, आपके चेहरे का कोई ख़त सँवरने से रह जाए और आपकी रूह को तकलीफ़ पहुँचे।

बहुत मुमकिन है, आप यह ख़त पहुँचने से पहले ही अपना जनाज़ा अपनी हस्बे-मंशा[36] अज़ीमुश्शान[37] धूमधाम से उठवा के देख चुके हों, इसलिए कि आप मुझसे कहीं ज़्यादा साहबे-फ़हमो-इद्राक[38] हैं और मेरे चचा हैं।

भाईजान अर्सकाइन काल्डवैल को सलाम और जज को भी, जिन्होंने उनको फहाशी के जुर्म मे बरी किया था।

कोई गुस्ताख़ी हो गई हो तो माफ़ फ़रमाएँ।

ज़्यादा हदे-आदाब[39]।

आपका मुफ़्लिस भतीजा
सआदत हसन मंटो
सकना पाकिस्तान

1. राष्ट्रों, 2 हिम्मत; 3. सर्वगुण सपन्न, सुविज्ञ; 4. आपबीती, अदालती कार्यवाही. 5 खींची हुई, 6. पवित्रता; 7 सौभाग्यशाली, 8 श्रद्धापूर्ण, 9 विस्तार; 10 प्रयास, जिज्ञासा, 11 आश्चर्य, 12. कामुकता, विषय-लोलुपता, 13. विशिष्ट. 14. माझे की, 15. रचित कृति; 16 अद्वितीय, 17 प्रशंसक, 18. लगाना, छाप, 19. इस्लाम धर्म के अनुसार कब्र में सवाल-जवाब करनेवाले फ़रिश्ते, 20. बिगाड़ना, 21. गंदी, घृणित; 22. गगनचुंबी भवन, 23 खूबसूरत बनाना, 24. कब्र, 25 वाक्य, लेख, 26 शालीनता; 27. धनाढ्यता; 28. सजावट, 29 बनाव-सिंगार, 30 अनुकरणीय, 31 झलक, छवि; 32. आधारित; 33. एकमात्र गवाह; 34. मेरे मुँह में खाक, 35. प्रार्थना, निवेदन, 36 इच्छानुसार; 37. बड़ी शान से; 38 बुद्धिमान; 39. बार-बार प्रणाम।

दसरा ख़त

मुकर्रमी[1] व मोहतरमी चचाजान,

तस्लीमात !

अर्सा हुआ, मैंने आपकी ख़िद्मत में एक ख़त इर्साल किया था—आपकी तरफ़ से तो उसकी कोई रसीद न आई मगर, कुछ दिन हुए, आपके सिफ़ारतख़ाने[2] के एक साहब, जिनका इस्मे-गिरामी[3] मुझे इस वक़्त याद नहीं, शाम को मेरे ग़रीबख़ाने पर तशरीफ़ लाए। उनके साथ एक स्वदेशी नौजवान भी थे। उन साहबान से जो गुफ़्तगू हुई, वह मैं मुख़्तसरन बयान कर देता हूँ।

उन साहब से अंग्रेज़ी में मुसाफ़हा[4] हुआ—मुझे हैरत है चचाजान कि वह अंग्रेज़ी बोलते थे, अमरीकी नहीं जो मैं सारी उम्र नहीं समझ सकता।

बहरहाल उनसे आध-पौन घंटा बातें हुईं—वह मुझसे मिलकर बहुत ख़ुश हुए, जिस तरह हर अमरीकी हर पाकिस्तानी या हिंदुस्तानी से मिलकर ख़ुश होता है—मैंने भी यही ज़ाहिर किया कि मुझे बड़ी मसर्रत[5] हुई, हालाँकि हक़ीक़त यह है कि मुझे सफ़ेद फ़ाम अमरीकनों से मिलकर कोई राहत या मसर्रत नहीं होती।

आप मेरी साफ़गोई का बुरा न मानिएगा।

पिछली बड़ी जंग के दौरान में मेरा क़याम[6] बंबई में था—एक रोज़ मुझे बंबे सेंट्रल जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ—उन दिनों वहाँ आप ही के मुल्क का दौरदौरा था। बेचारे टामियों को कोई पूछता ही नहीं था। बंबई में जितनी एंग्लो इंडियन, यहूदी और पारसी लड़कियाँ थीं, जो इस्मतफ़रोशी को अज़ राहे-फ़ैशन इख़्तियार किए हुए थीं, अमरीकी फ़ौजियों की बगल में चली गई थीं।

चचाजान, मैं आपसे सच अर्ज़ करता हूँ कि जब आपके अमरीका का कोई फ़ौजी किसी यहूदी, पारसी या एंगलो इंडियन लड़की को अपने साथ चिमटाए गुज़रता था तो टामियों के सीने पर साँप लोट जाते थे।

असल में आपकी हर अदा निराली है—हमारे फ़ौजी को तो यहाँ इतनी तनख़्वाह मिलती है कि वह उसका आधा पेट भी नहीं भर सकती, मगर आप एक मामूली चपड़ासी को इतनी तनख़्वाह देते हैं कि अगर उसके दो पेट भी हों तो वह उनको नाक तक भर दे।

चचाजान, गुस्ताख़ी माफ़—क्या यह फ़्रॉड तो नहीं—आप इतना रुपया कहाँ से लाते

हैं—छोटा मुँह और बड़ी बात है, लेकिन आप जो काम करते हैं, उसमें, ऐसा मालूम होता है, नुमाइश-ही-नुमाइश है—हो सकता है कि मैं ग़लती पर हूँ, मगर ग़लतियाँ इंसान ही करता है और मेरा ख़याल है कि आप भी इंसान हैं। अगर नहीं हैं तो मैं इसके मुताल्लिक़ कुछ नहीं कह सकता।

मैं कहाँ-से-कहाँ चला गया—बात बंबे सेंट्रल रेलवे स्टेशन की थी।

मैंने वहाँ आपके कई फ़ौजी देखे। उनमें ज़्यादातर सफ़ेद फ़ाम थे। कुछ सियाह फ़ाम भी थे—आपसे सच अर्ज़ करता हूँ कि वह सियाह फ़ाम उन सफ़ेद फ़ाम फ़ौजियों के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा तनोमंद[7] और सेहतमंद थे।

मेरी समझ में नहीं आता कि आपके मुल्क के लोग इस कसरत से चश्मा क्यों इस्तेमाल करते हैं—गोरों ने तो ख़ैर चश्मे लगाए ही हुए थे, कालों ने भी लगाए हुए थे, जिन्हें आप 'हब्शी' कहते हैं और बवक़्ते-ज़रूरत लिच[8] भी कह देते हैं—यह काले क्यों चश्मे की ज़रूरत महसूस करते हैं?

मेरा ख़याल है कि यह सब आपकी हिकमते-अमली[9] है—आप चूँकि सात आज़ादियों के मुद्दई[10] हैं, इसलिए आप चाहते हैं कि इन कालों को, जिन्हें आप बड़ी आसानी से हमेशा के लिए आराम की नींद सुला सकते हैं और सुलाते रहे हैं, एक मौक़ा दिया जाए कि वह आपकी दुनिया को, आपके चश्मे से देख सकें।

मैंने वहाँ बंबे सेंट्रल के स्टेशन पर एक हब्शी फ़ौजी देखा। उसके डेंटर यह मोटे-मोटे थे—वह इतना तनोमंद था कि मैं डर के मारे सुकड़ के आधा हो गया, लेकिन फिर भी मैंने जुर्रत[11] से काम लिया।

वह अपने सामान के साथ टेक लगाए सुस्ता रहा था—उसकी आँखें मुँदी हुई थी।

मैं उसके पास गया—मैंने बूट के ज़रिए से आवाज़ पैदा की।

उसने आँखें खोलीं तो मैंने उससे अंग्रेज़ी में कहा, जिसका मफ़हूम[12] यह था. "मैं यहाँ से गुज़र रहा था कि आपकी शख़्सियत[13] देखकर ठहर गया ..." इसके बाद मैंने मुसाफ़हे के लिए हाथ बढ़ाया।

उस काले-कलूटे फ़ौजी ने, जो चश्मा लगाए हुए था, अपना फ़ौलादी पंजा मेरे हाथ में पेवस्त[14] कर दिया—क़रीब था कि मेरी सादी हड्डियाँ चूर-चूर हो जातीं, मैंने उससे इल्तिजा की: "ख़ुदा के लिए, बस इतना ही काफ़ी है!"

उसके काले-काले और मोटे-मोटे होंठों पर मुसकराहट पैदा हुई और उसने ठेठ अमरीकी लहजे में मुझसे पूछा: "तुम कौन हो?"

मैंने अपना हाथ सहलाते हुए जवाब दिया: "मैं यहाँ का बाशिंदा हूँ. यहाँ स्टेशन पर तुम नज़र आ गए तो बेइख़्तियार जी चाहा कि तुमसे दो बातें करता जाऊँ।"

उसने मुझसे अजीबो-ग़रीब सवाल किया: "यहाँ इतने फ़ौजी मौजूद हैं, तुम्हें मुझ ही से मिलने का शौक़ क्यों पैदा हुआ?"

चचाजान, सवाल टेढ़ा था लेकिन जवाब ख़ुद-ब-ख़ुद मेरी ज़बान पर आ गया।

मैंने उससे कहा : "मैं काला हूँ और तुम भी काले हो···मुझे काले आदमियों से प्यार है।"

वह और ज़्यादा मुसकराया।

उसके काले और मोटे होंठ मुझे इतने प्यारे लगे कि मेरा जी चाहा, इन्हें चूम लूँ।

इसी तरह एक बार मुझे आपके हाँ की टाँगें बड़ी प्यारी लगी थीं।

चचाजान, आपके हाँ बड़ी ख़ूबसूरत औरतें हैं—मैंने आपकी एक फ़िल्म देखी थी—क्या नाम था उसका—हाँ याद आ गया : 'बेदिंग ब्यूटी।'[15]

यह फ़िल्म देखकर मैंने अपने दोस्तों से कहा था : "चचाजान इतनी ख़ूबसूरत टाँगें कहाँ से इकट्ठी कर लाए हैं।"

मेरा ख़याल है, क़रीब-क़रीब दो-ढाई सौ के क़रीब तो ज़रूर होंगी।

चचाजान, क्या वाक़ई आपके मुल्क में ऐसी टाँगें आम होती हैं···? अगर आम होती हैं तो ख़ुदा के लिए—अगर आप ख़ुदा को मानते हैं—इनकी नुमाइश कम-अज़-कम पाकिस्तान में बंद कर दीजिए।

हो सकता है, यहाँ आपकी औरतों की टाँगों के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा अच्छी टाँगें हों—मगर चचाजान, यहाँ कोई उनकी नुमाइश नहीं करता। ख़ुदा के लिए यह सोचिए कि हम सिर्फ़ अपनी बीवी ही की टाँगें देखते हैं। दूसरी औरतों की टाँगें देखना हम अपने आप पर हराम समझते हैं—हम बड़े ऑर्थोडोक्स[16] क़िस्म के आदमी हैं।

बात कहाँ से निकली थी, कहाँ चली गई—मैं इसकी माजरत[17] नहीं चाहता कि आप ऐसी ही तहरीर पसंद करते हैं।

कहना यह था कि आपके वह साहब, जो यहाँ के कोंसिलख़ाने[18] से वाबस्ता हैं, मेरे पास तशरीफ़ लाए और मुझसे दरख़्वास्त की कि मैं उनके लिए एक अफ़साना लिखूँ।

मैं बहुत मुतहैयर[19] हुआ, इसलिए कि मुझे अंग्रेज़ी में लिखना आता ही नहीं—मैंने उनसे अर्ज़ की : "जनाब मैं उर्दू जबान का राइटर हूँ···मैं अंग्रेज़ी लिखना नहीं जानता।"

उन्होंने फ़रमाया : "अफ़साना उर्दू ही में चाहिए···हमारा एक परचा है, जो उर्दू में शाया होता है।"

मैंने इसके बाद मज़ीद[20] तफ़तीश की ज़रूरत न समझी और कहा : "मैं हाज़िर हूँ।"

और ख़ुदा वाहिद नाज़िर[21] है कि मुझे मालूम नहीं था, वह आपके कहने पर तशरीफ़ लाए हैं—क्या आपने इन्हें मेरा वह ख़त पढ़वा दिया था, जो मैंने आपको लिखा था?

ख़ैर, इस क़िस्से को छोड़िए—जब तक पाकिस्तान को गंदुम[22] की ज़रूरत है, मैं आपसे कोई गुस्ताख़ी नहीं कर सकता—वैसे बहैसियत पाकिस्तानी होने के—हालाँकि मेरी हुकूमत मुझे इताअतगुज़ार[23] नहीं समझती—मेरी दुआ है कि ख़ुदा करे, कभी आपको भी बाजरे और निकसुक के साग की ज़रूरत पड़े और मैं ज़िंदा रहूँ कि आपको भेज सकूँ।

अब सुनिए—उन साहब ने, जिनको आपने भेजा था, मुझसे पूछा : "आप एक अफ़साने के कितने रुपए लेंगे?"

चचाजान, मुमकिन है, आप झूठ बोलते हों और आप यक़ीनन झूठ बोलते हैं, बतौरे फ़न।

यह फ़न मुझे अभी तक नसीब नहीं हुआ।

उस रोज़ मैंने एक मुब्तदी[24] के तौर पर झूठ बोला और उनसे कहा : "मैं एक अफ़साने के लिए दो सौ रुपए लूँगा।"

अब हक़ीक़त यह है कि यहाँ के नाशिर[25] मुझे एक अफ़साने के लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा चालीस-पचास रुपए देते हैं—मैंने 'दो सौ रुपए' कह तो दिया लेकिन मुझे इस एहसास से अंदरूनी तौर पर सख़्त नदामत[26] हुई कि मैंने इतना झूठ क्यों बोला—अब क्या हो सकता था।

लेकिन चचाजान, मुझे सख़्त हैरत हुई, जब आपके भेजे हुए साहब ने बड़ी हैरत से—मालूम नहीं वह मस्नूई थी या असली—फ़रमाया : "सिर्फ़ दो सौ रुपए ! एक अफ़साने के लिए कम-अज़-कम पाँच सौ रुपए तो होने चाहिएँ।"

मैं हैरतज़दा हो गया कि एक अफ़साने के लिए पाँच सौ रुपए—यह तो मेरे ख़्वाबो-ख़याल में भी नहीं आ सकता था—लेकिन मैं अपनी बात से कैसे हट सकता था।

चुनांचे मैंने चचाजान, उनसे कहा : "साहब देखिए, दो सौ रुपए ही होंगे बस अब आप इसके मुताल्लिक़ ज़्यादा गुफ़्तगू न कीजिए।"

वह चले गए, शायद इसलिए कि वह समझ चुके थे, मैंने पी रखी है।

वह शराब, जो मैं पीता हूँ, उसका ज़िक्र मैं अपने पहले ख़त में कर चुका हूँ।

चचाजान, मुझे हैरत है कि मैं अब तक ज़िंदा हूँ, हालाँकि मुझे पाँच बरस हो गए हैं यहाँ का कशीदा ज़हर पीते हुए। अगर आप यहाँ तशरीफ़ लाएँ तो मैं आपको यह ज़हर पेश करूँगा। उम्मीद है, आप भी मेरी तरह हैरत अंगेज़ तौर पर ज़िंदा रहेंगे और आपकी सात आज़ादियाँ भी सलामत रहेंगी।

ख़ैर, इस क़िस्से को छोड़िए।

दूसरे रोज़ सुबह-सवेरे जब कि मैं बरामदे में शेव कर रहा था, आपके वही साहब तशरीफ़ लाए—मुख़्तसर-सी बातचीत हुई।

उन्होंने मुझसे फ़रमाया : "देखिए, दो सौ की रट छोड़िए, तीन सौ ले लीजिए।"

मैंने कहा : "ठीक है..."

चुनांचे मैंने उनसे तीन सौ रुपए ले लिए—रुपए जेब में रखने के बाद मैंने उनसे कहा : "मैंने आपसे सौ रुपए ज़्यादा वसूल किए हैं, लेकिन वाज़ेह रहे कि जो कुछ मैं लिखूँगा, वह आपकी मर्ज़ी के मुताबिक़ नहीं होगा। इसके अलावा उसमें किसी क़िस्म के रद्दो-बदल का हक़ भी आपको नहीं दूँगा..."

वह चले गए—फिर नहीं आए।

चचाजान, अगर आपके पास पहुँचे हों और उन्होंने आपको कोई रिपोर्ट पहुँचाई हो तो अज़ राहे-करम अपने पाकिस्तानी भतीजे को उससे ज़रूर मुत्तले[27] फ़रमाएँ।

मैं वह तीन सौ रुपए ख़र्च कर चुका हूँ—अगर आप वापिस लेना चाहें तो मैं एक रुपया

माहवार के हिसाब से अदा कर दूँगा।

उम्मीद है कि आप सात आज़ादियों समेत ख़ुशो-ख़ुर्रम[28] होंगे।

ख़ाकसार

आपका भतीजा

सआदत हसन मंटो

31, लक्ष्मी मैन्शंज़, हॉल रोड, लाहौर

1 आदरणीय; 2. दूतावास; 3. नाम ; 4. हाथ मिलाना; 5. ख़ुशी; 6. निवासस्थान; 7. स्वस्थ; 8. बग़ैर जुती हुई ज़मीन; 9. कूटनीति; 10. वादी, दावा करनेवाला; 11. हिम्मत, साहस; 12. सारांश; 13. व्यक्तित्व; 14. घुसा देना, मिला देना; 15. अमरीका की एक फ़िल्म का नाम; 16. कट्टरपंथी, धर्मनिष्ठ; 17. क्षमा; 18. दूतावास के स्थानीय विभाग; 19 स्तब्ध; 20. अधिक; 21. देखनेवाला; 22. गेहूँ; 23. आज्ञाकारी; 24. आरंभकर्त्ता, नौमिल्लिया; 25. प्रकाशन; 26. शर्मिंदगी; 27. सूचित; 28. अत्यधिक प्रसन्न।

तीसरा ख़त

चचाजान,

तस्लीमात !

बहुत मुद्दत के बाद आपको मुख़ातिब कर रहा हूँ।

मैं दरअसल बीमार था। इलाज इसका वही, वही आबे-निशात अंगेज़[1] था साक़ी—मगर मालूम हुआ कि यह महज़ शाइरी-ही-शाइरी है। मालूम नहीं, 'साक़ी' किस जानवर का नाम है। आप लोग तो उसे उम्र ख़ैयाम की रुबाइयोंवाली हसीनो-जमील फ़ितरी[2] अदा और इशव:तराज़[3] माशूक़ा कहते हैं, जो बिल्लौर की नाज़ुक गर्दन सुराहियों से उस ख़ुशक़िस्मत शाइर को जाम भर-भर के देती थी, मगर यहाँ तो कोई मूँछोंवाला बदशक्ल लौंडा भी इस काम के लिए नहीं मिलता।

यहाँ से हुस्न बिलकुल रफ़ूचक्कर हो गया है—औरतें पर्दे से बाहर तो आई हैं, मगर उन्हें देखकर जी चाहता है कि वह पर्दे के पीछे ही रहतीं तो अच्छा था। आपके मैक्स फ़ैक्टर ने उनका हुलिया और भी मस्ख़[4] करके रख दिया है—आप मुफ़्त गंदुम भेजते हैं, मुफ़्त लिट्रेचर भेजते हैं, मुफ़्त हथियार भेजते हैं, क्यों नहीं आप सौ-दो सौ ठेट अमरीकी लड़कियाँ यहाँ रवाना कर देते जो साक़ी-गिरी के फ़राइज़ बतरीक़े-अहसन अंजाम दें।

मैं अपनी बीमारी का ज़िक्र कर रहा था—इसका बायस वही ख़ाना साज़ शराब थी। अल्लाह इस ख़ानाख़राब का ख़ाना ख़राब करे। ज़हर है लेकिन निहायत ख़ास क़िस्म का—सबकुछ जानता था, सबकुछ समझता था, मगर :

मीर क्या सादा हैं, बीमार हुए जिसके सबब
उसी अत्तार के लौंडे से दवा लेते हैं।

जाने उस अत्तार के लौंडे में क्या कशिश थी कि हज़रत मीर उसी से दवा लेते रहे, हालाँकि वही उनके मर्ज़ का बायस था—यहाँ मैं जिस शराबफ़रोश से शराब लेता हूँ, वह तो मुझसे भी कहीं ज़्यादा मरीज़ है। मैं तो अपनी सख़्त जान की वजह से बच गया, लेकिन उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं।

मैं तीन महीने हस्पताल में रहा हूँ। जनरल वार्ड में था। मुझे वहाँ आपकी कोई

अमरीकी इमदाद न मिली—मेरा ख़याल है, आपको मेरी बीमारी की कोई इत्तिला नहीं मिली, वर्ना आप ज़रूर वहाँ से दो-तीन पेटियाँ टेरामाइसिन की रवाना कर देते और सवाबे-दारैन[5] हासिल करते।

हमारी फॉरेन पब्लिसिटी बहुत कमज़ोर है। इसके अलावा हमारी हुकूमत को अदीबों, शाइरों और मुसव्विरों से कोई दिलचस्पी नहीं। आख़िर 'किस-किसकी हाजत रवा करे कोई।'

हमारी पिछली मरहूम गवर्नमेंट के आख़िरी ज़माने में जंग शुरू हुई तो अंग्रेज़ बहादुर ने फ़िरदौसी-ए-इस्लाम[6] हफ़ीज़ जालंधरी को सौंग एंड पब्लिसिटी डिपार्टमेंट का डायरेक्टर बनाकर एक हज़ार रुपए माहवार मुकर्रर कर दिया। पाकिस्तान बना तो उसको सिर्फ़ एक कोठी और शायद एक प्रैस अलाट हुआ। अब बेचारा अख़बारों में अपना रोना रो रहा है कि 'तराना कमेटी' ने उसको निकाल बाहर किया है, जबकि सारे पाकिस्तान में अकेला वही शाइर है जो दुनिया की इस सबसे बड़ी इस्लामी सल्तनत के लिए क़ौमी तराना लिख सकता है और उसकी धुन भी तख़लीक़[7] कर सकता है—उसने अपनी अंग्रेज़ बीवी को तलाक़ दे दी है, इसलिए कि अंग्रेज़ों का ज़माना ही नहीं रहा। अब सुना है, वह किसी अमरीकी बीवी की तलाश में है—चचाजान, ख़ुदा के लिए उसकी मदद कीजिए, ऐसा न हो कि ग़रीब की आक़बत[8] ख़राब हो।

आपके यूँ तो लाखों और करोड़ों भतीजे हैं, लेकिन मुझ-ऐसा भतीजा आपको एटम बम की रोशनी में भी कहीं नहीं मिलेगा। क़िबला कभी इधर भी तवज्जोह कीजिए। बस आपकी एक नज़रे-इल्तिफ़ात[9] काफ़ी है। सिर्फ़ इतना ऐलान कर दीजिए कि आपका मुल्क, ख़ुदा उसे रहती दुनिया तक सलामत रखे, सिर्फ़ उसी सूरत में पाकिस्तान को—ख़ुदा इसके शराब कशीद करनेवाले कारख़ानों को नेस्तोनाबूद कर दे—फ़ौजी इमदाद देने के लिए तैयार होगा, अगर सआदत हसन मंटो आपके हवाले कर दिया जाए।

यहाँ मेरी वक़अत एकदम बहुत बढ़ जाएगी। मैं इस ऐलान के बाद शमा मुअम्मे और डायरेक्टर मुअम्मे हल करना बंद कर दूँगा। बड़ी-बड़ी शख़्सियतें मेरे ग़रीबख़ाने पर आएँगी। मैं आपसे बज़रिया हवाई डाक ठेठ अमरीकी मुसकराहट मँगवाकर अपने होंठों पर लगा लूँगा और उसके साथ उन सबका इस्तिक़बाल करूँगा।

मेरी उस मुसकराहट के हज़ार मानी होंगे। मिसाल के तौर पर : "आप निरे ख़ुरे गधे हैं ", "आप परले दर्जे के ज़हीन आदमी हैं ", "आपसे मिलकर मुझे बहुत कोफ्त हुई ", "आपसे मिलकर मुझे बेहद मसर्रत हासिल हुई ", "आप अमरीका की बनी हुई बुशशर्ट हैं ", "आप पाकिस्तान की बनी हुई माचिस हैं ", "आप अर्क़े-गाउज़बाँ[10] हैं ", "आप कोका कोला हैं " वग़ैरह-वग़ैरह।

मैं रहना पाकिस्तान ही में चाहता हूँ कि मुझे इसकी ख़ाक बहुत अज़ीज़ है जो मेरे फेफड़ों में मुस्तक़िल जगह बना चुकी है, लेकिन मैं आपके मुल्क में ज़रूर आऊँगा, इसलिए कि मैं अपना कायाकल्प कराना चाहता हूँ। फेफड़े छोड़कर मैं अपने तमाम बाक़ी आज़ा[11] आपके माहिरों के सुपुर्द कर दूँगा और उनसे कहूँगा कि वह उन्हें अमरीकी तर्ज़ का बना दें।

मुझे अमरीकी चाल-ढाल बहुत पसंद है, इसलिए कि चाल, ढाल का काम देती है और ढाल, चाल का। आपकी बुश्शर्ट का नया डिज़ाइन भी मुझे बहुत भाता है। डिज़ाइन का डिज़ाइन और इश्तिहार का इश्तिहार—हर रोज़ यहाँ आपके दफ़्तर में गए, मतलब की यानी प्रोपेगंडे की चीज़ें बुश्शर्ट पर छपवाईं और इधर-उधर घूमते फिरे। कभी 'शीज़ान' में जा बैठे, कभी कॉफ़ी हाऊस में और कभी चाइनीज़ लंच होम में।

फिर मैं एक पैकार्ड चाहता हूँ ताकि जब मैं यह बुश्शर्ट पहने, मुँह में आपका तोहफ़े के तौर पर दिया हुआ पाइप दबाए माल पर से गुज़रूँ तो लाहौर के सब तरक़्क़ीपसंद और ग़ैर-तरक़्क़ीपसंद अदीबों को महसूस हो कि वह सारा वक़्त भाड़ ही झोंकते रहे हैं—लेकिन देखिए चचाजान, इसके पैट्रोल का बंदोबस्त आप ही को करना पड़ेगा। वैसे मैं आपसे वादा करता हूँ कि पैकार्ड मिलते ही मैं एक अफ़साना लिखूँगा, जिसका उनवान होगा : 'ईरान का नौ मन तेल और राधा।' यक़ीन मानिए, इस अफ़साने के शाया होते ही ईरान के तेल का सारा टंटा ही ख़त्म हो जाएगा और मौलाना ज़फ़र अली ख़ाँ को, जो अभी तक बक़ैदे-हयात[12] हैं, अपने इस शेर में मुनासिब व मोज़ूँ तरमीम[13] करना पडेगी :

वाय नाकामी कि चश्मे तेल के सूखे तमाम
ले के लायड जार्ज जब भागे कनस्तर टीन का

एक छोटा-सा, नन्हा-मुन्ना एटम बम तो मैं आपसे ज़रूर लूँगा। मेरे दिल में मुद्दत से यह ख़्वाहिश दबी पड़ी है कि मैं अपनी ज़िंदगी में एक नेक काम करूँ— आप पूछेंगे : 'यह नेक काम क्या है ?' आपने तो ख़ैर कई नेक काम किए हैं और बदस्तूर किए जा रहे हैं—आपने हीरोशिमा को सफ़हा-ए-हस्ती[14] से नाबूद[15] किया, नागासाकी को धुएँ और गर्दो-ग़ुबार में तब्दील कर दिया और इसके साथ-साथ आपने जापान में लाखों अमरीकी बच्चे पैदा किए—फ़िक्र हर कस बक़दरे हिम्मते-ओस्त[16]—मैं एक ड्राइक्लीन करनेवाले को मारना चाहता हूँ—हमारे यहाँ बाज़ मौलवी क़िस्म के हज़रात पेशाब करते हैं तो ढेला लगाते हैं—मगर आप क्या समझेंगे—बहरहाल मामला कुछ यूँ होता है कि पेशाब करने के बाद वह सफ़ाई की ख़ातिर कोई ढेला उठाते हैं और शलवार के अंदर हाथ डालकर सरे-बाज़ार ड्राइक्लीन करते चलते-फिरते हैं—मैं बस यह चाहता हूँ कि जूँही मुझे कोई ऐसा आदमी नज़र आए, जेब से आपका दिया हुआ मिनी एटम बम निकालूँ और उस पर दे मारूँ ताकि वह ढेले समेत धुआँ बनकर उड़ जाए।

हमारे साथ फ़ौजी इमदाद का मुआहदा[17] बड़ी मार्के की चीज़ है। इस पर क़ायम रहिएगा। उधर हिंदुस्तान के साथ भी ऐसा ही रिश्ता उस्तुवार[18] कर लीजिए। दोनों को पुराने हथियार भेजिए, क्योंकि अब तो आपने वह तमाम हथियार कंडम कर दिए होंगे जो आपने पिछली जंग में इस्तेमाल किए थे। आपका यह कंडम और फ़ालतू असलह[19] भी ठिकाने लग जाएगा और आपके कारख़ाने भी बेकार नहीं रहेंगे।

पंडित जवाहरलाल नेहरू कश्मीरी हैं। उनको तोहफ़े के तौर पर एक ऐसी बंदूक़ ज़रूर

भेजिएगा जो धूप में रखने से ही ठुस कर जाए। कश्मीरी मैं भी हूँ, मगर मुसलमान। मैंने अपने लिए आपसे नन्हा-मुन्ना एटम बम माँगा है।

एक बात और—यहाँ दस्तूर बनने ही में नहीं आता। ख़ुदा के लिए आप वहाँ से कोई माहिर जल्द-अज़-जल्द रवाना कीजिए। क़ौम बग़ैर तराने के तो चल सकती है, लेकिन दस्तूर के बग़ैर नहीं चल सकती—आप चाहें तो बाबा चल भी सकती है : जो चाहे आपका हुस्ने-करिश्मा[20] साज़ करे।

एक और बात—यह ख़त मिलते ही अमरीकी माचिसों का एक जहाज़ रवाना कर दीजिए। यहाँ जो माचिस बनी है, उसको जलाने के लिए ईरानी माचिस ख़रीदनी पड़ती है, जो आधी ख़त्म होने के बाद बेकार हो जाती है और जिसकी बक़ाया तीलियाँ जलाने के लिए रूसी माचिस लेना पड़ती है, जो पटाख़े ज़्यादा छोड़ती है और जलती कम है।

अमरीकी गरम कोट बहुत ख़ूब हैं। लुंडा बाज़ार इनके बग़ैर बिलकुल लुंडा था। मगर आप पतलूनें क्यों नहीं भेजते? क्या आप पतलूनें नहीं उतारते? हो सकता है कि हिंदुस्तान रवाना कर देते हों—आप बड़े काइयाँ हैं। ज़रूर कोई बात है—इधर कोट भेजते हैं, उधर पतलूनें। जब लड़ाई होगी तो आपके कोट और आप ही की पतलूनें, आप ही के भेजे हुए हथियारों से लड़ेंगे।

यह मैं क्या सुन रहा हूँ कि चार्ली चेपलिन अमरीकी शहरियत के हुक़ूक़ से दस्तबरदार[21] हो गया है। उस मसख़रे को क्या सूझी। ज़रूर उसको कम्युनिज़्म हो गया है, वर्ना वह सारी उम्र आपके मुल्क में रहा, वहीं उसने नाम कमाया, वहीं उसने दौलत हासिल की। क्या उसे वह वक़्त याद नहीं रहा, जब वह लंदन के गली-कूचों में भीख माँगा करता था और कोई उसे पूछता तक नहीं था—रूस चला जाता, लेकिन वहाँ मसख़रों की क्या कमी है—चलो इंगलिस्तान ही में रहे और कुछ नहीं तो वहाँ के रहनेवालों को अमरीकनों का-सा खुल के हँसना तो आएगा, और वह जो हर वक़्त उनके चेहरों पर संजीदगी और तहारत[22] का ग़िलाफ़ चढ़ा रहता है, कुछ तो अपनी जगह से हटेगा।

अच्छा अब मैं ख़त बंद करता हूँ।

हैडी ला मार को फ़्री स्टाइल का एक बोसा।

ख़ाकसार
सआदत हसन मंटो
15 मार्च, 1954
31, लक्ष्मी मैन्शंज़, हॉल रोड, लाहौर

1 प्रसन्नता के जल से भरपूर; 2. प्राकृतिक; 3. नाज़-नख़रे वा [illegible] 4. बुरी शक्ल हो जाना; 5. दोनों जहान का पुण्य; 6. इस्लाम के अनुसार स्वर्ग; 7. रचना; 8. यमलोक में; 9. कृपा-दृष्टि; 10. यूनान की एक प्रसिद्ध औषधि; 11. अग; 12. जीवित; 13. संशोधन; 14. जीवन से वंचित, समस्त प्राणियों की मृत्यु; 15 समाप्त; 16. हर व्यक्ति के विचार उसके साहस व शक्ति के अनुसार हो; 17. समझौता; 18. मज़बूत, सुदृढ़, 19 अस्त्र-शस्त्र; 20. अनोखापन; 21. अलग होना, अधिकार निरस्त, 22. पवित्रता।

चौथा ख़त

31, लक्ष्मी मैन्शंज़, हॉल रोड, लाहौर, पाकिस्तान।
चचाजान,
आदाबो-नियाज़[1]।

अभी चंद रोज़ हुए, मैंने आपकी ख़िद्मत में एक अरीज़ा[2] इर्साल किया था। अब यह नया लिखा रहा हूँ। बात यह है कि जूँ-जूँ आपकी पाकिस्तान को फ़ौजी इमदाद देने की बात पुख़्ता हो रही है, मेरी अक़ीदत[3] और सआदतमंदी बढ़ रही है—मेरा जी चाहता है कि आपको हर रोज़ ख़त लिखा करूँ।

हिंदुस्तान लाख टापा करे, आप पाकिस्तान से फ़ौजी इमदाद का मुआहदा[4] ज़रूर करे, इसलिए कि आपको इस दुनिया की सबसे बड़ी इस्लामी सल्तनत के इस्तेहकाम[5] की बहुत ज़्यादा फ़िक्र है, और क्यों न हो, इसलिए कि यहाँ का मुल्ला रूस के कम्युनिज़्म का बेहतरीन तोड़ है।

फ़ौजी इमदाद का सिलसिला शुरू हो जाए तो आप सबसे पहले उन मुल्लाओं को मुसल्लह[6] कीजिएगा। उनके लिए ख़ालिस अमरीकी ढेले, ख़ालिस अमरीकी तस्बीहें[7] और ख़ालिस अमरीकी जायनमाज़ें[8] रवाना कीजिएगा। उस्तरों और क़ैंचियों को सरे-फेहरिस्त रखिएगा। ख़ालिस अमरीकी ख़िज़ाबे-लाजवाब[9] का नुस्ख़ा भी अगर आपने उनको मर्हमत[10] कर दिया तो समझिए, पौ बारह हैं।

फ़ौजी इमदाद का मक़सद, जहाँ तक मैं समझता हूँ, इन मुल्लाओं को मुसल्लह करना है—मैं आपका पाकिस्तानी भतीजा हूँ, मगर आपकी सब रम्ज़ें[11] समझता हूँ—अक्ल की यह अरज़ानी[12] आप ही की सियासयात की अता कर्द है। ख़ुदा इसे नज़रे-बद से बचाए।

मुल्लाओं का यह फ़िरक़ा अमरीकी स्टाइल में मुसल्लह हो गया तो सोवियत रूस को यहाँ से अपना पानदान उठाना ही पड़ेगा, जिसकी कुल्लियों तक में कम्युनिज़्म और सोशलिज़्म घुले होते हैं।

जब अमरीकी औज़ारों से कतरी हुई लबें होंगी, अमरीकी मशीनों से सिले हुए शरअई पाजामे होंगे, अमरीकी मिट्टी के अनटच्ड बाई हैंड ढेले होंगे, अमरीकी रहले[13] और अमरीकी जायनमाज़ें होंगी, तब आप देखिएगा, चारों तरफ़ आप ही के नाम के तस्बीह ख़्वाँ होंगे।

यहाँ के निचले और निचले दरमियानी तबक़े को ऊपर उठाने की कोशिश तो, ज़ाहिर है, आप ख़ूब करेंगे—भर्ती इन्हीं दो तबक़ों से शुरू होगी। दफ़्तरों में चपड़ासी और क्लर्क भी यहीं से चुने जाएँगे। तनख़्वाहें अमरीकी स्केल की होंगी—जब इनकी पाँचों उँगलियाँ घी में होंगी और सर कड़ाहे में, तो कम्युनिज़्म का भूत दुम दबाकर भाग जाएगा।

भर्ती का, या कोई भी सिलसिला शुरू हो, मुझे कोई एतिराज़ नहीं। लेकिन आपका कोई सिपाही इधर नहीं आना चाहिए—मैं यह हरगिज़ नहीं देख सकता कि हमारी पाकिस्तानी लड़कियाँ अपने जवानों को छोड़कर आपके सिपाहियों के साथ चहकती फिरें।

इसमें कोई शक नही कि आप यहाँ ख़ूबसूरत और तनोमंद अमरीकी सिपाही भेजेंगे, लेकिन मैं आपको बताए देता हूँ कि हमारा ऊपर का तबक़ा तो हर क़िस्म की बेग़ैरती क़ुबूल कर सकता है कि वह पहले ही अपने दीदे आपकी लॉण्ड्रियों में धुलवा चुका है, मगर यहाँ का निचला और निचला दरमियानी तबक़ा ऐसी कोई चीज़ बर्दाश्त नहीं करेगा।

अलबत्ता आप वहाँ से अमरीकी लड़कियाँ रवाना कर सकते हैं, जो हमारे जवानों की मरहम-पट्टी करें, उनको रक़्स[14] करना सिखाएँ, उनको खुल्लमखुल्ला बोसे लेने की तालीम दें, उनकी झेंप दूर करें—इसमें आप ही का फ़ायदा है।

आप अपनी एक फ़िल्म 'बेदिंग ब्यूटी' में अपनी सैकड़ों लड़कियों की नंगी और गुदाज़ टाँगें दिखा सकते हैं—हमारे हाँ भी ऐसी टाँगें भेज दीजिए ताकि हम भी अपने इकलौते फ़िल्म स्टूडियो 'शाह नूर' में एक ऐसा ही फ़िल्म बनाएँ और, 'अपवा' वालों को दिखाएँ कि उन्हें कुछ मसर्रत हो।

हाँ, हमारे यहाँ 'अपवा' एक अजीबो-ग़रीब शै तख़लीक़ हुई है, जो बड़े आदमियों की बड़ी बहू-बेटियों के शुग़्ल का दिलचस्प नतीजा है। यह 'आल पाकिस्तान वूमेंस एसोशिएशन' का मुख़फ़्फ़फ़[15] नाम है। इसमें और ज़्यादा तख़फ़ीफ़[16] की गुंजाइश नही—कोशिश ज़रूर हो रही है जो आपको उन माइल ब तख़फ़ीफ़ ब्लाउज़ों में नज़र आ सकती है, जिनमें से उनके पहननेवालियों के पेट बाहर झाँकते नज़र आते हैं, अभी इब्तिदा[17] है, लेकिन अफ़सोस इस बात का है कि यह ब्लाउज़ आमतौर पर चालीस बरस से ऊपर की औरतें इस्तेमाल करती है, जिनके पेट कई मर्तबा कलबूत चढ़ चुके होते हैं—चचाजान, मैं औरत के पेट पर, ख़्वाह वह अमरीकी हो या पाकिस्तानी, और सबकुछ देख सकता हूँ, मगर उस पर झुर्रियाँ नही देख सकता।

'अपवा' वालियाँ तख़फ़ीफ़े-लिबास के मुताल्लिक़ हर वक़्त सोचने के लिए तैयार हैं, बशर्ते कि उन्हें कोई आजमूदा[18] नुस्ख़े बताए—आपके यहाँ पैंसठ-पैंसठ बरस की बुड्ढियाँ अपने पेट दिखाती हैं, मगर उन पर, मजाल है, जो एक झुर्री भी नज़र आ जाए। मालूम नहीं, वह मुँहज़बानी बच्चे पैदा करती हैं या उन्हे कोई ऐसा गुर मालूम है कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।

बहरहाल अगर आपको यहाँ तख़फ़ीफ़े-लिबास चाहिए तो हालीवुड के चंद माहिरीन[19] यहाँ रवाना कर दीजिए—आपके यहाँ प्लास्टिक सर्जरी का फ़न उरूज पर है। फ़िलहाल ऐसे निस्फ़[20] दर्जन सर्जन यहाँ भेज दीजिए, जो हमारी बुड्ढियों को लाल लगाम के क़ाबिल,

बना दें।

और सुनिए—मुक़फ़्फ़ा[21] शाइरी का ज़माना था तो हमारे यहाँ माशूक़ की कमर ही नहीं थी। अब ग़ैर मुक़फ़्फ़ा शाइरी का दौर है, मगर यह ऐसा उलटा पड़ा है कि अब माशूक़ की नापैद कमर कुछ इस तरह पैदा हुई है कि उसे देखो तो सारा माशूक़ उसके पीछे ग़ायब नज़र आता है। पहले यह हैरत होती थी कि वह इज़ारबंद[22] कहाँ बाँधती है। अब यह हैरत होती है कि वह किस दरख़्त का तना है जिसके गिर्द ग़रीब इज़ारबंद को बाँधने की कोशिश की गई है—आप मेहरबानी फ़रमाकर बनफ़्से-नफ़ीस[23] यहाँ तशरीफ़ लाइए और फ़ौजी मुआहदा करने से पहले इस बात का फ़ैसला कीजिए कि यहाँ माशूक़ की कमर होनी चाहिए या नहीं, इसलिए कि फ़ौजी नुक़्ता निगाह[24] से यह बहुत अहमियत रखता है।

एक बात और—आपके फ़िल्मसाज़ हिंदुस्तानी सनअते-फ़िल्मसाज़ी से बहुत दिलचस्पी ले रहे हैं। यह हम बर्दाश्त नहीं कर सकते—पिछले दिनों ग्रेगरी पैक हिंदुस्तान पहुँचा हुआ था। उसने फ़िल्म स्टार सुरैया के साथ तसवीर खिंचवाई और उसके हुस्न की तारीफ़ में ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिला दिए। पिछले दिनों सुना था कि एक अमरीकी फ़िल्मसाज ने नरगिस के गले में बाज़ू डालकर उसका बोसा भी लिया था—यह कितनी बड़ी ज़्यादती है। हमारे पाकिस्तान की एक्ट्रेसें मर गई हैं क्या?

गुलशन आरा मौजूद है। यह जुदा बात है कि उसका रंग तवे की मानिंद काला है और लोग उसे देखकर यह कहते हैं कि गुलशन पर आग चला हुआ है लेकिन है तो एक्ट्रेस ही। कई फ़िल्मों की हीरोइन है और अपने पहलू में दिल भी रखती है। मस्त्रीहा है। यह अलहदा बात है कि उसकी एक आँख थोड़ी-सी भेंगी है मगर आपकी ज़रा-सी तवज्जोह से दुरुस्त हो सकती है।

यह भी सुना है कि आप हिंदुस्तानी फ़िल्मसाज़ों को माली इमदाद[25] भी दे रहे हैं—चचाजान, यह क्या हरजाईपना है। यानी लल्लू-पंजू आता है, उसको आप मदद देना शुरू कर देते हैं।

आपका ग्रेगरी पैक जाए जहन्नम में—माफ़ कीजिए, मुझे ग़ुस्सा आ गया है—आप अपनी दो-तीन एक्ट्रेसें यहाँ भेज दीजिए, इसलिए कि हमारा इकलौता हीरो संतोष कुमार बहुत उदास है। पिछले दिनों वह कराची गया था तो उसने कोकाकोला की सौ बोतलें पीकर रीटा हैवर्थ को ख़्वाब में एक हज़ार मर्तबा देखा।

मुझे लिपस्टिक के मुताल्लिक़ भी आपसे कुछ अर्ज़ करना है—वह जो किसप्रूफ़[26] लिपस्टिक आपने भेजी थी, हमारे ऊँचे तबक़े में बिलकुल मक़बूल[27] नहीं हुई। लड़कियों और बुड्ढियों का कहना है कि यह महज़ नाम ही की किसप्रूफ़ है, लेकिन मैं समझता हूँ कि उनका किसिंग का तरीक़ा ही ग़लत है। मैंने देखा है लोगों को यह शुग़्ल[28] फ़रमाते हुए। ऐसा मालूम होता है कि तरबूज़ की फाँक खा रहे हैं—आपके यहाँ एक किताब छपी थी, जिसका उनवान 'बोसा लेने का फ़न' था, मगर माफ़ कीजिए, किताब पढ़कर आदमी कुछ भी नहीं सीख सकता। आप वहाँ से फ़ौरन बज़रिये[29] हवाई जहाज़ एक अमरीकी ख़ातून रवाना कर दीजिए, जो हमारे ऊँचे तबक़े पर तरबूज़ खाने और बोसा लेने में जो फ़र्क़ है,

बतरीक़े-अहसन[30] वाज़ेह कर दे। निचले और निचले दरमियानी तबक़े को यह फ़र्क़ बताने की कोई ज़रूरत नहीं, इसलिए कि वह इन तकल्लुफ़ात से हमेशा बेनियाज़ रहा है और हमेशा बेनियाज़ रहेगा।

आपको यह सुनकर ख़ुशी होगी कि मेरा मेदा अब किसी हद तक आपके अमरीकी गंदुम का आदी हो गया है। अब आपकी गंदुम को हमारे यहाँ की आबो-हवा रास आनी शुरू हो गई है, क्योंकि अब इसके आटे ने पाकिस्तानी स्टाइल की रोटियों और चपातियों की शक्ल इख़्तियार करने का इरादा कर लिया है—मेरा ख़याल है, ख़ैरसिगाली[31] के तौर पर आप यहाँ के गंदुम का बीज अपने हाँ मँगवा लें। आपकी मिट्टी बड़ी ज़रख़ेज़[32] है। इस इख़्तिलात से जो अमरीकी-पाकिस्तानी गंदुम पैदा होगी, बड़ी ख़ूबियों की हामिल होगी। हो सकता है, कोई नया आदम पैदा हो जाए जिसकी औलाद हम और आपसे मुख़्तलिफ़ हो।

मैं आपसे एक राज़ की बात पूछना हूँ—पिछले दिनो मैंने यह ख़बर पढ़ी थी कि नई दिल्ली में भारत की देवियाँ रात को अपने बालों में छोटे-छोटे कुमकुमे[33] लगाकर घूमती हैं जो बैटरी से रोशन होते हैं। ख़बर में यह भी लिखा था कि बाज देवियाँ अपने ब्लाउजों के अंदर भी ऐसे ही कुमकुमे लगाती हैं ताकि उनका अंदर-बाहर रोशन रहे—यह उपज कहीं आप ही की तो नही थी? अगर थी तो चचाजान, सुब्हानल्लाह—मेरा ख़याल है, अब आप उन्हें कोई सफ़ूफ़[34] तैयार करके भेजें, जिसके खाने से उनका सारा बदन रोशन हो जाया करे और कपड़ों से बाहर निकल-निकलकर इशारे किया करे।

पंडित जवाहरलाल नेहरू पुराने ख़यालात के आदमी हैं। वह उस बापू के शागिर्द हैं, जिसने नौजवानों को यह हुक्म दिया था कि वह अपनी आँखों पर ऐसा शेड या हुड इस्तेमाल किया करें जो उन्हें नजरबाज़ी से रोका करे। पिछले दिनों उन्होंने अपनी देवियों को तलक़ीन[36] की थी कि वह अपने सतर का ख़याल रखा करें और मैकअप वग़ैरा से परहेज़ किया करें, मगर उनकी कौन सुनेगा—अलबत्ता हालीवुड की आवाज़ सुनने के लिए यह देवियाँ हर वक़्त तैयार हैं—आप वह सफ़ूफ़ वहाँ ज़रूर रवाना करें। पंडित जी का रद्दे-अमल काफ़ी पुरलुत्फ़ होगा।

मैं इस लिफ़ाफ़े में आपको एक तसवीर भेज रहा हूँ। यह एक पाकिस्तानी ख़ातून की है, जिसने बंबई की मछेरनों की चोली का-सा ब्लाउज़ पहना हुआ है। इसमें से उसके पेट का थोड़ा-सा निचला हिस्सा झाँक रहा है। यह आपकी ख़्वातीन[36] के नंगे पेटों को एक अदद पाकिस्तानी गुदगुदी है।

गर क़ुबूल अज़तरफ़[37] ज़हे-अज़ो-शर्फ़[38]

आपका बरख़ुर्दार भतीजा
सआदत हसन मंटो
21 फ़रवरी, 1954

1. आदर के साथ प्रणाम, 2. प्रार्थना-पत्र, 3. आस्था, 4. समझौता, 5. सुदृढ़ता, 6. सुसज्जित, 7. इबादत करने की मालाएं, 8. वह कपड़ा जिस पर खड़े होकर नमाज़ पढ़ते हैं, 9. बहुत अच्छा लिबास, 10. भेंट; 11. आँखों के इशारे, 12. भेंट, तोहफा, 13. लकड़ी का स्टैंड, जिसपर कुरआन रखते हैं, 14. नृत्य; 15. संक्षिप्त रूप, 16. घटाना, कम करना; 17. शुरुआत, 18. आजमाए हुए; 19. विशेषज्ञ, 20. आधा; 21. दुकान; 22. कमरबंद, 23. स्वयं; 24. दृष्टिकोण, 25. सहायता; 26. जो चुंबन में न मिटे; 27. लोकप्रिय, 28. शौक, 29. दाग, 30. अच्छे तरीके से; 31. शुभकामना, 32. उपजाऊ; 33. बिजली के बल्ब; 34. पाउडर, चूर्ण; , 35. निर्देश, 36. महिलाओं, 37. ओर से, , 38. सौभाग्य।

पाँचवाँ ख़त

मोहतरमी चचाजान,

तस्लीमात !

मैं अब तक आपको 'प्यारे चचाजान' से ख़िताब करता रहा हूँ, पर अब की दफ़ा मैंने 'मोहतरमी चचाजान' लिखा है, इसलिए कि मैं नाराज़ हूँ—नाराज़ी का बायस यह है कि आपने मुझे मेरा तोहफ़ा, एटम बम, अभी तक नहीं भेजा है। बताइए, यह भी कोई बात है।

सुना था कि बाप से ज़्यादा चचा बच्चों से प्यार करता है, लेकिन ऐसा मालूम होता है कि आपके अमरीका में ऐसा नहीं होता—मगर वहाँ बहुत-सी ऐसी बातें नहीं होतीं, जो यहाँ होती हैं। मिसाल के तौर पर यहाँ आए दिन वज़ारतें बदलती हैं, जबकि आपके यहाँ ऐसा कोई सिलसिला नहीं होता—यहाँ नबी पैदा होते हैं, वहाँ नहीं होते। यहाँ उनके माननेवाले वज़ीरे-ख़ारजा[1] बनते हैं। इस पर मुल्क में हंगामे बरपा होते हैं, मगर कोई सुनवाई नही होती। इन हंगामों पर तहक़ीक़ाती कमीशन बैठता है और उसके ऊपर कोई और बैठ जाता है। वहाँ इस क़िस्म की कोई दिलचस्प बात नहीं होती।

चचाजान, मैं आपसे पूछता हूँ, आप अपने यहाँ नबी क्यों पैदा नहीं होने देते ? ख़ुदा की क़सम, एक पैदा कर लीजिए, बड़ी तफ़रीह रहेगी। बुढ़ापे में वह आपकी लाठी का काम देगा और इस लाठी से आप अमरीका की सारी भैंमें हाँक सकेंगे—भैंसें तो यक़ीनन आपके यहाँ ज़रूर होंगी।

अगर आप नबी पैदा करने में किसी वजह से माज़ूर हों तो मुझे हुक्म दीजिए। मैं मिर्जा बशीरुद्दीन महमूद साहब से गुज़ारिश करूँगा। वह अपना शाहज़ादा भेज देंगे—जल्दी लिखिएगा। ऐसा न हो, आपके दुश्मन रूस से माँग आ जाए और आप मुँह देखते रह जाएँ।

बात एटम बम की थी, जो मैंने आपसे तोहफ़े के तौर पर माँगा था और मैं नबी और नबीज़ादों की तरफ़ चला गया—हाँ, कितनी मामूली बात थी। मैंने सिर्फ़ एक छोटा, बहुत ही छोटा एटम बम माँगा था, जिससे मैं एक ऐसे आदमी को उड़ा सकता, जो मुझे अपनी घेरेदार शलवार के अंदर हाथ डालकर ढेला लगाता नज़र आता है—लेकिन ऐसा मालूम होता है कि आपने मेरी ख़्वाहिश की शिद्दत[2] को महसूस नहीं किया, या शायद आप हाइड्रोजन बमों के तजरबात में मश्ग़ूल थे।

चचाजान, यह हाइड्रोजन बम क्या बला है—आठवीं जमाअत में हमने पढ़ा था कि

हाइड्रोजन एक गैस होती है, हवा से हल्की—आप इस कुर्रा-ए-अर्ज़[3] के सीने से किस मुल्क का बोझ हल्का करना चाहते हैं—रूस का?

मगर सुना है, वह कमबख़्त नाइट्रोजन बम बना रहा है—आठवीं जमाअत ही में हमने पढ़ा था कि नाइट्रोजन एक गैस होती है, जिसमें आदमी ज़िंदा नहीं रह सकता—मेरा ख़याल है, आप इसके जवाब में आक्सीजन बम बना दें—आठवीं जमाअत में हमने पढ़ा था कि नाइट्रोजन और आक्सीजन गैसें जब आपस में मिलती हैं तो पानी बन जाता है—क्या ही मज़ा आएगा—उधर रूस नाइट्रोजन बम फेंकेगा, इधर आप आक्सीजन बम। बाक़ी दुनिया पानी में डुबकियाँ लगाएगी।

ख़ैर यह तो मज़ाक़ की बात थी—सुना है, आपने हाइड्रोजन बम सिर्फ़ इसलिए बनाया है कि दुनिया में मुकम्मल अमनो-अमान क़ायम हो जाए—यूँ तो अल्लाह की अल्लाह ही बेहतर जानता है, लेकिन मुझे आपकी बात का यक़ीन है। एक इसलिए कि मैंने आपका गंदुम खाया है, और फिर मैं आपका भतीजा हूँ—बुज़ुर्गों की बात यूँ भी छोटों को फ़ौरन माननी चाहिए, लेकिन मैं पूछता हूँ, अगर आपने दुनिया में अमनो-अमान क़ायम कर दिया तो दुनिया कितनी छोटी हो जाएगी। मेरा मतलब है, कितने मुल्क सफ़हा-ए-हस्ती[4] से नेस्तोनाबूद हो जाएँगे—मेरी भतीजी जो स्कूल में पढ़ती है, कल मुझसे दुनिया का नक्शा बनाने को कह रही थी। मैंने उससे कहा: "अभी नहीं पहले मुझे चचाजान से बात कर लेने दो उनसे पूछ लूँ, कौन-सा मुल्क रहेगा और कौन-सा नहीं रहेगा, फिर तुम्हारे लिए नक़्शा बना दूँगा।"

ख़ुदा के लिए रूस को सबसे पहले उड़ाइएगा—उससे मुझे ख़ुदा वास्ते का बैर है।

सात-आठ दिन हुए, रूस के फ़नकारों का एक वफ़द[5] आया था। ख़ैरसिगाली[6] करके, मेरा ख़याल है, अब वापस चला गया है। इस वफ़द में नाचने और गानेवालियाँ थीं, जिन्होंने नाच-गाकर हमारे सादा लोह पाकिस्तानियों का दिल मोह लिया—अब आप इसके तोड़ में जब तक वहाँ से कोई ऐसा गाता-बजाता, नाचता-थिरकता ख़ैरसिगाली वफ़द नहीं भेजेंगे, काम नहीं चलेगा।

मैंने आपसे पहले भी कहा था कि हालीवुड की चंद मिलियन डालर टाँगोंवाली लडकियाँ यहाँ रवाना कर दीजिए, मगर आपने अपने कम अक़्ल भतीजे की इस बात पर कोई ग़ौर न किया और हाइड्रोजन बम के तजर्बों में मसरूफ़ रहे। क़िबला, जादू वह है, जो सर चढ़कर बोले।

ज़रा अपने सिफ़ारतख़ाने[7] मुतअयैना पाकिस्तान से पूछिए—यहाँ हर एक की ज़बान पर तामारा ख़ानम और मादाम आशूरा का नाम है।

यहाँ का एक बहुत बड़ा उर्दू अख़बार 'ज़मींदार' है। इसके एडिटर बड़े ज़ाहिद[8] ख़ुश्क क़िस्म के नौजवान हैं। उन पर इस रूसी वफ़द ने इतना असर किया कि नस्र[9] में शाइरी करने लगे। एक पैरा मुलाहिज़ा फ़रमाइए:

> जब वह गा रही थी तो खचाखच भरे हुए ओपन एयर थिएटर में सामइन के साँस लेने की आवाज़ साफ़ सुनाई दे रही थी। थिएटर पर झुका हुआ तारों

भरा आसमान और स्टेज के चारों तरफ़ उभरे हुए मरसब्ज़ दरख़्त भी दम-ब-ख़ुद थे और गंभीर सन्नाटे में एक कोयल कूक रही थी। उसकी तेज़, गहरी और रूह को चीर देनेवाली आवाज़ तारीक[10] रात के सीने में जाबजा[11] अनदेखी रोशनी के गहरे घाव डाल रही थी।

पढ़ लिया आपने?

चचाजान, यह मामला बहुत संगीन है। हाइड्रोजन बमों को फ़िलहाल छोड़िए और इस तरफ़ तवज्जोह दीजिए—आपके पास क्या हसीनाओं की कमी है। चश्मे-बद्दूर[12], एक-से-एक पटाख़ा-सी मौजूद है, लेकिन मैं आपको एक मश्वरा दूँगा—जितनी भेजिएगा, सबकी टाँगें मिलियन डालर क़िस्म की हों और वह हमारे पाकिस्तानी मर्दों को बोसा देने से न घबराएँ—मैं आपसे वादा करता हूँ कि अगर आपने एक जहाज़ भर कोलीनूस टूथपेस्ट भेज दी तो मैं सबके दाँत साफ़ करा दूँगा। उनके मुँह से बू नहीं आएगी।

आप मेरी बात मान गए तो मैं आपकी सात आज़ादियों की क़सम खाके कहता हूँ कि रूसवालों के छक्के छूट जाएँगे और तामारा ख़ानम और मादाम आशूरा टापती रह जाएँगी और 'ज़मींदार' के एडिटर को दिन में तारे नज़र आने लगेंगे। लेकिन चचाजान, एक बात सुन लीजिए। अगर आपने एलिज़ाबेथ टेलर को भेजा तो उसके बोसे सिर्फ़ मेरे लिए वक़्फ़ होंगे। मुझे उसके होंठ बहुत पसंद हैं।

हाँ, इस ख़ैरसिगाली वफ़द में कहीं उस हब्शी गवैए पाल राब्सन को आप शामिल कर लें—साला कम्युनिस्ट है। मुझे हैरत है, आपने उसे अभी तक ईस्ट अफ़्रीक़ा क्यों नहीं भेजा! वहाँ उसे बड़ी आसानी से माव टाव की तहरीक में माख़ूज़[13] करके गोली से उड़ाया जा सकता है।

मैं इस ख़ैरसिगाली वफ़द का बेचैनी से इंतज़ार करूँगा और 'नवाए-वक़्त' के मुदीर से कहूँगा कि वह अभी से इसका प्रोपेगंडा शुरू कर दे। बड़ा नेक और बरख़ुर्दार क़िस्म का आदमी है। मेरी बात नहीं टालेगा—वैसे आप उसे तोहफ़े के तौर पर रीटा हैवर्थ की ऑटोग्राफ़्ड[14] तसवीर भिजवा दीजिएगा। बेचारा इसी में ख़ुश हो जाएगा।

मैं यह भी वादा करता हूँ कि जब आपका यह ख़ैरसिगाली वफ़द लाहौर में आएगा तो मैं उसे हीरा मंडी की सैर कराऊँगा, शोरिश काश्मीरी साहब को मैं साथ ले चलूँगा कि वह इस इलाक़े के पीर हैं—हाल ही में आपने इस इलाक़े पर एक किताब भी लिखी है, जिसका उनवान 'उस बाज़ार में' है—आप अपने सिफ़ारतख़ाने को हुक्म दीजिए कि वह आपको शोरिश काश्मीरी साहब की किताब का तर्जुमा[15] कराके भेज दे। यहाँ एक-से-एक दुरुख़्शंदा-ओ-ताबंदा[16] हीरा पड़ा है, हर तराश का और हर वज़न का।

अब और बातें शुरू करता हूँ।

पाकिस्तान को आपके फ़ौजी इमदाद देने के फ़ैसले और मशरिक़ी बईद[17] के दीगर मसाइल पर भारत और आपके इख़्तिलाफ़ात[18] पर पंडित नेहरू ने पिछले दिनों जो ज़बर्दस्त नुक़्ताचीनी की थी, सुना है, उसका यह रद्दे-अमल हुआ है कि आपके मुल्क की हिकमते-

अमली में एक नया रुजहान[19] तरक़्क़ी कर रहा है। बाज़ की राय है कि अमरीका भारत को अपने अज़ाइम[20] के मुताल्लिक़ इत्मीनान दिलाने की ज़रूरत से ज़्यादा कोशिश कर रहा है।

आपके जनूबी[21] एशियाई और अफ़्रीक़ी मामलात के आला अफ़सर—क्या नाम है उनका—हाँ, मिस्टर जान जोनीगंज़ ने अपने एक बयान में भारत के लिए अपने मुल्क के ख़ैरसिगाली जज़्बात की तर्जुमानी[22] की है। इसका तो यह मतलब निकलता है कि वाशिंगटन अब नई दिल्ली का एतिमाद[23] हासिल करने के लिए तड़प रहा है।

जहाँ तक मैं समझा हूँ, पाकिस्तान और भारत को ख़ुश रखने से आपका वाहिद मक़सद यही है कि जहाँ कहीं भी आज़ादी और जम्हूरियत का टिमटिमाता दीया जल रहा है, उसे फूँक से न बुझाया जाएगा बल्कि उसको तेल दिया जाए, तेल में डुबो दिया जाए ताकि वह फिर कभी अपने तिश्ना लबी[24] का शिकवा न करे—है ना चचाजान!

आप पाकिस्तान को आज़ाद देखना चाहते हैं, इसलिए कि आपको दर्रा-ए-ख़ैबर से बे-हद प्यार है, जहाँ से हमलाआवर सदियों से हम पर हमला करते रहे हैं। असल में दर्रा-ए-ख़ैबर है भी बहुत ख़ूबसूरत चीज़। इससे प्यारी और ख़ूबसूरत चीज़ पाकिस्तान के पास और है भी क्या?

और भारत को आप इसलिए आज़ाद देखना चाहते हैं कि पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया और कोरिया में रूस की जारहाना[25] कार्रवाइयाँ देखकर आपको हर दम इस बात का खटका रहता है कि यह सुर्ख़ मम्लुकत[26] कहीं भारत में भी दराँतियाँ और हथौड़े चलाना शुरू न कर दे—ज़ाहिर है कि भारत की आज़ादी ख़ुदा ना ख़्वास्ता छिन गई तो कितना बड़ा अलमिया[27] होगा। इसका तसव्वुर करते ही आप काँप उठते होंगे।

आपकी तारोंवाली ऊँची टोपी की क़सम, आप-ऐसा मुख़्लिस[28] इंसान कभी पैदा हुआ है और न होगा—ख़ुदा आपकी उम्र दराज़ करे और आपकी सात आज़ादियों को दिन दुगनी और रात चौगुनी तरक़्क़ी दे।

यहाँ एक इलाक़ा है मग़रिबी[29] पंजाब। इसके वज़ीरेआला हैं फ़ीरोज़ ख़ाँ नून—उनकी बेगम एक अंग्रेज़ ख़ातून हैं—आपने उनका नाम तो सुना होगा। हाल ही में आपने अपने दौलतकदे पर, जो पंचौली फ़िल्म स्टूडियो के आगे है, एक कान्फ्रेंस बुलाई। इसमें आपने मुस्लिम लीग के, जिसे मशरिक़ी पाकिस्तान में शिकस्ते-फ़ाश हुई है, कारकूनों[30] को मशवरा दिया कि वह अपने-अपने इलाक़ों में इश्तिराकियों[31], यानी सुर्ख़ों के मुक़ाबले के लिए जद्दो-जहद करें।

देखिए चचाजान, आप फ़ौरन फ़ीरोज़ ख़ाँ नून साहब का शुक्रिया अदा कीजिए और ख़ैरसिगाली तौर पर उनकी बेगम साहिबा के लिए हालीवुड के सिले हुए दो-तीन हज़ार फ्राक भेज दीजिए—कहीं आपने भेज तो नहीं दिए? मैं भूल गया था, क्योंकि अब वह साड़ी पहनती हैं।

बहरहाल नून साहब का इश्तिराकियत दुश्मन होना बड़ी नेक फ़ाल[32] है, क्योंकि कामरेड फ़ीरोज़उद्दीन मनसूर फिर जेल में होगा। मुझे उसका हर वक़्त दमे के मर्ज़ में

गिरफ़्तार रहना एक आँख नहीं भाता।

अब मैं आपको एक बड़ा अच्छा मश्वरा देता हूँ—हमारी हुकूमत ने हाल ही में कामरेड सिब्ते हसन को जेल से रिहा किया है। आप उसको अग़वा करके ले जाइए। मेरा दोस्त है, लेकिन मुझे डर लगता है कि वह अपनी प्यारी-प्यारी नर्म-नर्म बातों से एक रोज़ मुझे ज़रूर कम्युनिस्ट बना लेगा—मैं इतना डरपोक नहीं कि कम्युनिस्ट हो जाने पर मेरा कुछ बिगड़ जाएगा, मगर आपकी इज़्ज़त पर हर्फ़ आने का ख़याल है। लोग क्या कहेंगे! आपका भतीजा और ऐसे बुरे दलदल में जा धँसा—मेरी इस बरख़ुर्दारी पर एक शाबाशी तो भेजिए।

अब मैं अहवाले-रोज़गार[33] की तरफ़ आता हूँ—चचाजान, आपकी रीश मुबारक की क़सम, दिन बहुत बुरे गुज़र रहे हैं। इतने बुरे गुज़र रहे हैं कि अच्छे दिनों के लिए दुआ माँगना भी भूल गया हूँ। यह समझिए कि बदन पर लत्ते झूलने का ज़माना आ गया है। कपड़ा इतना महँगा हो गया है कि जो ग़रीब हैं, उनको मरने पर कफ़न भी नहीं मिलता, और जो जिंदा हैं, वह तार-तार लिबास में नज़र आते हैं—मैंने तो तंग आकर सोचा है कि एक 'नंगा क्लब' खोल दूँ, लेकिन सोचता हूँ, नंगे खाएँगे क्या—एक-दूसरे का नंग? और वह भी इतना करीह होगा कि लुक़मा उठाते ही वहीं रख देंगे।

कोई वीरानी-सी वीरानी है, कोई नंगी-सी नंगी है, कोई तुर्शी-सी तुर्शी है, लेकिन चचाजान, दाद दीजिए:

गो मैं रहा रहीने सितम हाय रोज़गार
लेकिन तेरे ख़याल से ग़ाफ़िल न रहा

लेकिन छोड़िए इस क़िस्से को—आप ख़ुश गुलू[34], ख़ुश अंदाम[35] और ख़ुश ख़राम[36] हसीनों का वह ख़ैरसिगाली वफ़्द भेज दीजिए। हम इस ग़ुर्बत में भी अपना जी पिशौरी कर लेंगे।

फ़िलहाल आप एलिज़ाबेथ टेलर के होंठों का एक प्रिंट भेज दीजिए। ख़ुदा आपको ख़ुश रखे।

आपका ताबेदार भतीजा
सआदत हसन मंटो
31, लक्ष्मी मैन्शंज, हॉल रोड, लाहौर

1. विदेश मंत्री; 2. अधिकता, तीव्रता; 3. पृथ्वी का गोला; 4 प्राणियों के अस्तित्व; 5. दल; 6. शुभकामना, 7. दूतावास; 8. सयमी, 9. गद्य; 10. अंधेरी; 11. जगह-जगह; 12. बुरी नज़र न लगे, 13. गिरफ्तार; 14 हस्ताक्षरित; 15. अनुवाद; 16. चमकता हुआ, 17. पूर्वी ऊँट, 18. मतभेदों; 19. रुचि; 20. प्रतिज्ञाएँ; 21. दक्षिणी; 22. अनुवाद; 23. विश्वास; 24. बहुत प्यासा; 25. हानिकारक; 26. राष्ट्र; 27. कष्ट; 28. निष्कपट, सज्जन; 29. पश्चिमी; 30. कार्यकर्त्ताओं; 31. कम्युनिस्टों; 32. शगुन, 33. जीविका की स्थिति, 34. सुरीली आवाजवाली; 35 ख़ूबसूरत; 36. सुंदर चालवाली।

सातवाँ ख़त

चचाजान,

आदाब व तस्लीमात ।

माफ़ कीजिएगा, मैं इस वक़्त अजीब मख़मसे[1] में गिरफ़्तार हूँ । मेरे पिछले ख़त की रसीद मुझे अभी तक नहीं मिली । क्या वजह है ?

वह मेरा छटा ख़त था और मैंने उसे अहमद राही के हाथों पोस्ट करवाया था—डर है, कहीं गुम न हो गया हो !

यह दुरुस्त है कि हमारे यहाँ बाज़ औक़ात अगर लाहौर से शेख़ूपुरा कोई ख़त भेजा जाए तो ढाई-तीन साल के अर्से में पहुँचता है और यह महज़ छेड़ ख़ूबाँ[2] से चली जाए असद के तौर पर दानिस्ता[3] किया जाता है, लेकिन आपके साथ ऐसी दिल्लगी का ख़याल भी हमारे डाकख़ाने के महकमे को कभी नहीं आ सकता, इसलिए कि वह सबका-सब आपका मुफ़्त भेजा हुआ गंदुम खा चुका है ।

जहाँ तक मैं समझता हूँ, सारी कारस्तानी रूस की है और इसमें भारत का भी हाथ है—पिछले दिनों लखनऊ में आपके इस बरख़ुर्दार भतीजे पर एक सिपोज़ियम[4] हुआ था । उसमें किसी ने कहा था कि मैं आपके अमरीका के लिए अपने पाकिस्तान में ज़मीन हमवार कर रहा हूँ । .

कितनी टुच्ची बात है—अभी तक आपने बुलडोज़र भेजे नहीं हैं और यह बात सारी दुनिया जानती है—मैं भारत के उस अक़्ल के अंधे से पूछता हूँ कि मैं अमरीका के लिए पाकिस्तान में ज़मीन किस चीज़ से हमवार कर रहा हूँ ? अपने सर से !

मेरी बातें बहुत देर के बाद आपकी समझ में आती हैं, सिर्फ़ इसलिए कि आप हाइड्रोजन बमों के तजुर्बात में मसरूफ़ हैं । आपको दीन का होश है न दुनिया का—क़िबला, इन बमों को छोड़िए । यह कोई मामूली बात नहीं है कि मेरा छटा ख़त कम्युनिस्ट बाला बाला ले उड़ें ।

मेरे बस में होता तो मैं इन शरारतपसंदों के ऐसे कान ऐंठता कि बिलबिला उठते, मगर मुसीबत यह है कि मैं—अब आपको क्या बताऊँ—यहाँ के सारे बड़े-बड़े कम्युनिस्ट मेरे दोस्त हैं । मिसाल के तौर पर अहमद नदीम क़ासमी, सिब्ते हसन, अब्दुल्ला मलिक—हालाँकि मुझे इससे नफ़रत है, बड़ा घटिया क़िस्म का कम्युनिस्ट है—

फीरोज़उद्दीन मनसूर, अहमद राही, हमीद अख़्तर, नाज़िश काश्मीरी और प्रोफ़ेसर सफ़दर।

चचाजान, मैं इन लोगों के सामने चूं नहीं कर सकता, इसलिए कि मैं इनसे आए दिन क़र्ज़ लेता रहता हूं। आप समझ सकते हैं कि मक़रूज़ क़र्ज़ख़्वाह के सामने कुछ बोल नहीं सकता—आपने मुझे क़र्ज़ तो कभी नहीं दिया, अलबत्ता शुरू-शुरू में जब मैंने आपको पहला ख़त लिखा था तो उससे मुतास्सिर होकर आपने ख़ैरसिगाली तौर पर मुझे माली इमदाद भेजी थी, यानी तीन सौ रुपए भिजवाए थे। और मैंने आपके इस जज़्बे से मुतास्सिर[5] होकर दिल में यह अहद कर लिया था कि उम्र भर आपका साथ दूंगा, मगर आपने मेरे इस जज़्बे की दाद न दी और माली इमदाद का सिलसिला बंद कर दिया।

प्यारे चचाजान, मुझे बताइए, मुझसे कौन-सा गुनाह सरज़द[6] हुआ है कि आप मुझे सज़ा दे रहे हैं—लाहौर में जो आपका दफ़्तर है, उसके चपड़ासी भी मुझसे सीधे मुँह बात नहीं करते। दो-तीन जूनियर अफ़सर, जो मेरे पाकिस्तानी भाई हैं, उनमें आपने ऐसे सुर्ख़ाब के पर लगा दिए हैं कि वह मेरा नाम सुनते ही मुझे गालियाँ देना शुरू कर देते हैं।

आख़िर मेरा क़ुसूर?

मैंने अगर ख़ुलूसनियती[7] से तस्लीम किया कि आपने मेरी माली इमदाद की है तो इसमें आपके मुलाज़िमों ने क्या क़बाहत[8] देखी—भारत को आप करोड़ों डालर दे चुके हैं और वह तस्लीम करता है। मेरे पाकिस्तान को आपने मुफ़्त गंदुम भेजा और वह ग़रीब भी तस्लीम करता है—कराची में हम लोगों ने ऊँटों का जुलूस निकाला और बाक़ायदा इश्तिहारबाज़ी की कि आपने हम पर बहुत बड़ा करम किया है। यह जुदा बात है कि आपका भेजा हुआ गंदुम हज़म करने के लिए हमें अपने मेदे अमरीकियाने[9] पड़े।

मेरी समझ में नहीं आता कि आप क्यों भारत को अरबों डालर क़र्ज़ दे रहे हैं। पाकिस्तान को फ़ौजी इमदाद देने का भी अपने वादा किया है—आप मेरा वज़ीफ़ा क्यों नहीं लगा देते। लोग क्या कहेंगे कि पाकिस्तान के इतने बड़े अफ़सानानिगार को सिर्फ़ तीन सौ रुपए देकर आपने हाथ रोक लिया। यह मेरी हतक है और आपकी भी। अगर आप वज़ीफ़ा नहीं देना चाहते तो न दें, पर क़र्ज़ में क्या मुज़ायक़ा[10] है। अज़ राहे-करम फ़ौरन एक लाख डालर मुझे क़र्ज़ दे डालिए ताकि मैं इत्मीनान के दो साँस ले सकूं।

आग़ा ख़ाँ को तो आप जानते ही होंगे, क्योंकि वह भी बहुत बड़ा सरमाएदार है। उसकी हाल ही में प्लेटीनम जुबली मनाई गई थी—मेरा जी चाहता है कि मेरी भी एक जुबली हो जाए—आप मेरे प्यारे-प्यारे, बहुत ही प्यारे चचा हैं। आपसे चोचले न बघारूँ तो क्या अपने मुल्क के वज़ीरे-आज़म मुहम्मद अली साहब से बघारूँ—ख़ुदा के लिए मेरी एक जुबली कर डालिए ताकि क़ब्र में मेरी रूह बेचैन न रहे।

पाकिस्तान, मेरा पाकिस्तान अपने फ़नकारों की क़दरदानी में ग़ाफ़िल[11] नहीं, लेकिन मुसीबत यह है कि मुझसे जो ज़्यादा हक़दार हैं, उनकी फेहरिस्त बहुत लंबी है—पिछले दिनों मेरी हुकूमत ने ख़ान बहादुर मुहम्मद अब्दुलरहमान चुग़ताई के लिए पाँच सौ रुपए माहवार ताहयात[12] का वज़ीफ़ा मुक़र्रर किया। ख़ान बहादुर साहब अल्लाह के फ़ज़्ल[13] से

साहबे-जायदाद हैं, इसलिए वह मुझसे कहीं ज़्यादा मुस्तहिक़ थे—इसके बाद ख़ान बहादुर अबुल असर हफ़ीज़ जालंधरी साहब के लिए भी ताहयात इतना ही वज़ीफ़ा मंज़ूर किया गया, इसलिए कि वह भी साहबे-सरवत[14] हैं।

मेरी बारी ख़ुदा मालूम कब आएगी, इसलिए कि मैं अलाटशुदा मकान में रहता हूँ, जिसका किराया भी मैं अदा नहीं कर सकता।

बहुत से मुस्तहक़[15] असहाब पड़े हैं। मिसाल के तौर पर मियाँ बशीर अहमद बी. ए., मुदीर माहनामा 'हुमायूँ', साबिक़ सफ़ीर तुर्की, सैयद इम्तियाज़ अली ताज; मिस्टर इकराम, पी. सी. एस.; फ़ज़ल अहमद करीम फ़ज़ली; वग़ैरह-वग़ैरह—इन सबका नंबर पहले आता है, इसलिए कि इनको किसी वज़ीफ़े की एहतियाज[16] नहीं। लेकिन मेरी हुकूमत का दिल साफ़ है। वह ख़िद्मात देखती है, दौलत नहीं देखती।

वैसे मैंने कौन-सा इतना बड़ा काम किया है जो इन लोगों को छोड़कर मेरी हुकूमत अपनी तवज्जोह मेरी तरफ़ मुन्अतिफ़[17] करे और ईमान की बात तो यह है कि मैं सिर्फ़ इस बलबूते पर कि आपका भतीजा हूँ, आपसे दरख़्वास्त कर रहा हूँ कि मेरी कोई जुबली कर डालिए।

मेरी ज़िंदगी के दिन बहुत मुख़्तसर हैं। आपको दुख तो होगा मगर मैं क्या कहूँ कि इस इख़्तिसार[18] के बायस आपकी ज़ाते-शरीफ़[19] है। अगर आपको मेरी सेहत का ख़याल होता तो आप और कुछ नहीं तो कम-अज़-कम वहाँ से एलिज़ाबेथ टेलर ही को मेरे पास भेज देते कि वह मेरी तीमारदारी करती। मालूम नहीं, आप क्यों इतनी ग़फ़लत बरत रहे हैं। क्या आप मेरी मौत चाहते हैं, या कोई और बात है, जिसे आपने राज़ बना के रख छोड़ा है?

मगर यह राज़ अब राज़ नहीं कि मेरे मुल्क में कम्युनिज़्म बड़ी तेज़ी से फैल रहा है—आपसे क्या छुपाऊँ, बाज़ औक़ात मेरा भी जी चाहता है कि सुर्ख़ पर लगाकर सुर्ख़ा बन जाऊँ। अब आप ही फ़रमाइए, यह कितनी ख़तरनाक ख़्वाहिश है! इसीलिए, मेरे बुज़ुर्गवार, मैंने आपको यह मश्वरा दिया था कि रूसियों के सक़ाफ़ती[20] वफ़्द के तोड़ में वहाँ से 'पिन अप गर्ल्ज़'[21] का एक ख़ैरसिगाली वफ़्द रवाना कर दीजिए—सावन के दिन आनेवाले हैं। इस मौसम में हम लोग बड़े रोमांटिक हो जाते हैं। मेरा ख़याल है, अगर आप का इर्साल[22] कर्दा वफ़्द इस मौसम में आए तो बहुत अच्छा रहेगा। इसका नाम 'बरसिगाली वफ़्द'[23] रख दीजिएगा।

चचाजान, मैंने एक बड़ी तश्वीशनाक[24] ख़बर सुनी है कि आपके यहाँ तिजारत और सनअत[25] बड़े नाज़ुक दौर से गुज़र रही है। आप तो माशाल्लाह अक़्लमंद हैं, लेकिन एक बेवक़ूफ़ की बात भी सुन लीजिए—यह तिजारती और सनअती बोहरान[26] सिर्फ़ इसलिए पैदा हुआ है कि आपने कोरिया की जंग बंद कर दी है। यह बहुत बड़ी ग़लती थी। अब आप ही सोचिए कि आपके टैंकों, बम बार हवाई जहाज़ों, तोपों और बंदूक़ों की ख़पत कहाँ होगी?

इसमें कोई शक नहीं कि आलमी राय आमा की शदीद[27] मुख़ालफ़त की बिना पर आपको जंग बंद करना पड़ी है, लेकिन आलमी राय आमा आपके सामने क्या हकीकत

रखती है। मेरा मतलब है, सारा आलम आपके एक हाइड्रोजन बम का क्या मुक़ाबला कर सकता है—कोरिया की जंग आपने बंद कर दी है। यह बहुत बड़ी ग़लती थी। ख़ैर इसको छोड़िए, आप हिंदुस्तान और पाकिस्तान में जंग शुरू करा दीजिए। कोरिया की जंग के फ़ायदे इस जंग के फ़ायदों के सामने मांद न पड़ गए तो मैं आपका भतीजा नहीं।

क़िबला, ज़रा सोचिए। यह जंग कितनी मन्फ़अतबख़्श[28] तिजारत होगी। आपके तमाम असलहसाज़[29] कारख़ाने डबल शिफ़्ट पर काम करने लगेंगे। भारत भी आपसे हथियार ख़रीदेगा और पाकिस्तान भी। आपकी पाँचों उँगलियाँ घी में होंगी और सिर कड़ाहे में।

वैसे आप हिंद-चीनी में जंग जारी रखिए। लोगों को तलक़ीन[30] करते रहिए कि यह बड़ा नेक काम है—फ्रांसीसी अवाम और फ्रांसीसी हुकूमत जाए जहन्नम में। वह इस जंग के ख़िलाफ़ हैं तो हुआ करें। हमें कोई परवा नहीं करनी चाहिए। आख़िर हमारा मक़सद तो दुनिया में अमनो-अमान क़ायम करना है, क्यों चचाजान!

मुझे आपके मिस्टर डलेस का यह कहना बहुत पसंद आया है कि आज़ाद दुनिया का मक़सद कम्युनिज़्म को शिकस्त देना है—यह है हाइड्रोजन बम की पुर-अज़-हुर्रियत[31] ज़बान!

जाहिल लोग यह कहते हैं के मग़रिबी इत्तिहाद[32] का मक़सद दूसरी अक़वाम[33] के दरमियान इख़्तिलाफ़ात को ताक़त के बग़ैर हल करना होना चाहिए—मैं पूछता हूँ, ताक़त के बग़ैर कोई इख़्तिलाफ़ आज तक हल हुआ है—आजकल तो सारी दुनिया इख़्तिलाफ़ात से भरी पड़ी है और इसका हल इसके सिवाय और क्या हो सकता है कि दुनिया को मुकम्मल तबाही की तसवीर पेश कर दी जाए और उससे कहा जाए: "तुम सब अपने घुटने टेक दो।"

बरतानिया के मिस्टर बेवन का मुँह आप क्यों बंद नहीं करते। आपकी बिल्ली और आप ही से म्याऊँ। ख़रज़ात आपके ख़िलाफ़ ज़हर उगल रहा है। आपके मिस्टर डलेस के मुताल्लिक़ कहता है कि वह जदीदतरीन[34] ख़यालात से बेबहरा और दुनिया को हाइड्रोजन बम से डरा-धमकाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं—उल्लू कहीं का।

चचाजान, मुझे बड़ा ताव आता है, जब बरतानिया का कोई मसख़रा आपके ख़िलाफ़ ऊल-जलूल बकता है—मेरी मानिए, जज़ाइर[35] बरतानिया ही को सफ़हा-ए-हस्ती से नेस्तोनाबूद कर दीजिए। अलव-अज़्म[36] लोगों के लिए यह टापू हमेशा दर्दे-सर बने रहे हैं। अगर आप इनको उड़ाना नहीं चाहते तो वह बीस मील लंबी खाई पाट दीजिए जो बरतानिया अज़मइन[37] को योरोप से जुदा करती है। अल्लाह बख़्शे, नेपोलियन बोनापार्ट और हर हिटलर को इससे बड़ी चिढ़ थी। अगर यह न होती तो आज मिस्टर बेवन भी न होते और बहुत मुमकिन है, आप भी ग़फ़ूरुल्लाह[38] हो गए होते। जो परेशानियाँ अब आपको उठाना पड़ रही हैं, उनसे आपको यक़ीनन नजात मिल गई होती।

मैं आपसे सच कहता हूँ, आगे चलकर आपको यह बरतानिया बहुत तंग करेगा। 'मैं तो कंबल को छोड़ता हूँ, कंबल ही मुझे नहीं छोड़ता' वाला मामला हो जाएगा—पिछली जंग में

जर्मनी ने इटली को अपने साथ मिलाया, ग़रीब मुसीबत में गिरफ़्तार हो गया और लेने-के-देने पड़ गए—आप इस चक्कर में न पड़िएगा। बस अपने उसी पुराने उसूल पर क़ायम रहिए : "कैश एंड कैरी।"

रोदबारे-इंगलिस्तान[39] को पुर करके योरोप से मिलाने का मनसूबा आप यह ख़त मिलते ही बना लें। मेरा ख़याल है, आपके इंजीनियर एक महीने के अंदर-अंदर इस काम से ओहदाबरआ[40] हो जाएँगे।

मैंने असल में यह ख़त आपको इसलिए लिखा था कि आप मेरी कोई जुबली मनाएँ, क्योंकि मुझे इसका बड़ा शौक़ है।

मुझे लिखते हुए पच्चीस बरस होने को आए हैं—मैं चोंचला ही सही, लेकिन मैं आपसे दरख़्वास्त करता हूँ और गिड़गिड़ाकर कहता हूँ कि और कुछ नहीं तो मेरी एक जुबली मना डालिए।

चूँकि मेरा पेशा लिखना है, इस मुनासबत[41] से इस जुबली का नाम 'मंटो-पारकर जुबली' होना चाहिए। बस आप मुझे 'पारकर फ़िफ़्टीवन' क़लमों से तुलवा दीजिए—तराज़ू मैं अहसान बिन दानिश की टाल से ले आऊँगा।

मालूम नहीं, एक क़लम का वज़न कितना होता है—मेरा वज़न इस वक़्त एक मन ढाई सेर है, लेकिन जुबली के रोज़ तक यह घटते-घटते एक मन रह जाएगा—अगर आपने देर कर दी तो मुझे बड़ी नाउम्मीदी का सामना करना पड़ेगा, इसलिए कि मेरा वज़न घटते-घटते सिफ़र रह जाएगा।

आप हिसाब लगा लीजिए कि एक मन में 'पारकर फ़िफ़्टीवन' क़लम कितने चढ़ते हैं, लेकिन ख़ुदारा[42] जल्दी कीजिए।

यहाँ सब ख़ैरियत है—मौलाना भाशानी और मिस्टर सहरवर्दी माशाल्लाह दिन-ब-दिन तकड़े हो रहे हैं। आपसे कुछ नाराज़ मालूम होते हैं—मौलाना को आप एक अदद ख़ालिस अमरीकी तस्बीह और मिस्टर सहरवर्दी को एक अदद ख़ालिस अमरीकी कैमरा रवाना कर दें। उनकी नाराज़गी दूर हो जाएगी।

हीरा मंडी की तवाइफ़ें शोरिश काश्मीरी के ज़रिए से मुजरा अर्ज़ करती हैं।

मुवर्रिख़ा 14 अप्रैल, 1954
आपका ताबेफ़रमान[43]
सआदत हसन मंटो
31, लक्ष्मी मैन्शंज़, हॉल रोड, लाहौर

1. उलझन; 2. ख़ूबसूरत छेड़छाड़; 3. जानबूझकर; 4. मगोष्ठी; 5. प्रभावित; 6. घटित; 7. बग़ैर लोभ-लालच के; 8. बुराई; 9. अमरीका समर्थक बनाना; 10. आपत्ति, हर्ज; 11. लापरवाह; 12. आजीवन; 13. कृपा; 14. ऊँची पहुँचवाले; 15. सहायता पाने के अधिकारी; 16. आवश्यकता; 17. आकृष्ट; 18. संक्षिप्त; 19. आप स्वयं; 20. सांस्कृतिक; 21. दुबली-पतली लड़कियों; 22. भेजा

हुआ, 23 सदभावना दल; 24 डरावनी, सोचनीय; 25. उद्योग; 26 अड़चन; 27. अत्यधिक; 28. लाभदायक, 29 हथियार बनानेवाले; 30. निर्देश; 31. स्वतंत्र; 32. एकता; 33. क़ौम; 34 आधुनिक, 35. टापुओं, 36. अतिरिक्त ससार; 37. संसार; 38. स्वर्गवासी; 39. नदी व नहरों के जाल से युक्त ब्रिटेन; 40. कर्तव्यपालन मे सक्षम; 41 संबंध से; 42. ईश्वर के लिए; 43. आज्ञाकारी सेवक।

आठवाँ ख़त

चचाजान,

तस्लीमो-नियाज़ ।

उम्मीद है, आपको मेरा सातवाँ ख़त मिल गया होगा । उसके जवाब का मुझे इंतजार है ।

क्या आपने रूसी सक़ाफ़ती[1] वफ़द के तोड़ में कोई ऐसा ही सक़ाफ़ती और ख़ैरसिगाली वफ़द यहाँ पाकिस्तान में भेजने का इरादा कर लिया है ?

मुझे इससे ज़रूर मुत्तला[2] फ़रमाइएगा ताकि इस तरफ से मुझे इत्मीनान हो जाए और मैं यहाँ के कम्युनिस्टों को, जो अभी तक रूसी वफ़द की शानदार कामयाबी पर बगलें बजा रहे हैं, यह ख़बर सुनाकर बरफ़ा[3] दूँ कि मेरे चचाजान रूसी वफ़द से भी कहीं बढ़कर ऐसा वफ़द भेज रहे हैं, जिसमें मिलियन डालर टाँगों और बिलियन डालर जोबनोंवाली लड़कियाँ शामिल होंगी और जिनकी एक झलक देखकर ही उनकी राल टपकने लगेगी ।

आपको यह सुनकर ख़ुशी होगी कि हमारे सूबे के वज़ीरे-आला जनाब फ़ीरोज ख़ाँ नून साहब मैदाने-अमल में कूद पड़े हैं । आपने पिछले दिनों ज़ेरे-लब[4] सिर्फ़ इतना कहा था : "हमें कम्युनिस्टों की रेशादवानियाँ[5] दबाने की कोशिश करनी चाहिए ।" मुबारक हो कि दाबने-दबाने का यह काम शुरू हो चुका है । बिसमिल्लाह कम्युनिस्टों के दफ़्तर पर पुलिस के छापे से हुई है और मैं यह ख़त इसी ख़ुशी में लिख रहा हूँ ।

हमारे अख़बार कहते हैं कि बहुत जल्द सुर्ख़ों की भरमार शुरू हो जाएगी—महकमा पुलिस ने गिरफ़्तार किए जानेवालों की फ़ेहरिस्त तैयार कर ली है । अल्लाह ने चाहा तो बहुत जल्द यह फ़ितनासाज़[6] जेलों में होंगे—सबसे पहले अगर कामरेड फ़ीरोज़ुद्दीन मनसूर को क़ैद किया गया तो मुझे बड़ी राहत होगी । उसको दमें की शिकायत है । मैंने सुना है कि जिसको यह मर्ज़ हो, वह मरने का कभी नाम ही नहीं लेता । यह मर्ज की अगर ज़्यादती है तो कामरेड मनसूर की भी ज़्यादती है । मेरा ख़याल है कि अगर अब उसे जेल में डाला गया तो वह ज़रूर मर जाएगा । ख़स-कम-जहाँ-पाक ।

अहमद नदीम क़ासमी भी यकीनन क़ैद हो जाएगा । मियाँ इफ़्तिख़ारुद्दीन ने उसको अपने परचे 'इमरोज़' का एडिटर बनाकर बहुत बड़ा जुर्म किया है । चाहिए तो यह कि मियाँ साहब गिरफ़्तार किए जाएँ, मगर वह बड़े काइयाँ हैं । पुलिस हथकड़ियाँ लेकर

उनकी कोठी पहुँचेगी तो वह मुसकराकर बाहर निकलेंगे और स्टे आर्डर दिखा देंगे। पिछले दिनों 'इमरोज़' और 'पाकिस्तान टाइम्स' के दफ़ातिर में किराए की नादहंदगी[7] के बायस ताले लगने ही वाले थे कि उन्होंने एक स्टे आर्डर मदारी की मानिंद थैले से बाहर निकालकर पुलिस की मुतहैयर[8] आँखों के सामने रख दिया था–बहरहाल अहमद नदीम क़ासमी भी क़ुसूरवार है। उसको ज़रूर सज़ा मिलनी चाहिए। कमबख़्त 'पंजदरिया' का क़लमी नाम रखकर आपकी तारों भरी टोपी उछालता रहता है–मेरी तो यह राय है कि आप छः अमरीकी लड़कियाँ, कुँवारी, उसकी बहनें बना दें। उसको राहे-रास्त पर लाने का यह नुस्ख़ा बहुत मुजर्रब[9] है कि उसे बहनें बनाने का शौक़ है। इस सूरत में उसको जेलख़ाने में ठूँसने की ज़रूरत बाक़ी नहीं रहेगी। जब पाँचों उँगलियाँ घी में और सर कड़ाहे में होगा तो कम्युनिज़्म उसके दिमाग़ से ऐसे ग़ायब होगा जैसे ग़धे के सिर से सींग।

जूँ ही यहाँ सुर्ख़ों की गिरफ़्तारियाँ अमल में आईं, मैं आपको मुत्तला कर दूँगा। मेरी बरखुर्दारियाँ नोट फ़रमाते जाइएगा–अगर आप अच्छे मूड में हों तो मुझे तीन सौ रुपए बतौर क़र्ज़ देना न भूलिएगा। पिछला तीन सौ तो मैंने दो दिन के अंदर-अंदर ही ख़त्म कर डाला था और आपकी यह इनायत क़रीब-क़रीब दो बरस पुरानी हो चुकी है।

मैंने अपने छठे ख़त के मुताल्लिक़, जो आप तक नहीं पहुँचा, तफ़तीश की थी। जैसा कि मुझे शक था, यह सब उन नाहंजार[10] कम्युनिस्टों की शरारत थी–अहमद राही को आप जानते हैं? वही 'तिरंजन' का मुसन्निफ़, जिसको हमारी हुकूमत ने पाँच सौ रुपया इनाम दिया था कि उसने पंजाबी ज़बान में बड़ी प्यारी नज़्में लिखी हैं। इसमें कोई शक नहीं कि यह नज़्में बड़ी प्यारी और नर्मो-नाज़ुक हैं, मगर आप नहीं जानते, यह अहमद राही बड़ा ख़तरनाक कम्युनिस्ट है। पार्टी ऑफ़िस में दूसरे मेंबर टूटे प्यालों में चाय पीते हैं, मगर यह छुप-छुपकर बीयर पीता है और पी-पीकर मोटा हो रहा है। मेरा दोस्त है। मैंने उसी को ख़त पोस्ट करने के लिए दिया था, मगर कम्युनिस्ट जो हुआ, मेरा ख़त गोल कर गया और जाकर पार्टी के हवाले कर दिया–मुझे अभी तक पूरे तौर पर ताव नहीं आया है और मेरे पास इतने पैसे भी नहीं हैं, वर्ना मैंने सोच रखा है कि एक दिन उसको इतनी बीयर पिलाऊँगा कि उसकी तोंद फट जाए–एक दिन कमबख़्त मुझसे कहने लगा : "तुम अपने चचा साम को छोड़ दो और मालनकोफ़ से ख़तो-किताबत शुरू कर दो... आख़िर मालनकोफ़ तुम्हारा मामूँ है..." मैंने कहा : "यह दुरुस्त है, लेकिन वह मेरे सौतेले मामूँ हैं... उनको मुझसे, या मुझको उनसे कभी मुहब्बत नहीं हो सकती। इसके अलावा मैं जानता हूँ कि उनका अपने सगे भानजों से भी कोई अच्छा बर्ताव नहीं... वह ग़रीब उन पर अपनी जान छिड़कते हैं, उनसे बेपनाह अक़ीदत रखते हैं, फटे-पुराने कपड़ों में अपनी ख़स्ताहालियों के बावुजूद उनकी ख़िदमत करते हैं, और वह सिर्फ़ एक सूखी शाबाशी वहाँ से सुर्ख़ मोहर लगाकर रवाना कर देते हैं... अंग्रेज़ चचा और अंग्रेज़ मामूँ इस रूसी मामूँ से लाख दर्जे बेहतर थे। गो 'सर', 'ख़ान बहादुर' और 'ख़ान साहब' ऐसे ख़िताबों ही से सरफ़राज़[11] फ़रमाकर टरख़ा देते थे, लेकिन मालनकोफ़ साहब तो यह भी नहीं करते... मैं जब मानूँ कि वह अब्दुल्लाह मलिक को, जो उनका सबसे वफ़ादार भानजा है, कोई छोटा-सा ख़िताब ही अता फ़रमा

दें··· अब्दुल्लाह मलिक के लिए जेल जाकर आराम व इत्मीनान से किताबें लिखने में कितनी आसानी हो जाएगी···"

कुछ भी हो, मैं आपका ग़ुलाम हूँ। आपने तो पहले तीन सौ रुपयों ही में मुझे हमेशा-हमेशा के लिए ख़रीद लिया था। अगर आप तीन सौ रुपए और भेज दें तो दूसरी ज़िंदगी में भी इस ग़ुलामी को बरक़रार रखने का वादा करता हूँ, बशर्ते कि अल्लाह मियाँ, जो आपसे बड़ा है, मेरे लिए पाँच-छः सौ रुपए माहवार का वज़ीफ़ा न मुक़र्रर कर दे। अगर अल्लाह मियाँ ने किसी हव्वा से मेरा निकाह पढ़वा दिया तो अफ़सोस है कि यह वादा उस सूरत में बिलकुल ईफ़ा[12] न हो सकेगा—मेरी साफ़ बयानी की दाद दीजिए। बात दरअसल यह है कि मैं अल्लाह मियाँ और उनकी हव्वा के सामने चूँ तक भी न कर सकूँगा।

आजकल हमारे यहाँ शाही मेहमानों का ताँता बँधा हुआ है—पहले शाह ईरान आए, फिर शाह इराक़; फिर प्रिंस अली ख़ाँ, आपकी रीटा हैवर्थ के साबिक़[13] शौहर; फिर महाराजा जयपुर और अब शाह सऊद वालिए सऊदी अरब।

मैं शाह सऊद ख़ालिदुल्लाह का आँखों देखा और कानों सुना हाल मुख़्तसरन बयान करता हूँ।

शाह सऊद अपने पच्चीस शहज़ादों समेत हवाई जहाज़ के ज़रिए से कराची पहुँचे, जहाँ उनका बड़ा शानदार इस्तिक़बाल हुआ—उनके शहज़ादे और भी हैं। मालूम नहीं, वे क्यों नहीं आए। शायद इसलिए कि दो-तीन हवाई जहाज़ और दरकार होंगे, या उनकी उम्र बहुत छोटी होगी और वे अपनी माँओं की गोद को हवाई जहाज़ पर तरजीह[14] देते होंगे—बात भी ठीक है। अपनी माँओं और ऊँटनियों का दूध पीनेवाले बच्चे ग्लैक्सो या काउगोट के ख़ुश्क दूध पर कैसे जी सकते हैं।

चचाजान ग़ौर करनेवाली बात है—शाह सऊद के साथ माशाअल्लाह उनके पच्चीस लड़के थे। लड़कियाँ, ख़ुदा मालूम कितनी होंगी। ख़ुदा उनकी उम्र दराज़ करे और शाह को नज़रे-बद से बचाए। मुझे बताइए कि आपकी सात आज़ादियोंवाली मम्लुकत में कोई ऐसा मर्दे-मुजाहिद या मर्दमख़ेज़[15] मौजूद है, जिसकी इतनी औलाद हो—चचाजान, यह सब हमारे मज़हब इस्लाम की देन है। नाचीज़ की यह राय है कि आप फ़ौरन अपनी सल्तनत का सरकारी मज़हब इस्लाम क़रार दे दें। इसमे बड़े फ़ायदे होंगे। क़रीब-क़रीब हर शादीशुदा मर्द को तीन और शादियाँ करने की इजाज़त होगी। अगर एक औरत चार बच्चे भी बड़े बुख़्ल[16] से काम लेकर पैदा करे तो इस हिसाब से सोलह लड़के-लड़कियाँ एक मर्द की मर्दानगी और उसकी चार बीवियों की ज़रख़ेज़ी[17] का सबूत होंगे। लड़के और लड़कियाँ जंग में कितनी काम आ सकती हैं। आप जहाँदीदा[18] हैं और ख़ुद अंदाज़ा लगा सकते हैं।

मैं अमृतसर का रहनेवाला हूँ—मिस्टर रैड क्लिफ़ की मेहरबानी से यह अब भारत में चला गया है—इसमें एक हकीम थे, मुहम्मद अबू तराब। आपने अपनी ज़िंदगी में दस शादियाँ कीं। चार-चार करके नहीं, एक-एक करके। इन बीवियों से उनकी बेशुमार औलाद थी। जब उन्होंने नब्बे बरस की उम्र में आख़िरी शादी की तो पहली बीवी से उनके सबसे बड़े लड़के की उम्र पिचहत्तर बरस की थी और सबसे छोटे लड़के की उम्र, जो उनकी

नौवीं बीवी के बत्न से पैदा हुआ था, सिर्फ़ दो बरस की थी। एक सौ बारह बरस की उम्र में आपका इंतिक़ाल यहाँ लाहौर में एक महाजिर[19] की हैसियत से हुआ। किसी शाइर ने उनकी तारीख़े-वफ़ात[20] इस मशहूर मिस्रे में निकाली थी : 'हसरत उन ग़ुंचों पे है जो बिन खिले मुरझा गए।'

यह भी अल्लाह तबारक तआला और उसके मंज़ूरशुदा मज़हब इस्लाम की बरकत है—अगर आपके शादीशुदा मर्दों को शुरू-शुरू में चार बीवियों को बयक वक़्त सँभालने में किसी क़िस्म की दिक़्क़त महसूस हो तो आप शाह सऊद को वहाँ बुलाकर उनकी ख़िद्मात से इस्तिफ़ादा[21] कर सकते हैं। आप उनके दोस्त हैं। उनके वालिद मरहूम से तो आपकी गाढ़ी छनती थी। मैंने सुना था कि आपने उनके और उनके हरम के लिए बड़ी आलीशान गाड़ियों का एक कारवाँ तैयार करके उनको बतौर तोहफ़ा पेश किया था—मेरा ख़याल है, शाह सऊद आपको अपने तमाम सदरी[22] नुस्ख़े बता देंगे।

हमारे पाकिस्तान के साथ आजकल सिवाय हिंदुस्तान और रूस के क़रीब-क़रीब हर मुल्क दिलचस्पी ले रहा है। यह सब आपकी मेहरबानियों का नतीजा है कि आपने हमारी तरफ़ दोस्ती और तआवुन[23] का हाथ बढ़ाया और हम इस क़ाबिल हो गए कि दूसरे भी हम पर नजरे-करम फ़रमाने लगे।

हम पाकिस्तानी तो इस्लाम के नाम पर मर मिटते हैं—एक ज़माना था, जब हम मुस्तफा कमाल पाशा और अनवर पाशा के शैदा थे। अनवर पाशा के मरने की ख़बर आती तो हम सब लोग सोग मनाते और सचमुच के आँसुओं से रोते। जब यह पता चलता कि अनवर पाशा ख़ुदा के फ़ज़्ल से ज़िंदा हैं तो हम ख़ुशी से नाचते, कूदते और घर में चिराग़ाँ करते—मुस्तफ़ा कमाल और अनवर, दोनों एक-दूसरे के जानी दुश्मन थे। हमें इसका कुछ इल्म नहीं था—तुरकों को हिंदी मुसलमानों से कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह हमको तीन में समझते थे न तेरह में। इसका हमें कुछ-कुछ पता था, लेकिन हमें उनसे मुहब्बत थी—हम ऐसे शरीफुन्नफ्स[24] और सादा हैं कि हमें आमले और चंबेली के उस तेल से भी मुहब्बत है, जो यहाँ 'इस्लामी भाइयों का तैयार कर्दा' मिलता है। उसको हम अपने सरों में डालते हैं तो ऐसा कैफ़[25] आता है कि मौजूदा जन्नत की तमाम लताफ़तें[26] उसके सामने मांद पड़ जाती हैं। हम सब बड़े बुद्धू, मगर बड़े प्यारे लोग हैं। ख़ुदा रहती दुनिया तक हमारी तमाम सिफ़ात[27] क़ायम रखे।

मैं बात शाह सऊद के दरूद मसऊद की कर रहा था, लेकिन जज्बाती होकर इस्लाम के गुन गाने लगा। बात यह है कि इस्लाम के गुन गाने ही पड़ते हैं। हिंदू मज़हब, ईसाई रिलीजन, बुद्ध मत। आख़िर यह क्या हैं—क्या इनके माननेवालों में कोई एक फ़र्द पच्चीस लड़कों का बाप होने का दावा कर सकता है। इसीलिए मैंने आपको मश्वरा दिया था कि आप रियासत हाये-मुत्तहदा[28] अमरीका का सरकारी मज़हब इस्लाम मुक़र्रर फ़रमा दें ताकि आपको कोई जापान फतह करके हराम-बच्चे पैदा करने की ज़रूरत महसूस न हो। चचाजान, क्या आपको हरामीपना पसंद है? मैं मुसलमान हूँ। मुझे तो ख़ुदा और उसके रसूल की क़सम, इससे सख़्त नफरत है। बच्चे ही पैदा करने हैं तो इसका कितना सहल

तरीक़ा इस्लाम में मौजूद है—निकाह पढ़वाइए और बड़े शौक़ से बच्चे पैदा कीजिए। मैं तो समझता हूँ कि आप भी चार शादियाँ कर लीजिए। चचीजान अगर बक़ैदे-हयात हैं तो कोई बात नहीं। आप मुशर्रफ़ ब इस्लाम[29] होकर तीन और शादियाँ कर सकते हैं। यहाँ पाकिस्तान में आप मशहूर एक्ट्रेस इशरत जहाँ बिब्बो को अपने रिश्ता-ए-मुनाकहत[30] में ला सकते हैं कि वह कई शौहरों का तजबा रखती है।

शाह सऊद बड़ी पुरअज़ सहर[31] शख़्सियत के मालिक हैं। तैयारे से बाहर निकलते ही आप हमारे लाहौर के मोची दरवाज़े के गवर्नर जनरल जनाब ग़ुलाम मुहम्मद ख़ान से बग़लगीर हुए और इस्लामी भाइयों की रजिस्टर्ड अख़ूवत व मुहब्बत का मुज़ाहिरा[32] किया, जो बड़ा कुफ़्र शिकन[33] था। आपके एज़ाज़[34] में कराची के मुसलमानों ने अपनी बिसात से बढ़कर नारे लगाए, जलसे किए, जुलूस निकाले, दावतें कीं और इस्लाम की चौदह सौ साला रवायात को क़ायम रखा।

सुना है, शाह सऊद अपने साथ एक सोने से भरा हुआ बक्स लाए थे, जो कराची के मज़दूरों से बसद मुश्किल उठाया गया। आपने यह सोना कराची में बेच दिया और पाकिस्तान को दस लाख रुपए मर्हमत[35] फ़रमाए। फ़ैसला हुआ कि इस रुपए से ग़रीब मुहाजरीन के लिए एक कालोनी तामीर की जाएगी, जिसका नाम सऊदआबाद होगा—रहे नाम अल्लाह का।

मोतबर ज़राए[36] से मालूम हुआ है कि शाह सऊद ख़ैरसिगाली के तौर पर अपने दो साहबज़ादों की शादी हमारे पाकिस्तान में करना चाहते हैं। ज़हे नसीब।

सुना है, कराची में बेगम शाहनवाज़ को जब अरब शहज़ादों के लिए कोई मुनासिब रिश्ता न मिला तो उन्होंने बेगम बशीर को टेलीफ़ोन किया कि वह लाहौर में सिलसिला ज़ुबानी[37] करें, इसलिए कि लाहौर आख़िर लाहौर है और लाहौर में शहज़ादों के लाइक कुँवारी लड़कियों की क्या कमी है—चुनांचे सुना है कि बेगम बशीर ने बेगम जी. ए. ख़ान और बेगम सलमा तसद्दुक़ को साथ मिलाकर रवायती नायन के फ़राइज़[38] सरअंजाम दिए और ऊँचे घरानों में शाह सऊद के दो अर्जमंद[39] फ़रज़ंदों के लिए पैग़ाम लेकर गईं, मगर अफ़सोस है कि उन्हें कामयाबी नसीब न हुई। इसकी वजह यह बयान की जाती है कि हमारे ऊँचे तबक़े की जवान और नाकतख़ुदा[40] लड़कियों को अरब के यह 'ऊँट' एक आँख नहीं भाए। मैं समझता हूँ, यह उनकी ग़लती है। इससे पहले, जब कि पाकिस्तान नहीं बना था, सऊदी अरब से हिंदुस्तान के मुसलमानों का इस क़िस्म का रिश्ता हो चुका है। मौलाना दाऊद ग़ज़नवी और मौलाना इस्माइल ग़ज़नवी के ख़ानदान की एक दोशीज़ा[41] शाह सऊद के मरहूम वालिद बुज़ुर्गवार जनाब अब्दुलअज़ीज़ इब्ने सऊद के रिश्ताए-मुनाकहत में जा चुकी हैं। आपको शायद मालूम हो कि मौलाना इस्माइल ग़ज़नवी ने इसी सिले में सत्ताइस हज किए थे, हालाँकि एक ही हज काफ़ी था। मे दिल बदस्त आवर के हज अकबर अस्त[42]—गो बेगम बशीर, बेगम जी. ए. ख़ान और बेगम तसद्दुक़ को इस कारे ख़ैर में नाकामी का सामना करना पड़ा है, लेकिन मुझे यक़ीन है, कोई-न-कोई सबील[43] निकल आएगी। हमारे पाकिस्तान में दो ऐसी लड़कियाँ बरामद हो जाएँगी, जिनको

सरज़मीने-हिजाज़[44] के शहज़ादे सरफ़राज़ फ़रमाएँगे।

मैंने अपने किसी पिछले ख़त में अपने यहाँ की ख़्वातीन के मुताल्लिक़ आपको कुछ लिखा था, ग़ालिबन उन ब्लाउज़ों के बारे में जो बड़ी उम्र की औरतें पहनती हैं और अपने कलबूत चढ़े पेटों की नुमाइश करती हैं। इस पर हमारी यूनीवर्सिटी के शोबा-ए-फ़ारसी[45] के सदर जनाब डॉक्टर मुहम्मद बाक़र साहब बहुत ज़ुज़बुज़[46] हुए। आपने मुझे कई मुहज़्ज़ब[47] क़िस्म की गालियाँ दीं और इसलिए मलऊनो-मतऊन[48] क़रार[49] दिया कि मैंने अपने यहाँ की औरत की बेहुर्मती[50] की है—लाहौल वला—मैंने जो कुछ बयान किया था, महज़ यह था कि बूढ़ी औरतों को अपनी उम्र से इस क़िस्म के नीम उरियाँ[51] चोंचले ज़ेब नहीं देते। मुझे डर है कि डॉक्टर साहब जब मेरा यह ख़त पढ़ेंगे तो मुझ पर फिर इल्ज़ाम धरेंगे कि मैंने फिर अपनी 'औरत' की बेहुर्मती की है।

बात असल में यह है कि हम लोग फ़ितरतन सादा लोह और बुद्धू हैं। हमारी औरतें तो बादनुमा मुर्ग़ियाँ हैं। जिधर हवा चलती है, हम उधर चल पड़ते हैं—शाह ईरान तशरीफ़ लाए तो ऊँची सोसाइटी की लड़कियों ने तरह-तरह से ख़ुद को सजाया कि शाह ईरान उन दिनों फ़ारिग़ थे। वह फ़रिया को तलाक़ दे चुके थे, मगर उन्होंने हमारी लड़कियों में सिर्फ़ रस्मी दिलचस्पी ली और ईरान जाकर सुरैया अस्फ़दयार से शादी कर ली। इसके बाद प्रिंस अली ख़ाँ आए। वह भी फ़ारिग़ थे, इसलिए कि आपकी रीटा हैवर्थ उनसे तलाक़ हासिल कर चुकी थी। हमारी ऊँची सोसाइटी की लड़कियों ने एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर अपनी माँग-चोटी दुरुस्त की, नोक-पलक निकाली, मगर प्रिंस अली ख़ाँ ने उनकी सारी उमंगों पर ठंडा यख़ पानी फेर दिया और आपकी हालीवुड की एक और एक्ट्रेस जेन टर्नी से मुआशक़ा[52] शुरू कर दिया—ख़ुदा आपकी सात आज़ादियोंवाली मम्लुकत को क़ायमो-दायम रखे, फिर हमारे यहाँ शाह इराक़ आए, मगर हमारी ऊँची सोसाइटी की बाक़िरा[53] लड़कियाँ उन्हें देखकर बहुत मायूस हुईं, इसलिए कि वह कम उम्र थे। एक ने कहा: "हाए, इस बच्चे का तो खेल-कूद का ज़माना है क्यों इस बेचारे पर सल्तनत का बोझ डाला गया है " इसी तरह एक बूढ़ी ने, जिसका पेट बहुत ज़्यादा नंगा नहीं था, शाह इराक़ पर तरस खाकर कहा: "बुड्ढों से इस ग़रीब को क्या दिलचस्पी होगी जाओ इसके हमउम्र बुलाओ और उनसे इसको मिलाओ " शाह इराक़ भी गए और अब शाह सऊद तशरीफ़ ले आए, अपने पच्चीस शहज़ादों समेत—गवर्नमेंट हाऊस में उनकी शानदार दावत हुई, जिसमें ऊँची सोसाइटी की तमाम कतख़ुदा[54] और नाकतख़ुदा औरतों और लड़कियों ने शिरकत की। सिगरेट पीने की इजाजत नहीं थी, 'अब्दुल्लाह' की भी नहीं। वह सिगरेट के धुएँ के बग़ैर बहुत महज़ूज़[55] हुए और यह हिज़ उन्हें ख़ालिस इस्लामी मेहमाननवाज़ी की बदौलत नसीब हुआ। उनके दो दर्जन से ज़ायद शहज़ादों ने अनारकली में सैकड़ों पाकिस्तानी जूते ख़रीदे और अपनी ख़ैरसिगाली का सुबूत दिया। अब ये जूते सहराए-अरब की रेत पर चलेंगे और अपनी देरपाई के फ़ानी[56] नक़्श[57] सब्त[58] करेंगे ...

यह ख़त नामुकम्मल छोड़ रहा हूँ, इसलिए कि मुझे अपने पब्लिशर से अपनी नई किताब की रायल्टी वुसूल करनी है। वह दस रोज़ से वादे कर रहा है। मेरा ख़याल है, आज

वह दस रुपए तो ज़रूर देगा। यह मिल गए तो मैं यह ख़त पोस्ट कर सकूँगा, वर्ना···

जैन टर्नी को एक उड़ता हुआ बोसा।

आपका बरख़ुर्दार
सआदत हसन मंटो
22 अप्रैल, 1954

1 सांस्कृतिक, 2. सूचना, 3 ठंडा करना, 4. धीमे स्वर में; 5. षड्यंत्रों; 6. षड्यंत्रकारी, 7. अदा न करना, 8 स्तब्ध, 9 सफल; 10. नालाइक; 11. सम्मानित; 12 पूरा होना, निबाहना, 13 भूतपूर्व, 14 वरीयता, किसी की अपेक्षा दूसरे को महत्त्व देना, 15. वह स्थान जहाँ पर प्रतिभावान पुरुष पैदा होते हों, 16 कंजूसी; 17. उपजाऊपन; 18. अनुभवी; 19 शरणार्थी, 20. मृत्यु का दिन, पुण्यतिथि; 21 लाभ; 22 दिल, 23 सहयोग; 24 अति सज्जन, 25 आनंद, 26. आनंद, 27 अच्छाइयाँ; 28. संयुक्त गण-राज्य, 29. इस्लाम धर्म ग्रहण करके, 30 शादी, 31. महत्त्वाकांक्षी; 32. प्रदर्शन; 33. धार्मिक भेदभाव मिटानेवाला, 34. प्रशंसा, 35. अनुदान, 36 विश्वसनीय सूत्रों, 37. रिश्ता ढूँढ़ना; 38. कर्तव्य, 39. प्रतिष्ठित, 40. कुँवारी, 41 युवती; 42 मनबहलाव हज के बराबर है, 43. राह, 44. अरब के अतिरिक्त समस्त संसार, 45 फ़ारसी विभाग; 46 नाराज़; 47 शिष्ट; 48. बहुत बुरा, घृणित, 49. स्वीकार; 50. अपमान; 51 अर्धनग्न; 52. इश्क़; 53. अविवाहिताएँ, 54. विवाहित; 55 ख़ुश, 56 शीघ्र समाप्त हो जानेवाले, 57. निशान; 58. अंकित।

नवाँ ख़त

चचाजान,

अस्सलामुअलैकुम ।

मेरा पिछला ख़त नामुकम्मल था, बस मुझे इतना ही याद रहा है—अगर याद आ गया कि मैंने उसमें क्या लिखा था तो मैं उसको मुकम्मल कर दूँगा ।

मेरा हाफ़िज़ा[1] यहाँ की कशीद की हुई शराबें पी-पीकर बहुत कमज़ोर हो गया है—यूँ तो पंजाब में शराबनोशी[2] ममनू[3] है, मगर कोई भी आदमी बारह रुपए दो आने ख़र्च करके शराब पीने के लिए परमिट हासिल कर सकता है । इस रक़म में पाँच रुपए डॉक्टर की फ़ीस होते हैं, वो लिख देता है कि जिस आदमी ने यह रुपए ख़र्च किए हैं, अगर बाक़ाइदा शराब न पिए तो उसके जीने का कोई इमकान[4] नहीं ।

मुझे इल्म है, बहुत अर्सा हुआ, आपने भी अपने मुल्क में शराबनोशी क़त्अन ममनू क़रार दे दी थी । परमिटों का झगड़ा आपने नहीं पाला था—उसका नतीजा ख़ातिर ख़्वाह नहीं निकला था । बड़े-बड़े गैंगस्टर और बूट लैगर पैदा हो गए थे, जिन्होंने आपकी हुकूमत के मुक़ाबले में एक मुतवाज़ी[5] हुकूमत क़ायम कर ली थी । आख़िरकार नाकाम होकर आपको इम्तिनाए-शराब[6] का हुक्म वापस लेना पड़ा था ।

यहाँ इस क़िस्म की कोई वापसी नहीं होगी ।

हमारी हुकूमत मुल्लाओं को भी ख़ुश रखना चाहती है और शराबियों को भी । मज़े की बात यह है कि शराबियों में कई मुल्ला मौजूद हैं और मुल्लाओ में अक्सर शराबी—बहरहाल शराब बिकती रहेगी, इसलिए आपको मेरी तरफ़ से मुतरद्‌दुद[7] नहीं होना चाहिए । यूँ भी आप काफ़ी कठोर हैं । इतनी दफ़ा लिख चुका हूँ कि यहाँ की शराब बड़ी जालिम है, लेकिन आपने कभी अपने बरख़ुर्दार भतीजे को इसके नुक़सानात से महफ़ूज़ रखने के लिए अपने यहाँ की व्हिस्की भेजने की ज़हमत गवारा न की—मैं अब इसके मुताल्लिक़ आपसे कोई बात नहीं करूँगा । मुझे झोंकिए भाड़ में । मेरे मुल्क पाकिस्तान की फ़ौजी इमदाद जारी रखिए । मैं ख़ुश, मेरा ख़ुदा ख़ुश ।

मैं ख़ुश हूँ कि आप मेरे ख़ुतूत अपने पाइप में जलाकर नहीं पीते । बल्कि ग़ौर से पढ़ते हैं और मेरे मश्वरों पर काफ़ी तवज्जोह देते हैं—इसी ख़ुशी में आपको मैं एक और मश्वरा देता हूँ । वह यह है कि रोज़नामा 'ज़मींदार' को आप इस तौर पर मदद दीजिए कि कानोंकान ख़बर न हो ।

इसके भैंगे मैनेजिंग डायरेक्टर और नीम लँगड़े एडिटर को रुपया वुसूल करने का कोई सलीक़ा नहीं। बानी-ए-'ज़मीदार' के फ़रज़ंदे-अर्जमंद मौलाना अख़्तर अली ख़ान, जिनको 'मौलाना' का ख़िताब विरासत में मिला है, भी यह सलीक़ा नहीं रखते थे, इसलिए कि जब उनको महकमा-ए-ताल्लुक़ाते-आमा[8] के साबिक़ डायरेक्टर मीर नूर अहमद साहब की तरफ़ से (?) हज़ार रुपए 'मुँहबंदी' के मिले तो उन्होंने झट से एक नई अमरीकन कार ख़रीद ली और बड़े ठाट से उसकी मस्सी की रस्म[9] अदा की। यह उनकी सरासर हिमाक़त थी। वह इन दिनों जेल में हैं। ख़ुदा करे, वह उसी चारदीवारी में रहें और अपनी मज़ीद हिमाक़तों का सुबूत न दें। मगर मुझे हैरत है, उनके साहबज़ादे भी, जो आजकल 'ज़मींदार' की मैनेजिंग एडिटरी करते हैं, तालीमयाफ़्ता होने के बावुजूद निरे खुरे चुग़द हैं।

पिछले दिनों इस अख़बार के 'तैमूर लंग' पर मेरी हमदर्दी का दौरा पड़ा था। अगर आपके पाँव में लंग न होता तो आप यक़ीनन पाकिस्तान के डॉक्टर मुसद्दक़[10] होते। आप जब लिखना शुरू करते हैं तो सारे जहाँ का दर्द आपकी गर्दन पर मर्दे-तस-मा-पा की तरह सवार हो जाता है—आपको ख़ैर इससे पहले ही ख़बर पहुँच चुकी होगी कि जब डॉक्टर मुसद्दक़ की अपील की समाअत ईरान की अदालते-आलिया[11] में शुरू हुई तो इस पाकिस्तानी ज़हूरुलहसन[12] डार ने, जो 'बेडार' तहरीर में यदतूला[13] रखता है, कहा : "मैं कुछ कहना नहीं चाहता। मुझे उस तिलिस्मी अँगूठी पर पूरा ऐतिमाद है, जो मेरी बीवी ने मुझे पेश की थी।"

एक मर्तबा उन्होंने फ़ौजी अदालत में सरकारी वकील को कुश्ती लड़ने की दावत दे मारी थी। इसके बाद उन्होंने फ़रमाया था कि वह भूख हड़ताल फ़रमाएँगे और ख़ुदा के फ़ज़्लो-करम से दो दिन के अंदर-अंदर अल्लाह को प्यारे हो जाएँगे, मगर वह अल्लाह को बुरे भी न हुए और माशाल्लाह ज़िंदा रहे। बेहोश तो वह अक्सर होते रहे—पाकिस्तानी डॉक्टर मुसद्दक़, यानी ज़हूरुलहसन डार गो डॉक्टर नहीं, लेकिन बेहोश होते रहते हैं। जब भी उनको ग़शी का दौरा पड़ता है तो अली सफ़यान आफ़ाक़ी और मनसूर अली ख़ाँ उनको मौलाना ज़फ़र अली ख़ाँ का ईजादकर्दा लख़लख़ा[14] सुँघाते हैं ताकि वह होश में आ जाएँ और आज की डायरी लिखने के क़ाबिल हो सकें। उन्हीं की लंगड़ी टाँग देखकर किसी तरक़्क़ीपसद ने एक शेर कहा था, जिसका मिस्रा-ए-सानी मुझे याद रहा है : "एक तोड़ी ख़ुदा ने दूसरी तोड़े रसूल।"

मेरा ख़याल है, यह उस तरक़्क़ीपसंद शाइर की ज़्यादती है, वर्ना डार साहब बड़े कोहना मश्क़[15] अख़बारनवीस हैं। वह गालियाँ खा के भी बेमज़ा नहीं होते और गालियाँ और सुठनियाँ[16] देकर भी उनका पेट नहीं भरता। और यह सब उस तिलिस्मी अँगूठी के तुफ़ैल[17] है, जो ग़ालिबन लड़कपन में उनको किसी क़द्रदान ने दी थी।

मुझे कहना यह था कि अगर आप 'ज़मींदार' को 'अख़बारी' मदद दें तो मेरी वुसातत[18] से दें ताकि मैं अपने हमदर्द ज़हूरुलहसन डार के लिए उसका हिस्सा अलग करके उसके हवाले कर दूँ—बेचारा मेरे घरबार का बड़ा ख़याल रखता है। मेरे मज़मून की आम क़ीमत पचास रुपए है। उसने इस ख़याल से कि मैं उस गिराँ क़द्र[19] रक़म को शराब में उड़ा दूँगा,

अपने ख़ास नंबर के लिए मुझसे एक मज़मून तलब किया और उसकी क़ीमत एहतियातन बीस रुपए मुक़र्रर फ़रमाई और यह तहैया[20] किया कि वह इस रक़म का चेक मेरी बीवी की ख़िद्मत में पेश करेगा ताकि मेरी हश्त-पुश्त[21] पर उसका एहसान रहे—मैं बहरहाल उसका मम्नूनो-मुतशक्किर[22] हूँ कि उसको मेरी 'बदज़ात'[23] से इतनी पुरख़ुलूस[24] दिलचस्पी है।

यहाँ के सब अख़बारों में एक सिर्फ़ 'ज़मींदार' ही ऐसा अख़बार है जिसको आपके डालर, जब चाहें, ख़रीद सकते हैं। अगर अख़्तर अली ख़ाँ रिहा हो गए तो मैं कोशिश करूँगा कि ज़हूरुलहसन डार ही इसका एडिटर रहे। बड़ा बरख़ुरदार लड़का है।

लेकिन आप अपने असर रुसूख़ से काम लेकर मीर नूर अहमद साहब को फिर महकमा-ए-ताल्लुक़ाते-आमा का डायरेक्टर बनवा दीजिए। सरफ़राज़ साहब किसी काम के आदमी नहीं। वह लाखों रुपया अख़बारों में तक़सीम करने के बिलकुल अहल[25] नहीं। बेहतर होगा, अगर आप रुपया मेरी मार्फ़त रवाना करें। मेरा उन पर इस तरह कुछ रोब भी रहेगा और आपके प्रोपेगंडे का काम भी मेरी निगरानी में बतरीक़े-अहसन होता रहेगा।

आपके परचे जो यहाँ शाया होते हैं, अक्सर रद्दी में बिकते हैं—'रद्दी बोतलवाले' आपके बहुत मम्नूनो-मुतशक्किर हैं। इन परचों के काग़ज़ चूँकि मज़बूत होते हैं, सौदा-सुलफ़ के लिए लिफ़ाफ़े बनाने के काम आते हैं, आप इन्हें जारी रखिए कि हमारे यहाँ काग़ज़ की शदीद क़िल्लत है—मगर चलते-चलाते आप यहाँ के रद्दी में न बिकनेवाले परचे भी ख़रीद लिया कीजिए।

चचाजान, मैंने एक बहुत तश्वीशनाक ख़बर पढ़ी है। मालूम नहीं, कम्युनिस्टों की फैलाई हुई अफ़वाह है या क्या है। अख़बारों मे लिखा था कि आपके यहाँ ख़िलाफ़े वज़े फ़ितरी के अफ़आल[26] ज़ोरों पर हैं। अगर यह दुरुस्त है तो बड़ी शर्म की बात है। आपकी मिलियन डालर टाँगोंवाली लड़कियों को क्या हुआ ? डूब मरने का मक़ाम है उनके लिए।

ख़ुदा न ख़्वास्ता अगर यह सिलसिला आपके यहाँ शुरू हो चुका है तो अपने सारे आस्कर वाइल्ड यहाँ रवाना फ़रमा दीजिए। यहाँ उनकी खपत हो सकती है। वैसे भी हम लोग आपकी फ़ौजी इमदाद के पेशे-नज़र हर ख़िद्मत के लिए तैयार है।

मालूम नहीं, कामरेड सिब्ते हसन ने किसी-न-किसी तरीक़े से मेरा ख़त पढ़ लिया है। मेरा ख़याल है, यह वही ख़त है जो कामरेड अहमद राही ने बाला बाला[27] उड़ा लिया था। इसे पढ़कर सिब्ते हसन ने मुझे एक ख़त लिखा है। ज़रा उसकी ढिटाई मुलाहिज़ा फ़रमाइए—कहता है : "सआदत, तुम ख़ुद कम्युनिस्ट हो। चाहे मानो, न मानो…" चचाजान, यह ख़त ज़रूर आपकी नज़रों से गुज़रेगा। मैं आपकी सात आज़ादियों और आपके डालरों को हाज़िर नाज़िर रख के कहता हूँ कि मैं कभी कम्युनिस्ट था न अब हूँ। यह महज़ सिब्ते हसैन की शरारत है, बड़ी सुर्ख़ क़िस्म की। जो आपके और मेरे ताल्लुक़ात ख़राब करने पर दरपै है, वर्ना जैसा कि आपको मालूम है, मैं आपका बरख़ुदार और नमकख़्वार हूँ। यह अलग बात है कि उन तीन सौ रुपयों की, जो आपने कभी मुझे भेजे थे, मैंने सिर्फ़ जिमख़ाना व्हिस्की पी थी, जिसकी तारीफ़ मैं अपने किसी पिछले ख़त में कर चुका

हूं। मैंने एक धेले का भी नमक नहीं ख़रीदा था। मुसीबत यह है कि डॉक्टरों ने मुझे नमक खाने से मना कर रखा है। जूंही उन्होंने इजाज़त दी, मैं आपको लिख दूंगा, ताकि आप वहाँ से ख़ालिस अमरीकी नमक मेरी रोज़मर्रा की ख़ुराक के लिए भेजते रहें और मैं सही मानों में आपका नमकख़्वार कहला सकूं।

मैं एक बार फिर यक़ीन दिलाना चाहता हूं कि मैं कम्युनिस्ट नहीं हूं और न हो सकता हूं। मैं क़ादयानी[28] बन जाऊँगा, मगर कम्युनिस्ट कभी नहीं बनूंगा, इसलिए कि साले महज़ ज़बानी जमाख़र्च से काम लेते हैं। हाथ से कुछ भी देते-दिलाते नहीं। यूं तो क़ादयानी भी इसी क़िस्म के ख़सीस हैं, फिर भी वह पाकिस्तानी तो हैं। इसके अलावा मैं उनसे कोई बिगाड़ पैदा नहीं करना चाहता, क्योंकि मुझे मालूम है, आपको हाइड्रोजन बम के तजर्बों के बाद फ़ौरन एक नबी की ज़रूरत होगी, जो सिर्फ़ मिर्ज़ा बशीरुद्दीन महमूद ही मुहैया कर सकते हैं।

आजकल यहाँ के ठेठ मुसलमान सर ज़फ़रुल्लाह के बहुत ख़िलाफ़ हो रहे हैं। वह चाहते हैं कि उन्हें वज़ारत की गद्दी से उतार दिया जाए, सिर्फ़ इसलिए कि वह क़ादयानी हैं। ज़ाती तौर पर मुझे उनसे कोई परख़ाश[29] नहीं—मैं समझता हूं, वह आपके लिए बहुत कारामद साबित हो सकते हैं। मेरा मश्वरा है कि आप उनको अपने यहाँ बुला लें। ख़ुदा के फ़ज़्लो-करम से वह आपके यहाँ की तमाम जिंसी बेराहरवी[30] को दूर कर देंगे।

इराक़ की हुकूमत की तरफ़ से आज यह ऐलान सुना है कि आप उस इस्लामी मुल्क को भी फ़ौजी इमदाद देने पर रज़ामंद हो गए हैं। यह भी मालूम हुआ है कि यह इमदाद ग़ैर मश्रूत[31] होगी—चचाजान, आप मेरे पास होते तो मैं आपके पाँव चूम लेता। ख़ुदा आपको रहती दुनिया तक सलामत रखे। इस्लामी ममालिक[32] पर आपकी जो नज़रे-करम हो रही है, उससे साफ़ पता चलता है कि आप बहुत जल्द मुशर्रफ़ ब इस्लाम[33] होनेवाले हैं।

मैं इससे पेशतर आपको मज़हब इस्लाम की चंद ख़ूबियाँ बयान कर चुका हूं। अगर आप इस सआदत से मुशर्रफ़ हो चुके हैं तो फ़ौरन तीन और शादियाँ कर लीजिए—अगर चचीजान बक़ैदे-हयात[34] हों—अपने यहाँ की मशहूर एक्ट्रेस इशरत जहाँ बिब्बो को मैंने तैयार कर लिया है। आपकी दूसरी शादी इसी पाकिस्तानी ख़ातून से होनी चाहिए, इसलिए कि वह कई शौहरों का तजर्बा रखती है, और पीना-पिलाना भी जानती है। फ़िलहाल वह शादीशुदा है, लेकिन मैं उससे कहूंगा तो वह अपने पाँचवें या छटे शौहर से तलाक़ हासिल कर लेगी।

हाँ चचाजान, यह मैंने क्या सुना है कि आपकी रीटा हैवर्थ रूस जा रही है—ख़ुदा के लिए उसे रोकिए। उसने सर आग़ा ख़ान के साहबज़ादे प्रिंस अली ख़ाँ से शादी की थी, मुझे इस पर कोई एतिराज़ नहीं था। फिर उसने प्रिंस अली ख़ान से तलाक़ ले लिया था, उस पर भी मुझे कोई एतिराज़ नहीं था। लेकिन उसके रूस जाने पर मुझे एतिराज़ है। मुझे हैरत है कि आपने अभी तक उस शरीर औरत के कान क्यों नहीं ऐंठे।

रीटा हैवर्थ के रूस जाने की ख़बर मुझे कामरेड सिब्ते हसन ने बड़े फ़ख़्रो-इम्तिहाज़[35] से सुनाई थी। कमबख़्त ज़ेरे-लब मुसकरा रहा था, जैसे आपका मज़ाक़ उड़ा रहा हो—यह

हक़ीक़त है कि अगर रीटा रूस चली गई तो आपका और मेरा, दोनों का ऐसा मज़ाक़ उड़ेगा कि तबीयत साफ़ हो जाएगी।

कहीं यह सीमाब सिफ़त एक्ट्रेस मालनकोफ़ से शादी करने तो नहीं जा रही? अगर यही सिलसिला है और इसमें आपकी कोई सियासी चाल है तो मुज़ायक़ा[36] नहीं। दूसरी सूरत बहरहाल बहुत ज़िल्लत आफ़रीं[37] और ख़तरनाक है।

आज के अख़बारों में यह भी लिखा था कि रीटा के ख़िलाफ़ उसकी और प्रिंस अली ख़ान की बच्ची यासमीन और उसकी बड़ी लड़की, जो मालूम नहीं किस ख़ाविंद से है, की सही तौर पर परदाख़्त[38] न करने के इल्ज़ाम में मुक़दमा चल रहा है और कि दोनों लड़कियाँ अदालत की तहवील[39] में हैं। यह भी लिखा था कि रीटा मग़रिबी फ़्लोरेडा में है, जहाँ हुकूमत उसके चौथे शौहर को मुल्क बदर[40] करने की कोशिश में मसरूफ़ है—यह क़िस्सा क्या है? मैंने अहमद राही से पूछा था, लेकिन वह गोल कर गया। उसकी बातों से, मैं अपनी ख़ुदा दाद ज़हानत से इतना मालूम कर सका कि यह सब रूसियों की कारस्तानी है। मेरी समझ में नहीं आता कि आप अभी तक ख़ामोश क्यों हैं।

मैं तो आपको यह राय देता हूँ कि रीटा के चौथे ख़ाविंद को, जो सुना है कि मौसीक़ार है, वहाँ फाँसी पर लटका दें—एटम बम या हाइड्रोजन बम बनाने के राज़ रूस के पास बेचने के इल्ज़ाम में माख़ूज़[41] करके—और रीटा को फ़ौरन यहाँ भेज दें। उससे कहें कि वह हमारे मिस्टर सहरवर्दी को फाँसकर उनसे शादी कर ले। इसके बाद वह मौलाना भाशानी से इज़्दिवाजी[42] रिश्ता क़ायम कर सकती है। फिर शेरे-बंगाल चौधरी फ़ज़ल हक़ साहब ख़ुदा के फ़ज़्लो-करम से मौजूद हैं और मशरिक़ी पाकिस्तान के वज़ीरे-आला मुक़र्रर हैं। इन तीन बड़ों से यके बाद दीगरे तलाक़ लेने के बाद वह साबिक़ वज़ीरेआज़म ख़्वाजा नाज़िमुद्दीन से रुजू[43] कर सकती है—ज़िंदा रहा तो मैं भी हाज़िर हूँ, लेकिन इस शर्त पर कि आप मेरी माली इमदाद बाक़ाइदगी से करते रहें।

आपके अख़बारात की इत्तिला है कि अक़वामे-मुत्तहदा[44] में हमारे पाकिस्तान के मुस्तक़िल गंदूब प्रोफ़ेसर ए. एस. बुख़ारी को शौबा-ए-इत्तिलाआत[45] के अफ़सरे-आला का ओहदा पेश किया जा रहा है—मैंने तो यह सुना था कि सर ज़फ़रुल्लाह को अलहदा करके बुख़ारी साहब को वज़ीरे-ख़ारजा मुक़र्रर किया जाएगा, मगर मालूम होता है कि आप उन्हें मुस्तक़िल तौर पर अपने पास ही रखना चाहते हैं।

बुख़ारी साहब को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उनको मुझसे बहुत प्यार है, जिसका इज़हार वह हर पाँचवें या छटे बरस के बाद किसी-न-किसी अंदाज़ से करते रहते हैं। आप तो सिर्फ़ इतना जानते होंगे कि वह अंग्रेज़ी ज़बान के बहुत बड़े जादू बयान मुक़र्रिर हैं, लेकिन मैं उनको मज़ाह नवीस[46] की हैसियत से भी जानता हूँ। उनका एक मशहूर मज़मून 'लाहौर का जुग़राफ़िया' है, जिसे पढ़कर बड़े-बूढ़ों के इस क़ौल की सौ फ़ीसदी तसदीक़ हो जाती है कि लाहौर, लाहौर है, और बुख़ारी, बुख़ारी।

उनसे कहिए कि वह आपके अमरीका का भी जुग़राफ़िया लिखें ताकि आपके हुदूदअर्बा[47] से तमाम दुनिया अच्छी तरह वाक़िफ़ हो जाए—इसका रूसी ज़बान में तर्जुमा

कराके मामूँ मालनकोफ़ को ज़रूर भेज दीजिएगा।

लिखता मैं भी अच्छा हूँ, लेकिन मुसीबत यह है कि मैं आपके घर की मुर्गी बनकर दाल बराबर हो गया हूँ। वर्ना मैं आपकी शान में ऐसे-ऐसे क़सीदे लिख सकता हूँ, जो 'नवा-ए-वक़्त' के हमीद निज़ामी के फ़लक को भी सूझ नहीं सकते। एक मर्तबा मुझे अपने यहाँ बुलाइए, दो-तीन महीने अपनी सात आज़ादियों की मम्लुकत की सैर कराइए, फिर देखिए, यह बंदा-ए-आज़ाद आपकी तमाम ख़ुफ़िया मलाहियतों और ख़ूबियों का ऐतिराफ़[48] किन जानदार अल्फ़ाज़ में करता है। मुझे यक़ीन है, आप इस क़दर ख़ुश होंगे कि मेरा मुँह डालरों से भर देंगे।

जापान के साइंसदानों ने एक ऐलान में इस बात का इन्किशाफ़[49] किया है कि हाइड्रोजन बम का मौसम पर भी असर पड़ता है—हाल ही में आपने जज़ाइर[50] मार्शल में इस बम के जो तजुर्बे किए थे, इन लोगों का कहना है कि जापान के मौसम पर उनका यह असर पड़ा है कि अप्रैल ख़त्म होने के बावजूद वहाँ अच्छी ख़ासी सर्दी है। मालूम नहीं, इन चपट जापानियों को सर्दी क्यों पसंद नहीं। हम पाकिस्तानियों को तो बहुत पसंद है। आप मेहरबानी करके एक हाइड्रोजन बम हिंदुस्तान पर फेंक दें। हमारे हाँ गर्मियों का मौसम शुरू हो चुका है। सर्दी हो जाए तो मैं बड़े आराम में रहूँगा।

रीटा से पूछिए, अगर वह मान जाए तो पाकिस्तान में उसकी पहली शादी मुझी से रहे। जवाब से जल्द सरफ़राज़ फ़रमाइएगा।

आपका ताबे-फ़रमान भतीजा
सआदत हसन मंटो
26 अप्रैल, 1954
31, लक्ष्मी मैन्शंज़, हॉल रोड, लाहौर

1. याददाश्त; 2. सुरापान; 3. निषेध, वर्जित; 4. भरोसा; 5. समानांतर; 6 शराबबंदी; 7 चिंतित; 8. जन-संपर्क; 9. प्रथम बार चलाने की ख़ुशी मे मुहूर्त· 10. पाकिस्तान के प्रसिद्ध लेखक; 11. सर्वोच्च न्यायालय; 12. प्रसिद्ध लेखक; 13. सिद्धहस्तता, 14. एक सुगंधित औषधि जो व्यक्ति की बेहोशी समाप्त करने के काम आती है; 15. अभ्यस्त, 16. शादी-विवाह के अवसर पर दी जानेवाली गालियाँ; 17. द्वारा, कारण. 18. माध्यम; 19. महत्त्वपूर्ण; 20. प्रण, प्रतिज्ञा; 21. सात पीढ़ियाँ; 22. कृतज्ञ; 23. बुरा व्यक्तित्व; 24. निष्कपट; 25. योग्य; 26. अप्राकृतिक, अस्वाभाविक, 27. ऊपर-ऊपर; 28. पाकिस्तान मे प्रचलित नया धर्म, 29. द्वेष, रंजिश; 30. बदचलनी; 31. बगैर किसी शर्त के; 32. देशों; 33. इस्लाम धर्म ग्रहण करना; 34. जीवित; 35. गर्व मे; 36. हर्ज; 37. अपमानजनक; 38. पालन-पोषण, 39. सरक्षण, 40. देशनिकाला; 41. गिरफ़्तार; 42. वैवाहिक; 43. संपर्क; 44. संयुक्त राष्ट्रसंघ; 45. सूचना विभाग; 46. व्यंग्य-लेखक, व्यंग्यकार; 47. भौगोलिक स्थिति; 48. समर्थन; 49. खोज; 50. टापुओं।



786

कतबा

यहाँ सआदत हसन मंटो दफ़न है।
उसके सीने में फ़ने-अफ़सानानिगारी के
सारे इसरारो-रमूज़ दफ़न हैं—
वह अब भी मनों मिट्टी के नीचे सोच रहा है
कि वह बड़ा अफ़सानानिगार है या ख़ुदा।

सआदत हसन मंटो
18 अगस्त, 1954

अंतिम शब्द

बारह अप्रैल 1942 को मंटो ने लिखा था :

"लोग मुझे जानते हैं, इसलिए 'तआर्रुफ़'[1] की ज़रूरत नहीं। 'पेशलफ़्ज'[2] मैंने इसलिए नहीं लिखा कि जो कुछ मुझे कहना है, मैंने अपने मज़ामीन में कह दिया है। 'दीबाचा'[3] या 'मुक़द्दमा'[4] मैंने इसलिए किसी से नहीं लिखवाया कि मेरे नज़दीक मह उस शहबाले की तरह मुज़हकाखेज़[5] हद तक ग़ैरज़रूरी और ग़ैरअहम है जो दुल्हा के आगे या पीछे, घोड़े पर सजा-बनाकर बिठा दिया जाता है।"

दोस्तो,

लोग मंटो को जानते हैं, इसलिए तआर्रुफ की ज़रूरत नहीं।

'पेशलफ़्ज़' हमने इसलिए नहीं लिखा कि जो कुछ मंटो को कहना था, उसने अपने मज़ामीन में कह दिया है।

'दीबाचा' या 'मुक़द्दमा' हमने इसलिए नहीं लिखा कि हम नहीं चाहते, मंटो हमारी तहरीर को मुज़हकाखेज़, ग़ैरज़रूरी और ग़ैरअहम शहबाला कहे, और हमारी दोस्ती में कोई नाख़ुशगवार लम्हा आए।

अगर आपने 'दस्तावेज़' को, पन्ने के बाद पन्ना, 'तआर्रुफ़ की पहली कड़ी' से इन लफ्ज़ों तक हर्फ़-ब-हर्फ़ उसी तरतीब से पढ़ा है जो हमने हर दक़ियानूसी और तथाकथित स्कारली रवायत को तोड़कर पेश की है तो आपने अब तक मुश्किल 'मंटो-सफ़र' के बारे में वह सबकुछ जान लिया होगा जो हमारे ज़ेह्न में एक दोस्त के बारे में मौजूद था, और जो अब अमली सूरत में आपके सामने रखा है।

मंटो ने अफ़साने की सिन्फ़[6] को, बड़ी संदीदगी से, संगीन सिन्फ़ कहा था। हमने उसके महसूसात की क़द्र करते हुए, बिना मुखौटा लगाए जो आज के संपादकों और डाक्टरों का ढर्रा है, अफ़सानानिगारी और आदमी, आदमी और समाज, समाज और मंटो के बारे में, भरपूर संजीदगी से बात कहने की कोशिश की।

और दोस्तो,

जैसे ही हम, मंटो की तरह, अफ़सानानिगरी की संगीन फ़िज़ा[7] से बाहर निकले, हमने भी, मंटो की तरह, इतमीनान का साँस लिया।

फिर हमने उसके ड्रामों और मज़ामीन के निस्बतन[8] आसान और सहल पड़ाव पर, अपने

कड़े और दोस्ताना सफ़र की दास्तान को मंटो-यात्रा में, शामिल कर दिया जिसने उसकी मौत के बाद ज़िंदगी पाई थी, और जिस मंटो-यात्रा के यात्री अब आप भी हैं। क्या 'दस्तावेज़' का अध्ययन किसी यात्रा से कम है!

हनीफ़ रामे—चित्रकार, अदीब, संपादक, सियासतदाँ, मुख्यमंत्री, गुमनाम और नाकाम सियासतदाँ—ने कहा था : "उनकी ज़िंदगी में जितनी दिलचस्पी उनके अफ़सानों में ली गई, (उनकी) मौत के बाद हरगिज़ न ली जाएगी।"

वक़्त बड़ा ज़ालिम नक़्क़ाद[9] है। वह मुख्यमंत्री का नाम इतिहास के कूड़ेदान में फेंक देता है और एक ग़रीब साहित्यकार का नाम उसकी 'मामूली' तख़लीक़ात के साथ, हर संवेदनशील नागिरक की ज़बान पर लिख देता है।

लेसली फ़्लेमिंग ने 'जर्नल आफ़ साउथ एशियन लिटरेचर' के मंटो विशेषांक में Later Topical Essays के तहत मंटो के मज़ामीन पर एक सफ़हा लिखा है। उसने एक-एक, दो-दो सतरों में अलग-अलग मज़मूनों को छुआ है। क्या यह ताज्जुब की बात नहीं कि वह 'चचा साम के नाम' लिखे गए आठ ख़तों के बारे में एक जुम्ला तो क्या, एक लफ़्ज़ तक न लिख सकी। क्यों?

मंटो ने जब ये ख़ुतूत लिखे थे, तब अमरीका में चचा आइज़नहावर की हुकूमत थी। और जब हमारी अमरीकी स्कालर ने Later Topical Essays नामी सफ़हा लिखा, तब अमरीका में चचा रोनल्ड रीगन की हुकूमत थी। यानी दोनों ज़माने रिपब्लिकन राष्ट्रपतियों के ज़माने थे। बात समझ में आती है और लेसली फ़्लेमिंग की ओढ़ी-ढाँपी झेंप साफ़ नज़र आती है।

चौथे, पाँचवें और छठे दशक के अधिकांश प्रगतिशील साहित्यकारों की रचनाएँ आज उनका मुँह चिढ़ाती हैं। और जो साहित्यकार संयोग से इस अंतिम दशक में जीवित हैं, उनकी तो यह हालत है कि वे अपनी रचनाओं से मुँह छिपाते फिरते हैं।

मंटो एकमात्र साहित्यकार है जिसने पचास बरस पहले जो कुछ लिखा, उसमें आज की हक़ीक़त भी सिमटी हुई नज़र आती है। आप चाहें तो इसे मंटवीयत कह सकते हैं।

दोस्तो, मरने के बाद मंटो कैसे ज़िंदा रहा, यह दास्तान फिर कभी

1. परिचय; 2. प्राक्कथन; 3. भूमिका; 4. प्रस्तावना; 5. हास्यास्पद; 6. विधा; 7. वातावरण; 8. अपेक्षाकृत; 9. पारखी, समालोचक।

बिब्लियोग्राफी

मजमूए

1. मंटो के मज़ामीन
2. तल्ख़, तुर्श और शीरीं
3. ऊपर, नीचे और दरम्यान

मज़ामीन

1. छेड खूबाँ से चली जाए असद
2. कुछ नही है तो अदावत ही सही
3. देहाती बोलियाँ (एक)
4. देहाती बोलियाँ (दो)
5. तहज़ीद अस्लहा
6. अगर
7. हिंदुस्तान को लीडरों से बचाओ
8. एक अश्क आलूद अपील
9. मुझे शिकायत है
10. शरीफ औरतें और फ़िल्मी दुनिया
11. हिंदुस्तानी सनअते-फ़िल्मसाज़ी पर एक नज़र
12. 'ज़िंदगी'—एक रिव्यू
13. अस्मतफरोशी
14. मैक्सिम गोर्की
15. सुर्ख़ इनक़लाब
16. बातें
17. लोग अपने-आपको मदहोश क्यों करते हैं ?
18. किसान-मज़दूर-सरमायादार-ज़मींदार
19. तरक़्क़ीयाफ़्ता क़ब्रिस्तान
20. सफ़ेद झूठ
21. अफ़सानानिगार और जिंसी मसाइल
22. कसौटी
23. अदबे-जदीद
24. लज़्ज़ते-संग
25. हमारे मसाइल
26. दीवारों पर लिखना
27. नाक की क़िस्में
28. खाँसी पर
29. सवाल पैदा होता है
30. कुछ नामों के बारे में
31. मैं फ़िल्म क्यों नहीं देखता
32. सवेरे जो कल आँख मेरी खुली
33. यौमे-इकबाल पर
34. महबूस औरतें
35. ईमानो-ईकान
36. परदे की बातें
37. मुफ़्तनोशों की तेरह क़िस्में
38. पटाख़े
39. आगरा में मिर्ज़ा नौशा की ज़िंदगी
40. ग़ालिब और चौदहवीं
41. ज़हमते-महरे-दरख़्शाँ

42. मंटो अपने हमज़ाद की नज़र में
43. मैं अफ़साना क्योंकर लिखता हूँ
44. पसमंज़र
45. अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है
46. ज़रूरत है
47. मेरी शादी
48. किर्चें और किरचियाँ
49. क़त्लो-ख़ून की सुर्ख़ियाँ
50. लीचियाँ, आलूचे और इलायचियाँ
51. बिन बुलाए मेहमान
52. अपनी-अपनी डफ़ली
53. गुनाह की बेटियाँ, गुनाह के बाप
54. चचा मंटो के नाम एक भतीजे का ख़त
55. यौमे-इस्तक़लाल
56. चचा साम के नाम एक ख़त
57. चचा साम के नाम दूसरा ख़त
58. चचा साम के नाम तीसरा ख़त
59. चचा साम के नाम चौथा ख़त
60. चचा साम के नाम पाँचवाँ ख़त
61. चचा साम के नाम सातवाँ ख़त
62. चचा साम के नाम आठवाँ ख़त
63. चचा साम के नाम नवाँ ख़त
64. आदाद के साथ अदब और ज़िंदगी की छेड़
65. चंद तसवीरे-बुताँ, चंद हसीनों के ख़ुतूत
66. दो गढ़े
67. तवेले की बला
68. पाँचवाँ मुक़द्दमा
69. पंडित नेहरू के नाम एक ख़त
70. बग़ैर उनवान के